ISSN : 0975-8011

बुन्देली बसंत

बुन्देली विकास संस्थान



2012

ISSN - 0975- 8011

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली बसन्त

अंक १३, १४ फरवरी २०१२

❄

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०६४२५१४१४५५, ०६६८१५०३०५५

❄

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

मोबाइल : ०६४२५४७४६६२, ०६७५५४६८६८६

e-mail : bsparmar1962@gmail.com

❄

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०६४२५८७६७७३

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०६४२५१४२०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

महल परिसर, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  रामकुमार सोनी, गोवर्धन टॉकीज के पास,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : ०९८९३१५२६१०

- **पत्रिका में आंतरिक चित्र एवं रेखाचित्र :**
  मनोहर कॉजल
  पाठक कॉलानी, दमोह (म.प्र.)

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपुर
  ☎ : ०९७१३३४३३१३

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

- बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

- विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रमणिका

भाषा, साहित्य एवं आलोचना

बुन्देली गद्य

इतिहास, परम्परा और संस्कृति

बुन्देली काव्य

अन्य

संपादकीय -

महादेश भारत के मध्य में अवस्थित चंबल-यमुना-नर्मदा और टोंस के बीच के भूखण्ड को अतीत में दशार्ण देश, जेजाकभुक्ति, जुझौति आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है जो आज बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा जाता है। वर्तमान में यह अँचल मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश दो राज्यों में फैला है। यह प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है। यहाँ, केन, बेतवा, धसान, चंबल तथा यमुना जैसी प्रमुख नदियाँ प्रवाहित हैं किन्तु उनके जल का समुचित दोहन नहीं हो पा रहा है। इस अँचल के पन्ना तथा बकस्वाहा में हीरा की खानें हैं जिनकी खदानों से निकले हीरे गुजरात के सूरत तथा महाराष्ट्र की मुम्बई में तराशे जाते हैं। यहाँ का ग्रेनाइट गुजरात के अलावा चीन तथा सिंगापुर जा रहा है। संगमरमर तथा बॉक्साइट के भण्डारों का लाभ इस अँचल के निवासियों को नहीं मिल रहा है। यहाँ की नदियों से असीमित रेत निकालकर प्रान्त से बाहर भेजी जा रही है। इस अँचल में ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक महत्व के स्थल खजुराहो, ओरछा तथा झाँसी तो राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन के प्रमुख केन्द्र हैं किन्तु इनके अतिरिक्त चंदेरी, महोबा, चरखारी, कालिंजर, पन्ना, अजयगढ़, जटाशंकर, भीमकुण्ड आदि स्थल भी हैं जिनको विकसित कर पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है। यहाँ का अधिकांश भूभाग वन संपदा से सम्पन्न जैव विविधता की दृष्टि से धनी है। मेरे कहने का आशय यह है कि प्रकृति ने किसी भी तरह से इस अँचल को हीन नहीं बनाया है लेकिन अतीत से लेकर वर्तमान तक के शासकों की नीतियों से यह अँचल आज भी राष्ट्रीय परिदृश्य पर गरीबी से जूझता, बदहाल तथा बेकारों से भरा माना जा रहा है। इसका कारण क्या है? मुख्य कारण प्राकृतिक संसाधनों का नियोजित ढंग से दोहन न कर पाना तथा शैक्षणिक व तकनीकी रूप से पिछड़ी जनता का होना। इन दोनों कारणों का परिहार किया जाए, तो यह अँचल भी भारत के विकसित अँचलों की कोटि में आ सकता है। विगत वर्षों में केन्द्र सरकार ने विशेष पैकेज दिया है उसका समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसके लिए जनजागृति का अभाव प्रमुख कारण है। यहाँ के लोग 'भगवान भरोसे' या 'हमें क्या करना है?' जैसी मानसिकता से पीड़ित हैं। इसको बदलने के लिए स्वयंसेवी संगठनों तथा बुद्धिजीवियों को प्राणपण से जुटने की आवश्यकता है। कई वर्षों से अलग बुन्देलखण्ड राज्य की माँग की जाती रही है। अभी उत्तरप्रदेश विधानसभा ने इस अँचल को बुन्देलखण्ड राज्य में परिवर्तित करने का प्रस्ताव दिया है, किन्तु मध्यप्रदेश सरकार इस प्रस्ताव पर सहमत नजर नहीं आती है। अर्थात् यह अँचल राजनैतिक खींचतान का शिकार है। इस स्थिति को बदलने हेतु जनजागरण की जरूरत है।

बुन्देली साहित्यिक रचनाधर्मिता की बात करें, तो आज राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हर भाषा के साहित्य में दलितों, उपेक्षितों, वंचितों, स्त्रियों तथा युवाओं की समस्याओं को प्रमुखता से उठाया जा रहा है। यही स्वर प्रधानता से सुनाई दे रहा है। यह स्वर बुन्देली में कम सुनाई दे रहा है। यहाँ

अभी भी विषय वस्तु पुराने ढर्रे की, पारंपरिक तथा यथास्थितिवादी देखने को मिल रही है। परिवर्तन की पुकार में वह गहराई नहीं है जो मराठी व बंगला में है। कारण यह है कि इन उपेक्षित वर्गों की आवाज को बुलन्द करने वाले रचनाकार उतनी संख्या तथा क्षमता से नहीं आ रहे है। जितने आने चाहिए। मेरा अँचल के निवासियों तथा बुद्धिजीवियों से निवेदन है कि वे समाज के उन तबकों की समस्याओं को भी उठायें तथा उन वर्गों के लेखकों को प्रशिक्षित व प्रोत्साहित करें। आज वैश्वीकरण के प्रभाव से गाँव बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। इनके प्रभावों को पहचानते हुए रचनाएँ रचें क्योंकि साहित्यकार का काम समाज को रास्ता सुझाना भी है। मात्र श्रृंगार, भक्तिभाव, बुन्देलखण्ड यश वर्णन तथा अतीतजीवी होने से हमारी बुन्देली भाषा तथा साहित्य का भला नहीं होगा। आज किसान कर्ज से पीड़ित हो आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं, कुपोषित बच्चे और प्रसूताओं की पीड़ाएँ हमारे सामने हैं। दहेज, जाति प्रथा, ऊँच-नीच का भेदभाव अभी भी समाज में है। बेटों की तुलना में बेटियों को आत्मिक रूप से कम सम्मान मिल रहा है। ये तमाम ऐसी समस्याएँ हैं जिन पर हमें आगे आकर लिखने तथा उनके खिलाफ वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है। हम बुन्देली को गद्य की विधागत वैविध्य के साथ वस्तुगत समकालीनता से जोड़े तो शायद और बेहतर होगा।

प्रस्तुत अंक में लखन पाल की कहानी 'गुंडैन' शकूर मुहम्मद की कहानी 'दहेज कौ लालच' तथा प्रेम प्रकाश चौबे की कहानी 'चुनाव' समकालीनता से जुड़ी है। हमारे वरिष्ठ श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' भाषिक स्तर पर लगातार चिन्तन करके नई-नई चीजें हम सबके लिए लाते हैं। वे इस बार भी 'शब्द दुहराव से अर्थ बदलाव' के साथ आपके सामने हैं। हमने इस अंक में पारंपरिक रूप से वैविध्य बरकरार रखा है। यह अंक कैसा है? इस पर आप खुलकर अपनी राय दें। जो मेरी पाथेय बन सहायता कर सके।

विगत एक वर्ष में हमारे बीच से बुन्देली के श्रेष्ठ रचनाकार माधव शुक्ल 'मनोज' सागर, दलितों के बीच सतत् सक्रिय रहकर काम करने वाले कवि श्री रामजी लाल चतुर्वेदी 'नन्ना' छतरपुर, बुन्देली के समर्थ रचनाकार डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश' आलमपुर भिण्ड, समर्थ आलोचक व मेरे मार्गदर्शक डॉ. कमला प्रसाद भोपाल, छतरपुर में जन्में साहित्यसेवी डॉ. परमलाल गुप्त, सतना, बुन्देली को समर्पित विदुषी डॉ. राजमति दिवाकर सागर एवं बुन्देली लोक संस्कृति को समर्पित राजनेता डॉ. रत्नेश सालोमन दमोह कायिक रूप से विलग हुए हैं। इन सबको 'बुन्देली विकास संस्थान' परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं आप सबसे निवेदन करता हूँ कि इनके कृतित्व से प्रेरणा लेकर इस माटी की सेवा करें, जो उनके प्रति सही सम्मान होगा।

बहादुर सिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की

वर्ष २०११ की 'बुन्देली बसंत' पत्रिका बसंत के माहौल में पाकर मन गदगद हो गया। कल्पनाशील आवरण पृष्ठ और बहुमूल्य शोधपरक सामग्री से समृद्ध इस लोक संपादन के लिए आपको एवं आपके सहयोगियों को मन से बहुत-बहुत बधाई। बुंदेली भाषा, प्रकारांतर से हिन्दी साहित्य के भंडार को संपूर्त करने के लिए आप लोग, बुन्देली बसंत के माध्यम से जो योगदान दे रहे हैं, वह किसी प्रशंसा का मोहताज नहीं है। भविष्य आप लोगों के इस परिश्रम को गर्व से याद करेगा। मैं इस अंक पर समीक्षा लिखकर निश्चित ही प्रकाशित करूँगा और आपको भेजूंगा।

– **युगेश शर्मा**, *सियाराम कॉलोनी, चूना भट्टी, भोपाल*

बुंदेली बसंत २०११ प्राप्त होने पर प्रसन्नता हुई। बुन्देलखण्ड की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, साहित्य एवं माटी से जुड़ी स्मारिका है बुन्देली बसंत। अपनी विविधता एवं अच्छे कलेवर और अच्छी विषयवस्तु का चयन स्मारिका की प्रमुख विशेषताएँ हैं। श्री हरिविष्णु अवस्थी, डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, डॉ. जगदीश प्रसाद रावत, डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी के लेख, डॉ. रामनारायण शर्मा का नाटक, देवकीनन्दन 'शान्त' की कविता एवं श्री दिनेश चन्द्र दुबे का इंटरव्यू (संस्मरण) विशेष अच्छे लगे। स्मारिका की प्रगति के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

– **साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी,** *३६/१५, प्रेमगंज, सीपरी, झाँसी (उ.प्र.)*

आपके द्वारा सम्पादित 'बुन्देली बसंत' पत्रिका प्राप्त हुई। आभारी हूँ। बुन्देली साहित्य की यह निधि है। इसमें सभी विधाओं को एक साथ प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास हुआ है। इतिहास, संस्कृति, साहित्य से सम्पन्न यह पत्रिका क्षेत्रीय संस्थाओं तथा सक्रिय विद्वानों के लिए आदर्श है। इतने वृहद और सुन्दर प्रकाशन के लिए मेरी बधाई स्वीकारें।

– **भगवती लाल राजपुरोहित,** *बिलोटीपुरा, उज्जैन*

बुन्देली बसंत का १२वां अंक मिला अत्यन्त आभारी हूँ। इसके माध्यम से आप बुंदेली भाषा और साहित्य के प्रचीन-अर्वाचीन रूपों को बड़े मनोयोग के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं। यह सामग्री बड़ी उपादेय तथा मूल्यवान होने के कारण शोधार्थियों एवं इतिहासज्ञों के लिए भी दृष्टिबोधक है। कवरपृष्ठ का संयोजन बड़ा चित्ताकर्षक है, जो सर्वथा प्रासंगिक और संकल्पमूलक है, बधाई।

– **डॉ. महेन्द्र भानावत,** *उदयपुर (राजस्थान)*

'बुन्देली विकास संस्थान, महल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)' अब बुन्देली जगत की शान बन गया है। जिसकी 'बुन्देली बसंत' वार्षिक पत्रिका अब अपनी अमिट पहचान बना चुकी है।

सुन्दर, मनोकर्षक, प्रीतिकर मुद्रण वाली, विपुल कलेवरीय, द्वादश/१७ फरवरी २०११ बुन्देली बसंत, इस बार लेखकीय प्रति में 'भैया' डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर' को सादर भेंट पढ़कर डॉ. परमार (सम्पादक जी) का विशेष हार्दिक अपनापन पा लिया है। पत्रिका में शोध लेखों के वृक्ष, एकांकी के बौर, लोककथा के पत्ते, ललित निबंध के झुरमुट, संस्मरण के मोटे तने, कहानी के डाल, नाटक के पुष्प, व्यंग्य के काँटे एवं कविताओं के सुगंधित बयार, आदि एक उद्यान की शोभा बढ़ाते हैं। अतः 'बुन्देली बसंत' बनाम 'साहित्योद्यान' कहना एक सार्थक पहल है। एतदर्थ खूब - साधुवाद। अब कुछ बुन्देली-मिठास की निम्न पंक्तियों में लें -

'हात-बुन्देली बसंत' लयें। - का कित्ती कयें-का कयें।।
'सिंहनी' नोनो गेट अप छपो -जुगल-जोड़ी भी शावक लयें।।
अनुक्रमणिका भी बहुत खण्डी है - लेख कवियन की झाँकी लयें।।
अंक-बारऊ -फरवरी - सत्तरा - लेख कवियन की शोभा लयें।
डॉक्टर परमारऊ सम्पादन भलो - मन से 'सीकर' बधाई कयें।।

– **डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'**

सीकर भवन, न्यू दतिया पब्लिक स्कूल, ठंडी सड़क, दतिया (म.प्र.)

'बुन्देली बसंत' अंक १२, वर्ष २०११ का अनुशीलन करते हुए अति आनंदित हुआ। पत्रिका की सभी सामग्री पठनीय एवं उच्च स्तरीय है। डॉ. लखन लाल पाल की कहानी 'बंकट' का शिल्प काफी मँजा हुआ है और कथ्य भी बहुत रुचिकर है। इसमें सर्वहारा के संघर्ष को बहुत बारीकी से उकेरा गया है। इतनी अच्छी कहानी के लिए डॉ. लखन लाल पाल को, और इतने स्तरीय चयन के लिए संपादक मंडल को साधुवाद। डॉ. लखन लाल खरे के आलेख 'बुन्देलखण्ड का अज्ञात सूफी कवि : हाजी बली शाह' पढ़कर अच्छा लगा और मुझ जैसे सामान्य पाठक को ये नई जानकारी भी मिली कि बुन्देलखण्ड में भी इतना स्तरीय सूफी लेखन हुआ है। सामान्यतः सूफी लेखन को मुगल सल्तनतों से जोड़कर ही देखा जाता है। डॉ. कुमारेन्द्र सेंगर के आलेख 'जालौन की पहली महिला क्रान्तिकारी ताई बाई' ने विशेष ध्यान आकर्षित किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के आलोक में प्रायः अन्य क्रान्तिकारियों के नाम उभरने से रह जाते हैं। इतनी स्तरीय पत्रिका के लिये आपकी पूरी टीम को बधाई।

– **सुरेन्द्र कुमार नायक**, *प्रताप नगर, कोंच, जिला जालौन (उ.प्र.)*

'बुन्देली बसंत' सदा की तरह सारी समानांतर पत्रिकाओं में श्रेष्ठ संपादन संपन्न लगी। हर अंक डायजेस्ट या धरोहर रूप में सामग्री दे रहे हैं। आप सबको कोटिशः धन्यवाद व बधाई।

– **अजीत कुमार श्रीवास्तव,** *राजीव सदन, नायक मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)*

अपनी माटी की सुगंध से दूर मैं भारत के पोर्टब्लेयर अँचल में हूँ लेकिन बुन्देली बसंत के माध्यम से बुन्देलखण्ड में पहुँच जाता हूँ। बुन्देली बसंत सभी जानकारियों से भरपूर रहता है।

– **डॉ. व्ही. के. साहू,** *पोर्टब्लेयर*

'बुन्देली बसंत' का साल भर इंतजार रहता है। बारहवां अंक पाकर पूरा पढ़ा। पढ़कर लगा कि बुन्देली विकास संस्थान इस पत्रिका के माध्यम से पूरे देश में बुन्देलखंडी संस्कृति की पताका फहरा रहा है। पूरी टीम को शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

– **डॉ. सुनील केशव देवधर,** *आकाशवाणी पुणे (महाराष्ट्र)*

बुन्देली साहित्य व संस्कृति का गुलदस्ता 'बुन्देली बसंत-१२' पहली बार मेरी दृष्टि में आया। इसको देखने पर पुराने अंकों को देखने की ललक पैदा हुई। मेरा दुर्भाग्य रहा कि इतनी अच्छी पत्रिका मेरे नजरों से अभी तक ओझिल रही। इसके निरन्तर विकास हेतु मैं शुभकामना देता हूँ।

- डॉ. नरेश मिश्रा, *महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (रोहतक)*

बुन्देलखण्ड के सामाजिक जीवन, इतिहास एवं परम्पराओं को प्रतिबिम्बित करती वार्षिक पत्रिका बुन्देली बसंत का १२ वाँ अंक २०११ मिला। बुन्देली में अभी तक इतने अच्छे कलेवर के साथ अन्य कोई दूसरी पत्रिका मुझे अभी तक देखने को नहीं मिली है। इतनी अच्छी पत्रिका को निकालने के लिए संपादक जी साधुवाद के पात्र हैं।

पत्रिका में आलोचना, कहानी, इतिहास और पुरातत्व के साथ यह सम्पूर्ण रूप से बुन्देली यौवना सी प्रतीत होती है। रामकुमार सोनी ने आवरण के चित्रांकन में बाघों के बचाने का स्तुत्य प्रयास किया है। संपादक जी से मैं एक बात अवश्य कहना चाहूँगा कि आज साहित्य की धारा नारी विमर्श, दलित विमर्श, सहजीवन, भूमण्डलीकरण, ग्रामीणों का गाँव से पलायन एवं उनकी बदलती जीवन शैली पर केन्द्रित हो गया है। अगर बुन्देली साहित्य को भी इस ओर मोड़ा जाये तो बहुत काम बन सकता है। आज संस्कृत साहित्य ने भी इस धारा को आत्मसात कर लिया है। लोककथाओं एवं तीज त्योहारों पर काफी काम हो चुका है। अगर उससे भी अच्छी सामग्री आती है तो उसे पत्रिका में स्थान दे देना चाहिए। प्रकाशित सामग्री को दुबारा प्रकाशित करने से बचाना चाहिए। साहित्य के लिये यह अच्छी बात होगी। पत्रिका में आपने कुछ सत्यकथाएं प्रकाशित की हैं। उनमें डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल' जी की 'सिब्बू गये रामजाने' एक हृदय विदारक घटना है, ऐसी घटनाएँ किसी के साथ न हों। पर यह घटना बहुत ही निजी है। व्यष्टि पर नहीं, समष्टि पर ही साहित्य केन्द्रित होना चाहिए। चिन्तामणि वर्मा की सत्यकथा 'हिए की एकाऊ फूट गई का' के शीर्षक पर ही लेखक ने ज्यादा फोकस किया है। प्लाट अच्छा है किन्तु लेखक अभिव्यक्ति का खतरा न उठा सका। सत्यकथा नहीं यह संस्मरण के अधिक निकट है। संस्मरण, कहानी, उपन्यास आदि विधाएँ केवल घटनाओं का सत्य भर नहीं होती हैं वरन उनमें कला का भी सत्य होता है। इसमें कला का सत्य सिरे से नदारद है। सरोजा शिल्पी जी की 'कठेलयांऊ' लोककथा को लोकमानस में ही रहने दिया जाता तो ज्यादा अच्छा था। लोकमानस में रची-बसी लोककथाओं को आप अपनी भाषा में पिरोकर पाठकों को परोस तो सकती हो किन्तु उसमें अपनी मौलिकता क्या रह जाती है? यदि मौलिक कहानी को लिखने में आपने शक्ति लगाई होती तो बुन्देली को एक रचना और मिल जाती। सरोजा जी, राजा-रानियों की कहानियाँ नहीं, अपने परिवेश के पात्रों को उठाकर रचना लिखिये। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अगर आप समाज के दर्पण हो इस रचना को देखेंगी तो उसमें कुछ भी न दिखेगा। डॉ. दुर्गेश दीक्षित जी की कहानी 'धरम जात कौ झूठौ झगड़ौ' हिन्दू मुस्लिम एकता की मिसाल पेश करती है। कहानी कहने का ढंग अच्छा है, कहानी अच्छी है, पर हर बात पर कहावतों के प्रयोग से उसकी सरसता में बाधा आ गई है। वैसे कहावतें मुहावरे साहित्य में रोचकता लाते हैं लेकिन मन बनाकर जबरन कहावतों के प्रयोग से रचना दब गयी है।

साहित्यकार का युगदृष्टा होना अति आवश्यक है। उसकी सोच में नवीन दृष्टि होनी ही चाहिए। यदि वह अन्य से अलग हटकर सोच नहीं रखता है तो वह साहित्य अल्पजीवी बनकर रह जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रीतिकालीन श्रृंगार को तिलांजलि देकर नई सोच के साथ साहित्य में पदार्पण किया तो वे साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत बनकर उभरे। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' भर में नहीं अटके रहे बल्कि हिन्दी को परिनिष्ठित करके युग पुरोधा बन गये। इसी दृष्टिकोण के चलते युग और वाद बनते चले गये। जबकि पत्रिका की कुछ रचनाओं को पढ़ते हुए ऐसा लग रहा है कि घर की देहलीज से आगे का सफर बहुत धीमा है। अधिकतर बुन्देली कविताओं में तुकबंदी ज्यादा है। वैसे तुकबंदी का नाम कविता नहीं है। अरस्तु ने कहा है कि यदि छन्द का उपयोग ही व्यक्ति को कवि बनाता है तो भौतिकशास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के किसी भी सिद्धान्त में छन्द का प्रयोग कर उसे प्रस्तुत कर देने से कोई भी व्यक्ति कवि बन जायेगा। उन्हीं के शब्दों में - 'Even if a theory of medicine or Physical Philosophy be put fourth in a metricial form, it is usual to describe the writer in this way.

कविता में उथलापन खीझ पैदा करता है। श्री ग्यासीराम गुप्त जी ने अपनी कविता 'पत्नी मैहमा' में जो पत्नी का विद्रूप चेहरा उजागर किया है उसमें उनकी कुण्ठा ही झलकती है। स्त्री सदियों से सतायी जाती रही है। आज भी वह घरेलू हिंसा, दहेज, हत्या तथा भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराधों से जूझ रही है। उस पर किये जा रहे ये अत्याचार उसे कहाँ ले जाकर छोड़ेंगे यह कहना मुश्किल है। उसकी प्रतिशतता में आई गिरावट इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पता नहीं यह सब हमें क्यों नहीं दिखता है। इतने व्यवधानों के बाद भी आज की स्त्री घर की देहलीज पार करके घूंघट एवं रूढ़ियों से टक्कर लेती हुई अपना पथ स्वयं बना रही हैं। हर क्षेत्र में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। हमारा पुरुषवादी अहं उसकी प्रगति को पचा नहीं पा रहा है। कुछ अपवादों से नारी जाति को कोसना अच्छी बात नहीं है। काश पत्नी मैहमा को सकारात्मक रूप में लिया होता तो बड़ा काम बन जाता। पत्रिका के इस अंक कुछ कविताएँ अच्छी हैं। बेताल जी की 'पानी की किल्लत', नवरस जी की 'दो रोटी', शांत जी की 'हरदौल चरित', शीलचन्द्र जैन की 'किस्मत किसान की' में युगबोध झाँकता है। भाषा साहित्य एवं आलोचना खण्ड, इतिहास पुरातत्वखण्ड पठनीय एवं संग्रहणीय है।

- डॉ. लखन लाल पाल, *(उरई) जिला जालौन (उ.प्र.)*

'बुन्देली बसंत-१२' अंक पढ़ा। पढ़कर बुन्देली सुगंध से अविभूत हुआ। इसमें इतिहास, कला, संस्कृति तथा साहित्य सब कुछ बुन्देली माटी की सैंधिपन से आपूरित है। श्रेष्ठ संपादन के लिए साधुवाद।

- आलोक पाण्डेय (शोध छात्र हिन्दी), *डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर*

बुन्देली यात्रा संस्मरण कथा -

घुमक्क्कड़ी पाथर बाग की

- डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'

सभ्यता और संस्कृति के विकास में घुमक्कड़ी कौ बड़ौ हात रत। यात्रा के उद्देस कैउ होत। कोउ व्योपार के लानें घर सें बायरें कड़त, कोउ विद्या पावे के लानें देस-विदेस की यात्रा करत, कोउ पुन्न कमावे तीरथन की यात्रा करत, कोउ साहित्य-कला-विज्ञान के समैयन में भागीदारी करवे खों देस-विदेस में जात और कोउ मौज-मस्ती के लानें घूमत। घुमक्कड़ी कौ उद्देस कौनउ होय एक बात हर यात्रा पै लागू होत कै यात्रा सें घुमक्कड़ कौ ज्ञान और अनुभव बड़त।

इक्कीसवीं सदी में बीसवीं सदी की घुमक्कड़ी की बात करें। सन् उन्नीस सै तिरासी के दूजे मईना में ई लेखक खाँ एक न्यौतों मिलौतो। चण्डीगढ़ की सत्य ज्ञान परमोसन सुसायटी (सत्य ज्ञान प्रमोशन सोसायटी) के एक समैया में लेखक खौ बुलाव गवं तौ। पंजाब में ब्रह्म विज्ञान के प्रोफेसर हते प्रो. निर्मलचन्द जी। वे दर्सन सास्त्र के प्रकांड पंडित हते। जगत और जीवन के बारे में उनके विचार बड़े सुरजे और नए हते। प्रो निर्मलचन्द कछू दिनन महर्षि अरविन्द घोस के आस्रम में सोउ रय ते औ महर्सि ने अपनी अंतरंग परिषद में उनैं राखे तौ। सिरी माँ की कछू बातें उनें साँच की तलास में रोड़ा जैसी लगीं, सो वे आश्रम छोड़ कें चले आय ते। उनके सुपुत्र स्वाधीनता सेनानी प्रकास देव जू पंजाब सरकार के सूचना-विभाग के उप संचालक हते। वे समिति के संस्थापक मंत्री हते और ऊ के सभापति हते। चंडीगढ़ विस्वविधालय के दर्सनं सास्त्र विभाग के मुखिया डॉ. मोहन सिंह दीवाना। बीस फरवरी की रात में हम ग्वालियर सें रेलगाड़ी में बैठे औ दूसरे दिना बड़े भुन्सारे अम्बाला की टेसन पै उतर गए। अम्बाला सें बस पकरी औ दुपरिया के पैलउ चंडीगढ़ पौंच गय। सिरी प्रकास देव जू बस की बाट देख रय ते। वे बिल्ला लगाँय ते अपने अलफा पै, सो उतरतइँ हम उनें चीन्ह गय। उनके घरै पौंच कें सपरे-खोरे, भोजन करे और कछू देर आराम करे।

साम के चार बजे प्रकासदेव जू सभापति जू के घरै लिवा गय। झक्क सेत दाड़ी, झकाझक सेत पगड़ी औ अलफा-पायजामा में डॉ. मोहन सिंह दीवाना बड़े दिप रय ते। उनसे मिलकै बड़ौ नीनो लगो। बड़ी अपुनपौ दिखाव दीवाना जू नें। वे अकेले हते- घरवारी सरग सिधार गई ती और लड़का कनाडा में हतौ। वे चंडीगढ़ छोड़ कै कितउ नईं जान चाउत ते। साज-सँभार के लानें नौकर चाकर हते। उनके घर सैं हम तीनइ जनें समैया की जाँगा गए।

समैया गाँधी स्मारक भवन में हती। हम लोग पौचे औ सभा की कार्रवाई चालू हो गई। जो समय दव गव तौ ठीक ओई समय पै सभा चालू हो गई। एक मिनट कौ भी झेल नई करौ गव तौ। चर्चा कौ विषय हतौ "क्या जीवन जीने योग्य" है। ई विषय पै तीन बोलवे वारन नें अपनै बिचार सुनाये। सबकौ सार जौ हतौ कै हमें ऐसे बिचार चानै जिनमें जिन्दगी कौ सई मतलब समजाव गव होय और आदमी खाँ समरथ बनावे कौ सँदेसौं दव गव होय, जिन्दगी जीवे के लानै है। हम इतै जीवे के लानै हैं। दण्ड भोगवे नईं आए।

सभा ठीक दो घंटा चली। गाँधी स्मारक भवन सें डॉ. दीवाना हमें गुरुद्वारे में लै गय। सिक्खन कौ कौनउ परब हतौ। गुरुद्वारे की इमारत बड़ी सुन्दर है - देखवे जोग। जब हम पौंचे तब कीरतन चल रव तौ; फिर ज्ञानी जू बोले और उनके पाछें दीवाना जू। फिर अरदास भई और हम लोग चल दय। डॉ. दीवाना के संगे ब्यारी होने ती सो सूदे उनके घरै पौचें। समिति के कोषाध्यक्ष डॉ. हरभजन सिंह पैलउ पौच गय ते। वे विस्व विद्यालय में रीडर हते और लेखक हते। जब ब्यारी हो चुकी तब डॉ. हरभजन सिंह ने दूसरे दिना होवे वारी लेखकन की बैठक में सामिल होवे कौ न्यौतों दव।

दूसरे दिना प्रकास देव जू औ डॉ. हरभजन सिंह जू के संगै घूमवे खौ कड़े। पैलें चण्डीगढ़ विस्व विद्यालय, हाई कोर्ट और सचिवालय की भव्य इमारतें देखीं फिर बाजार होत पाथर बाग (रॉक गार्डन) देखवे पौचे। फ्रांस के नामी वास्तुकार ला कारबूजिए ने चंडीगढ़ की बसाहट कौ नक्सा बनाव तौ। ऊ खाका में कितउँ पाथर बाग (रॉक गार्डन) कौ नाव नइयाँ। पाथर बाग तौ एक सब इंजीनियर की कल्पना कौ कमाल आय। जब ई नए सहर कौ निर्मान हो रव तौ तब सब इंजीनियर नेकचन्द खौं निर्मान के काम में न लगाकै निर्मान-सामग्री के गोदाम की जिम्मेदारी सौंपी गई ती। गोदाम खुले मैदान में हतौ, उतई सहर भर कौ कूरा फैको जात तौ। एक पाल लगा दव गव तौ जीमें सिमन्ट की बोरी धरी रत तीं औ एक कुदाँई नेकचन्द बैठे रत ते। सामान कौ आवक-जावक लिखवे में इकाध घण्टा कौ समय लगत तौ, बाकी दिनभर ठलुआ बैठे बैठे वौ उकता गव। सो एक दिना वौ कूरा के ढेर-महाघूरे पै पौंचौ। ऊ नै देखे कै कूरा में बन्न-बन्न की चीजें डरीं। ऊनें चौकीदार खाँ बुलाव औ ऊ सै कई कै ई कूरा में सें टूटे कप-पलेट, चटाई, भजन करत की माला, टूटे-फूटे खिलौना बगैरा छाँट कै एक कुदाईं कर दो। ई काम में कछू दिना लग गए। फिर ऊ नै मैदान के भरका, टोरें पथरा औ समतल धरती कौ मुआयना करौ। अपनै काम सै नेकराम खाँ जब उकास मिलत तौ वौ बाग के काम में लग जात तौ। माटी के बासन-भाँड़े और कप-पलेट जोर-तँगोर कै ऊनै आदमियन औ लुगाइयन की मूरतें बनाईं। लुगाइअन की मूरतन खौं कूरा में मिली चुरियन और दूसरी चीजनसै ऐसौ सजाव कै वे साच्छात लुगाईं लगन लगीं। खदरन खौं गुफन कौ रूप दै दव; उनमें चटाईं बिछा दईं और तुलसी मालन खौं टाँग दव। ऐसौ लगत तौ कै तपसी बाबा कितऊँ सै आबई बारे हैं। एक टोर सें पानी बुआ कै नेकचन्द ने झिन्ना बनाव। झिन्ना कौ पानी टोर के सिरे सै गिर कै पठला पै बड़त तौ, पठला पै सै फिर गिरत तौ और दूसरौ झिन्ना बन जात तौ। बाग

घूमवे में ऐसी भौत कलाकृतियाँ देखी, जिनै निरमाता की कल्पना सक्ति कौ प्रतीक कव जा सकत। उनकी खूबी जा है कै वे नए सामान सै नईं बनाई गईं। वे कूरा और बेकाम की चीजन सै बनाई गई तीं।

बाग चालीस एकड़ जमीन में फैलो है। सन् १९५७ में बाग कौ निरमान भव। जब काम पूरो हो गव तब नेकचन्द नें अपने चीफ इंजीनियर खाँ दिखाव। वौ बाग देखकै दंग रै गव। नेकचन्द की ऊनै बड़ी बड़वाई करी औ सरकार सें इनाम दुआई। चंडीगढ़ के पाथरबाग (रॉक गार्डन) की खबर देस-विदेस के अखबारन में छपी ती। चंडीगढ़ को वास्तुकार फ्रांसीसी हतौ, सो उतै सें लोग बाग देखन आए। वे नेकचन्द की बुद्धि के कायल हो गय औ फ्रांस लिवा गय। पाथर बाग (नेकचंद'स रॉक गार्डन) कव जान लगो। नेकचन्द की ई रचना पै सन् १९८३ डाक टिकट जारी करे गव तौ। बाग के लिगाँ हतो सुखना ताल सो ऊ खौं सोउ देखे।

लौट कै आकै एक घंटा आराम करे फिर हात-मौं धोकै सभा में जावे खौं तैयार हो गय ठीक समय पै गाँधी स्मारक भवन पौंच गय। विचार गोष्ठी ठीक पाँच बजे अथएँ चालू हो गई ती। विचार कौ विषय हतौ "विस्व व्यापी विद्रोह के कारण।" वक्तन नें थोरे में अपने विचार प्रकट करे। हरेक बोलवे वारे खाँ बीस मिनट कौ समय दव गव तौ। ठीक सात बजे सभा सम्पन्न हो गई ती। सब वक्तन कौ सार जौ हतौ - "असन्तुष्ट औ अशांत रैबौ मनुष्य कौ निज स्वभाव है। मनुष्य के होवे सै बड़ी घटना ऊ के जागरन की है। अपरस जग गए मनुष्य नें अपनी अनंत सक्ति जान लई। सब तरा के बंधनन सै वौ स्वतंत्र हौन चाउत। वौ जगत कौ भविष्य औ अपनौ भाग्य खुद लिखन चाउत। अपनै हातन सै और दिमाग सै वै ऐसौ रचन चाउत जी में अज्ञान, दुख, दलिद्दर, भय, अत्याचार और सोषन नईं हुइयै। कल-जुग की बुराइयन खौ मिटा कै नवजुग की थापना जे विद्रोह करें तौ इनकी सार्थकता आँकी जै। अकेलौ बदलाव काफी नइयाँ बदलाव के संगै विकास होबौ भौत जरूरी है। ई के लानै जरूरी है कै हमाय उद्देस ठीक औ रचनासील होबैं।"

समैया में तीन जनें औ आए ते - राधेस्याम प्रगल्भ, यादवेन्द्र चन्द्र और श्रीराम मेहता। वे होटल में ठैराय गए ते। सभा समाप्त होवै पै वे जावे बारे हते सो उनखाँ विदा करवे के लानै प्रकास देव जू होटल में चले गए। हमें डॉ. हरभजन सिंह जू लेखकन की बैठक में लिवा गए। बैठक मोहन महर्षि जू के बंगला में हो रईती। उतै पौचे तौ सबसै परचय कराव गव। बैठक के सभापति हते 'तार सप्तक' के कवि औ 'नटरंग' के सम्पादक नेमीचन्द जैन जू, हमनै उनखाँ खबर कराई कै हम दिल्ली में मिले ते। वे झट्ट बोले - हमें टिक्का है। अपुन सिवपुरी सै आय ते।

बैठक में नाटक के बारे में चर्चा चालू हो गई। मोहन महर्षि नै एक सवाल करो, नाटक खेलवे में प्रकास, ध्वनि, रूप सज्जा और मंच की सजावट कौ सहारौ ना लव जाय तौ दर्सक खाँ प्रभावित करवे कौ तरीका का हो सकत? नेमीचन्द जैन जू ने ऊत्तर दव कै अभिनेता खाँ आंगिक क्रियन सै भाव प्रकट करने परै। मनुस्य कौ सरीर भाव प्रकट करवे कौ सबसै असरदार जरिया है। सरीर के अंगन की भंगिमन में भौत कछू कहबे की सामर्थ है।

एक सज्जन नै सवाल उछालो कै साम्प्रदायिकता, नशाखोरी, रिस्वतखोरी, बाल-मजूरी, बाल-विवाह, नारी के प्रति अत्याचार जैसी अनेकन समस्यन खौं का नाटकके जरिया सै दूर करै जा सकत? मोहन महर्षि बोले -समाज खाँ बदलवे कौ जिम्मा हमाव नइयाँ। हम इतेकई कर सकत कै समाज खौं इन बुराइयन के कुपरनाम बता देवै। समाज खौं बदलवे अथवा व्याधियन खौं दूर करवे कौ काम तौ लोगन खौ खुद करनै परै। अपनी तरफ सै हम लोगन खौं सावधान कर सकत और कछू करवे खौ उनै उकसा सकत, बस।

प्रो. अरोरा बोले - अपनी बात कैबे के दो तरीका होत। एक तरीका है जानकारी दैवो औ दूसरो है भावना जगाबौ। लेख, समाचार पत्र, विचार गोष्ठी बगैरा में जानकारी दई जात और नाटक, चित्रकारी, संगीत बगैरा में भावना जगाई जात। जानकारी कछू करबे खौं नई उकसाउत, पै भावना कछू करबे खौ उकसाउत। नाटक में दोइ बातें होतीं सो नाटक कौ असर देखवे वारन पै जादा देखे जात।

नेमीचन्द जैन जू बोले - हमें ई बात पै बहस करे चानै कै भूमण्डलीकरन, खुले बाजारवाद, उपभोक्तावाद के ई जमाने में चमक-दमक कौ बोलवालौ है। सिनेमा, टी.वी. वगैरा ने रंग मंच खौं ठेस पौचाई औ नाटक देखवे वारन की संख्या घटत जा रई। ई हालत में हम नाटक खौं कैसे बड़ायें?

बहस सुरू भई। कोउ नै कई कै हमें अच्छे निरदेसकन की जरूरत है। कोउ ने कई कै नाटक की प्रस्तुति पै जादा ध्यान दव जाव। कोउ बोले - हमें परम्परागत नाटक औ लम्बे नाटक छोड़ कै नुक्कड़ नाटक पै विशेष काम करवे की जरूरत है। एक सज्जन बोले - हमें 'बादल सरकार' के 'तीसरे रंगमंच' की सैली खाँ अपना कै हिन्दी नाटक के विकास की एक नई राह बनाउनै आय। कोउ बोले कै हमें 'मोहन राकेस' जैसे नाटककार चानै। ऐसी कैउ तरा की बातें बहस में कइ गईं। नेमीचन्द जू नै समापन वक्तव्य दव और नाटकचर्चा सम्पन्न भई। ऊ के पाछै एक कवि गोष्ठी भई। ऊ बैठक में पाँच कवि हते। पैलें निरभय सिंह जू नें कविता सुनाई, फिर जगमोहन सिंह जू नें, फिर अतर सिंह जू नें पंजाबी में कविता पड़ी औ ऊकौ हिन्दी उल्था सुनाव। तब हमें औसर मिले, हमने एक लम्बी कविता कौ पाठ करो। अंत में नेमीचन्द जैन जू ने अपनी कविता सुनाई। धन्यवाद प्रस्ताव मोहन महर्षि जू ने पेस करे औ सब चल दय।

प्रकासदेव जू के घरै आकै हम अपने उन्ना समेटन लगे, काय कै बारा बजे हमें गाड़ी मिल सकत ती। प्रकासदेव जू बोले - अपुन भ्यानै चले जइयौ। इत्ती दूर आए तौ पिंजौर गार्डन औ देख लो। हमें उनकी बात मानने आई। पैली-पैली मुलाकात में ऐसौ अपुनपौ काँ मिलत।

तीसरे दिना डॉ. सिंह जू और देव जू तौ समैया के

हिसाब-किताब में लग गए औ अपने एक सँगाती सुरजीत खन्ना जू खौं हमें पिंजौर बाग घुमावे कौ जिम्मा सौंप दव। खन्ना जू के संगै हम पिंजौर के लाने कड़े। चंडीगढ़ से सिमला खौ जौन सड़क जात ऊ पै पिंजौर गार्डन है। सिवालिक पहाड़ियन की तलैटी में बसे पिंजौर गार्डन के चार दरवाजे है जिनमें सै एक दरवाजे में सै हम भीतर पौंचे। भीतर की चौगिर्द हरयारी देख कै भौतई अच्छी लगै। ऊपर सै गिरत झिन्नन कौ पानी, फुआरे, हरी दूबा जैसै हरे मखमल कौ कालीन बिछे होय, क्यारियन में कैउ रंग के खुसबूदार फूल जैसे आबे बारन कौ स्वागत कर रय हौय हँस कै। उन खिले भय फूलन पै मँडरातीं बन्न बन्न की तितलीं। आम, चीकू, बादाम, केला, आड़ू, अमरूद, कटहल औ बिना बीजा बारे जामुन के पेड़ बाग की सुन्दरता खौं सफल बना रय ते। इतै कभउँ जावौ होय, कौनउ ना कौनउ फल जरूर मिलै। ई बाग के आमन में कैउ जातन के आम हैं। एक जात है गदा आम की। हमें बताव गव कै गदा आम के एक फल कौ बजन दो किलो तक हो जात। बैसाखी के औसर पै इतै बड़ौ भारी मेला लगत जीमै देसी-विदेसी घुमक्कड़न की खूब भीर परत।

पचास एकड़ धरती में फैले बाग की खखरी ऊँची औ मजबूत है, ऐसी जैसी किले की होत। ई कौ इतिहास जौ है कै जब औरंगजेब ने लाहौर पै विजय पाई तब मुगल बादसाह के दूर के रिस्ते के भाई नवाब फिदाई खाँ दिल्ली गय। दिल्ली में जीत की सेना के सेनापति औ पंजाब के सूबेदार नवाब फिदाई खाँ खौ औरंगजेब ने पंचपुरा गाँव इनाम में दै दव। गाँव डाँग में बसो तौ। फिदाई खाँ ने पंचपुरा गाँव खौं एक नए रूप में सजादव। जौ बाग ओई कौ बनवाव आय। पंचपुरा गाँव कौ नाव पिंजौर हो गव। बाग में सातत‌ल हैं। पैले सबसै ऊँचे तल पै पौचत, फिर ऊ के नैचै दूसरे तल पै, ऐसे उतरत जात औ अंत खुले मंच पै सांस्कृतिक कार्यक्रम होत रत। बाग में बैंक सोउ हैं एक रेस्तराँ हैं। हम लोगन नै भोजन ओई में करे तौ। छोटौ सौ बाजार है, चिड़ियाघर है औ घुमक्कड़न के लानै ऊँट की सवारी कौ मजा लेबै कौ सुभीतौ है। बाग के चिड़ियाघर में हमने पैली बेर सेत मोर और सेत रीछ देखे। सेत मोर देखबे में भौत नौनी लगत, जैसे उयै रुई सै बनाव होय।

पिंजौर कौ इतिहास महाभारत के काल से सोउ जोड़ो जात। जा कई जात कै अपने अज्ञातवास में पांडवन ने इतै डेरा डारौ तौ। उनै जौ भै हतौ कै दुर्जोधन कुअन के पानी में विष मिलवा दै सो वे रोज एक वावरी खोदत ते और ऊ कौ पानी पियत ते। पिंजौर में तीन सौ साठ बाबरीं हैं। एई सै इयै ३६० बाबरी बारौ सोउ कई जात। सत्रहवीं सदी के अंत में जो बाग ऊजर हो गव तौ। पटियाला के राजा खौं मौका मिले सो ऊने ई खौं अपने कब्जे में करलव और इयै फिर हरौ-भरौ बना दव। बाग कौ एक नाव यादविन्द्र गार्डन सोउ है, काय कै महाराजा पटियाला यादविन्द्र सिंह ने ई उजरे-सूके बाग खौं फिर सै आबाद करे और देखवे जोग-घूमवे जोग बनाव। आजकाल जौ हरयाना पर्यटन विभाग के अधिकार में है। ई की सुन्दरता खौं पर्यटन विभाग ने, संगीत और सतरंगी प्रकास सै, कैउ गुना बड़ा दव। जब तक बाग में रय जा भूले रय कै हमें लौट कै जानै। बायरै कड़तई जा फिकर हौन लगी कै गाड़ी न चूक जाय।

- देवीपुरम् कॉलोनी, शिवपुरी

घरकौ परसइया और अंदयारी रात

- रतिभानु तिवारी 'कंज'

घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।
मसकें जा बड़े कौर कड़ी बरा भात।।

कलुआ तौ किलक रऔ करतन कलेबा।
रमुआ के उसरा में उस रय उसेबा।
चंदू के चौक में चिलक रये चंदेबा।
परमोले पैसा खों पाल रये परेबा।
अदपेटा परें कोउ भूंके सो जात।
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

पेंड़ गये उजरा बे छेंके खों टोर।
चर गये चरौखर सब माते के ढोर।
अड़िया में बल होय लठिया में पोर।।
भैंस साव दद्दा की दुपरै लो छोर।
कोंड़े पै कै रयेते कक्का कानात,
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

पंडित खों बड़े भोर दैबे गये सीदौं
बिगरी सब लौट औ जजमान बीदौ।।
दान और दच्छना पै पंडित खों ताव।
ना सूरा नैवतौ, न दो जने बुलाव।।
होंम करत हात जरै अचरज की बात।
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

माते और मुखिया में लगी आज होड़।
कब कैसी लग जाय आंदरे की लोड़।।
बारा हैं माते और तेरा अथाई।
रामू ने पंचन खों चोखीं है सुनाई।।
ऊ पातर में छेद करें जीमें जे खात।
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

नरदा की मुखियों नो करी बिन्तवारी।
भगो हाथ भीड़त वौ बखरी खौं हारी।
बेबूझ मुखिया ने कर दव कुन्याव।
न चोंटिया लेव न बकटौ भराव।
सांवन के अंदरन खों हरीरौ सुजात।
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

बिजना लै बैठेते मांछी भगाबे।
जुर परे बेइ आज टाठी में खावे।
अर्जुन खुद खेंच रये द्रोपदि की सारी।
भसम होत आगी में सीता बिचारी।
खेत कौ बिजूकौ अब खेती खौं खात।
घरकौ परसइया औ अंदयारी रात।

- नैगुवाँ, जिला टीकमगढ़

बुन्देलखण्ड की रियासतों की राजभाषा : बुन्देली

- हरि विष्णु अवस्थी

आठवीं से बारहवीं सदी के बाद तक वर्तमान बुन्देखण्ड, चंदेल राजसत्ता के अधीन रहा। केशव चन्द्र मिश्र का मानना है कि "चंदेल साम्राज्य के अधिकांश भागों में बुन्देलखण्डी भाषा अपनी अनेक स्थानीय बोलियों के साथ ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में विकसित हो रही थी।... बुन्देलखण्डी भाषा हिन्दी की एक समर्थ बोली के रूप में खड़ी हुई।... उस समय देश की अन्य भाषाओं के शब्द इसमें अधिक मिले हैं।"[1]

बुन्देली शब्दों का प्रमुख स्रोत तो संस्कृत भाषा ही थी। "बुन्देलखण्ड की मुस्लिम रियासतों और जागीरों के कारण अवश्य ही बहुत से उर्दू, अरबी एवं फारसी के शब्द उसमें घुस गए। लोकजीवन में इनका व्यवहार भी बेधड़क होता रहा है।"[2] चंदेल राज्य काल में अधिकांश शिलालेख तो संस्कृत भाषा में ही लिखे गए, किन्तु कुछ शिलालेख ऐसे भी हैं जिनकी लिपि देवनागरी किन्तु भाषा बुन्देली है। यथा - "श्री गनेश जू संवत् १४४३ शाके १३३१ गंउ नांग जोग दुर्गा के भक्त जाहिर तिन तडाग बनवाये।"[3]

"श्री गनेस जू संवत् १४५० असाढ़ वदी १ भृगुवार महराज राजा चंदेल के छोटे पुत्र देवी के भक्त..."[4]

"संवत् १४४६ भादों सुदि ८ रबउ श्री बेटी दीप कुंवर नें ताल बनवायो ताल को नाम दीप सागर।"[5]

"सत मडियन के छाँयरे और तला की पार, जो होवे चंदेल सो लेय उखार।"[6]

उपरोक्त ज्ञात शिलालेखों से चंदेलकाल में बुन्देली भाषा के उद्‌भव एवं विकास की पुष्टि भली भाँति हो जाती है। "चंदेल राजवंश की पतनावस्था में विंध्य भूमि अथवा विन्ध्येलखण्ड में बुन्देलों का उदय एक ऐतिहासिक संयोग था। विन्ध्येलखण्ड में राज्य शासन करने के कारण क्षेत्रीय उपाधि और सम्मान के रूप में विन्ध्येला और अपभ्रंश में मुख-सुख के कारण बुन्देला नाम से प्रसिद्ध हुए।"[7] बुन्देलों द्वारा चन्देलकाल से जन व्यवहार में आने वाली भाषा को ही राजभाषा के रूप में प्रयुक्त किए जाने के फलस्वरूप भाषा का नाम भी बुन्देली हो गया।

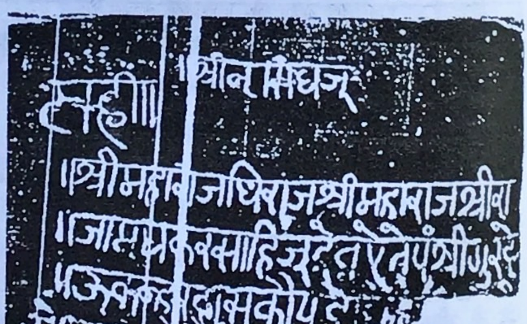
काशी के गहिरवार राजा हेमकरन (वीर पंचम) जो प्रथम बुन्देला राजा था ने सन् १०४८ ई. के लगभग इस क्षेत्र में पदार्पण किया। तब से सन् १५३१ तक हेमकरन के वंशज गहौरा, गहौनी और गढ़कुंडार में क्रमशः अपनी राजधानी बनाये रहे। "कुंडार के बजाय जैसे ही सन् १५३१ ई में ओड़छा राजधानी बनी, तो उसी ओड़छा राजधानी के नाम से बुन्देलों का समूचा बुन्देलखण्डीय राज्य 'ओरछा राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।... कालान्तर में निर्मित अन्य बुन्देलखण्डी राज्य, इस विखंडित ओरछा राज्य की ही जागीरें थीं, जो समय-समय पर स्वतंत्र अस्तित्व पा गये थे एवं राज्य कहलाने लगे थे।"[8]

चूँकि ओड़छा राज्य ही बुन्देलखण्ड स्थित अन्य राज्यों की पेरेण्ट स्टट रही है, अस्तु बुन्देलखण्ड के राजघरानों के योगदान का शुभारम्भ ओरछा राज्य से करना समीचीन होगा। सन् १५३१ ई. में गढ़कुंडार के स्थान पर ओड़छा को अपनी राजधानी बनाने वाले महाराजा रुद्र प्रताप उसी वर्ष दिवंगत हो गए। उनके ज्येष्ठ पुत्र भारतीचंद्र (१५३१-५४) ओरछा के राजा हुये। उन्होंने राजभाषा के रूप में जनभाषा बुन्देली को ही स्थान दिया। उनके द्वारा पं. राजबली भट्ट को भूमि का पट्टा प्रदान किया गया था जो बुंदेली में निम्नलिखित अनुसार है - "कैसौ राय जू कौ द्रोही।"

सही

श्री महाराजाधिराज श्री राजा श्री भारतीचन्द्र जू देव की सरकार तें ऐते भट्टारज पं. राजबली भट्ट मोहनगढ़ वासी योग्य पटौ प्रदतं सेवा सासन गांव दैलवारा की बैठक अज परिगने जतारह में बोल प्रमान हजूर स्यामदाह महता श्रीरामदास प्रधान साहिलिखितं नारायण प्रसाद पटौ सही संवत् १६१० वर्षे नाम वैसाख वदि ३ सनो यह मुकाम आसेरि।"[9]

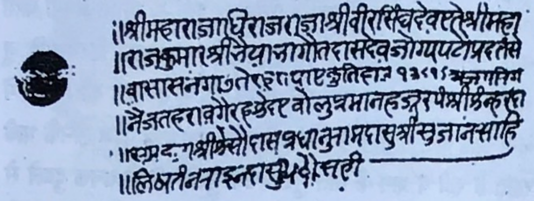
ओड़छेश भारतीचन्द के पश्चात् उनके अनुज मधुकर शाह जू देव (१५५४-९२ ई.) ओड़छा के राजा हुए। उन्होंने भी बुन्देली को ही राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित रखा। उन्होंने अपने गुरु को जो ताम्रपत्र प्रदान किया उसका विवरण निम्नानुसार है -

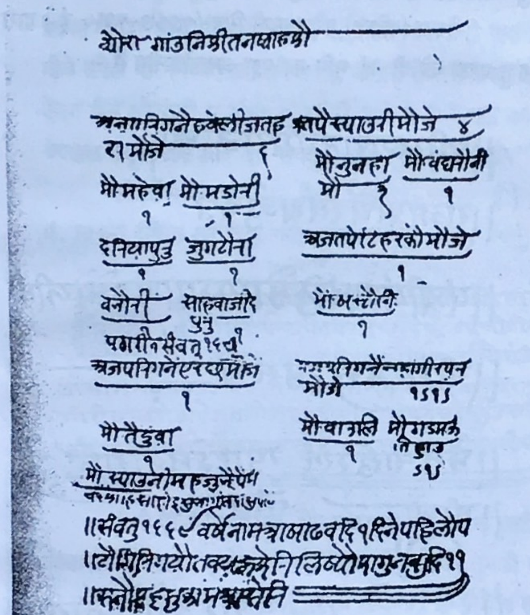


।।श्री नृसिंघ जू सही।।श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा मधुकर सिंह जू देव ऐते पं. श्री गुरुदे ऊ कन्हर दास कौ पदारख मौजे भसनेहु मै बीघा ३११ पाये जाहि क्रस्नार्पण... लिखत प्र कुमुद...।। बुधे"[10]

दतिया राज्य के प्रथम शासक भगवान दास ने संवत् १६३५ में पं. जगजीवन दास को जो सनध प्रदान की थी वह अवलोकनीय है - "पं. श्री गुसाई जगजीवन दास जू को दिमान भगवान राई जू

देव आपर गुरु दछिना दाखल पादरख गौर दियौ तुमकौ परगनै डामरौन मौजे इमीलिया मौजौ बमोरा रकम हबूब माफ परबानगी सेहवरो मुजाइनि ना हू है बरकरार बेदखल आसाढ़ वदि संवत् १६३५ मुकाम जेरौन लिखतः प्रः मखन।"[११]





ओरछेश वीरसिंह जू देव 'प्रथम' (१६०५-१६२७ ई.) द्वारा भागौत दास (महाराजा छत्रसाल के पूर्वज) को जो पट्टा प्रदान किया गया था वह भी बुन्देली में ही था जो दृष्टव्य है - "सही, महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंघ देव ऐते श्री महाराज कुमार श्री भैया भागौन दास देव जोग्य पटौ प्रदतं सेवा सासन गाउ तेरह तथा एक तिहाज १३ऽ१ऽ अज परिगनै जतहरा वगैरह के दयै बोल प्रमान हजूर पं. श्री कन्हर दास महता केसवदास प्रधान रामदासु श्री सुजान साहि लिखतं नराइन दासु पटौ सही ब्यौरा गांउनि की तनख्वाह कौ अज परगनै हवेली जतहरा मौजे ६ तपै स्याउरी मौजे ४, मौ. नुनहा१ मौ. बधरौनी मौ. १

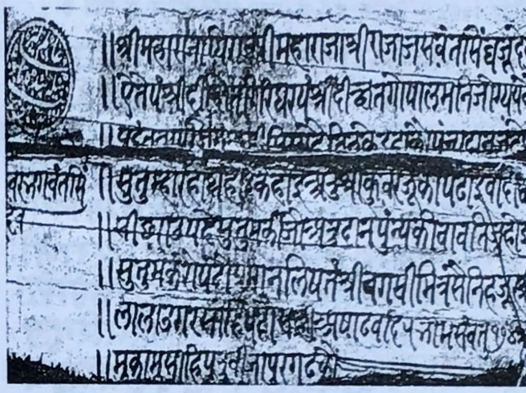
मौ. महेबा मौ. मड़ोनी १	अज तपै टिहर कौ कौ मौजे १
दरियापुरु १ जुगटौन १	मौ. खग्टौनि १
बमौरी १ साहबाजीदपुरु	१ अज परगनै जहांगीरपुर १ऽ१ऽ
पठारी १ सं. १६८१	मौ. बाउलि १ गौ. गडमऊ
अज परिगनै एरछ मौजे	तिहाउ ऽ१ऽ
मौ. तेंदुवा १	

मौ. स्याउनी मह जु मै प्रेमचंद का हींसा होई सु भागौदास पावैं संवत १६६६ वर्ष नाम आषाढ़ वदि १ दिने पहिला पटौ। गिरि गयौ तब यहु फेरि लिख्यौ फागुन सुदि ११ सनउ यह मुकाम आसेनि"[१२]

दतिया नरेश शुभकरन (१६५५-८३ ई.) द्वारा संवत् १७३० में अपने गुरु नवनीत राय को दी गई सनध अवलोकनीय है। यथा-

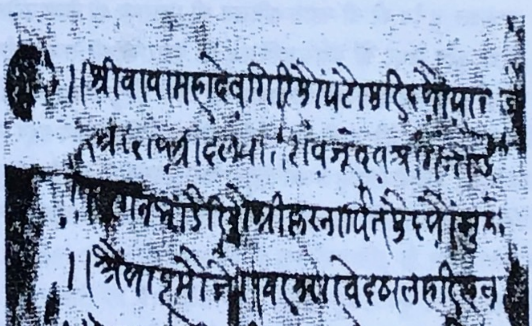
"पं. श्री गुसाई नौनतराइि जू एते श्री दिवान सुभकरन जू देव कबूल करी आगैं जु कोऊ हमारे संतान मौं होय सो दीक्सा मंत्रु इनिसौं लेइ यह बोलु प्रमान ए हमारे बांट के गुरु हैं जेठ वदि ८ भौमे संवतु १७३० मु. सूपी प्रः लिखित प्रः परागराइि।"[१३]

ओड़छेश महाराज जसवंत सिंह (१६७५-८६ ई.) द्वारा पं. गिरधर पं. गोपालमनि दीक्षित को दी गई सनथ निम्नलिखित अनुसार है -



"श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा जसवंत सिंघ जू देव ऐते पं. श्री दीछत गिरिधर पं. श्री दीछत गोपालमनि जोग्य पटौ प्रदतं.... तिनके यहा कौ पुन्यदान जू होइ सु तुम्हारे हाथी ही ई कै होइ अरु श्री कुंवर जू की पढ़ाई वा दीछा सीसा उपदेशु तुम कीजौ अरु दान पुन्य की वावति जु होइ सु तुमे करौ पटौ प्रमान लिखंत श्री बगसी मित्र सैनि हजूर श्री लाला उमर सहि पटौ साही आषाढ़ वदि ५ भौमे संवतु १७४३ मु. साहिपुरु वीजापुरगढ़ कौ।"[१४]

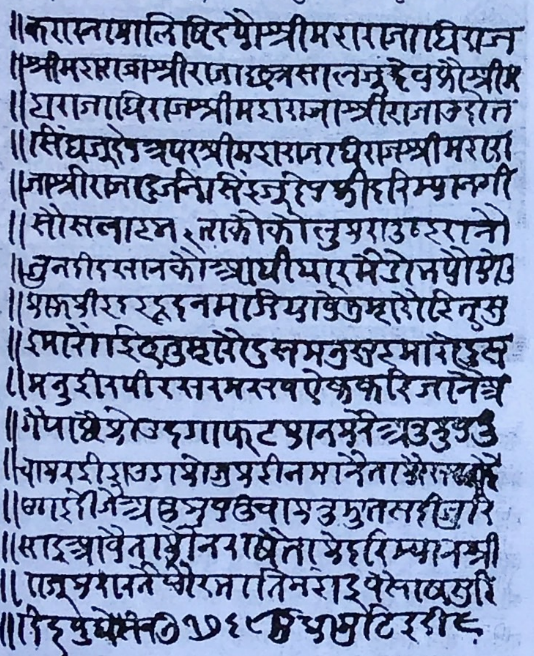
दतिया नरेश दलपत राव (१६८३-१७०७ ई.) द्वारा बाबा महादेव गिरि को दिया गया पट्टा अवलोकनीय है -



"श्री बाबा महादेव गिरि कौ पटौ करि दयौ पादार्ख श्री राव दिलपति

राव जू देव आगे डगरई परगनै कौ श्री क्रस्नार्पन कै दयौ सु हमेशा पाई जाई वरकरार बेदखल हर हवूव माफ साउन वदि ३ संवत् १७४५ मुकाम अदौनी।''[१५] पन्ना नरेश छत्रसाल (१६७५-१७३२ ई.) द्वारा पं. धरनीधर गुसांई को दिया गया ताम्रपत्र अवलोकनीय है - ''श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव येते पं. गुसांई धरनीधर जू कौ नगदी सालीना ४६६।।=) क्रस्नार्पन पादारख माफी दई सो वरकरार हमेस माहवारी ४१।।=)।। अंकन इकतालीस रुपैया साढ़े दस आना पाउत चले जायं और जो राजा हौवे उनसै हमारी यही विनती है कि ये हमारे बचन प्रमाण जान कै जो बंधेज हर हमेस दये जांय मिति कार्तिक सुदी ११ संवत १७५५ मुकाम मऊ महेवा हुक्म हुजूर प्रवानगी श्री नाथ खबास।''[१६]

संवत् १७६६ (१७१२ ई.) में छत्रसाल एवं ओड़छेश उदोत सिंह (१६८९-१७३६ ई.) के मध्य हुआ करार दृष्टव्य है -



श्री कृश्न जू

''करारनामा लिखि दियौ श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव कौ श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा उदोत सिंघ जूदेव अपर श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा दुर्जन सिंह जू देव की दरिम्यानी सौ सलाह भई ताकौ कौलु कराउ ठहरानो जु नदी धसान कौ आधी धार मैड़ो भयौ कोउ कोउकी हद हद्द न गजियाबै तुम्हारौ हितू सु हमारो हितु तुम्हारौ दुसमनु सौ हमारौ दुस्मनु हीर पीर सरम सब ऐक करि जानै आगै पाछे कोउ दगा फूट का न करै अरु.....

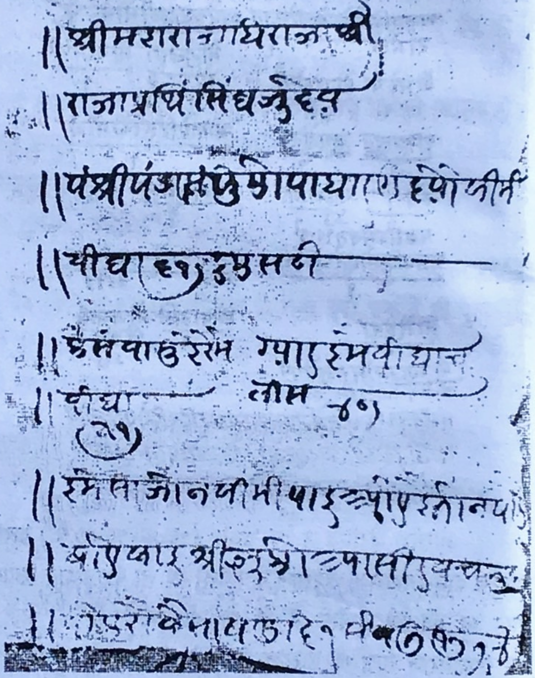
वैसाख सुदी बुधे संवतु १७६९ मुकाम टिहरी।''[१७]

बुन्देलखण्ड के नरेश परस्पर तो बुन्देली का प्रयोग करते ही थे वे अन्य स्थानों (बुंदेलखण्ड क्षेत्र के अतिरिक्त) से भी बुन्देली में ही पत्राचार करते थे। महाराजा छत्रसाल पन्ना द्वारा सवाई जै सिंह को लिखा गया पत्र इसका प्रमाण है। यथा -

''श्री कृस्नो जयति

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा सबाई जै सिंघ जू देव येते श्री महाराजाधिराज श्री राजा छत्रसाल जू देव केन्य बाच्यै, आपर उहाँ के समाचार भले चाहिजै इहां के समाचार भले हैं आपर अपनी पाती आई समाचार पाए अपुनु लिखी हती कै श्री दिवान हिरदेसाहि जू चालीस हजार अस्वार सौ हमारे हरौल होई न तो उनि की हरौली में कमी आइ अरु न उनि कै फौज की कमी आइ काहे फौज उनिकै भली रहति है रही वे प्राग कै तितै तुरकीयनि सुरकियनि तै तनक दुदले से रहत हैं सु सुचितई तौ अपनै करै तै हूहै अरु ये सब बात तौ अपनै हुकमी हैं असाढ़ वदि ८ संवतु १७८३ मुकाम महेवा...।''[१८]

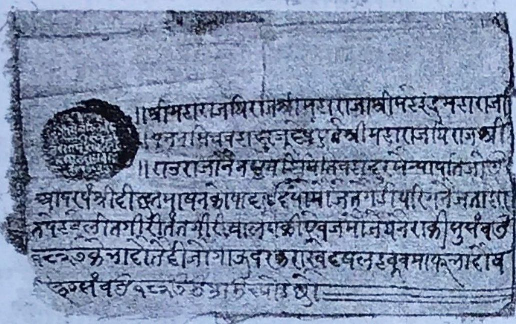
सेंवढ़ा (दंतिया) नरेश पृथ्वी सिंह (१७०७-१७५८ ई.) द्वारा मंजु पण्डा को दी गई भूमि का पट्टा अवलोकनीय है -



।।श्री गोपाल जू।।
।। श्री महाराजाधिराजा श्री
।। राजा प्रथि सिंघ जू देव
।। पं. श्री पंडा मंजू को पाधारखु दयौ जीमी
।। वीध ६१/- इकसठ
।।कसवा उहेरे में ग्याराइ मै वीघा चा वीघा चालीस ४०/-
।। २१/-
।। हमेसा जोन जीभी पाइ आये है तौन पाखे खाये खाइ जाइ श्री जू को आसीर वचनु दीवौ करौ वैषाख सुदि १ संवतु १७७४''[१९]
(०१ अप्रैल १७१७ ई.)

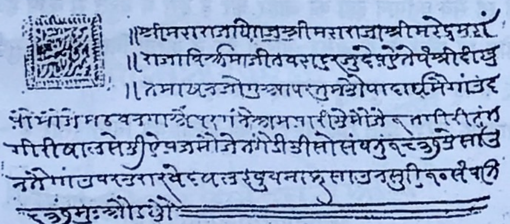
ओड़छेश पजन सिंह (१७६७-१७७२ ई.) द्वारा पं. माखन

दीक्षित को दिया गया पट्टा



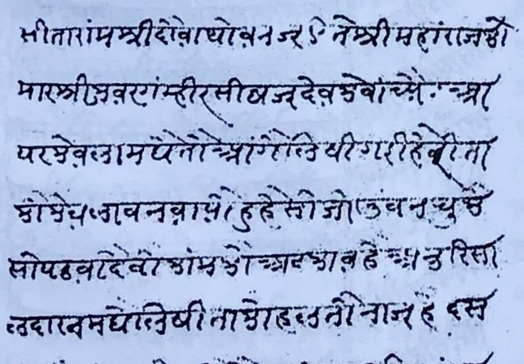
"श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री महेइंद महाराजा पजनसिंघ बहादुर जू ऐते श्री महाराजाधिराज श्री राउ राजा नैनसुख हिमित बहादुर सैन्यापति जौगु आपर पं. दीछत माखन को पादार्घ दयौ मौजे तगेडी परिगनै जताहरा तपै हवेली जागीरी ते जगीरी खालसे की ऐवज मौजे धरैरा की सु संवतु १८२७ के भादौ तै दीजों गाउ वरकरार बेदखल हबूब माफ वदि ३० संवतु १८२७ मुकामु औड़छौ।"[२०]

ओड़छेश विक्रमाजीत सिंह (१७७६-१८१७ ई.) द्वारा पं. माखन दीक्षित को दिया गया भूमि का पट्टा -



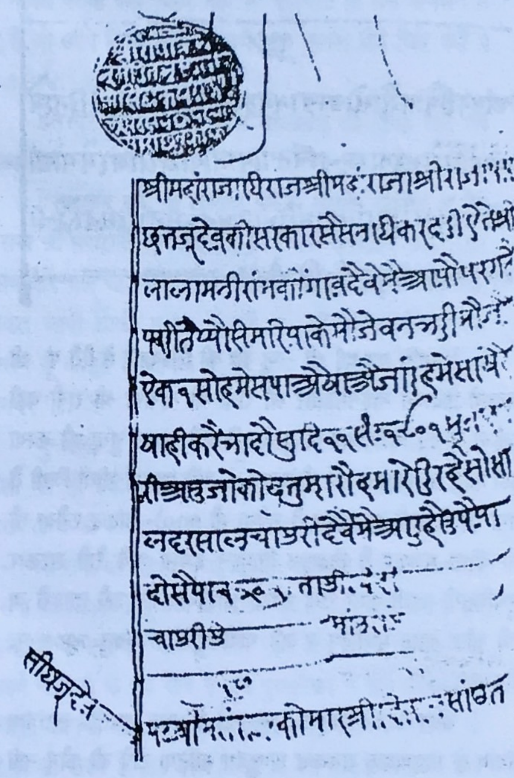
"श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री महेन्द्र महाराजा विक्रर्माजीत बहादुर जू देव ऐते श्री दीछत जोगु आपर तुमकौ पादार्घ मै गांउ दयौ मौजे मठ वनगाऔ परगनै अमवारी के मौजे १ ताहिरी तुंगीरी खालसे की ऐवज मौजे तगैडी की सो संवतु १८३७ के साउन तै गांउ वरकरार वे दखल इंपुय माफु साउन सुदि १० संवत् १६३७ मु. औडछौ।"....[२१]

सन् १८१७ ई. (संवत् १८७४) में महाराज कुमार गंभीर सिंह द्वारा थोवन दौवा को लिखा गया पत्र निम्नलिखित है -



"सीताराम श्री दीवा थोवन जू ऐते श्री महाराज कोमार श्री कुंवर गम्हीर सिंघ जू देव के वांच्यै"आपर केवला मधै आगे लिखी गई है ताकौ केवला वनवायौ हु है सो जोउ वन चुकै सो पठवा दैवौ काम को अटकाव है अरु रिसालदारन मधै लिखी ताकौ हल तौ नाजू है दसरहै उपरांत रुपैया दे है दे: - सांवन सुदि ५, संवतु १८७४ मुं. टहरौली।"[२२]

सन् १८४२ ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के अग्रदूत जैतपुर नरेश महाराजा पारीछत को कौन नहीं जानता। 'बुन्देला विद्रोह' के नाम से इतिहास के पृष्ठों में अंकित सन् १८४२ ई. में सर्वप्रथम पारीछत ने ही अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध झण्डा उठाया था। उनके द्वारा लाला मनीराम को दी गई सनध अवलोकनीय है।



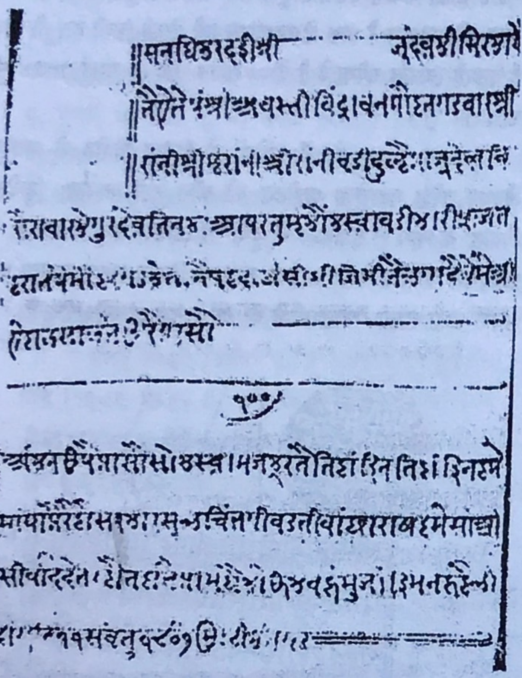
"सही

मुद्रा

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा पारीछत जू देव की सरकार सै सनधि कर दई ऐते श्री लाला मनीराम कौं गाव दैवे मैं आयौ परगनै पवई तप्पै सिमिरिया के मौजे वन भई मौजौ ऐक सो हमेस पाऔ खाऔ जाई हमेसा खैरखाही करै भादौ सुदि ११ संवत. १६०१ मु. छिपरी अरु जो लौ तुम्हारौ हमारेइ रहे सो साल दर साल चाकरी दैवे मैं आइ है रुपैया दो सै पाच २०५ ताकी विदी चाकरी के १८० मांनस के २५ प. श्री महाराज कोमार श्री दिमान सांउत सींघ जू देव।।"[२३]

संवत् १६०७ (सन् १८५० ई.) में ओरछा राज्य टीकमगढ़

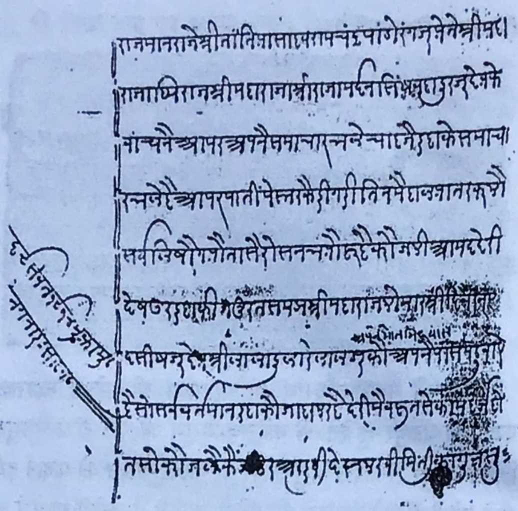
की महारानी बड़ी दुलइया जू विरोरा वारी सरकार ने गुरु पं. विन्द्रावन अवस्थी को जो सनध प्रदान की थी वह थी अवलोकनीय है –



"सनधि कर दई श्री – जू देव की सिरकारि तै ऐते पं. श्री अवस्ती विंद्रावन मौहनगडवार श्री रानी श्री म्हरानी श्री रानी बड़ी दुल्हैया जू देव विरोरावार के गुरदेव तिनकौ आपर तुम्ह कौ कस्वा वडी कारी प्रः जतहरा तपै मौहनगड़ के तामै पइदार्घ सीधी जिमी तै लगा दैवे में आवै हाल साल तै रुपैया सौ १००)- अंकन रुपैया सौ सो कस्बा मजकूर तै तिहाइन तिहाइन हमेसा पाये रैहौ सरकार सुभचिंतगी वडती वांछा राख हमेसा आसीर्वाद देत रहौ तहा तै या मधै कोऊ कबहू मुजांडिम न कहै भादौ सुदि ११ संवतु १७०६ मु. टीकमगढ़...[२४]

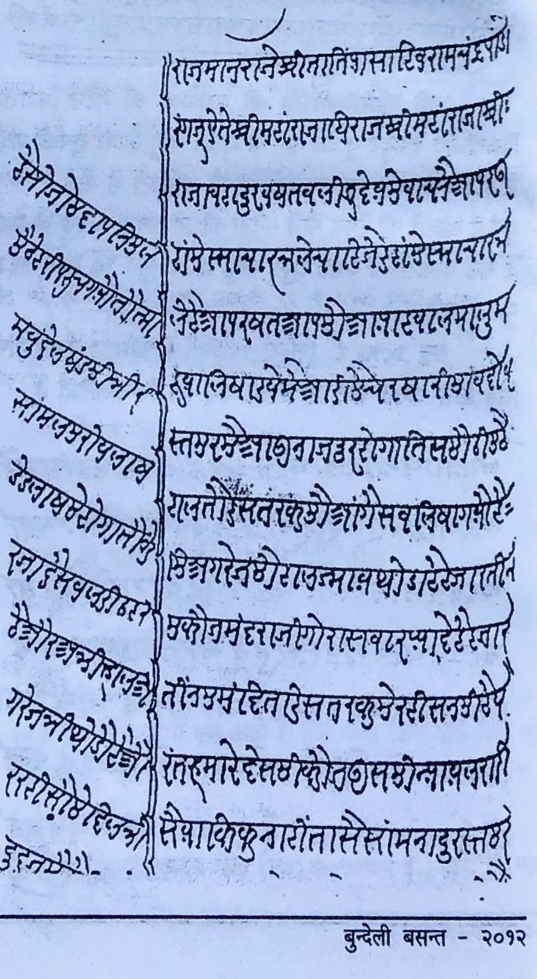
संवत् १६१४ (सन् १८५७-५८) के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक रामचन्द्र पाण्डुरंग तांतिया टोपे को कौन नहीं जानता। बुन्देलखण्ड भू-भाग में स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व एवं संचालन की बागडोर प्रमुख रूप से रामचन्द्र पाण्डुरंग तातिया टोपे के हाथों में ही थी। बानपुर नरेश राजा मर्दन सिंह जू देव एवं शाहगढ़ नरेश राजा बखतबली सिंह उनके सम्पर्क में रहे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सम्बन्धी पत्राचार उनके मध्य हुआ। चरखारी के तत्कालीन नरेश रतन सिंह ने भी तातिया टोपे को पत्र लिखे जिनकी भाषा बुन्देली ही है। बानपुर नरेश मर्दन सिंह द्वारा तातिया टोपे को लिखा गया पत्र अवलोकनीय है –

राजमान राजे तांतिया साहब रामचंद पांडोरंग जू येते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा मर्दन सिंघ बहादुर जू देव के वांचनै आपर अपने समाचार भले चाहजै इहा के समाचार भले हैं



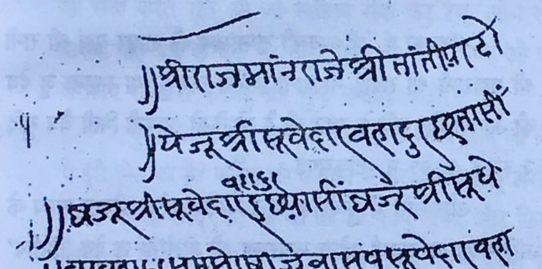
आपर पाती पेस्तर कैहि गड़ी तिन मै हालत या तरफ कौ सर्व लिखौ गयौ तासैं रोशन भयौ हू है फौज की आमद देरी देख उर इहा की जरूरत समज श्री महाराज कोमार श्री दिवान मुकंद सींघ जू देव श्री लाला दुलारे लाल जू कौ अपने मौत मिद खास अपनै पास पठुवाऐ हैं सो सर्व वर्तमान इहा कौ जाहर कर है देरी मै बहुत से काम हर्ज होत सो फौज लै कै जरूर आइवी देर न करवी मिती फागुन सुदी ६ संवत् १६१४ मुकामु नगनाइ साहगढ़।"...[२५]

शाहगढ़ नरेश द्वारा तातिया टोपे को लिखा पत्र निम्नानुसार है –



"श्रीराजमान राजे श्री तातिया साहिब रामचंद्र पांडोरंग जू ऐते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा बहादुर वखत बली जू देव के वाचनै आपर उहां के समाचार भले चाहिजै इहां के समाचार भले हैं आपर खत आप कौ आया हवाल मालूम हुआ लिखाइवे में आई कै चरखारी का वंदोवस्त कर कै आऊना जरूर होगा तिसकौ ठीक है हाल तौ इस तरफ कौ आगे सब लिखा गयौ है कि अंगरेज कौ हाल ज्माव थोड़ा है हजार तीनकु फौज मंदराजी गोरा सवार प्यादे हैं हजार तीनक मंदित इस तरफ के रहीसन की है परंत हमारे देस की फौज उनकी न्याव लराई सै वाकिफ नाही तासै सामना दुरस्त कर है सो जो कदाप निकल कै टेहरी पहुच गवौ तौ त्याम बुंदेलखण्ड की भीर सामल करी व लाख डेड़ लाख के होगा तौ फेर जा दैस वलही ठहर है और अभी अंग्रेज भी थोड़े हैं और रहीसो के दिल भी दुइज मैं हैं... फागुन सुदि ८ सं. १९१४ मुकाम उनगन की घाटी [२६]

तातिया टोपे ने स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग न करने के कारण चरखारी राज्य के मुख्यालय चरखारी पर घेरा डाल दिया था। तत्कालीन चरखारी नरेश द्वारा समझौता पालन करने सम्बंधी पत्र अवलोकनीय है-



"श्री राजमान राजे श्री तांतिया टोपे जू सूबेदार बहादुर छता सींघ जू श्री सूबेदार बहादुर इच्छासींघ जू श्री सूबेदार बहादुर समसेर खा जू वा सव सूबेदार बहादुर व सिपाही बहादुर ऐते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा रतन सींघ बहादुर जू देव के वांचनै उहां के स्माचार भले चाहिजै इहां के समाचार भले हैं आपर पाती आई हकीकत जानी अपनै लिखी कै हीला करना नाहक है। सो हम किसी तरै सैं हीला नाहीं करते हैं। मगड़ फोड़े के सवव सैं लहचार हैं जो आपको इतवार न होवै तौ किसी कौं भेज दीजे सो देख जाइ अरु गाह जी के पलटन के सूबेदार पं. वामनराव जौसी आये हतै सौ कहत हते कै तांतिया साहब ने कहा है कि जो आप न चल सके तौ दिमान अन्ना को भेजें अउ बाद होने बातचीत के फिर इनको आप हमारे पास भेज देवे अउ अंगरेज मधै लिखी सौ हमारे पास कोई अंगरेज नहीं है हम कहाँ सै आवै सहर तौ आपके अखत्यार में है अउ अपना मोतवर भेज दीजै सौ हम सब किलौ दिखाई देवे और जो लिखी कै भले मानस पठैवी कछु ज़ाहर नहीं सौ बातचीत तो भले मानसन सै होत है जो आप लिख भेजौ तो हम भले मानस हौवे चित्र वदी ३ सं. १९७४...।"[२७]

छतरपुर की महारानी द्वारा लक्ष्मीबाई को लिखा गया पत्र दृष्टव्य है -

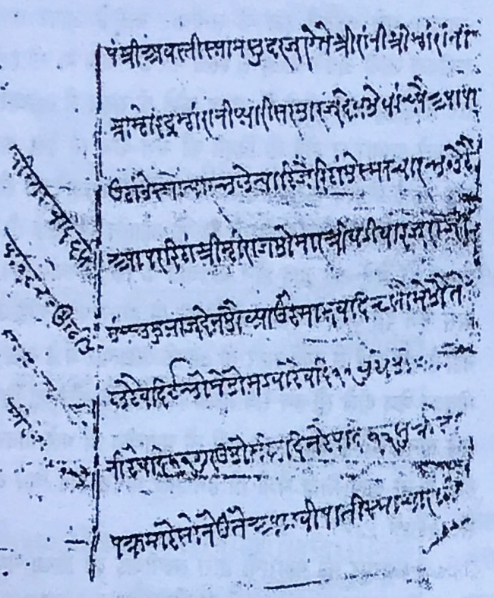
"राजमान राजे श्री तातिया साहेब, रामचंद्र पांडोरंग जू येते श्री रानी श्री महारानी श्री मझली रानी जू देव्य के बांचने आपर उहां के समाचार भले चाहिजै इहाँ के समाचार भले हैं आपर पाती आई हकीकत जानी ताकौ हवाल जुवानी पं. श्री पंडित गोपाल राव सिवराम जू के इहे सै जानवी फागुन सुदि १० संवत् १९१४ मुकाम राजनगर"... [२८]

बुन्देलखण्ड में स्थित गैर बुन्देलखण्डी राज्यों के शासक भी बुन्देली का ही प्रयोग करते थे। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा ओरछा राज्य की तत्कालीन सीजेन्ट महेन्द्र महारानी को लिखा गया पत्र - "श्री रानी श्री महारानी श्री महिइंद्र महारानी वाइी जू देव्य येते श्री रानी श्री महारानी जू देव्य के वांचने आपर उहां के समाचार भले चाहिजै इहा के समाचार भले हैं आपर पाती आई हवाल बाकिफ भयौ लिवाइवे मै आइी कै चंद रोज मै जब दुरस्तीकर है कछु अटक नहीं सो ताकौ आपकौ सब तरन सै भरोसौ है सो अव समार इहा की आप ही कौ करनै है अरु हाल दिनन मै देस ई तराकौ है कै छोटे छोटे अहीसन नै अपनी अपनी पुरानी जागा जपत कर लई है रही इहा की रियासत मकान सब आपही के इजाजत सै लगी है अरु और हवाल श्री प्रधान सवदल सींघ जाहर कर हैं कुवार सुदि १३ संवतु १९१४..."[२९]

यह तो हुई बुन्देली में लिखित कुछ ताम्रपत्र, दानपत्र, सनध, चिट्ठी-पत्री आदि की बात। राजघरानों में होने वाले मंगलकार्यों - विवाह, आगन्नौ, पुत्र जन्म आदि के अवसर पर भेजे जाने वाले आमंत्रण-पत्र भी बुन्देली में ही लिखे जाते थे।

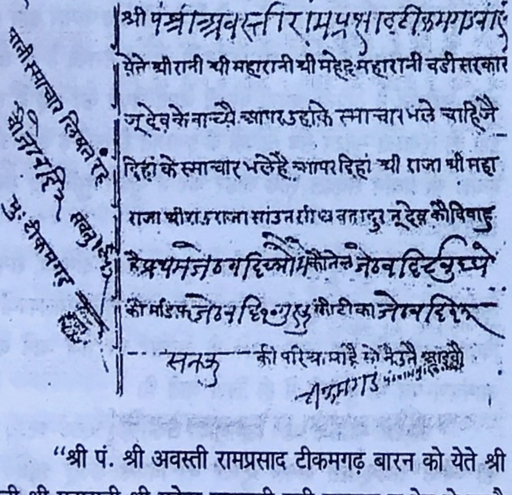
ओड़छेश महाराजा प्रताप सिंह जू देव टीकमगढ़ (१८७४-१९३० ई.) की ज्येष्ठ राजकुमारी कमल कुँवरि का विवाह संवत् १९४० में छतरपुर नरेश विश्वनाथ सिंह (१८६७-१९३२ ई.) के साथ सम्पन्न

हुआ था। विवाह का आमंत्रण पत्र दृष्टव्य है -



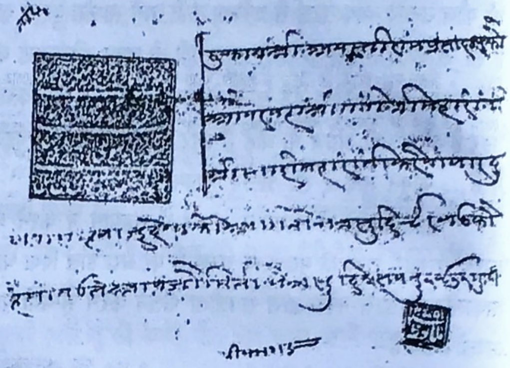
"पं. श्री अवस्ती स्यामसुंदर जू ऐते श्री रानी श्री म्हारानी श्री म्हेन्द्रि म्हारानी प्यारी सरकार जू देव के वांच्यै आपर उहां के समाचार भले चाहिजै इहां के समाचार भले हैं आपर इहां श्री म्हाराजकोमार श्री बडी वाइ जू राजा कमल कुँवरि जू देव कौ व्याउ है माघ वदि ८ सौमे कौ तेल है वदि ६ भौमे कौ मडवा है वदि १० बुधे की आगौनी है वदि ११ गुरउ कौ मध दिन है वदि १२ सुक्र की पक्रमा है सो नेउते आइवी पाती समाचार लिखवी माघ वदि ५ संवतु १६४० मुकाम टीकमगढ़ मोहनगढ़ बारे"...[३०]

पं. श्री अवस्ती स्यामसुंदर जू, को प्रेषित ओड़छेश प्रतापसिंह के द्वितीय राजकुमार राव राजा सामंत सिंह जो सन् १८६६ से १६४० ई. तक बिजावर के अधिपति रहे के विवाह का आमंत्रण पत्र अवलोकनीय है-



"श्री पं. श्री अवस्ती रामप्रसाद टीकमगढ़ बारन को येते श्री रानी श्री महारानी श्री महेन्द्र महारानी बड़ी सरकार जू देव के वाच्यै आपर उहां के समाचार भले चाहिजै इहां के समाचार भले हैं आपर इहां भी राजा महाराजा श्री राउ साउंत सींघ बहादुर जू देव कौ विवाहु है प्रथम जेठ वदि ८ भौमे को तेल जेठ वदि ६ बुध्ये कौ मंडिक जेठ वदि १० गुरऊ कौ टीका जेठ वदि १२ सनऊ की परिक्रमा है सो नैउते आइवौ पाती समाचार लिखत रहवौ जेठ वदि २, संवतु १६५२, मु. टीकमगढ़"...[३१]

बिजावर नरेश सामंत सिंह की महारानी के अगन्ने का आमंत्रण पत्र दृष्टव्य है -



"रुक्का पं. श्री अवस्ती रामप्रसाद कौ आपर यहां श्री रानी श्री महारानी श्री सवाई महारानी किरैया वार दुलया साहवा जू देव कौ आगनौ चैत्र सुदि ६ रबउ कौ है सो नेउते आयजौ मिती चैत्र सुदि २ संवतु १६७१ मु. टीकमगढ़.... [३२]

और अंत में बुन्देलखण्ड की पेरेन्ट स्टेट ओरछा राज्य के अंतिम शासक सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह जू देव 'द्वितीय' जिन्होंने सन् १६३४ ई. में अपने समय के सर्वश्रेष्ठ राशि रु. २०००/- दो हजार का हिन्दी साहित्य का 'वीरसिंह देव पुरस्कार' प्रारंभ किया था तथा जो वर्तमान समय में भी मध्यप्रदेश शासन द्वारा रु. २१००० के रूप में प्रदान किया जाता है। बुन्देलखण्ड स्थित रियासतों में सर्वप्रथम वीरसिंह जू देव ने ही राज्य शासन जनता के हाथों में सौंप दिया था। ओरछा राज्य का राज्यभार दिनांक ०३ मार्च १६३० को ग्रहण करते ही श्री वीरसिंह जू देव (द्वितीय) ने अपने राज्य में हिन्दी को राज्यभाषा बनाये जाने की घोषणा कर दी थी तथा लोक भाषा बुन्देली को उचित सम्मान मिलता रहे इसलिए उन्होंने बुन्देली लोक साहित्य के संग्रह तथा बुन्देली शब्दकोश निर्माण की व्यवस्था की थी। इसके साथ ही उन्होंने बुन्देली में पत्र आदि लिखे। नमूने के लिए उनके द्वारा अपने गुरु सम्पादकाचार्य पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को दि. १०-०७-१६३३ को लिखा गया एक पत्र निम्न उद्धृत है -

"प्रिय चौबे जू पाँय लागन

आज मैं अपने कागदन खों ठीक से लगा रओ तो कै अचानक मोय आपको ५ अप्रैल को पत्र मिलो, तब होस भयो के राम, राम, इतने दिना हो गय जा पाती बिना जवाब के डरी रई। भौत

दिनन की बात है आपउ खौं ऊ पाती की खबर बिसर गइ हूहै सो कलम बार जवाब लिखत हों। सबसें पैलां तो मोय माफी दइ जाय के आज लों ऊ पाती को जवाब न दे पाओ। सबसे पैलां तो आपने एक अंग्रेजी की कनाउत लिख भेजी है के ऋण चुकाबो मनुष्य को सबसे बड़ौ कर्तव्य है जो के मानी भई बात है।

दूसरो आपने मोसें पूँछी है के तुमइ बताओ के तुमारो करजा हमं कैसे चुकायें और जो इसारो करो है कि केसव साहित्य परिषद् खों सौ रुपपैया महिना द्वार दें के ई तरै से करजा चुकतो कर दे हैं। सो ई में संदेह नैयां के ई तरो से करजा को करजा चुकतो हो जै औ एक साहित्य संगठन की सेवाउ होत जै। बात तो अपुन ने निचाट कइ पै आप सें मोरी राइ मिलत। मौय जौ मंजूर नैयां। काय से के पैली बात तो जा है के जिये अपुन करजा मानत हो उये मैं गुर दच्छना मानत हौं। महाराज जनम करम में तो जो मौंका मिलो औ फिर अपुन जा टाई लगाय के ऊको लाओ मैं ना ले पाँऊ औ फिर मौय से पूंछत हो। ऐसी अनहोनी जिन करो, मोरी जेइ विनती है। जो मेरी विनती पै ध्यान न दयो जाय औ आपके मन में जेइ भर रेइ होय के आंहा करजा चुकानेइ है तो जो आप समय समय पै लेख लिखके दीनन की सेवा करत रात औ जो साहित्य सेवा कर रय, ओय से मेरी करजा पाइ-पाइ के चुक जै। मौसे पूँछत तो। ई के सिवा औ कौनऊ तरकीब से मोरो करजा नाइ चुक सकत।

दुलारे लाल होंय चाय के कोउ होय औ वे चाय जो लिखावें पै ईसै होत का है? जनता की आँखन में धूर डारबो कछु हाँसी खेल नैयां। जो तो संसार है, की की कौ मौ पकर लेबी, और फिर बात जा है के काउ के कय का बुरओ मानवी, कीचड़ में पथरा फेंके से अपनौउ आंग बिगरत। जा मानी के मौय एक से हजार ठकुर सुहाती कैवे वारे मिल सकत पै मैं खुद इनसें दूर रात। मोय ठाकुर सुहाती तनकइ नेइ सुहात। अपुन खौ में ऐइसे इतनो मानत के अपुन भूलई कें कभईं ठाकुर सुहाती नेइ कत।

अपुन नें पूँछी है के हमारो-तुमारो का रिश्ता है। भला जेई का कछु पूँछवे की बात है, सेव्य सेवक कौ का रिस्ता होत है।

अपुन ने जो हौकी की पोथी देख लइ होय तो कृपा करके भेज देवी। काय से के भौत दिना हो गये और जो ऊके सम्बन्ध में जानत हैं वे वर हमेश मौसे पूँछत रात के काय जू कवै वा होकी की पुस्तक छप जै। उन सौं का कैदंउं एहसे में जल्दी मचांय। जरूर जल्दी से जल्दी भेज देवी। और सब कुशल है, खुसी खबर की पाती भेजत रैबी।

विनयान्वित - वीर सिंह देव"[३४]

बुन्देलखण्ड भू-भाग की जन भाषा आज भी बुन्देली ही है। हिन्दी भाषा के प्रथमाचार्य पं. केशवदास मिश्र जो ओड़छेश मधुकर शाह, राम शाह और वीर सिंह जू देव 'प्रथम' (१६०५-२७ ई.) के राजाश्रित रहे द्वारा रचित ग्रंथों में से डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी ने सैकड़ों बुन्देली शब्दों को छाँट-छाँट कर उन्हें स्वरचित बुन्देली शब्दकोश में स्थान दिया है।

डॉ. कृष्ण लाल 'हंस' का मानना है कि "बुन्देली अथवा बुन्देलखण्डी को बोली तो अभी भी कहा जाता है और यदि इसे भाषा कह दिया जाय तो कुछ लोग नाक-भौं सिंकोड़ने लगते हैं, किन्तु हिन्दी की बोलियों में बुन्देली ही एक ऐसी बोली है जिसे लगातार चार सौ वर्षों तक 'राजभाषा' के रूप में प्रतिष्ठित होने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। जब से बुन्देलखण्ड बना और इस भू-भाग पर बुन्देलों का शासन आरम्भ हुआ बुन्देली ही उनकी राजभाषा रही।"[३५]

संवत् १६१० (सन् १५५३ ई.) से संवत् १६९० (सन् १६३३ ई.) तक की अवधि में बुन्देलखण्ड के राजाओं एवं राजघरानों द्वारा प्रदान किये गये ताम्रपत्र, सनधें उनके द्वारा किये गये इकरार, पत्राचार तथा विवाह आदि के अवसर पर प्रेषित आमंत्रण पत्रों द्वारा बुन्देली की श्री वृद्धि में दिये गये योगदान का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ -

१. केशव चन्द्र मिश्र - चंदेल और उनका राजत्व काल प्र.सं. संवत् २०११ पृ. १७२
२. श्याम लाल बादल - बुन्देलखण्ड का फाग साहित्य द्वि. सं. २००० ई. पृष्ठ ४५०
३. पं. बालकृष्ण देव तैलंग - ओरछा राज्य के शिलालेख अप्रकाशित सं. १६४६, पृ. १३-६५
४. वही, पृ. २१-८६ ५. वही,
6. Luard C.E. eastern states gazetteer vol. 6A ed. 1907 p. 78
७. डॉ. काशी प्रसाद त्रिपाठी - बुन्देलखण्ड का वृहद् इतिहास प्र. सं. १९९१ पृ. २८-२९
८. वही. पृ. ३४
९. कृष्ण कवि - बुन्देलखण्ड के कवि भाग १ प्र.सं. पृ. १७
१०. डॉ. रामनारायण शर्मा - कन्हरदास प्र. सं. २००२ ई. पृष्ठ १०६
११. डॉ. कृष्ण लाल हंस - बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप प्र.सं. १९७६ पृ. ७८
१२. डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह - ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल प्र.सं. १९७५ पृ. १६१
१३. डॉ. कृष्ण लाल हंस - बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप प्र.सं. १९७६, पृ. ७९
१४. पं. बालकृष्ण दीक्षित द्वारा प्राप्त - लेखक का निजी संग्रह।
१५. डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला - बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन प्र.सं. १९८७ पृ. ९७
१६. डॉ. कृष्णलाल हंस बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप प्र.सं. १९७६ पृ. ८०
१७. डॉ. महेन्द्र सिंह - ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल प्र.सं. १९७५, पृ. १५६
१८. वही, पृ. ७८
१९. डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला - बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन प्र.सं. १९८७ पृ. १२९
२०. लेखक के निजी संग्रह में सुरक्षित। २१. वही २२. वही
२३. श्री अजीज श्रीवास्तव अधिवक्ता टीकमगढ़ के संग्रह में सुरक्षित।
२४. लेखक के निजी संग्रह में सुरक्षित।
२५. १८५७ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम खण्ड-२ बुन्देली अभिलेख सम्पादक पंकज राय प्र.सं. २००८ पृ. १९
२६. वही, पृ. ४७
२७. वही, पृ. ५
२८. १८५७ की क्रांति के पत्र-सम्पादक डॉ. परशुराम 'विरही' पृ. ४० प.क्र. ४३
२९. वही, पृ. १० प.क्र. ५
३०. लेखक का निजी संग्रह
३१. वही
३२. वही
३३. सम्पादक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी - ओरछेश स्मृति ग्रंथ प्र.सं. १९७९ ई. पृ. ६५
३४. वही, पृ. १२५-२६
३५. डॉ. कृष्ण लाल हंस - बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप प्र.सं. १९७६, पृ. ७४

- किले का मैदान, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुंदेलखंड और कार्तिक

- डॉ. दया दीक्षित

भारतीय संस्कृति की आत्मा बसती है गंगा, गीता और गौ में। जानने वाले जानते हैं कि भारतात्मा ग्रामीण भूमि में, गंगा जैसी नदियों और गोवंश का क्या महत्व और उपयोगिता है? कह सकते हैं कि ये परस्पर अन्योन्याश्रित है। वैसे तो गोवंश को सुरक्षा-संरक्षा आज भी मिल ही रही है लेकिन हम थोड़ा पीछे जाकर इतिहास में झाँकें तो गोवंश को सर्वरूपेण सुरक्षा संरक्षा द्वापर में श्रीकृष्ण के द्वारा प्राप्त होती है। इस अर्थ में कृष्ण हमारे संस्कृति पुरुष हैं। संस्कृति वाहक भी उन्हें कहा जा सकता है। अवतारी तो हैं हीं। कृष्ण जो बाल कन्हाई हैं, जो नीतिविशारद मथुरा नरेश हैं और हैं कर्मयोगी। गोवंश से जुड़े कृष्ण गीता के उद्गाता के रूप में जाने जाते हैं। इन्हीं कृष्ण की विशिष्ट पूजा-अर्चना-उपासना होती है, कार्तिक मास में। पुराणोक्त कार्तिक महात्म्य में कहा गया है कि श्रीहरि या कृष्ण को कार्तिक मास अत्यन्त प्रिय है। भारतीय संस्कृति में इस महीने का विशिष्ट महत्व है। भौतिक या सांसारिक दृष्टि से देखें तो यह अति व्यस्त माह होता है। भारतीय गृहस्थों और खेती किसानी करने वालों के लिए। स्मरणीय है कि इसी कार्तिक की अमावस्या को दीपावली का त्यौहार होता है। त्योहार से पहले घर की साफ-सफाई, पुताई, रंग-रोगन आदि हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। उधर गेहूँ, चना, सरसों, अलसी आदि की बोवनी के कारण किसानों के लिए यह व्यस्ततम समय होता है। ऐसा व्यस्त और थकाऊ समय आल्हाद, प्रसन्नता और हँसी-खुशी से सुखसाध्य हो सके, पारस्परिक मेल मिलाप से एक दूसरे की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा में अधिक कुशलता से कार्य सम्पन्न हो सके। इन सब की व्यवस्था देता है हमारा सांस्कृतिक पर्व कार्तिक स्नान। महीने भर का यह व्रत शारीरिक-मानसिक और धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एकता और संगठन को अनायास जागृत करने वाला है। उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में कार्तिक स्नान का विशिष्ट महत्व है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ इस व्रत को ज्यादा करती हैं। जिस तरह से आश्विन के नवरात्र व्रत पुरुष भी करते हैं, लेकिन महिलाओं-युवतियों का प्रतिशत ज्यादा होता है। उसी तरह कार्तिक स्नान में भी यही बात है।

वस्तुतः विजयादशमी यानी दशहरे के दूसरे दिन से महिलाएँ कार्तिक व्रत की शुरुआत कर देती हैं, यानी चार दिन पहले से ही उनकी व्रतचर्या शुरू हो जाती है। इस व्रत को 'कार्तिक नहाना' कहते हैं, और व्रती स्त्रियों को 'कत्कारिनें' कहा जाता है। जिस तरह से श्रावण मास में शिवार्चन का विशेष महत्व होता है। उसी तरह से कार्तिक मास में कृष्णार्चन या हरि और तुलसी के पूजन की विशिष्ट महिमा होती है। शरद पूर्णिमा से बाकायदा शुरू हुआ यह व्रत विधान कार्तिक पूर्णिमा को सम्पन्न होता है। उल्लेखनीय है कि इसी महीने की अमावस्या को दीपावली का त्योहार होने के कारण यह पूरा समय महिलाओं के लिए पुताई-सफाई तथा त्यौहार की व्यस्तताओं वाला होता है, लेकिन इस सबके बाद भी कार्तिक नहाने का उनका उल्लास देखते ही बनता है।

एक-एक मुहल्ले में १५-२० कत्कारिनें हो जाती हैं। दिनचर्या शुरू होती है भोर अँधेरे, तरइयन के छाँयरे में स्नान से (तारों के रहते स्नान करना) यह स्नान घर के बाथरूम में न होकर नगर के मध्य में या सीमा पर अवस्थित गंगा, जमुना या दूसरी नदी या तालाब में सम्पन्न होता है। अलससुबह पौने पाँच से पाँच बजे तक सभी कत्कारिनें परस्पर एक दूसरे को एकत्र कर लेती हैं। डलिया या बैग में धोती, कपड़ा, लोटा, दान, पुण्य का सामान संजोये ये नदी या तालाब की ओर जाती हुई बाकायदा श्रीकृष्ण या ब्रज से सम्बंधित गीत गाती हुई अपनी सुखद यात्रा सम्पन्न करतीं हैं। उनके ये गीत इस प्रकार होते हैं -

कुसुम रंग चुनरी काहे झटकी, मोर मुकुट मोरे ठाकुर जी खों (को) सोहे,
सो खौरन (माथे पर तिलक की बिंदिया) बीच नजर अटकी रे नजर अटकी रे,
काहे झटकी, कुसुम रंग चुनरी काहे झटकी।

अथवा

आ जाऊँगी बड़ी भोर दहीरा लै के आ ऽ जाऊँगी ऽ ऽ बड़ी ऽ भोर
न मानौ चुनरी धर राखौ, कढ़े पपीरा दोई छोर दहीरा लैके
आ जाऊँगी बड़ी भोर।

गाती हुई कत्कारिनें नदी किनारे पहुँच कर स्नान की तैयारी करती हैं। नदी में उतरने पर मछलियों के लिये कुछ दाना या इलाईची दाना डालती हुई वे प्रार्थना करने लगती हैं - जल ताते, जल सीरे, जल में मच्छ विहाय, मच्छ कच्छ तुम लेओ अहार, हमें देओ बैकुंठ विहार।

(कुछ गुनगुने और कुछ ठंडे पानी में विचरण करने वाले मत्स्य परिवार, हम तुम्हारे लिये भोजन लाये हैं ग्रहण करो। जैसे तुम इस जल में विचरण कर रहे हो वैसे ही हम बैकुंठ में विचरण करें, ऐसा आशीष दो) स्नान सम्पन्न करने के बाद पत्तों या कागज पर दीपक की बाती और कपूर जलाकर वे उसे नदी में तैरातीं (तथ्य यह भी है कि धृत और कर्पूर के धूम से जल और वायु दोनों ही प्रदूषण मुक्त होते हैं, किन्तु कत्कारिनें अधिकांशतः इस तथ्य से नावाकिफ होकर गंगा की आरती के निमित्त यह आयोजन करती हैं) दीपदान करते हुए गाती हैं -

गंगा तुम्हरी लहरें हमारे मन भाईं,
पर्वत छोड़ गऊमुख बानी हरिद्वार में आईं,
गंगा तुम्हारी लहरें हमारे मन....।।

नदी के पास मंदिर में या रास्ते में पड़ने वाले मंदिर में पूजा अर्चा और दान सामग्री देती (यह दान मुट्ठी भर दाल, मुट्ठी भर चावल, कटोरी भर आटा, एकाध आलू या एकाध फल या एकाध

मिष्ठान्न के रूप में या एकाध एक रुपये के सिक्के के रूप में होता है, प्रत्येक कत्कारी द्वारा दिया गया यह अंशदान नदी किनारे के निर्धन वाशिंदों या निर्जन मंदिरों के निर्धन पुजारी के लिये 'विशिष्ट निधि' से कम नहीं होता) हुई सब अपने-अपने घरों को चली जातीं यह तय करके कि ठीक सात बजे मुहल्ले के मंदिर में सब इकट्ठी हो जायेंगी। यह ब्रेक इसलिये कि घर के बच्चों, बड़ों को चाय नाश्ता बना सकें, नगर पालिका के नलों से पानी भर सकें या जो भी जरूरी घरेलू काम हो इस अवधि में करके मंदिर में आ जायें जिससे गृहकार्य निर्बाध रूप से चले उसमें पूजा के कारण कोई व्यतिक्रम न आने पाये। मंदिर में सबके आ जाने पर बिछाया जाता डेढ़ से दो मीटर तक का पीला या सफेद सूती नया वस्त्र (यह पूरे महीने भर चलता है) इसे 'पन्ना' कहा जाता है। पन्ना बिछ गया। अब पन्ने पर रेणुका (गंगा बालू या किसी नदी की बालुका) से बनाई जाती पुतरिया यानि बालकृष्ण। पुतरिया बन जाने पर सब कत्कारिनें गातीं -

उठौ श्री कृष्ण भये भुनसारे, गऊअन के बंद खोलो सवारें,
गउएँ बहुत हैं रैन रई थोड़ी, राधा कन्हैया जू की क्या छब जोड़ी,
काहे की दातून काहे कौ गडुआ, काहे के तीर माधव करत मुखारी (मंजन),
लौंगा की दातून, सोने कौ गडुआ, जमुनाजल नीर माधव करत मुखारी।
कौन कौ लड़का तिलक लगावे, कौन को लड़का धोती पछारै,
बम्हन को लड़का तिलक लगावे, धोबी कौ लड़का धोती पछारै,
धर्म सिला पर बैठी जसोदा, अपने कन्हैया जू को रचतीं कलेवा,
चाचर पापर सेव सिंघाड़े, मालपुआ मन मोहन प्यारे,
काये मनमोहन और कछु लैहौ भुरिया भैंस को दहिरा लैहौ,
मईया री मोहे कछुआ न भावै भुरिया भैंस को दहिरा भावै,
आरती मोहन कृष्णा ऽ ऽ सो है,
राजा जनक से बाबुल दइयो, रानी सुनयना सी माता दइयो,
लक्ष्मी निधि से भैया दैओ, लक्ष्मीनिधि सी भौजाई दइयो,
रामचन्द्र से भर्तार दइयो, सीता सी प्रभू हमखों बनइयो,
राजा दशरथ से ससुरा दइयो, रानी कौशल्या सी सासो दइयो,
लक्ष्मण से वे देओरा दइयो, उर्मिला सी देवरानी दइयो,
लवकुश से दो पुत्रा दइयो, धरम करम खों कन्या दइयो,
धन की कुठरियाँ बिलसबें खों दइयो, सरग नसैनी चढ़बे खों दइयो,
इतनों करियो तौ मानुस बनइयो, ना तर मथुरा के पथरा बनइयो,
आरत मोहन कृष्णा सो है...

(हे कन्हैया उठो, देखो रात बीत गई है, गउएँ रँभा रही हैं उनके बंधन खोलो और गोचारण के लिए तैयार हो जाओ। देखो हम तुम्हारे लिये लौंग की दातून और सोने के गडुए (लोटे/कलश) में पानी लाए हैं। बामन का लड़का तुम्हें तिलक लगाने को खड़ा है, और वो देखो धोबी तुम्हारे वस्त्र धोने के लिए आ गया है। धर्मशिला पर बैठीं यशोदा अपने कन्हैया जू के लिए कलेवा तैयार कर रही हैं। सेव सिंघाड़पाग और न जाने क्या.... क्या...। कान्हा कहते हैं मैया मुझे इनमें से कुछ नहीं चाहिये तू मुझे भूरी भैंस का दही और सोनगैया का माखन दे...।)

इस बीच, गाते-गाते ही वे कत्कारिनें पन्ने पर के बालकृष्ण को लौंग की दातुन अर्पित करतीं उन्हें स्नानादि कराकर उनका षोडषोपचार पूजन करती हुई पुनः गीत शुरू कर देती हैं -

कब जैहै मोरे मन की दुविधा कब जैहे मोरे मनकी
जब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगे, माँगे माखनरोटी, दुविधा कब जैहे...
जब मेरो लाल खिलौना माँगे, चंदा सूरज की जोड़ी दुविधा कब जैहे...
जब मेरो लाल दुलइया माँगे, बड़े भूप की बेटी दुविधा कब जैहे...

इस गीत के पश्चात सभी कत्कारिनें खड़ी होकर पन्ने को चारों तरफ से पकड़ कर कृष्ण को झूला झुलाती हैं -

श्याम परे पलना, झुला दो माई श्याम परे पलना
काहे कौ जौ बनो पालना, काहे के फुंदना झुला दो माई....
अगर चंदन कौ बनो पालना, रेशम के फुंदना झुला दो माई...
को जौ झूलै को जौ झुलावें को जौ लेत बलैया झुला दो माई..
कृष्णा झूलें सखियाँ झुलावें जसुमति लेतीं बलैया झुला दो...
काहू गुजरिया की नजर लगी है, रोवत है ललना झुला दो...
राई नोंन उतारैं जसोदा, खुशी भये ललना झुला दो...
चार सुआ चारऊ मिचवन बैठे बोले सीताराम झुला दो माई...

पलना झुलाकर फिर सभी कत्कारिनें पन्ने को पकड़े-पकड़े नीचे बैठकर कृष्ण को पान इत्यादि अर्पित करती गातीं हैं -

बीरी (बीड़ा) देऊँगी लगाय रस पान की
पान की सनमान की, बीरी दूँगी लगाय रसपान की
आओ प्यारे मोहन चौपर खेलें, बाजी लगाऊँ जिया जान की
लाला बाजी लगाऊँ जिया जान की बीरी दूँगी...
पर गये दाँव लौट गये पाँसे
जीती तो बेटी वृकभान की
लाला, जीती तो बेटी वृकभान की, बीरी दूँगी लगाय रस पान की

और जब कत्कारिनें पहले से भरे रक्खे हुए पीतल के बोंगना (बड़े से बर्तन) में उस पन्ने को विसर्जित करते हुए गातीं -

रथ छैके जइयो हो
बंसी के बजैया रथ छैकें जइयों हो
कहाँ गई बंसी वे कहाँ गये ग्वाल कहाँ गये बंसी बजावनहार
रथ छैकें जइयो...
बन गईं गउएँ, बनईं गये ग्वाल, बन गये वंशी बजावन हार,
रथ छैकें जइयो हो...

उसके बाद कार्तिक महात्म्य का एक अध्याय पढ़ा सुना जाता और उस दिन के 'वार' विशेष की कथा कही जाती। अंत में यह आरती वे गातीं -

आरती मंगल माधव तेरौ जस गाऊँ-२ सबई सुख पाऊँ सो
विमल विमल हरि की आरती गाऊँ आरती मंगल माधव...
जमुना के नीर बारी मछली जुठारे,
सो बेई न अनूठे हरि खो कहा ले चढ़ाऊँ आरती...
मलयागिर चंदन वारे सरप जुठारें,

सो बेई न अनूठे हरि खों कहाले चढ़ाऊँ आ...
केसरिया चंदन वारी गोपीं जुठारें,
सो बेई न अनूठे हरि खों कहा ले चढ़ाऊँ
धान के चाँउर चिरैंया जुठारें,
सो बेई न अनूठे हरि खों कहा लै चढ़ाऊँ...
बागों के फूल बारे भौंरा जुठारे,
गैया को दूध बारौ बछवा जुठारै जे बेईन अनूठे...
मिठया के पेड़ा बारे बालक जुठारे सो बेईन अनूठे...

उनका यह नित्यक्रम बराबर दीपावली तक चलता। दीपावली के दूसरे दिन मौन साधे हुए सब कत्कारिनें स्नान करतीं, चौराहों पर दीपक अगरबत्ती जलाकर खील लाई का भोग लगाती अपने मौन का संकल्प खोलतीं। उसके बाद के तीन दिन वे खोये कृष्ण को आस-पास के छोटे-छोटे गाँव में स्नान करती ढूँढ़तीं। इस दौर में उन आसपास के गाँव में जाने आने पर उनके गीत कुछ इस तरह होते-

जिनके हम दासी बेई न मिले,
मोर मुकुट मोरे ठाकुर जी खों सो है,
सो खौरन बीच बसाई हरि ने काशी-२ बेई न मिले,
कानों में कुंडल मोरे ठाकुर जी खों सोहे,
सों गूंजन बीच बसाई हरि ने काशी...

चौथे दिन किसी बड़े तालाब या नदी पर कृष्ण मिल जाते, कत्कारिनें गातीं -

मिल गये नंद किशोर कुंजन बन मिल गये नंद किशोर...

इस चौथे दिन बड़ा भारी मेला लगता नदियों के किनारे। तरह-तरह की वस्तुएँ, दुकानें... इसी दिन रात में सभी कत्कारिनें अपने घर के प्रमुख मंदिरों में दर्शन करने जातीं इसे 'गाँव घेरना' कहा जाता है। इन्हीं में से किसी मंदिर के पुजारी को दही माखन खिलाकर उसका तिलक किया जाता है। पश्चात फिर वही क्रम। देवोत्थानी एकादशी से पूर्णिमा तक यानि पाँच दिन कत्कारिनों के फलाहार के होते। इस अवधि को 'पचवीकें' कहा जाता है। कई स्त्रियाँ पूरा कार्तिक न नहाकर 'पचवीकें' नहाती हैं। वैसे कार्तिक भर कत्कारिनें एक समय व्रतोक्त भोजन करतीं और एक समय फलाहार। पूर्णिमा से प्रतिपदा तक की तिथि में रोहिणी कृतिका नक्षत्र लगता है। सामान्यता यह कहा जाता है कि ये रोहिणी केतका कत्कारिनों का संयम परखने आतीं हैं। इस अवधि में कत्कारिनें पानीं तक नहीं पीतीं, निर्जल व्रत का विधान होता है। यह निर्जल व्रत अवधि व्यस्ततावश पता ही न चल सके या इस व्रत में भावनात्मक रूप से पूरा ध्यान श्रीहरि और तुलसी पर ही केन्द्रित रहे शायद इन कारणों की वजह से यह समय होता है पक्वान्न बनाने का। नमकीन बेसन माड़कर कन्हैया की बाँसुरी बनती है, गेंद, बल्ला बनता है, बनते हैं राधा और कृष्ण के लिए सुन्दर-सुन्दर मुकुट। हार, कंगन, चूड़ी, गुना, पान, फूल, लोल कुचइया (मीठे खस्ते) भिम्मगजा (भीष्म पितामह के निमित्त बनाई गई उड़द और बेसन के आटे में तिल डालकर स्पेशल पपरियाँ, पूरियाँ) रैन की पपरियाँ, मैदा के पतले पतले पूड़े (खाँकर) और बनता घर का सामान। चार दीवारें, खंभे, द्वार (किवाड़े), खिड़की...। आखिरकार समय व्यतीत हो जाता है, रोहिणी कृतिका नक्षत्र उतर (समाप्त) जाता है, कत्कारिनें मोबाइल द्वारा एक दूसरे को फोन करती पूछती हैं, 'उतर गई केतका?'

'हाँ उतर गई' - 'तो अब कातिक पूजबे की तैयारी कर लें, भैया भी आ गए हैं।'

- 'हाँ, पूजने का समय हो गया है। हमाए तो भैय्या तो नई मगर भतीजे आ गए पुजाबे खों (पुजवाने के लिए)'

और अब कार्तिक पूजने के समय पक्वान्न वाले घरको यत्नपूर्वक सँवार कर पूजास्थल पर खड़ा किया जाता है। बीच घर में दीपक उजियार (जला) कर किवड़िया बंद कर दी जाती हैं। यह किवड़िया कत्कारिन का भाई या भतीजा ही खोलता है। बाकायदा दूर-दूर से भाई या भतीजे अपनी बहिन या बुआ का कार्तिक पुजवाने आते जाते हैं। इस पूजन के बाद श्रीहरि और तुलसी का ब्याह होता है। यथा सामर्थ्य दो चार लोगों को खिलापिला कर, कत्कारिनें महीने भर के इस व्रत का समापन पान्नो (पारायण या भोजन ग्रहण) करके करती हैं।

महीने भर नियम संयम से रहतीं, हँसती चुहल करती गातीं ये कत्कारिनें भक्तिरस, जीवनरस से सराबोर स्वयं भी आनंदित रहतीं हैं और अपने सम्पर्क में आने वालों को भी अभिभूत कर देती हैं, बुंदेलखण्ड की, उत्तरभारत की या पूरे देश भर की ये बेमिसाल हैं कत्कारिनें।

- १२८/३८७, वाई वन ब्लॉक,
किदवई नगर, कानपुर (उ.प्र.)



खपरैल के पलायन से विलुप्त होते लोकशब्द

– विनोद मिश्र 'सुरमणि'

जंगलों व पहाड़ी गुफाओं में जीवन यापन करते समय मानव के बौद्धिक स्तर पर विकास का प्रादुर्भाव की सोच बढ़ी होगी। मशान पर रहते झोपड़ी की कल्पना साकार हुई होगी। झोपड़ी में धूल, पानी का भय या वायु के दबाव से घासफूस से बनी झोपड़ी उखड़ जाने का भय ही खपरैल के जन्म का कारण बना होगा।

भवन निर्माण के विकसित स्वरूप की क्रमबद्धता में आज अट्टालिकाएँ एवं आधुनिक शैली के फायवर के भवन मनुष्य की सुविधाओं के लिये आ चुके हैं। चन्द्रमा या रैस्टोरेन्ट या होटल बनाने की उपलब्धियां भी मिल जायेगी। मिट्टी से चूना, चूना से सीमेन्ट, सीमेन्ट से कंक्रीट और अब फायवर से भवन हमारे विकासशील होने के प्रमाण दे रहे हैं। देखा जाये तो सुनहरे भविष्य की मान्यताओं में यह सुविधायें आवश्यक भी मानी जाती हैं, परन्तु आधुनिक संरचनाओं ने हमारे तन-मन-धन को गिरवी रख लिया है और हम बाहरी सभ्यता के ऋणी होते जा रहे हैं। जिसका भुगतान हमें ही नहीं आने वाली पीढ़ी को भी चक्रवर्ती ब्याज की तरह चुकाना होगा। बहरहाल ये ऐसी आन्तरिक पीड़ा है, जिसे समझना मुश्किल सा लगता है, क्योंकि लोग तेज बहाव में रहने के आदी हो गये हैं। अब तो 'बहते हुये को तिनके का सहारा' जैसे मुहावरों की भी आवश्यकता लोगों को महसूस नहीं होगी वह अच्छे बुरे परिणाम की नहीं सिर्फ उपलब्धियों को कैसे प्राप्त किया जाये की ही बात को प्राथमिकता देने लगे हैं।

भारत कृषि प्रधान देश रहा है, और कुछ अंश तक आगे भी रहने की अपेक्षा की जा सकती है। ऐसा इसलिए कहना पड़ रहा है क्योंकि शहरी चमक-दमक में धन शक्ति से पूर्ण ग्रामीण परिवार शहर में स्थान बनाकर, शहरी वातावरण को मूल तत्वों से तो दुर्बल कर ही रहे हैं साथ ही ग्राम्य जीवन को उपेक्षित भाव रख छोड़ रहे हैं वहां से पलायन कर रहे हैं। उन्हें जन्मभूमि कर्मभूमि ग्राम्य जीवन में 'गँवारता' का बोध होने लगा है, अर्थात् शहर की कालौनियाँ ग्राम और शहर की मध्य संस्कृति में बस चुकी हैं। सांस्कृतिक रूप से देखें तो ग्राम्य जीवन लोक परम्पराओं, संस्कृति और भारतीय संस्कारों से ही जन्मता है, पलता है और बड़ा होकर भारतीय पहचान को स्थापित करता है। लोगों के रहने, पहनने, खाने-पीने सभी में लोक संस्कृति की पृथक-पृथक सभ्यता रहती है, जो उनकी मौलिकता और सभ्य पहचान होती है। हम बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विराट सांस्कृतिक स्वरूप के बीच जन्मे हैं। यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, संस्कार किसी भी अन्य क्षेत्र से कम नहीं है। वेश, भाषा, रूप, स्वरूप, संगीत, साहित्य, खानपान व जीवन की सभी प्राकृतिक एवं प्रवृत्तिक सुविधाओं में लालित्य है। सद्भाव और सन्मार्ग से जोड़ने का भावतत्व है अर्थात् ये भावतत्व (लोक में) प्रचुर मात्रा में संस्कारों को विकसित करते आ रहे हैं।

बुन्देलखण्ड के परिवेश में रहने, रुकने की आवास व्यवस्था सदैव से 'खपरैल' रही है। पटेल, जमींदार या अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के यहाँ भी कम से कम 'एक खपरैल' तो रखने की व्यवस्था रहती ही थी। खपरैल शब्द आते ही एक ऐसे कमरे का स्वरूप हमारे सामने आ जाता है जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर का जन्मदाता है। हमारा जन्म, हमारा लालन पोषण, गोद, गोदी, झूला से होर मढ़ा के बाहर निकलकर आंगन के तुलसीघरा की परिक्रमा से जुड़ा है। जो खपरैल के इर्द-गिर्द ही पला बढ़ा हुआ है। खपरैल की मुड़ैर पर फंसी हमारी पतंग जब तक नहीं निकलती थी जब तक रोटी बनाती माँ की फटकार या बाहर बैठी दादी की प्यार भरी गाली "तुमाओ राम भलो करें सबई खपरा फोर दये" मिल जाती थी।

खपरैल शब्द आते ही उसकी उत्पत्ति का बोध खपरा से लगाना सहज है। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि म.प्र. और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों को लेकर जो बुन्देलखण्ड का स्वरूप है जिसका विस्तार बुन्देला शासकों के समय कुछ और था, उस क्षेत्र में खपरैल आज भी प्रायः मिल जाती है। साथ ही छत्तीसगढ़ प्रान्त में खपरैल ग्रामीण क्षेत्र के साथ शहरी क्षेत्र में भी देखने को मिल जाती है। छत्तीसगढ़ में इसे 'खपराछानी' कहते हैं। जिसमें खपरे बुन्देलखण्ड की तरह होते हैं परन्तु उनकी साइज कुछ बड़ी रखी जाती है। बिहार (भोजपुरी) में खपरैला या खप्पढ़ से सम्बोधित करते हैं। ब्रज से इसका चलन कम ही देखने को मिलता है। राजस्थान में पत्थर के टुकड़ों से पटौद रखी जाती है, कच्चे मकानों की क्षेत्र के आधार पर संरचनाएँ अलग-अलग हैं।

खपरैल का निर्माण – प्रायः ईंट एवं गारे से बने मकान सामान्य से सामान्य व्यक्ति के ही होते थे आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर चूना ईंट के मकान बनाते थे। खपरैल की शुरुआत चियार से प्रारम्भ होती है। चियार हो जाने के उपरान्त खाजर चढ़ाना और खाजर बिछने के बाद 'खपरा' चढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

चियार में उपयोगी सामग्री – लकड़ियों के ढाँचे को चियार या च्यार कहते हैं। जिसकी शुरुआत म्यार (म्याँई) लगाने से होती है। मकान की चौड़ाई में जो शक्तिशाली लकड़ी रखी जाती है वह म्यार होती है। यह नीम, धौ पेड़ से ही बनी होती है। जिसमें बीचों बीच तीन लकड़ियों से बनी करीब २ फुट ऊँची आकृति रहती है, जिसे चिरइया कहा जाता है। इन्हें मूँज या जोरियों से बाँधकर मजबूत किया जाता है। वैसे म्यार में शोल करके यह फंसी हुई होती है। मकान की लम्बाई के मापदण्ड से म्यार की संख्या होती है। वैसे दो म्यारे १० गुना १५ फुट के मकान में लगाना अनिवार्य ही होता है। म्यार पर लगी चिरइयों पर बड़ेरा रखा जाता है, जो धौ, नीम या यूकेलिप्टस की लकड़ी से बना रहता है। बडेरौ लगने के उपरान्त

कुराइया का लगाना प्रारम्भ होता है जो धौ, बेरी, चिरौल, नीम या करधई आदि वृक्ष की लकड़ियों की होती है। इस प्रकार चियार का ढाँचा तैयार हो जाता है खाजर वुल्टेना राहर एवं पतारौ (झरियाँ) तथा रूसों की टहनियों से बनती है। इस वृक्षों के सूखने के उपरान्त इन्हें खाजर या खाडू के रूप में उपयोग में लाया जाता है। चियार एवं खाजर से खपरैल का छाया या छान स्वरूप तैयार हो जाता है।

खपरैल का अन्तिम रूप खपरा – चियार एवं खाजर चढ़ने के उपरान्त इसे मजबूती के साथ निरीक्षण किया जाता है। खपरैल तैयार करने के लिए सर्वप्रथम पई नीचे के खपरौ की पंक्ति रखी जाती है जिसका क्रम खपरैल के एक भाग तक पूर्ण होने तक किया जाता है। पई तैयार होने के उपरान्त औदेला (उल्टा खपरा) की पंक्ति चलती है, और यह क्रम करीब १० आवृत्ति होने तक चलता रहता है। खपरैल में जहाँ पर चिरइयों का उठाव दिखता वहाँ पर बड़े खपरा या टूटे हुये मटका को रखा जाता है। इस उठाव को मंगरो कहते हैं। खपरों की पंक्तियों की कुछ आकृतियों को साथ नरिया की पंक्ति चलती है जो पानी के बहाव को एक साथ नीचे तक ले जाती है। दिन भर की मेहनत के बाद खपरैल तैयार हो जाती है। खपरैल को तैयार करने वाले व्यक्ति लौटइया कहलाते हैं। एक या दो वर्षों बाद जब खपरैल की ओव्हर हॉलिंग होती है उसे लौटनी, लौटवनी या ढौंनर कहा जाता है। वनमाली प्रजापति से खपरैल के बारे में चर्चा हुई तो उन्होंने कई शब्दों को बताया जो लौटावनी से जुड़े हैं –

खपरैल से जुड़े अन्य शब्द –

पटली – यह भी लकड़ी से बनी रहती है, जो कुरइयाँ को आपस में जोड़ने के लिए लगाई जाती है।

गुदियाँ – खपरैल के पिछले भाग में जहाँ से नरिया की पंक्ति शुरू की जाती है वहां पर मिट्टी का ''लौंदा'' रखकर नरिया को उस में खपा दिया जाता है जो गुदिया के रूप में जाना जाता है।

पनारौ/पनरिया – खपरैल के पीछे जब किसी अन्य व्यक्ति का मकान होता है खपरैल पर गिरने वाली बरसाती पानी को निकालने हेतु पनारौ बनाया जाता है और पनारे से निकली उपनाली व्यवस्था को पनरिया कहा जाता है। खपरा और नरिया दोनों से पनारौ एवं पनरिया को बनाया जाता है।

उरवतिया – खपरैल से बहता पानी जब खपरा नरिया से दिवाल के समीप आता है तो वहां पर खाजर, उरई की सीकें आदि से दीवाल को ढका जाता है ताकि पानी बहाव के साथ दीवाल से दूर जाकर गिरे यह व्यवस्था उरवतिया कहलाती है।

मौरी – खाजर या खाडू के गट्ठर को मौरी कहा जाता है जिसे मजदूर लोग खेतों से इकट्ठा कर बेचने आते हैं।

ठाठ – खपरैल के कमरे के अंदर जहां मुरइया दीवार पर रखी रहती है उस जगह को ठाठ कहते हैं।

टपका – लौटावनी करने वाले लौटाइयों की यह खूबी रहती है कि वह कम से कम एक टपका खपरैल में जरूर रख देते हैं जिससे सुधार हेतु उन्हें बुलाया जाता है। बिना कारण के ना दिखने वाली बूँद जब गिरती है तो वह टपका बन जाती है।

थूमा – कभी कभी बोझ बढ़ने के कारण खपरैल का बड़ेरा टूट जाता है ऐसी स्थिति में कमरे के अन्दर जमीन से बड़ेरे तक जो लकड़ी सुरक्षा हेतु लगाई जाती है थूमा कहलाती है।

छैको – तैयार की गई खपरैल के कुछ दिनों बाद बिल्ली का भ्रमण करना और उसे देखकर कुत्तों का खपरैल पर चढ़कर पीछा करना छैको को जन्म देता है लौटइया या घबइया ही इस कमी को सुधारने आते हैं।

चौमासो – वैसे हमारे देश में ऋतुयें ४-४ माहों में बटी हैं। चार माह को ही चौमासा कहा जाता है परन्तु यह बरसात का प्रतीक बन गया है चौमासे में ही खपरैल से सम्बन्धित सभी मरम्मत कार्य करवाये जाते हैं।

खपरैल से जुड़े अनेक शब्द हैं जो अब हमसे दूर जाते नजर आ रहे हैं। बुन्देली बोली के ये शब्द कुछ दिनों बाद बुन्देली शब्द कोष में ही अपना स्थान बना लेंगे। खपरैल ने शब्द के साथ मुहावरों/कहावतों को भी जन्म दिया। जो हमारे जीवन की मार्गदर्शन भी होती है। बातों-बातों में आई उलझनों को सुलझाने का कार्य भी लोकोक्तियाँ करती हैं। खपरैल से जुड़ी कुछ ऐसी ही कहावतें/वर्जनायें प्राप्त हो सकी।

१. जितेक डर शेर को नइया उतेक टपका कौ है।
२. सत्तरा षडेरे कारे करवो।
३. विरथई घर के खपरा फोर रये।
४. उरवतिया को पानी चुअइना।
५. उरवतिया को पानी मगरे नौ चढ़ रओ।
६. चुअना जब परै तब चूलै पै परै।
७. नये कक्का माये कक्का बीच में बैठे भोले कक्का।
८. घर की कुरइया से आँख फूटत।

ऐसे अनेक लोकवाक्य हैं जो हमें सूत्र के रूप में प्राप्त थे। आज हम इन्हें भूलते जा रहे हैं। खपरैल ने शब्द और वाक्यों के साथ कवि साहित्यकारों के भावों को भी कविता के रूप में उभारा है। कवि हृदय जो खपरैल की छत्रछाया में काम करता हो उसके शब्द भी खपरैल के माध्यम से निकले होंगे। कवि मधुकर मिश्र ने लिखा है कि मगरे नौ आ पौचों घाम हरवारे सोउत ना रहो। लोक गायक देशराज पटैरिया का लोकप्रिय गीत उठो धना मंगरे पे बोल रओ कऊआ, लगत तोरे मायके से आ गए लिवउआ। डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर ने लिखा है।

सुल्ले नी खोद कै भर रये/भीतें ऊँची कर रए/गुजरायंती लगे हैं फेरन/पक्खन गौदा घर रए/ म्यारिन के वूसा भितियन पै/ ओटन के भर सद रए/ चड़े वडेरे लगी चिरइयाँ/माल कुरइयाँ चढ़ रए/ खाजर विछा चढ़ाये खपरा/घरियन से घर सज रए/चला पही बाँध रहे मंगरौ/काड़ कौनियां हँस रए/नागर जे कुम्हार लौटइया/चूलै

चुअना तक रए।

लोक कवियों लोक कलाकारों ने खपरैल को लेकर अपनी अपनी बात समाज में सदैव रखी है। एक रचनाकार कहता है - कौनउ खपरा उल्टो धर रओ/टपका बीच पौर में पर रओ।

एक और बानिगी देखिये -

हो रओ बहुत पुरानौ जा मकान/डिगन लगी दिवारैं/मंगरो लपकै टेढ़ो हो गओ/धुन गई सभी कुरईयाँ/चुर मुर खाड़ी खपरा हो गये/कछु काम को नईयाँ।

विषयक रचना के संदर्भ में कहना होगा कि बुन्देलखण्ड को लोककवि ईसुरी ने समाज के सभी साधनों को प्रतीक बनाकर अपनी रचना कही है परन्तु खपरैल को उन्होंने क्यों छोड़ा ये प्रश्न हो सकता है। डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर की पुस्तक ईसुरी में भी ऐसी कोई रचना देखने को नहीं मिली जो खपरैल के माध्यम से कही गई हो। एक जगह ईसुरी लिखते हैं कि बखरी रैयत है भारे की दई पिया प्यारे की कच्छी भीत उठी माटी की छाई फूस चारे की। इस प्रतीकात्मक चौकड़िया के बाद उनकी रचना के इस लेख के लिखते समय तक पढ़ने को नहीं मिली। ईसुरी बिना खपरैल के रहे होंगे यह कहना भी उचित न होगा।

खपरैल से सम्बंधित एक प्रसंग विवाह परम्परा में आता है लड़की की विदा उपरान्त जब दूल्हा मण्डप आदि पूजकर जाने लगता है तो कन्या पक्ष की महिलायें उसे खपरा लौटने को कहती हैं। उसी समय एक गारी बुन्देलखण्ड में गायी जाती है - सुनो सखी विधना वारो/करै लौटनी घर वारौ।

यह खपरा लौटने की लोक परम्परा मात्र प्रदर्शन नहीं है बल्कि दूल्हा की योग्यता का परीक्षण जो आज भी ग्रामीण क्षेत्र में मान्यता के साथ की जा रही है पर आज खपरैल को लेकर कई प्रश्न खड़े हो रहे हैं। लोग अपनी कृषि भूमि को बेचकर पक्के मकानों का निर्माण करा रहे हैं। जो जल संरक्षण के लिए नुकसानदायक है। इसके कारण जल स्तर नीचे जा रहा है। क्या हमारी लोक परम्पराएं जो खपरैल से जुड़ी हैं बच पायेंगी। क्या अनेक बुन्देली के लोक शब्द जो खपरैल से जुड़े हैं हमारी आने वाली पीढ़ी जानेगी। लोक कहावतें, लोकगीत, लोकशब्द समाज में रहेंगे उत्तर 'ना' ही होगा।

शब्द कोष में संग्रहित उन तमाम शब्दों को तब पढ़ा जायेगा जब कोई शोधार्थी पारम्परिक लोक जीवन पर शोध कार्य करेगा। खटिया, चकिया, पिड़ी, सिकौली, डिकौली, संग्रहालयों को शोभा बढ़ायेंगे। बढ़ती आधुनिकता जीवन शैली में हम खपरैल के संरक्षण की बात भी नहीं कह सकते अब दरकार है तो सिर्फ खपरैल के पाठ को पढ़ने की और ऐसा आने वाले दिनों में होगा ऐसी संभावना है।

- संगीत गुरुकुल, मधुकर मार्ग
पकौड़िया महादेव, दतिया

बुन्देली बाल कविताएँ

- सुधा रावत 'क्षमा'

१. सब सिंगार अरोने

बंदरा कहै बंदरिया सें,
तुम भौत भलीं लगती हौ।
देख अकेलें हमें सामनें,
दै कुर्रू भगतीं हौ।
बैठौ पास बोल-बतया लो,
कौन बड़ी जिंदगानी।
जीवन-भर कौ चूलौ-चौका,
बासन-भाड़े, पानी।
दो अक्षर आ-ई-ऊ पढ़ लो,
नइयाँ कौनऊँ हानीं।
पढ़-लिख कें हुस्यार कहाहौ,
ऊसई हौ तुम स्यानी।।
तुम हौ ठलुआ हमें काम है,
इठला उठी बंदरिया।
लाली लगा पर्स लटकाकें,
घूमन चली बजरिया।।
बंदरा हँसो-जोर सें बोलो,
संजै-धजैं का हौने।
धरीं अंगूठा टेक, तुमारे
सब सिंगार अरौनें।।

२. मुन्नी नाची ता-ता-थइया

चतुर बिलइया पीबै दूध!
रोज मगन हो नाचै खूब!!
मुन्नी की अम्मा हैरान,
को कर रओ ऐसो शैतान!!
दूध-मलाई गायब हो रई।
मुन्नी-दुखी पतेली धो रई!!
मुन्नी ने एक जुगत लड़ाई!
बूचा-कुत्ता लै कैं आई!!
बूचा झपटो भगी बिलइया,
मुन्नीं नाची ता-ता-थइया!!

३. हमसें गप्पें ना मारौ

चुनमुन पूंछत दादा जी सें,
पानी काँ सें आउत?
बे बोले भगवान उयै,
बादर सें बरसाउत।
चुनमुन कहै - सोच में परकें,
बादर काँ सें ल्याउत?
समुन्द्र देत बादर खों पानी,
दादा जी समझाउत।
बादर कौ पानी मीठों है,
ओर समुन्दर खारौ।
हम नईं मानत दादा जी,
हमसें गप्पें ना मारौ!!

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-२, दुर्गेश
विहार, जे.के. रोड, भोपाल म.प्र.

मदन रस बरसै महुआ तरें

– आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

चैंत है, चैंती है उर चाँदनी है। लोगन कौ मन ताथय्या ताथिय्या करकें नच रऔ है। बुन्देली बसन्त मुस्की चुस्की लै रऔ है। रस बरस रऔ है। महुआ के फूल झर रए हैं। रस मोतीं बगर रए हैं। नए साल के सत्कार में लोभी भौंरा-भौंरिया खूँबई छक रए हैं। बाय-बैहर बहकी बहकी सी अपनी छोड़ कें 'मरोरा की चाल' चल रई है। तन-मन को छूरई है सो बे तन-मन महुआ के मदन रस में डूब से रए हैं।

महुआ है बुंदेली बिरछा। कछू विरछा पौदा ऐसे होत केबे जितै होत हैं उतै की समाज के रीत रिबाज, चलन-बैपरन, तीज-त्यौहार सबकों-सबैइखों-बिना कहें बता देत हैं जैसें बंगाल को केरा, हिमांचल उर पूरे उत्तराखण्ड कौ 'देवदार'। ऐसोई है जा बुंदेलखण्ड कौ जौ महुआ। महुआ बुन्देलखण्ड को 'प्रतीक' है। खैरे रंग बारौ, नीचट, चौड़े अुर पुस्ट पत्ता, सुगंध अुर रस सें भरे फूल, सनेह सें भरे मीठे फल। महुआ जब जब फूलत है तब तब दिसा उर दसा सब भूल जाती हैं अपनी दसा। महुआ बाहर सें रूखौ, भीतर सें नेह सें भरौ पूरौ। जो नेह है महुआ कौ, जो सनेह है महुआ कौ, जो रस बन कें, सुगंध बनकें सबके मन को मस्त बना रओ है।

महुआ मन कौ तो मस्त बनाउतइ है संगै संगै पेट में भड़क रई भूख की आग कौंउ सान्त करत है। भीतर 'वैसान्दुर' (वैश्वानर) की धधकरई अगिन कौं जौ महुआ अपने प्रेम की पुष्पांजली भेंट करकें प्रसन्न कर देत है। ऐसें करत है जौ महुआ 'रितु-जग्ग' (ऋतु-यज्ञ)। जा रितु जग्ग की खोज हजारन बरस पैलें हो चुकी है। एक हते परम ग्यानी ध्यानी रिसी 'सुस्रुत' (सुश्रुत)। उननै लिखौ है, बताव है 'महुआ के फूल वीर्य्य वर्धक है' तिरसा सान्त करवे बारे, उग्र अुर पुस्ट बनावे बारे हैं। फल मीठे हैं, ठंडे हैं, पित्त-दाह-परिश्रम को दूर करबे बारे हैं।' बात लोगन नें मानीं, आज नों मानत हैं। सहर की हबा से दूर जो गाँव हैं उनमें रैबे बारे अबै कहत है, मानत हैं-

'महुआ मेबा, बेर कलेबा, गुलगुच बड़ी मिठाई,

जा बात में कौनऊ संदेह नैंकउँ नइयाँ के महुआ' मेवा है। महुआ में मेवा के पूरे गुन हैं जा बात अच्छे बैद मानत हैं, जानत हैं, दबा-दारू के रूप में मरीजन कौं देत हैं। कछू गाँवन में अबैऊ महुआ के बिंजन 'लटा-डुबरी' बनत जात हैं। महुआ गरीब आदबासी जनन को सहारौ अबैउ बनौं है।

भासा सें सूचना तौ मिलतई हैं, अकेलें भासा कौ काम सूचना देबौ भर नइँयाँ। भासा अन्तस् की चेतना को बाहर निकारबे कौ काम सोई करत है। कौनऊँ समाज की भासा गहरे में समझौ तो ऊ समाज की चेतना कैसी है जा समझ में आ जात। सत्तर साल हो गये तब जा कानात हमनें अपने गाँव में सुनीती –

"डोंड़ में लगी आग तौ 'डुबरी' सें काम।
होय भरी डोंड़, तौ 'डुबरी' सें का काम।।"

मतलब जौ है के जब भूँख लगत है तब महुआ सें बनी 'डुबरी' की जरूरत होत है। जब पेट भरौ होय तौ फिर 'डुबरी' की का जरूरत? डोड़ में आग लगबौ' मतलब है, तेज भूँख लगबौ। इतै मुक्ख है 'डोड़'। 'डोड़' है संस्कृत भासा कौ सबूद, जा कौ मतलब है - 'जल से भरौ बादर।' 'जल से भरौ कलसा'। सो जौ सबूद 'डोंड' पेट के लाने भौतई नोंनों प्रयोग है। डोंड़ में जब भूख की आग लगै तौ ऊकों सान्त करैं मीठो महुआ। महुआ पेट में भूख की आग कों सान्त तौ करइ देत हैं, संगै संगै प्रानन में आग लगा देत हैं, मन कौं मस्त कर देत हैं। तन में स्रम दूर करकें उमगें भर देत हैं महुआ।

धरती पै फूलौ महुआ, तौ ऊपर आकास में चन्दा महाराज अपनी 'चित्रा' प्यारी के संगै खिल उठत हैं। प्रेमियँन कीं भावनायें और कबियन की कल्पनायें उमड़ँन लगतीं हैं। और तौ और जौ देखौ महा करऔ 'नीम' कौ बिरछा मीठी सुगन्ध के मदमस्त झौंका सबई दिसन में फैंकन लगौं है। आम बौरा गऔ है। भौंरा पागल हो गए हैं। और महुआ के तरैं 'राई' का साज सज गऔ है। हमै तौ एसौ लग रऔ है जैसें 'कालीदास जू कबि कौ 'मधूत्सव' इतैई सुरु हो गऔ है। ढोलक की थाप, नँगड़िया की लै, बेड़नी कौ चक्कर दार नाच, पलीता के धक-धक कर रए उँजियारे में महुआ की मस्ती भरे बोल उमग रए हैं-

चैतै रसीली चींमरी, बैसाखै रसीले आम।

गोरी रसीली सेजा पै, मोय भौं में लटका लो बालमा..."

चैत के सन्नाटे कौं चीरत जे बोल कौनऊ एक गाँव के बोल नइँयाँ जे तौ हैं महुआ के बोल जो पूरे बुन्देलखण्ड कौ अनगिनती बरसन सें आ रस सें सरबोर कर रए हैं। इनमें मिली है महुआ की मीठी गन्ध जा की बातई अलग है। जा महुआ की मीठी सुगन्ध जब उतरत है तभँई चढ़ जात है। फिर सहज सुभाव कौ कोउ होबौ चाँय साधारन सौ किसान होवें चाँय बड़े सैं बड़ो ग्यानी ध्यानी रखी-मुनी होबै।

'बालमीक' महाराज कौं महुआ की सुगन्ध ऐसी सुहानी, उर ऐसी उनके मन में बसी के बे महुआ के बरन उर आभा कभऊँ भूल नइँ पाये। उनकौ याद आ रए हैं 'पम्पासर' के पानी सें पले पुसे महुआ के बे बिरछा - 'पम्पातीरे रुहाश्चेमे संसिक्त मधुगन्धिनः'। उन महाराज कों पतो है के महुअन कौ महाबन कितै है - 'मधूकानां महावनम्'। उन्हें महुअन कौ 'कान्तार' कितै है जो भी पतौ है। 'चित्रकूट' होय चाँय 'पंचवटी' लंका हौवे चाय 'अजुध्या जी', 'बाल्मीक महाराज़ कौ सब जाँगाँ महुआ के दरसन होत हैं। रीझबे बारे तो बस रीझबे बारे हैं। बे हान-लाभ तखरिया सैं नई तोलत हैं। बे अपने मन की सुनत और सुनाउतबैं उनकी आँखन में उनकौ रँग होत सो पूरी स्रिस्टी उनकी दिरूस्टी सें ओई रंग की दिखात हैं। सीता जू रीझी ती, सोने के मिरगा पै, हम सब इतैकई जानत हैं। 'बालमीक जू' महाराज बताउत है बात गहरी कछू और है - बौ जो सोनें को

मिरगा हतो ऊकी बगल कौ हिस्सा महुआ के फूल की आभा जैसी हती – 'मधूक निभ पार्श्वः' सो रीझी ती, बे महरानी सीता जू। कछू जनबा तौ जा बताउत हैं के 'सीताजू जब राम जू पै रीझी ती तौ रामजू के गरै में उननें महुआ के फूलन की माला पहराई ती। सो बालमीक जू ने 'अजुध्या जू' के राजमहल में मौजूद सीताराम जू की विहार स्थली- अशोक वनिका में महुआ के बिरछन से फैली सोभा बताई है। बास्तव में बाल्मीक जू के मन में बसे जा भूमि के महुअन की सोभा है सो बई सोभा सब जाँगा बगररई है।

अठारा पुरानन के रचबे वारे, साकछात् भगवान कौ औतार, बेद ब्यास महाराज कौंऊ महुआ भौत प्यारौ हतौ। उनके मनकोंउ जौ भा गऔ तो। आयू काए नईं? इतै की माटी में महुआ की मीठी सुगन्ध सनी है। फिर महुआ चाँय जाँ होय, जा बुन्दली माँटी की नौनी सुगन्ध महुआ में हमेसा गमगत रै है। उर भगवान व्यास जू इतै की माँटी के बेटा हैं। उनके माता-पिता, मच्छोदरी-परासर महाराज इतैई कालपी के पास के हते। 'व्यास टीला' में उनकौ जनम भऔ तो। सो जनमभूमि की माँटी की सुगन्ध-महुआ की सुगन्ध उनके मन में बस गई ती। महाभारत में उनने जब असम की राजकुँवर 'चित्रांगदा' कों देखौ तो बे बोल उठेते –

"चित्रांगदा चैव नरेन्द्र कन्या एषा सवर्णाग्रमधूकपुष्पैः;"

"जे राजकुँवर चित्रांगदा महुआ के फूलन के बरन की आभा सें चमक रई हैं।" बात सीधी है के महाराज व्यास जूके मन में जो महुआ के रूप, बरन, आभा बसी हती, बोई बरन, आभा और रूप की छब चित्रांगदा में उनें पिरत्यच्छ दिखाई दइ है। जा बात अपनी जांगा ठीक है, पै जौ महुआ कौ असल में सुभाव है नईं। महुआ राजा-रानी-रनवास कौ बन्धक कबऊँ नईं रऔ है।

महुआ कौ सुभाव अलग है। महुआ बाग-बगीचन कौ रनिबास को बिरछा नइँ है जैसो है 'पारिजात' (हरसिंगार)। महुआ 'असोक' कैसौ बिलासनींयन कौ बिरछा नईयाँ। 'महुआ' ताल, तमाल, कंजी, करधई जैसौ जंगल कौ बिरछा नइँयाँ। महुआ की पैचाँन तौ रतन पारखी कर सकत हैं। सो महुआ की पैंचान बिक्रमाजीत महाराज जू की सभा के एक रतन 'अमरसिंह' ने करी ती। उन महाराज अमरसिंह जू ने बताओ है के महुआ है 'वानप्रस्थ', और महुआ है 'गुड़पुष्प'। बानप्रस्थ वो कहाउत है, जी कौ रुझान तो होय बन की तरफ जाबे कौ, पै अबै घर गाँव से बैराग नइँ होय। सो महुआ है 'बानप्रस्थ'। बन की ओर रुझान तो है पै गाँव से बैराग नइँयाँ। गाँव के कल्यान करबे कौ महुआ सदा जुटौ रत है। चैत है, संबत्सर सुरू हो रऔ है, सो महुआ सबको 'गुड़ पुष्प' बाँट रऔ है। जो चाहै, जितनौ चाहै, महुआ के मीठे मोती अपनी झोरी में भर लेबै, खुली छूट है, कौनऊँ बन्दिस नइँयाँ।

महुआ के रसीले मोंती हजारन सालन सें बट रए हैं। हजारन नें समेटे हैं इनें। हजारन ने भरे हैं पेट। जैसी सुराई तैसी सुरा। महुआ के फूलन की धार, प्याला परखत है। रूप, बरन अुर आभा जे तीनउँ गुन गाहक कों देख कें अपनों रूप रँग अुर चमक दमक बदल लेत है। जैसी चींखबे बारौ ऊसौ सुबाद, ऊसौ असर। अंगिरा के बेटा बसिष्ठ (वशिष्ठ) सें लैकें जुलाहे के बेटा फक्कड़, कबीर नों, उर अबै के 'उमर खैय्याम' सें लैकें हरिबंश राय 'बच्चन' नों, सबने चीखी है महुआ के फूलन की मीठी रस-धार। अजब मद है जाकौ नसा जाम बदल जाबे सें बदल जात है। बसिठ्ठ ने चींखी तौ प्रान उमड़ घुमड़ करन लगे। कबीर नें चीखी तौ बे 'सुरत' में डूबन उतरान लगे। 'बच्चन' नें सूँघी, पीबौ तौ दूर, प्यास प्यास रटन लगे। 'खैयाम' ने प्यार से प्यालौ चढ़ाऔ तौ पार उतर गए।

हमनें दूर सें देखौ है परखौ है, सो लगौ हैं के साँचे पीबे बारे हैं दो जनें, बाँकी सब सट्ट-पट्ट। इन दो में फरक है हजारन बरसन कौ। दूरी है सैकरन कोसन की, पै मस्ती है एक सी। नसा में कौनउं फरक नईं। लगत है कै इन दोउ जनन कों महुआ की मीठी धारा के रस सें गैरो जुड़ाव हो गओ है। इन दो में एक है वेद के रिखी महामुन 'गौतम' महाराज जो अपने विंध्याचल के एक पूरब बारे हिस्सा में बास करत ते, दूसरे हैं 'उमर खय्याम' साब जो रहत ते पच्छिम देस ईरान में। गौतम महाराज ने जब स्वाद लऔ महुआ की धारा के रस कौ तौ बे आनंद सें भर गए, मस्ती में गाउन लगे –

"मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः
माध्वीर्नः सन्तु ओषधीः।"....

:"जीवन भीतर बाहर एक हो गऔ है, मिठास बरसन लगी है, हवा मिठास की बरसा कर रई है। नदियन में मिठास छलक रई है। मीठी भोर, मीठी संजा है। मदमस्त दिन और मदमस्तु रात। सूरज की किरनें मिठास झर झर करकें बरसा रइं है। मीठी गइयन कौ दूद और मीठे सब पेड़ पौधा। हे प्रभु, बिनती है कै सबइ के जीवन में सिधाई और मिठास भर जाय, सब आनंद में डूब जायें ई सुख खों सब खों देव मालिक।" उमर खय्याम साब सोउ ऐसौइ कछू अनुभव कर रये हैं, बे गा रये हैं –

"जान दिल कुरवान है, साकी की उस आवाज पर,
मैं हूँ बेखुद और वह कहता हो सागर और लो..."....

बात असल जे है कि दोउ जने एकइ जगह पौंच गये हैं। बे 'मधुमति भूमिका' में जा चुके हैं यानी बे गहरे उतर गये हैं महुआ की रस धार में।

उपाध्याय माराज बोल रये हैं कै 'महुआ देव' हैं। महुआ देत रत है और कहत रत है कै तुमउँ देव, हम तौ देइ रये। हम तौ दै रये पत्ता फूल, फल, असीस और अपनों दधीच मुनि के हड़उअन जैसौ सूकौ सरीर। देत रै हैं हम सबकों सब कछू जों नों है तन में प्राँन। जासें गाँव के सब जने पूजत हैं मउआ बाबा खों। जब कभउँ क्वाँरी कन्या कौ अपमान कौनउँ भेंसासुर करत है। तौ महुआ के फूलन कौ रस पीकें देवी मैया वाकौ नास कर देती हैं, कनैया जू के बड़े भैया बलराम जू कौ प्यारौ है, महुआ कौ रस और महुआ! सो उनकौ जनम दिवस खों 'हर छट' खों बिना महुआ के पूजा नइँ होत है। बलराम जू हैं खेती के देवता, सो उनकी पूजा बिना महुआ के

कैसें हो सकत? ऐसी है महुआ की महमा! जैसे पीपर है देवतन कौ बिरछा भूतन प्रेतन कौ निवास है, बैसइँ हमाये लोक देवतन कौ बसवे कौ थान महुआ कौ बिरछा है। महुआ कौ समझबौ समझदारन कौ काम है। महुआ खों समझत गरीब-गुरवा, किसान! महुआ खों समझत राजा रहीस!

अबै कछू दिन पैले की बात है, टीकमगढ़ के राजा वीरसिंह जू देव (दूसरे) ने महुआ की महमा समझी ती। अपने निज निवास बैकुंठी के आँगन में महुआ रोपो तौ (महुआ लगाव तौ)। महुआ की जर में महुआ कौ रस सींचबे के लाने डारो तो। सोने के कलदार नैचें बिछाये ते, ऊके ऊपर तब माटी डार कें महाराज ने अपने हाँतन सें महुआ रोपौ तो। बा महुआ की देख रेख और पालबे पोसबे की जिम्मेबारी अपने प्रियसेवक नारायन बाबा खों सोंपी ती। आज बौ महुआ एक भरौ पूरौ दरखत बनो बैकुंठी निवास के आँगन में मौजूद है। जो चाहें सो बा महुआ के बिरछा सें ऊकी गौरव गाथा सुन सकत हैं। दुख की बात तौ जइ है, कै हम सुनबे खों तैयार नइँयाँ! हमने जो सम्बन्ध, रिस्ते बिरछन सें बनाये हते अब हमने उनकी कदर छोड़ दई।

महुआ के सम्बंध सबसे रये हैं। उनसे भी रये जो बड़े ज्ञानी, ध्यानी, तपसी रिसी हते। जब जग्ग होत तो तौ जग्ग के लाने दस उपकरन चाउने परत ते। उनमें सें दो 'उखरी और मूसर' सबसे मुक्ख हते। पैलें मूसर बनत तौ खैर सें और ऊखरी बनतती छेवले (पलास) सें। बाद में मूसर महुआ सें बनाव जान लगो, और ऊखरी छेवले की बनत रई। सो छेवले की ऊखरी और महुआ कौ मूसर कौ सम्बन्ध अटूट रऔ है। मूसर औ उखरी एक दूसरे के पूरक रये हैं। सो छेवलौ औ महुआ दोउ जुड़े माने जात ते पूरक हते बे। जा बात तौंनों हती जोंनों जग्ग हमाये जीवन में हते। जग्ग छूटौ और हम गिरे। हमने महुआ और छेबले खों बिरोधी मान लओ। हमने मान लओ कै महुआ और छेवले में कौनउँ सम्बन्धइ नइँयां। जहां पैलें महुआ छेवले पूरक हते औ अब बे गैर हो गये। महुआ छेवले की बातें ठोकबो जौ एक बुंदेली मुहावरो है, बा कौ मतलब है जो मों में आव सो कैबौ जिनमें कौनउँ सम्बन्ध नइँयां ऐसी बातें करबौ, बातन में कौनउँ तालमेल हैइ नइँया बे हैं महुआ छेवले की बातें। दूसरी बात महुआ और मूसर जाँ पैलें गैरे सम्बन्ध से जुड़े ते। मूसर है तौ महुअइ कौ हुइयै। ऐसौ गैरौ संबंध हतो महुआ सें मूसर कौ। अब महुआ और मूसर की बातन कौ मतलब है ऊल जलूल की बातें, जैसे उनमें कछू सम्बन्धइ नइँ होय, ऐसें टोरे हैं अपने बिरछन सें रिसते। "हमतौ महुअन पै लगे कुलरियाँ घालन, मउआ मानस पालन" जौ सब समय कौ फेर है। भैया।

भलइँ समव बदल गऔ होय, हमने महुआ काटे होंय कुलरियाँ घालीं होयँ, पै महुआ बाबा उतइँ हैं। उनकी बड़ी बिसाल काया घनी ठंडी छाया, सोने के कलसन से इमरत भरे मीठे मोती के फूल नेह भरे मीठे फल और मस्त मदमाती, मद बाँटती सुगंध। इन सबमें कौन है बा चीज जीखों दैबे में महुआ बाबा ने कौनउँ कंजूसी करी होय। महुआ दूसरन के लाने खुद खों, सदाँ लुटाउत रऔ है और आजउँ लुटा रऔ है। महुआ के आसपास की हवा, पास की जल धारें, उतै के पेड़-पौधा, सुहानी भौरें और सुनसान रातें, सब ऊ की मस्ती में भर गये हैं, भरे जा रये हैं। महुआ कौ जौ जीवन जग्ग अपने आप कौ समरपन है जो सबकौं आनंद और मस्ती दै रऔ है, शब्द और अर्थ दोउअन सें झर झर करकें जौ मदन रस बरस रऔ है - "मदन रस बरसै, महुआ तरें, महुआ के तरैं..."

- ५/२, कालिदास, नूतन विहार कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुंदेली गजलें

- महेश कटारे 'सुगम'

(१)

खेत सबई भगवान लगत हैं।
पिसी चना वरदान लगत हैं।

अब आफत में प्रान लगत हैं।
डिग गये सब औसान लगत हैं।

जब सें परों तुषार, कका जू,
सोत सोत चिल्यान लगत हैं।

फसलन कौ हो गऔ डड़ोरा,
जिंदा लाश किसान लगत हैं

भैया कोउ सें बोलत नइयां
कछू कहौ खिच्यान लगत हैं

कर्ज उगाबे जब कोउ आबै,
दद्दा बस गिगयान लगत हैं।

(२)

उड़ गये कुजने कितै हवा से
मठा महेरी दूध बतासे।

चारई तरफै ऊगत फिर रये
झूठ डाह उर झगड़े झांसे

कुआ बाउरी के मौ सूके
नदिया नारे हो गये प्यासे

भूख प्यास दुख बीमारी नें
टोर के धर दये गुरा गुरा से

जब से बने ककाजू मंत्री
दौलत के लग गये बिटा से

(३)

बुरऔ सबई कौ हाल करत हैं
अपनी गोटी लाल करत हैं

अपनी रीती जेबें भरवे
औरन खौं कंगाल करत हैं

बात कोउ की गड़ है कैसें
बज्जुर मोटी खाल करत हैं

बुरये भले से मतलब नइयां
भीतर सबरौ माल करत हैं

ऊँचौ हौदा मिल तौ जावै
फिर तौ भौत कमाल करत हैं।

- काव्या, चन्द्रशेखर वार्ड, बीना (सागर)

एक बुंदेली सत्य कथा -

संत सेवा एवं अटूट आस्था की मिसाल - पं. श्यामलाल

- भानु प्रताप शुक्ल 'भानु'

मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के मेंड़े से लगो - हरपालपुर से, राठ-पँड़वारी हाँ, एक पक्कौ गोला गओ। ऊपै! हरपालपुर से सांतक कोस की दूरी पै, गोला सें आदक कोंस, पच्छिम में बामनन कौ एक गाँव बसो - 'धवार' उतै पं. श्याम लाल रावत नाव के एक भौतई सूदे साँचे, सज्जन पुरुष रात ते। जब सें जौ खेरौ बसो हूहै, तब सें आज लौ उन कैसौ मानुस ई! गाँव की धरती पै दूजो नई पजो। गाँव के कोंनउ पुतरा नें, उनें! कभउ दुखी, उदास, उतरे मों की शकल में नई देखो। बड़ी सें बड़ी विपत में, बे! कमल के फूल से जनम भर खिले रये।

आजादी के पैला, गोरन के राज में (१९४२ के लगभग) जब दूसरौ 'विश्व-जुद्ध' चलत तो, तब बे! गोरन के राज में एक 'लोअर प्राइमरी' मदरसा में (जौन दर्जा दो तक चलत तो) अपने ईं गाँव में, सरकारी मास्टर हते। ऊँ जमाने में उन्हें चाँदी के दो कल्दार, हर मईनें, चाकरी के रूप में मिलतते। देश में भौत गरीबी हती। अदेला और एक पईसा फीस दैबे में, बाप-मताई हाँ दाँतन पसीना आउत तो। जब लरका नई दै पाउत ते, तब सरकार बा फीस, गुरूजी की चाकरी की रकम सें बसूल करत ती। तब गुरूजी खाँ, दो-दो, तीन-तीन मईना में कभउँ सवा, कभउँ डेढ़, कभउँ एक कल्दार, चराई सी मँसूमसों कें मिलत ती। पर उन! कैसो गम्मखोर और संतोषी छाती पै पथरा धर कें रै जात तो।

ऊ! जमाने में, स्कूलन के लानें सरकारी भवन ना हते, गुरुजी हाँ खुदई मोंड़न के बिठारबे की जुगाड़ भिड़ावने परत ती। रावतजू महाराज खुदईं, अपनी 'ढुरऊ बखरी' की एक काँस की टपरिया में अपनों 'नालन्दा विश्वविद्यालय' चलाउत ते। चौमासे में जब टपरा-टपकन लगत तो तब लरकन की हाजरी भर कें छोड़ देतते।

पण्डित जी, बेहिसाब संतोषी परमार्थी औ पूरी चँदिया में साधु-सन्त सेवा, सहायता में, नामीं हते! एकउ दिना साल में ऐसो नईं जात तो के गाँव सें कोंनउ बाबा-बैरागी भूँकौ लौट गओ होय। दिवाले में, दो-चार बाबा-बैरागी, धुनी रमाँय बारऊ मईना परे रात ते।

पण्डित जी के घर सें, कछू रूखे स्वभाव कीं, तेज-तर्राक,अश्रद्धालु औ उदास हतीं। पंडित जी उनके ई स्वभाव कौ लोहा मानतते। ईसें उनें अपनी जा! साधु सेवा अकसर उनकीं नजरें बचा कें, और कभउँ कभउँ किलकिल,करकैं, करनें परतती। बे! निछक्कौ देखके भण्डारे में घुस जाँय औ पिछौरा के एक छोर में, जल्दी-जल्दी कनक, दार, नोन गठया भगे औ दूसरे छोर में कण्डा-छिपुरियाँ बाँद कें चारउ कोद चौकन्ना देखत भये दिवाले की राह पकरें और उनकी धूनी परचा भगें। जब कभउँ बिद जाँय तो बे! इनकी ठठेरी-डूँडरा तक बाँध देबें। पैई! सबसें भक्तराज की साधु सेवामें कौनउँ फरक नई परो। कभउँ कभउँ तौ उनें साधुअन के ई 'सीदेदान' में खुदब्यारी और दुपहर के भोजन छोड़नें परे। पर बे अपनी साधु सेवा निष्ठा सें कभउँ विचलित नईं भये। लगन सें पूरे जनम भर, सन्त सेवा करत रये। पण्डित जी हाँ भगवान नें मात्र दोई डरईंयाँ दईं तीं। एक मोंड़ा और एक मोंड़ी। मोंड़ा जी कौ नाव बद्री प्रसाद हतो, हरपालपुर में, गल्ला की आढ़त की दुकान करततो। और मोंड़ी मऊरानीपुर में ब्याई ती।

एक साल पूरी चँदिया में, बड़े जोर की भयानक प्लेग फैली। हरपालपुर तक ऊकी चपेट सें अछूतौ न रओ। औ पण्डित जी के इकलौते पुत्र, बद्री प्रसाद तक ऊकौ पकर में आ गये, तमाम दवादारू करबे के बाद बे! ई! संसार सें चल बसे। बिचारे पण्डित जी पै, अचानक जा! भयानक गाज आन गिरी। पै भगवान की करनी पै काऊ कौ का बस है? पै धन्य है, रे! पण्डित जी कौ धीरज? और सेवा भक्ति।

इनके दो बड़े भईया, पनवाड़ी में रात ते, उनखाँ जो शोक समाचार भेजो गओ। सुनतई बे सपरिवार रात के दस बजें हाजिर भये। पंडित जी कौ परिवार 'धवार' सें दिनईं में झुलीपरें हाजिर हो गओ तो। रोउत गाउत कैसूकें बज्जुर की रात सबई ने बिलख बिलख कें काटी। दूसरे दिना पौंर में परिवार के बुजुर्गन की पंडित जी की अपनीं इकलौती आत्मा हाँ अन्तिम विदाई दैबे। प्रागराज फूलन (अस्थि विसर्जन) के लानें, साथ में की-की हाँ भेजो जाय? के विषय में एक सभा शुरू भई। इतनें में बाहर सें एक आवाज आई - "बेटा हम भूखेंहैं हमें कछू, भोजनन हाँ मिल जाय।" आवाज सुन्तनई पंडित जी के बड़े भइया पं. चतुर्भुज रावत ने जैसई दरबाजा खोलकें देखो तो दो सन्त अपनें दण्ड कमण्डल लैंय दोरे पै ठाँड़े ते। बे उनें देखकें बोले "महाराज इतै गमी हो गई, आप अन्तै देख लो।" अपने बड़े भइया के जे बोल मृतक के पिताश्री श्यामलाल रावत ने सुन लये और बे, बड़ी फुरती से बाहर दरबाजे पै निकरकें आये, तब तक बे दोऊ सन्त सड़क पै पन्द्रा-बीस डगें आँगें निकर चुके थे। पंडित जी नें दौर कें उनके चरन छुये और मिरंजाईं की खल्ती में सें चाँदी कौ एक कल्दार निकार कें सन्त की गद्दी पै धर कै बोले - "महाराज! क्षमा करियौ मोरौ मोंड़ा नईं रओ और एक मिठया की दुकान कोंद इसारो करकें बोले 'अपुन उतै! खा लइयौ।'

ऐसे हते 'धवार' के पण्डित श्याम लाल रावत,साधु सन्त सेवा के अटूट आस्थावान।

- संदीप साहित्य सदन
कंचनपुरा निवाड़ी, जिला टीकमगढ़

फक्कड़ स्वभाव के धनी : जनकवि रामजी लाल चतुर्वेदी

- डॉ. जगदीश रावत

फक्कड़ स्वभाव, धवल दाढ़ी, सिर के बाल भी सफेद, हमेशा मस्त मौला हँसता हुआ अट्टहास करता हुआ चेहरा, मैले-कुचैले कपड़े खादी के, केवल बदन ढकने के लिए, ढीला पाजामा लटकता कुर्ता, पाँव में बिना मोजे के जूते, कंधे पर टंगा हुआ बेतरतीब सामान से भरा हुआ एक अदद अस्त व्यस्त बस्ता। बेवाक् बातचीत स्वभाव में शामिल। कब कहाँ क्या बोल दें कोई ठिकाना नहीं। बालक जवान और वृद्धों को अपनी वाक्पटुता से एक समान आकर्षित करने वाले व्यक्तित्व का नाम था श्री रामजीलाल चतुर्वेदी उर्फ नन्ना।



एक अक्टूबर १६३५ को छतरपुर जिले के गंज ग्राम में जन्मे। प्रारंभिक शिक्षा गंज एवं महाराजपुर में, बाद में अंग्रेजी साहित्य से एम.ए. किया। पिता का नाम श्री बाला प्रसाद चतुर्वेदी। १६६० में श्रीमती जानकी देवी से परिणय सूत्र में बँधे। चार बच्चों, भारती, उमाकान्त, बृजेशकान्त एवं संतोषी के पिता बने। ०६-०४-५४ में नौकरी में आए। इंग्लिश विषय के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में व्याख्याता रहे। ३०-०६-६५ को इसी पद से सेवानिवृत्त।

साहित्यिक यात्रा का शुभारम्भ कक्षा आठवीं (१६५१) से प्रारंभ में मैथिलीशरण गुप्त की शैली में राष्ट्रीय रचनाएँ लिखीं। बचपन में इनका दोस्त मंगी मेहतर था जिसने इन्हें नास्तिक बनाया। वह मंदिर से मूर्तियों की चोरी करता था, चोरी इन्हें बताकर करता था और कहता था कि अगर इन मूर्तियों में कुछ ईश्वर का अंश होता तो वह मुझे दण्ड देते। यहीं से इनके नास्तिक होने की यात्रा शुरू हुई। सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर ये आर्य समाजी बने। चरखारी की एक घटना में आर्य समाज ने जब इनकी मदद नहीं की तो आर्य समाज से भी मोह भंग हो गया। इन्होंने विचार स्वातंत्र पर पहली कविता इस प्रकार लिखी -

मेरे उर में कौन रोक सकता सुन्दर भावों का आना?
सृष्टि श्रृजन तो यदि चाहे, करे विसर्जन नश्वर तन का,
अटल प्रवाह स्वर्ग से आगे कौन रोक सकता तन-मन का
कर दे दुर्गति अनहोनी-सी तन धन का कर दे मनमाना।।

रामायण का पारायण करते-करते यह ध्यान आया कि रामचरित मानस में तो एक राजा की प्रशस्ति गान है न कि भगवान का गुणगान। इसमें राजा के चरित्र का वर्णन है सो रामायण पढ़ना बंद कर दी। रामायण से मोहभंग होने के बाद मार्क्सवाद के निकट आये। श्री रामजीलाल चतुर्वेदी १६५४ से ही राजाओं, सामंतशाहों, पाखण्डवाद और समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ शंखनाद करने लगे थे।

पंडित रामजीलाल चतुर्वेदी बचपन से ही छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों से बचपन से दूर रहे। इन्होंने अंग्रेजी एवं संस्कृत साहित्य का खूब रुचि पूर्वक अध्ययन किया फलस्वरूप विचार परिपक्व हुये एवं उनमें पर्याप्त परिवर्तन आया। घुमक्कड़ एवं अक्खड़-फक्कड़ प्रकृति, दिन रात गप्प-गोष्ठी में मशगूल रहना। छोटे तबके के व्यक्तियों से आत्मीय वार्तालाप ये इनके स्वभाव में बचपन से शामिल था।

१६५८ में आपने विधिवत कवितायें लिखीं। चीन-भारत युद्ध के समय इनकी बुंदेली कविता 'चीन को चुनौती' समूची बुन्देलखण्ड जनपद में बच्चे-बच्चे की जवान पर चढ़कर बहुचर्चित हुई। इस कविता से इनकी बुन्देली गीत लेखन की उत्कृष्ट शैली का पता चलता है। यह एक लम्बी कथानक रचना है जो बुन्देली गीत साहित्य में मील का पत्थर है, ये रचना इनके बुन्देलीपन के पक्ष को उद्घाटित करती है। बुन्देली पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने योग्य कविता है।

नन्ना ने मिल्टन के पांच सानेटों एवं गेटे की एक कविता का बड़ी खूबसूरती के साथ काव्यानुवाद किया। मूल अंग्रेजी से हिन्दी में किये गये अनुवादों की विशेषता है। कि अनुवाद के बाद भी इनकी मूल भावना विखण्डित नहीं हुई। प्रस्तुत है इनके द्वारा मिल्टन के एक सानेट का काव्यानुवाद -

नहीं उठाओ अपना भाला सरस्वती के भव्य भवन पर,
पिण्डा रस का भवन बचा था, विजय प्राप्त पूरी होने पर।
मंदिर और मीनारें सारे ध्वस्त हुये थे इमेथियन के
महा विजेता की आज्ञा पर
दुखी इलेक्ट्रा के कवि की कुछ चंद पंक्तियाँ,
सफल हुई थी इमेथियन दीवाल बचाने में प्रेरित कर।

गेटे की एक कविता का काव्यानुवाद दृष्टव्य है -

जिनको मिली न दुख से रोटी, और न रोकर रात गुजारी
अर्द्धनिशा तक कल की चिंता में न मनी पूनम अँधियारी।
जिसने दिल में चोट न खाई, जिसकी कली नहीं मुरझाई,
पिता तुझे वह क्या पहचाने, जो जीवन भर रहा पुजारी।

रामजीलाल चतुर्वेदी को देखकर लगता था कि ये कविता

लिखते नहीं कविता को जीते थे। वे कविता को ही ओढ़ते और कविता को ही बिछाते थे। जिस समय पंडित जी कविता सुनाते थे तो लगता था कि पूरा वातावरण ही कवितामय हो गया हो। ऐसी तन्मयता, ऐसी सुध-बुध खोकर कविता सुनाने वाले विरले ही कवि थे। श्रोता मंत्र मुग्ध होकर सिर्फ कविता सुनाता था। इन क्षेत्रों में लगता था जैसे नन्ना की जिव्हा पर साक्षात् सरस्वती विराजमान हो गई हो। बिल्कुल नीरव एवं स्तब्ध वातावरण।

सन् अस्सी में पं. रामजीलाल चतुर्वेदी को प्रगतिशील लेखक संघ में, बुन्देलखण्ड में प्रगतिशील आंदोलन की आधारशिला रखने वाले स्व. प्रोफेसर प्रमोद पाण्डेय, लाये थे। तब से आज तक नन्ना ने पीछे मुड़कर नहीं देखा एक निष्काम कर्मयोग की तरह जुटे हैं अपने कर्म में। मेरे छतरपुर के तीन वर्षीय सेवाकाल में मैंने प्रत्यक्ष रहकर नन्ना के साथ कथाकीर्ति अमरकांत, आदिवासी-वनवासियों की अवधारणा और रामराज्य, प्रेमचन्द्र जयंती, साम्प्रदायिक सौहार्द जैसे आयोजन कंधे से कंधा मिलाकर आयोजित किये। इन दिनों नन्ना के साथ रहने, नजदीक से देखने परखने का सुअवसर मिला।

नन्ना स्वाभिमान के विरुद्ध समझौता कभी नहीं करते, व्यंगात्मक शैली में बड़े से बड़े आदमी के साफगोई में भी बड़ी से बड़ी बात कह देंगे इसे आप ब्याज स्तुति की शैली कह सकते थे। जो नन्हा पौधा छतरपुर में स्व. प्रमोद पाण्डेय ने रोपा था उसे अपने श्रम सीकर से नन्ना ने सिंचित किया। शताधिक रचनाकार प्रलेस छतरपुर इकाई से जुड़े। पन्द्रह वर्षीय प्रलेस की प्रतिबद्धता ने अनेक गोष्ठियां, प्रेमचन्द्र जन्मशती, अम्बेडकर, रविदास, फिराक, गोरखपुरी, कथाकीर्ति,अमरकांत जैसे गरिमामय आयोजनों को जन्म दिया। फैज, अहमद फैज की अध्यक्षता एवं डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के संचालन में दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में रामजीलाल चतुर्वेदी की कविता ने वाह-वाही लूटी।

नन्ना ने चन्द्रनगर जैसे छोटे से दूरदराजी कस्बे में इप्टा की टीम तैयार कर एक अभिनव प्रयोग किया। इस टीम ने 'नमक का दरोगा' कफन एवं पंचपरमेश्वर जैसे नाटकों की अनेक प्रस्तुतियां दीं और प्रादेशिक पुरस्कार जीते ग्रामीण नाट्यकर्मियों ने। जिले में इप्टा के ५५ कलाकार नन्ना की खोजी वृत्ति ने प्रलेसं को दिये।

मार्क्सवाद की प्रथम शिक्षा जन्माध स्व. श्री मदन गोपाल चौरसिया से चतुर्वेदी जी को मिली। स्व. शारदा प्रसाद उदैनिया 'मनोज' से भी मार्क्स के बारे में सीखा। इन दोनों विभूतियों का स्मरण करते हुए नन्ना भाव विह्वल हो जाते थे। भावुक इतने कि स्वर्गीय प्रमोद पाण्डेय का स्मरण कर देने से इस फौलादी जिस्म के लौह पुरुष का दिल मोम सा पिघल कर गलने लगता था। कुछ व्यक्तियों को स्मरण से इनके सामने परहेज करना पड़ता था। डॉ. कमला प्रसाद नन्ना की कविताओं के सुधी श्रोता सन् १९६६ (छतरपुर) से थे। वे छतरपुर से महाराजपुर नन्ना की कविताओं से रसास्वादन के लिए जाते थे। यह जिक्र करते हुए नन्ना अपने को गौरान्वित महसूस करते थे। गौरव की बात है भी। 'नारी तू राधा बन जाये' मन का कोई दोष नहीं है। कवितायें जितनी भी बार नन्ना के मुख से सुनो चिरनवीन लगती थी।

नन्ना ने कुल जमा पचास कविताएँ लिखीं हैं। संख्या भले ही कम हो लेकिन गुणवत्ता की दृष्टि से सभी रचनाएं श्रेष्ठतम हैं। गुरुनानक देव, फैज अहमद फैज, फिराक गोरखपुरी, मिर्जा गालिब, संत रविदास पर आपके द्वारा लिखे गये आलेख आज भी दस्तावेज हैं। कामरेड अब तुम्हारा क्या होगा (रूस के विखण्डन पर आलेख), शंकर गुहा नियोगी, की शहादत, जातियों का जमघट, भारत का दैदीप्यमान नक्षत्र, अम्बेडकर, दलितों के मसीहा, बाबा साहब अम्बेडकर, रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द घोष, दलित ही भारत के भावी शासक एक भविष्यवाणी आदि आलेख धरोहर के रूप में पथ प्रदर्शक है।

दलित साहित्य लेखन में भी नन्ना बराबर की दखलंदाजी रखते थे। दलितों की पीड़ा, दलितों की एकता को अपनी कविताओं में मुखरित कर दलित उत्थान का वे आह्वान करते थे। यह बात बहुत कम लोग जानते थे कि पं. रामजीलाल चतुर्वेदी दलितों के बीच पूरे देश में दलित बंधु के नाम से जाने जाते थे। दलित साहित्य अकादमी के प्रत्येक कार्यक्रम में इन्हें आमंत्रित किया जाता था। दलितोद्धार में निमग्न रहना साहित्य के बाद सबसे बड़ी सेवा थी। दलित साहित्य में नन्ना की दो कवितायें। चंगेर का शिशु एवं खेतहर मजदूर शामिल की जा चुकी है। इन्होंने दिल्ली में आयोजित दलित साहित्य अकादमी के आन्दोलन में दिल्ली में प्रदेश की ओर से शिरकत की।

नन्ना की मनपसंद दो रचनायें प्रस्तुत हैं -

अभी अभावों का अरि सम्मुख, श्रम की कठिन कृपाण चाहिये,
नव युग का आवाहन करने, अभी और बलिदान चाहिये,
असुर पिये जाते हैं अमृत, तुम्हें बनाकर के मतवाला,
देवो तुम चैतन्य नहीं हो, मिली तुम्हें पानी को हाला।।
रत्नों को दोनों ने श्रम कर, बहा पसीना यहां निकाला,
पर छलते हैं देव तुम्हें पर उज्ज्वल तन पर अंतर काला।
रक्षा संभव तभी तुम्हें शिव-सा करना विषपान चाहिये।
(रचनाकाल १९४८)

उठो राष्ट्र के कर्णधारों उठो अब जगाने स्वयं ऋतुराज आया,
पवन के झकोरे सुदृढ़ तक झुकाकर, यही कह रहे शीश अरि का झुकेगा,
रुधिर से सुसंचित नया दीप आशा लिये युग-युगों तक कभी न रुकेगा।
हुई शांति की अब मलिन मान्यतायें, न अब शांति का रथ सकाये रुकेगा।
उदित सूर्य की रश्मियाँ कह गई ये न अब तम रहेगा न अब भ्रम रहेगा,
पतझड़ भले सो गया झुरमुटों में समझ लो नहीं पर्व मधुमास आया।

कवि सम्मेलनों, आकाशवाणी के द्वारा ये अलख जगाये हुये थे, मार्क्स के सिद्धान्तों की। तीन वर्षों तक देशबंधु सतना में। 'अहाग्राम्य जीवन भी क्या है' स्तंभ में लिखा। बहुचर्चित रहा। इसमें साठ आलेख प्रकाशित हुये। आकाशवाणी छतरपुर से तीन बुन्देली

भाषा पाठ प्रसारित हुये। बुन्देली भाषा के बारे में नन्ना कहते थे कि बुन्देली खड़ी बोली की बनिस्पत संस्कृत के ज्यादा निकट है।

१९९५ में याद-ए-अमीर खुसरो आयोजन के दौरान एक साक्षात्कार में उन्होंने आत्मकथा बताते हुए कहा कि मुझे वह कवि सबसे प्रिय लगता है। जो दलितों के दर्द को उजागर करे। मेरे प्राण कविता में ही बसते हैं। मुझे मृत्यु से कभी डर नहीं लगता। इसलिए मेरा आशावाद कभी नहीं डगमगाया। मुझे संसार के सब मनुष्य एक जैसे और समान रूप से प्रिय लगते हैं। राष्ट्रों की सीमायें मुझे हास्यास्पद लगती हैं। स्त्री और पुरुष के भेद को मैं बर्वरतापूर्ण मानता हूँ।

मैं दुनिया के हर देश और हर भाषा के कवियों से प्रेरणा प्राप्त करता हूँ। मैं शेक्सपियर, मिल्टन और कालिदास में तीनों में भेद नहीं पाता हूँ। मैं वर्तमान को अतीत से बेहतर समझता हूँ। इस जमाने में भी मुझे छंदों से लगाव है। मैं जो देखता हूँ, भोगता हूँ वह मेरे गीतों में मुखरित होता है। मैं कविता को दिव्य नहीं मानता। कविता सहृदय व्यक्ति के हृदय में स्वयं जन्म लेती है। दलित विधा पर और अधिक लिखने, चिंतन और मनन करने की अभिलाषा अभी शेष है।

श्रीराम जी लाल चतुर्वेदी स्वयं के जीवन मूल्यों के प्रति जीने वाली एक शख्सियत का नाम था।उनकी अपनी मान्यताएं थीं। जिन्दगी जीने की अपनी शैली यहाँ तक की अपनी स्वयं ईजाद की हुई गढ़ी हुई भाषा और परिभाषा थी। दलित साहित्य को वह कुछ अपने अंदाजे बयां में कहते थे साहित्य तो दलित साहित्य की ही बांकी सब स्खलित साहित्य है। समूचे विंध्य अंचल में उनके साथी, शुभ चिंतक एवं श्रोता फैले हुये थे।

- कमला कॉलोनी, छतरपुर

कृषि सम्बन्धी बुन्देली कहावतें

- प्रस्तुति प्रेमनारायण मिश्र

१. जेठ मास जो करे जुताई, फसल चौगुनी घर में आई।
२. जेठ मास जो तपै निराशा, तो जानो वर्षा की आशा।।
३. चढ़ते वर्षे आद्रा उतरत वर्षे हस्त,
एसो भाखे भड़री आनन्द रहे गिरस्त।।
४. जै दिन जेठ चले पुरवाई, तै दिन सावन धूल उढ़ाई।
५. छिन पुरबइया छिन पछयाउर, छिन में चले बवूरा वाओ।
जब चारऊ वाउर डोले, तब सुगर पाल में लोटें।।
६. सवा पहर जो उत्तर धावें, पानी सुंगर पाल में पावे।।
६. सावन सुदी पंचमी, जो गरजे अधरात,
तुम जइयो पिया मालवा, हम जैवी गुजरात।
७. पुष्य पुनर्वस भरे न ताल, तो फिर भरहें आंगी साल।।
८. आमा झोर चले पुरवाई, तो जानो वर्षा ऋतु आई।।
६. ताव की खेती करे किसान, औसर चूके ठलुआ जान।
१०. नखतन खेती, बक्तन काज।।
११. जेठ करी गोतरी, अषाढ़ खाये पुआ,
कुंवांर मास में पूछन लागे, क्या क्या हुआ।
१२. खेती पाती बीनती, ओ घोड़े को तंग,
अपने हांत समारियो जो चाहो रस रंग।।
१३. खेती हमारी पूजा घर, तीरथ है खरयान।
नदी कछारन अपनो आंगन, टपुआ बड़ो मकान।।
१४. खाद डालकर करना खेती, नइतर चुप्पे बैठो सेती।
१५. जो कोऊ होय करम को पूरा, पर न टरे खेत का घूरा।।
१६. जीके खेत परा ना गोबर, उस किसान की जाने दूवर।।
१७. वह किसान है पूरा, जो डारे हड्डी का चूरा।
१८. हतिया बिजरी चीत चना, स्वाती गेहूं विषाखा धना।।
१६. खेती करे अरु पेड़ लगावे, पशु पाले अरु साग उगावे।
चारउ विधि खेती अपनावे, घर बैठे सुख सम्पति पावे।।
२०. अषाढ़ में जोते एक बार, फिर चाहे जोते बारंबार।।
२१. अषाढ़ में केवल तीन जुताई, पर कातिक में तेरह गाई।।
२२. खुर खुर जौते विररो बओ पर पर देखे कितनो भओ।
२३. अषाढ़ कुंवार खुद जोत किसान, फिर दो मुठिया दूजे हांत।
२४. तिल कोदो वो आदरी, बांकी मन समझाव री।।
२५. खुरचप जुन्डी, खुरचप धान, तिली बइओ धूल उड़ान।।
२६. पुष्य पुनर्वस वइयो धान, अगनउ खेती करे किसान।।
२७. जाकर खेत कांस न टूटो, ऊको भाग समझियो फूटो।।
२८. अधिक जुतावे गेहूँ धना, जोत न मांगे अरसी चना।।
२६. बैल चरावे पारो देवे, घटी परे त हमसें लेवे।।
३०. खेती करे वंज को धावे, दो में से एकऊ नई पावें।।
३१. मघा न वर्षे भरे न खेत, माई न परसे भरे न पेट।
३२. मघन खेत जो करे जुताई, तो शीतलता खेत समाई।
३३. ऐड़ो वेड़ो जोत जोत, मघन को पानी रोक।।
३४. घट का पानी गर्म है, चिड़िया नहावे धूल।
चींटी ले अंडा चली, तब वर्षा भरपूर।।
३५. सेत वर्षे खेत भर, कारो वर्षे पारो भर।
जब होय धुव थारो, तब आँय नदी नारो।।
३६. वर्षन लागी उत्तरा, माड़ न खांय कूकरा।।
३७. अगहन चौगनों पूषै दून, माघ सवायो फागुन सून।।
३८. बैल लइयो जोत के, भैंस लइयो दुह कें।।
३६. डार को चूको वानर, समय को चूको किसान,
इनको कछू ठिकानों नाय।।

- ग्राम बगमऊ, जिला छतरपुर

बुन्देली कहानी -

गुंडैन

- डॉ. लखन लाल पाल

कीरत दो दिना सें हवालात में बन्द है। ओखौ थोरौ सौ झगड़ा कल्लू कुम्हार सें हो गओ तो। कल्लू ने रिपोट कर दई सो पुलिस ने ओखें पकरखें हवालात में बन्द कर दओ। पुलिस ने कीरत खें बन्द अकेलौ नई करो, रात में ओखी अच्छी सन्टिंगऊ कर दई। सबेरे लंगड़ा-लंगड़ा खें चल रओ तो। कीरत खें या आसा नई हती कि पुलिस ओखें डंडया है। ओनै सोची ती कि जब पुलिस ने पकरई लओ है ता दोऊ पच्छन खें बुला खें कछू लै दै लैहै औ छोड़ देहै। लए-दए की बात तो छोड़ौ उन्नै ओखे गिलहरिया की नांई दाब खें गाड़ी में डार लओ। थाने में लै जाखें ओखे सब नग ढीले कर दए। कीरत ने दरोगा जी सें पूछी कि साब इतनौ मो का कसूर है जुन तुम मोखें उधेरें खें खंगे हौ। कल्लू ने मोखें गारी दई, मैंने ओखें दई। हमाई तौ दोऊ जनन की उरझा पुरझी लौ नई भई। इतनौ कहे सें पुलिस ने ओखें औ धुनको। कीरत ने खूब हा-हा दइया करी। ऊ दरोगा जी के दोऊ पाँव पकर खें गिगयानो कि साब मोरहई अकेलें खें काय मारत हौ, कल्लुअऊ खें बुलवा लेव। कीरत की ई बातन सें दरोगा औ चिढ़ गओ। दरोगा कीरत के पेट में डंडा कौ हूदा गुच्चखें दहाड़ो - 'साले नेता बनता है, तेरी नेतागिरी सब........ में घुसेड़ दूँगा।' कुटती बेरा तो ओखें कछू समझ में नई आओ पै अब ओखें भ्यासन लगो कि या करतूत प्रधान की आय। प्रधानई ने आय यौ सब रहस रचो है। हरामी बहुत दिनन कौ चिड़ो बैठो तो, आज कसर निकार लई। मैं पहलूँ समझ नई पाओ नईतर पुलिस मोई धूरा न पा पाती। बुआ कौ लरका मंत्री जी के इतै चौकीदारी करत। मंत्री जी सब निपटवा देते। फोन घरई में रह गओ, नईतर अभई फोन कर लेतो। कीरत ने अपने आप खें कोसो - 'वैसें मोखें समझ जाओ चाहिए तो कि दरोगा प्रधान के घर में आतरें चौथें मुरगा दारू करत। सिपुल्लीयऊ संग में मौज मारत। कल्लू कुम्हार खें उकसा खें इन्नै जानबूझखें झगड़ा करवाओ औ तुरतई पुलिस बुला लई। पहलई सें इनको पिलान बनो तो। बताऔ लै, इत्ती सी बात मोय दिमाग में नई घुसी।' कीरत ने अपनौ माथौ ठोंको। ई समै ओखौ अंग-अंग कसकत तो। रात के दस बज गए ते। हवालात में ओखें बुरई अकबकाई लगत ती। लम्बी संकरी कुठरिया, न कहूँ से हवा, न उजयारौ। सामूँ दोरे में मजबूत लोहे की सीखचन वाली फटकिया लगी ती। बस ओई फटकिया कोद मुँ करें ऊ बाहर खें दिखत तो। कीरत के दिमाग में प्रधान कौ पिलान साफ-साफ दिखान लगो। जब इन्नै पिलान बनाओ है तो ऐसी चपेट में नीलमऊ हो है।

नीलम लम्बी गोरी औ छरहरी है। गोरी-पतरी चाम में नोंन अच्छौ हैं। जब नोन है तो चंचलऊ हो है। हाँ खूब चंचल है। ओखी सबई अदाएँ अच्छी लगत। रूप औ देह के बनाव में कछू बइरें एक सी होत पै अन्दर के गुनन के कारन एकाद कौ रूप कछू अलग थिकत। नीलम हिम्मतीयऊ बहुत है। अकेली रहत। पहलूँ सास के सँगै रात ती। बूढ़ी सास कगार पै कौ रुख कहाँ लौ संग देती। पति औ बेटा की मौत सें वा औ टूट गई ती। दस ग्यारा महीना पहलूँ मर गई। नीलम ने अकेलें अपने आप खें संभार लओ। तीन बीघा मार जमीन अब ओई के नाव आ गई। ओई जमीन सें अपनौ गुजारौ करत। एक भैंस पाले हैं वा। पहलूँ ससुर गुजरौ फिर आदमी गुजर गओ। अब बूढ़ी सास नें ओखौ संग छोड़ दओ। अकेली औरत, ओऊ ज्वान होवै तो कोढ़ में खाज हो जात। लुंगा भइयन ने नीलम सें हिरकयांय की कोसिस करी पै ओखे खड़े-तुड़े सुभाव खें दिखखें वे पछाऊँ खें पिछल गए। घर के हर काम ओई खें करनै परत, कौन कौऊ दूसरौ बैठो। नीलम के घर के सामूँ कीरत सिंह कौ मकान है। ओऊ निचाट अकेलौ है। बाप-मतारी बचपन में चल बसे ते। ओखी दाई ने ओखें पालो पोसो। परसाल ओऊ परलोक सिधार गई। कीरत सींग औला-मौला जवान है। अपनी पाँच बीघा जमीन कभउँ बटाई पै लगा देत ता कभउँ बलकट धर देत। मन में आई ता मजूरी कर लई, नईतर रिस्सेदारी में घूमे। नीलम कोऊ सें जादा मतलब नई राखत, कौन्हऊ काम अटके पै वा कीरत खें बुला लेत। कीरतऊ ओखौ काम कर देत। साजे-बुरए में पड़ोसियई काम देत। नीलम ई कामन के बदले में कीरत खें कभऊँ तरकारी दै देत्ती ता कभऊँ भैंस कौ दूद। कीरतऊ अकेले राम सो तरकारी भाजी में ओखौ काम चल जात। कीरत सींग तरकारी कभउँ कभार आय बना लेत। अधिकतर ऊ भटा-टमाटर के भुरता में सटै लेत। कीरत अठर सें बहुत डिरात। नीलम की दई तरकारी ओखें कभऊँ साजी लगत ता कभऊँ बेस्वाद। जब बैस्वाद लगी सो तरकारी जानबरन खें खबा देत। नीलम अक्सर ओखें तरकारी दै देत्ती। अकेले पेट खें वा कितनऊ कम बनावै थोरी भौत तौ बचई जात। फैके से साजौ है, कोऊ के पेट में पर जाय, ईसें अच्छौ का हो सकत? नीलम तरकारी स्वादिष्ट बनाउत ऐसौ कीरत खें अब बिसवास होन लगो। कीरत खें रोटी बनाये में आलस लगत सो अब ऊ नीलम खों चून दै देत औ वा ओखी रोटी बना देत। कीरत की सब्जी-रोटी बनावे में नीलम ने कौन सी सन्धि पै दस्तखत कर लए हैं यौ लोगन के लानै एक रहस बन गओ। लोगन खें धुआँ-आगी कौ कछू आभास सौ भओ। आदमिन की रोज-रोज की खुस-पुस ने उनें परेसान कर दओ। कीरत चौबीस साल को औ नीलम अट्ठाईस की। ऊसई ई कामन में सबसें जादाँ दोषी औरत मानी जात। जब औरत आदमी की उम्मर सें जांदा होबै तो ओखौ दोष औ बढ़ जात। कहत हैं कि जादा उम्मर की औरत सें आदमी की ज्वानी की चमक फीकी पर जात और औरत की लुनाई जादा बढ़ जात। या बकवास कीरत सींग खें कभउँ नई साजी लगी। मन्नू सींग ने ओखें कई देर बरजो - 'मान जा रे कीरत! ये सारे काम नुहें। गाँव

गुंडैन

- डॉ. लखन लाल पाल

कीरत दो दिनां सें हवालात में बन्द है। ओखौ थोरौ सौ झगड़ा कल्लू कुम्हार सें हो गओ तो। कल्लू ने रिपोट कर दई सो पुलिस ने ओखें पकरखें हवालात में बन्द कर दओ। पुलिस ने कीरत खें बन्द अकेलौ नई करो, रात में ओखी अच्छी सन्टिंगऊ कर दई। सबेरे लंगड़ा-लंगड़ा खें चल रओ तो। कीरत खें या आसा नई हती कि पुलिस ओखें डंडया है। ओनै सोची ती कि जब पुलिस ने पकरई लओ है ता दोऊ पच्छन खें बुला खें कछू लै दै लैहै औ छोड़ दैहै। लए-दए की बात तो छोड़ौ उन्नै ओखे गिलहरिया की नांई दाब खें गाड़ी में डार लओ। थाने में लै जाखें ओखे सब नग ढीले कर दए। कीरत ने दरोगा जी सें पूछी कि साब इतनौ मो का कसूर है जुन तुम मोखें उधेरें खें खंगे हौ। कल्लू ने मोखें गारी दई, मैंने ओखें दई। हमाई तौ दोऊ जनन की उरझा पुरझी लौ नई भई। इतनौ कहे सें पुलिस ने ओखें औ धुनको। कीरत ने खूब हा-हा दइया करी। ऊ दरोगा जी के दोऊ पाँव पकर खें गिगयानो कि साब मोरहई अकेलें खें काय मारत हौ, कल्लुअऊ खें बुलवा लेव। कीरत की ई बातन सें दरोगा औ चिढ़ गओ। दरोगा कीरत के पेट में डंडा कौ हूदा गुच्चखें दहाड़ो - 'साले नेता बनता है, तेरी नेतागिरी सब........ में घुसेड़ दूँगा।' कुटती बेरा तो ओखें कछू समझ में नई आओ पै अब ओखें भ्यासन लगो कि या करतूत प्रधान की आय। प्रधानई ने आय यौ सब रहस रचो है। हरामी बहुत दिनन कौ चिड़ो बैठो तो, आज कसर निकार लई। मैं पहलूँ समझ नई पाओ नईतर पुलिस मोई धूरा न पा पाती। बुआ कौ लरका मंत्री जी के इतै चौकीदारी करत। मंत्री जी सब निपटवा देते। फोन घरई में रह गओ, नईतर अभई फोन कर लेतो। कीरत ने अपने आप खें कोसो - 'वैसें मोखें समझ जाओ चाहिए तो कि दरोगा प्रधान के घर में आतरें चौथें मुरगा दारू करत। सिपुल्लीयऊ संग में मौज मारत। कल्लू कुम्हार खें उकसा खें इन्नै जानबूझखें झगड़ा करवाओ औ तुरतई पुलिस बुला लई। पहलई सें इनको पिलान बनो तो। बताऔ लै, इत्ती सी बात मोय दिमाग में नई घुसी।' कीरत ने अपनौ माथौ ठोंको। ई समै ओखौ अंग-अंग कसकत तो। रात के दस बज गए ते। हवालात में ओखें बुरई अकबकाई लगत ती। लम्बी संकरी कुठरिया, न कहूँ से हवा, न उजयारौ। सामूँ दोरे में मजबूत लोहे की सीखचन वाली फटकिया लगी ती। बस ओई फटकिया कोद मुँ करें ऊ बाहर खें दिखत तो। कीरत के दिमाग में प्रधान कौ पिलान साफ-साफ दिखान लगो। जब इन्नै पिलान बनाओ है तो ऐसी चपेट में नीलमऊ हो है।

नीलम लम्बी गोरी औ छरहरी है। गोरी-पतरी चाम में नोंन अच्छौ हैं। जब नोन है तो चंचलऊ हो है। हाँ खूब चंचल है। ओखी सबई अदाएँ अच्छी लगत। रूप औ देह के बनाव में कछू बइरें एक सी होत पै अन्दर के गुनन के कारन एकाद कौ रूप कछू अलग थिकत। नीलम हिम्मतीयऊ बहुत है। अकेली रहत। पहलूँ सास के सँगै रात ती। बूढ़ी सास कगार पै कौ रुख कहाँ लौ संग देती। पति औ बेटा की मौत सें वा औ टूट गई ती। दस ग्यारा महीना पहलूँ मर गई। नीलम ने अकेलें अपने आप खें संभार लओ। तीन बीघा मार जमीन अब ओई के नाव आ गई। ओई जमीन सें अपनौ गुजारौ करत। एक भैंस पाले हैं वा। पहलूँ ससुर गुजरौ फिर आदमी गुजर गओ। अब बूढ़ी सास नें ओखौ संग छोड़ दओ। अकेली औरत, ओऊ ज्वान होवै तो कोढ़ में खाज हो जात। लुंगा भइयन ने नीलम सें हिरकयांय की कोसिस करी पै ओखे खड़े-तुड़े सुभाव खें दिखखें वे पछाऊँ खें पिछल गए। घर के हर काम ओई खें करनै परत, कौन कौऊ दूसरौ बैठो। नीलम के घर के सामूँ कीरत सिंह कौ मकान है। ओऊ निचाट अकेलौ है। बाप-मतारी बचपन में चल बसे ते। ओखी दाई ने ओखें पालो पोसो। परसाल ओऊ परलोक सिधार गई। कीरत सींग औला-मौला जवान है। अपनी पाँच बीघा जमीन कभउँ बटाई पै लगा देत ता कभउँ बलकट धर देत। मन में आई ता मजूरी कर लई, नईतर रिस्सेदारी में घूमे। नीलम कोऊ सें जादा मतलब नई राखत, कौन्हऊ काम अटके पै वा कीरत खें बुला लेत। कीरतऊ ओखौ काम कर देत। साजे-बुरए में पड़ोसियई काम देत। नीलम ई कामन के बदले में कीरत खें कभऊँ तरकारी दै देत्ती ता कभऊँ भैंस कौ दूद। कीरतऊ अकेले राम सो तरकारी भाजी में ओखौ काम चल जात। कीरत सींग तरकारी कभउँ कभार आय बना लेत। अधिकतर ऊ भटा-टमाटर के भुरता में सटै लेत। कीरत अठर सें बहुत डिरात। नीलम की दई तरकारी ओखें कभऊँ साजी लगत ता कभऊँ बेस्वाद। जब बैस्वाद लगी सो तरकारी जानबरन खें खबा देत। नीलम अक्सर ओखें तरकारी दै देत्ती। अकेले पेट खें वा कितनऊ कम बनावै थोरी भौत तौ बचई जात। फैके से साजौ है, कोऊ के पेट में पर जाय, ईसें अच्छौ का हो सकत? नीलम तरकारी स्वादिष्ट बनाउत ऐसौ कीरत खें अब बिसवास होन लगो। कीरत खें रोटी बनाये में आलस लगत सो अब ऊ नीलम खों चून दै देत औ वा ओखी रोटी बना देत। कीरत की सब्जी-रोटी बनावे में नीलम ने कौन सी सन्धि पै दस्तखत कर लए हैं यौ लोगन के लानै एक रहस बन गओ। लोगन खें धुआँ-आगी कौ कछू आभास सौ भओ। आदमिन की रोज-रोज की खुस-पुस ने उनें परेसान कर दओ। कीरत चौबीस साल को औ नीलम अट्ठाईस की। ऊसई ई कामन में सबसें जादाँ दोषी औरत मानी जात। जब औरत आदमी की उम्मर सें जांदा होबै तो ओखौ दोष औ बढ़ जात। कहत हैं कि जादा उम्मर की औरत सें आदमी की ज्वानी की चमक फीकी पर जात और औरत की लुनाई जादा बढ़ जात। या बकवास कीरत सींग खें कभउँ नई साजी लगी। मन्नू सींग ने ओखें कई देर बरजो - 'मान जा रे कीरत! ये सारे काम नुहैं। गाँव

में बदनामी होत। अगर तैं मानो न औ हमनै तोखें रंगे हातन पकर लओ तो सारे गधा पैं बैठार खें गाँव भरे में राछरी फिरा देहिन।' कीरत ने मन्नू सींग के सामूँ कौल किरिया कर खें बिसवास दिवाओ कि मन्नू भइया जैसौ गाँव के आदमी समझत हैं ऐसौ कछू नहियाँ। जब अकेली बइयर के यहाँ एक पुरुष कौ उठबौ-बैठबो जादा होन लगत तो आदमी ओखौ बिसवास नई करत चहाँ ऊ ताते तबा पै पोंद काए न धर देवै।

जब रोज-रोज ओई बात आदमिन ने कही ता कीरत सींगउ कौ दिमाग झन्ना उठो। अब ऊ जितनई ठोसपन में अपनी सफाई देत उतनई नीलम कोद खें ऊ तरल हो जात। येई तरलता में ऊ नीलम कोद खें कछू जादा झुक गओ। ओखें अब नीलम की देह की चमक चौंधयाऊन लगी। ओखी देह कौ उतार-चढ़ाव कीरत खें बलपूर्वक अपनी कोंद खींचन लगो। येई खिंचाव में अब कीरत कौ समै नीलम के घर में बीतन लगो। नीलम की हंसी सें चमकत भए दाँत ओखे अंग-अंग में बिजली सी दौरा देत। नीलम ओखें अच्छी लगन लगी, पै नीलम खें ऊ साजौ लगत कि नई, ई बात कौ कीरत अन्दाजा न लगा पाओ। कीरत नीलम की टोह लेन लगो। घर में तो न जाने कितनी बातें सोच लेत्तो कि आज ऐसौ कैहों........... वैसौ कैहों पै ओखे सामूँ कहबे की ओखी हिम्मत न परी।

जाड़े में मौसम खराब हो गओ। पानी बरसे सें ठंड और बढ़ गई, ऊपर सें उलेलौ और पर गओ। ई उलेले में कई दिना लौ सूरज न निकरो। कश्मीर में बरफ गिर गई है सो सीत लहर सें करेजौ कंपो जात। आदमी सामई सें रजाई में घुस जात। कीरत मूतें के लानै रजाई सें बाहर निकरो। आधी रात खें पेसाब लगत तो रजाई से बाहर निकरे कौ मन नई होत, फिरऊ जानै परत। कीरत ने किबाड़े खोले, बाहर आधी रात कैसौ सन्नाटो छाओ तो। कीरत खें सीत लहर नें झपट्टा मारो, ऊ सिहर उठो। कोहरे और धुंध के मारें अंधाकुप्प झुपो तो। ओनै अन्दाज लगाओ अभै आठ बजे हो है। लहर ओखे बदन में तीर से चुभोउन लगी। ठंड में ओखे दाँत किटकिटा उठे। सामूँ वाले घर की आग जल रई है। ओखें किवाड़न की सांसन में चिलक दिखानी। ओखी आग तापे की इच्छा प्रबल हो उठी। कीरत ने अपने किवाड़े बन्द कर दए और सामूँ वाले घर कोद बढ़ गओ। कीरत ने सांकर खनखनाई। भीतर से आवाज आई - को है?'कीरत तुरतई बोलो - ''मैं....मैं ही भौजी कीरत।'' नीलम ने दरबाजौ खोल दओ। आज ठंड भौत है भौजी। 'हाँ, या हवा तो दिखौ लला, कैसी चलत है। आदमी के प्रानई लै लैहै जानै का।' नीलम ने किवाड़े बन्द करे
- 'गुरसी में आगी जलत हाँत सेंक लेव लला।'
- 'अरे! मैं हाँतई सैंकन तो आओ भौजी।' कीरत ने अपने दोऊ हाँत रगड़े - अब तौ ऐसौ लगत भौजी कि कभै ये जाड़े निकरै। आदमी कछू काम दन्दऊ तो नई कर पाउत।'
- आदमी तो ठीक है लला, रजाई है, आगी है। बिचारे जनावर मरे जात।'
- हूँ सही कई भौजी।' कीरत ने लकड़ियन की दगद आगी खें हाँत से टारो।
- औ लकड़ियाँ ल्याऊँ का लला?'
- आहाँ! इतने में तो हाँत सिक जैहैं।' कीरत ने अपने हाँत सेंके, ओखें ठंड सें राहत मिली। राहत मिले सें ठंड की चरचा खतम हो गई। अब ओनै दूसरी बात सुरू करी - 'बाई खें मरे साल भर हो गओ, हौहै भोजी?' कीरत ने बात को छोर नीलम खें पकराओ।
- 'अभै साल काँ भई।'नीलम ने पचत आगी में कछू लकड़ियाँ धरी
- 'या चउदस आहै सौ ग्यारा महीना हो जैहैं।'
- 'औ भइया खें कै सालें हो गई?'
- 'डेढ़ सालें उन्हऊ खें हो गई।'
- 'भौजी एक बात कहाँव, तैं बुरओ तो न मान हित?' कीरत के मुँसे ऐसे आवाज निकरी जैसे कुआँ के भीतर से आई होवै।
- 'कैसी बुरओ लला?'
- 'भौजी तुम्हाई उम्मर अभै काहै, कहूँ बैठ जाती।' कीरत अपनी रौ में बोलो - 'अभै का है?' एकऊ बाल बच्चा लौ नहियाँ।
- 'भौजी तुम्हाई उम्मर अबै का है, कहूँ बैठ जाती।' कीरत अपनी रौ मों बोलो - 'अभै का है?' एकऊ बाल बच्चा लौ नहियाँ।'

कीरत की बात सुनखें नीलम ओखे मुँ कोद दिखन लगी। कीरत सिकुर गओ। ओखें लगो जैसें ओनै गलत समै पै गलत बात कह दई होवै। नीलम उदास होके बोली - 'लल्ला' जब भाग्य में सुख नई बदे तो जरूरी थोरी है कि दूसरेऊ के इतै सुख मिलहै। उम्मर कम होय चहाँ जादा सब काटनै परत।' नीलम की आँखिन सें अँसुआ ढड़क परे। ओनै अपनी धोती के छोर सें अँसुआ पोंछे।
- 'भौजी रो न, ईसुर की येई मरजी होहै।'
- '..............'
- 'भइया की बीमारी कौ पता नई चलो, ऐसौ का हतो कि वे ठीक न हो पाए?'
- 'लला मौत बहानौ होत। आ गई सो कोऊ नई रोक पाउत।'
- 'मोखें लगत भौजी, कौन्हऊ ने भइया खें गुनमन्तर सें कछू करा दओ है।' तुहै बिसवास होय, चहाँ न होय, मोखें तो भ्यासत है।'
- 'लला गुनमन्तर कछू नईं होत।' नीलम डिढ़ता से बोली - 'मोखे कराबै कोऊ तो मैं जानौ।'
- 'हओ, कए ससुर आदमी सेंकै-मैंके कहन लगत।' कीरत नीलम की बात सें सैमत हो गओ। - 'ऐसें गुनमन्तर होन लगै तो गुनिया तो कभऊँ न मरै।'

नीलम दरजा आठ पास समझदार औरत है। वा जुन बात करत, ठोस करत। वा अपनी बात खें जानत है कि मैं का कहत हों। कीरत पढ़ौ तौ नौ दरजा लौ है पै ओनै किताबें कभउँ नई पढ़ी, ऐसई नकल टीप खें पास होत रओ। जौमीलौ भौत है। ओखी कभऊँ अपनी खुद की बात नई रही, जेनैं जुन बात कही ओई बात सांची लगी। अपनी बात खें ऊ खुद काट लेत। ओखे लगत कि सामूँ बाले की बात सई है। जौम या जोस में जरूर अपनी बात पै अड़ जात।

आगी पच गई ती। नीलम भीतर सें औ लकड़ियाँ उठा

ल्याई। गुरसी में पैलूँ ओने फूटे कंडा धरे फिर ऊपै लकरियाँ धर दई। कंडा सिपच खें बरन लगे। कंडन सें लकड़ियन में आगी छुप गई। इतै-उतै बिखरी लकड़ियन खें कीरत ने बीच में धर दई। लकड़ियाँ जलन लगी। नीलम ने बड़ौ बालौ डूड़ आगी में धरें कौ उपक्रम करो।
– 'भौजी अब न डूड़ धर, कौन तापत रैहिन।' अब परें की बेरा भई।
– 'तनक और ताप लेव लाला, परनेई तो है।' नीलम नें डूड़ जलत आगी में धर दओ।
– 'हओ ता, कौन ससुर बखर हाँकन आय जानैं।' कीरत अपनेई बात पै हंस परो।

गाँव में कौन्हऊ न कौन्हऊ रसीली चरचा भओ चाहिए। पुरानी चरचन सें आदमी ऊबन लगत। गाँव की ऊब दूर करें के लानै कीरत और नीलम नई चरचा लैखें आ गए। गाँव के ई छोर से ऊ छोर लौ येई चरचा है। मन्नू सींग ने जादा डौड़ी पीटी। डौड़ी चहाँ जितनी पिटै, नीलम और कीरत की सेहत पै कोऊ असर नई परो और न परनै आय। मन्नू सींग की हरकत से कीरत जरूर रुसया गओ। ओनै येई गुस्सा में मन्नू सींग से राम-राम करबो बन्द कर दई। मन्नू सींग पै का फरक परत? दस लोग राम-राम करत वाले हैं, ई हगा अकेले सें का होत? या बात मन्नूअऊ समझ गओ कि कीरत ओसें मतलब नई राखत। लुगाई में ऐसौ गंसो है कि वा जहाँ निगाउत उतई निगत। कीरत अपने काम भलेई अपनी समझ सें करत पै आदमी येई समझत कि ये सब निरनै नीलम के आय। नीलम के सामूँ कीरत कौ व्यक्तित्व हिरान लगो। आदमी समझत कि नीलम ने कीरत खें अपने रूप जाल में फाँस लओ औ ऊ बेसहूर ऐसौं बिंधो कि निनुरई नई पा रओ। गाँव के आदमी कात कि अगर लुगाई खें आदमी तासत नहिया तो वा जादा चाँय-चाँय करत। यहाँ उल्टौ हतो, नीलम कीरत पै हावी है। आदमिन खें या बात खूब समझ में आउन लगी। आदमी कीरत खें अब पींधा कहन लगे। अपने आप खें मरद समझन वाले कई लौंडन ने ई बहत गंगा में हाँत धोबो चाहो। सैंनन सें इसारे करे। नीलम ने जादा ध्यान नई दओ। जब उनमें से कौनउँ ने फुसफुसाखें मिन्नत सी करी तो वा तुरतई ताव पकर गई – 'का है? ऐं जोर सें काए नईं बोलत। हंडिया सौ काए फदफदात।' नीलम इतनेई में बन्द नई होत वा और धराऊ सुनाउत – 'घर में लुगाई सें पूछ लओ कि ऐसई यहाँ वहाँ मुँ मारत फिरत।'' ऊ लुच्चा खें नीलम सरेआम नंगी कर देत्ती। लुगाई नीलम खें दिखखें थूकत हैं, एड़ी उठाखें बगल काट जात, ईसें वा लुगाइयनऊ खें समेट लेत। दो चार लुच्चन खें ऐसई झड़याओ सो आधे सें जादा बिगरे सतर हो गए। मन्नू सींग नई माने, पता नई ओखें कौन सी चिढ़ हती? ऊ हमेसा कौन्हऊ न कौन्हऊ बात टेंय बनों रहत। रोज-रोज की ये हरकतें, ढार-ढार बातें करें सें बात बढ़न लगी। नीलम औ कीरत खें ओखी बातें करेजे में चुभन लगी। झगड़ा टारे के उद्देश्य सें वे सांत रहे।

नीलम ने गोबर से भरो तसला उठा खें पथनौरा कोद चल दओ। मन्नू सामूँ धूप सेंक रओ तो। नीलम खें दिखखें ऊ मौज लेत भओ बोलो – 'आजकल जलवा तो छिनारनईं के हैं। सवेरे सें इनके दरसन हो जात सो पूरी दिन खराब रात।' मन्नू दबंगई पै आ गओ – 'अब येई खें दिखौ, कैसे पाँव उचकाउत जा रई है। सती सावित्री बनी घूमत'।
– 'रीना के पापा मोखें आय कहत हौ का?' नीलम भड़की।
– 'इतै औ को है तोय जैसी सती सावित्री।'
– 'जब हम तुमसें मतलब नईं राखत ता हमाई राय-बात काय चलाउत तुम।' नीलम ठिठक गई – 'जादा मुँ न चलाए करौ।'
– 'तै मो मुँ बन्द करा दैहित का?' मन्नू फूँसो – 'सुन, अच्छे-अच्छन ने तो मो मुँ बन्द नईं करा पाओ, तें झटुल्ली का मो मुँ बन्द करा पाहित।' मन्नू ने हाँत घुमाओ – 'जा तै अपनौ काम कर।'
– 'मैं अपनोई काम करत।' नीलम ने घिरना से मन्नू कोद दिखो – 'कौन नाटपरे राँड़न खें पीरे चौर देत है कि हमाई चरचा चलाऊ।'
– 'जादा मुँ न चला, नईतर मुँ टोर दैहो।' मन्नू ने आँखीं तरेरी।
– 'बड़ौ टुरइया, दिख लए ऐसे मुँ टोरन वाले।' नीलम खदबदानी।
– 'जादा चबर-चबर न कर, नईंतर थुथरी गुधल दैहों।'

मन्नू की ई आँसदार बातन से वा भन्ना गई। नीलम कौ रोम-रोम जर गओ। वा तसला जमीन पै धर खें अकड़ खें ठाड़ी हो गई – 'गुधल, मैं तुहै दिखों, बड़ौ गुधलइया कौ चोदौ हो गओ है।' नीलम की अकड़ दिख खें मन्नू खें अपनी बेइज्जती लगी। ऊ मिसमिसया खें नीलम कें ऐंगर पहुँचो – 'तोय जादा दिमाग खराब हो गए का?'

हाँ, है।' नीलम मन्नू के सामूँ हुर गई – 'तैं मो दिमाग ठीक कर हित का?' मन्नू नीलम की अकड़ दिख खें अपनौ आपा खो बैठो। ओनै नीलम के बार पकरे और कुल दूर लौ घसीट लै गओ। नीलम की मूँड की धोती नीचे गिर गई। आदमी औरतन कौ हुजूम लग गओ। मन्नू ने नीलम खें कई तमाचा मारे। नीलम नें कछू तमाचा अपने हाँत से बचाए और कछू पीठ और मूँड में घले। धोती आधी छूट गई ती। दुरौपदी चीर हरन कैसौ सीन हतो। कीरत बाहर गाँव से हग खें लौट रओ तो। हल्ला सुनखें ओनै दौर लगा दई काए कि हल्ला में ओनै नीलम की आवाज चीन्ह लई ती। ओनै डब्बा एक कोद फैंको। तमाचा मारत भए मन्नू पै कीरत बाज की नाई टूट परो। कीरत कर्रो हतो सो ओखे एकई धक्का में मन्नू धूरा चाट गओ। कीरत नें मन्नू खें तरें दाब लओ और नीलम खें चिल्लानो – 'लगै सारे खें।' नीलम के हाथ में कछू नई हतो। ओनै इहाँ-उहाँ देखौ, कछू नई दिखानो। चप्पल पैरे ती, ओई उतार खें मन्नू पै पिल गई। वा चप्पल टूट गई। नीलम के हाथ में दूसरी चप्पल आ गई। मन्नू सींग कौ ऐसौ अपमान दीख कें बूढ़े-बाढ़न नें उन्हें छुड़वाओ। वे अलग-अलग हो गए। जादा आदमी दिख खें मन्नू फिर सें सेर बनो, कीरत नें झपट्टा मारो। सेर मन्नू में बदल गओ। थोरी देर गाली-गलौज और हुमका-हुमकी के बाद सब तितर-बितर हो गए। ऊ चिल्यात भओ घर खें चलो गओ कि उन्हें कभऊँ दिख लैहै। मन्नू सींग कौ पिटबो

गाँव बालन खें बुरओ लगो। अधिकांस गांव के लोगन की हमदरदी मन्नू कोद हती। नीलम के बार तानबो, तमाचा मारबो कछू नई तो। नीलम छिनरपन करत ती सो वा डंड की हकदार हती। येई बात सें लोगन की हमदरदी नीलम कोद न हती। गाँव के कछुअई आदमी ऐसे हते जिनें या गुण्डई साजी न लगी। उनकौ कहबौ हतो कि रांड़न कौ गाँव थोरी है कि चहाँ जेखे बार पकर खें तमाचा मारौ। कई आदमी, कई बातें।

नीलम और मन्नू की लड़ाई खें पूरी एक साल हो गई। अभै तक कोऊ ने कछू नई करो। कहत ते कि मौका पै दिख हैं। मौका अभै लौ न पाओ। ऊ जुद्ध की याद न तो नीलम करबो चाहत ती औ न मन्नू। एक दूसरे खें दिखखें ओई दृस्स याद हो आउत। चाहत भए पै वे ऊ दिना की लड़ाई वाली बातें नई भूल पाउत। वे उनके दिमाग में इकथाई बैठ गई ती। अब ई बातन खें प्रधानी के चुनाव की सुगबुगाहट ने काफी हद लौ दूर कर दओ। मन्नू ने घोसना कर दई कि ऊ प्रधानी कौ चुनाव लड़ है। पुराने प्रधान सें आदमी खुस नई हते। यौ प्रधान एकाकी जादा हो गओ तो। चार छै आदमियन खें कोऊ सें जादा मतलब नईं राखो। फिरऊँ ओखौ विचार हतो कि जब मैंने कोऊ की साजी बात नई कही, ता बुरईयऊ नई कही। ईसें आदमी ओखें फिर सें प्रधान बना हैं।

नामांकन की बेरा लौ प्रधानी के लानै दस प्रत्यासी तइयार हो गए। सबनै परचा भर दए। सबखें अपनी-अपनी जीत कौ पूरौ बिसवास हतो। गाँव के रुझान खें दिखो जावै ता तिरकोनी मुकाबला हतो। यौ मुकाबला निवरतमान प्रधान, मन्नू सींग औ रज्जन कुम्हार के बीच में तो। हंरई हँरा चुनाव दो के बीच रै गओ। मन्नू सींग औ रज्जन कुम्हार के बीच। रज्जन कुम्हार ने बाहर जाखें अच्छौ रुपइया कमाओ तो सो आपनी दबी इच्छा पूरी करें खें चुनाव मैदान में कूद परो। मन्नू सींग कौ लाव-लसगर जादा हतो औ रज्जन कुम्हार कौ दबो बोट जादा तो। चुनाव खिंच गओ। मन्नू ने दारू की बोतलें खोल दईं, बुकरऊ खूब कटवाए। खबइया-पिबइया भइया चम्म होन लगे। रज्जनऊँ पाछूं न हटो, ओऊ ने दारू की नदिया बहा दई। ई रस्सा कसी में कीरत औ नीलम के अचानक सामिल होबे सें चुनाव कौ ऐंगल बदल गओ। कीरत और नीलम ने खुलेआम रज्जन कौ प्रचार सुरू कर दओ। रज्जन ने अपनी जीत के लानै कीरत औ नीलम सें कई देर बिनती करी कि वे ई चुनाव में ओखौ सपोट कर देबै। नीलम तइयार हो गई। नीलम रज्जन के परिवार की औरतन खें लैखें प्रचार करन लगी। ई प्रचार सें चुनाव की हवा अब रज्जन कोद बहन लगी। मन्नू परेसान हो गओ। कछू आदमिन से ओनै नीलम खें खबर भिजवाई पै नीलम ने कोऊ की बात नई सुनी। नीलम मन्नू सींग के बोट तो मरें मारें पै न दैहै। ओखें भूल थोरी गओ। अब चुनाव के समीकरन बदलन लगे। मन्नू घबरा गओ। अब का होबै? नीलम औ कीरत ओखे लानै कटइया के काँटे हो गए। का कर सकत तो ऊ? नीलम के इतै पहुँचत वाले सबरे रास्ते ओनै पैलई बन्द कर लए ते। चुप्पा रहबो ओखी मजबूरी हती। ई मौका पै ऊ कछू करत है तो बोट बिचकें कौ डर है। प्रत्यासी अपनौ-अपनौ प्रचार बराबर करत रये। अपनी-अपनी जीत का आसा में गणित लगाउत रहे।

समै सें वोटिंग भई। टिग्गा-टिग्गी में पचासी परसेन्ट वोट परे। वोटिंग के बाद सब सांत। बस अब इन्तजार वोटिंग खुलें कौ हतो।

ई संघरस पूरन चुनाव में मन्नू सींग सात वोट सें जीत गओ। रज्जन खें हार अखर गई। जादा वोट सें हारो होतो ता इतनौ न अखरतो। रुपइया खूब खरच हो गओ और चुनाव न जीतो। फिरऊँ मन में एक सन्तोष हतो कि गाँव ने ओखें खूब वोट दए। भाग्य ने संग न दओ तो का करो जावै। रज्जन के सपोटर सांत बैठ गए। मन्नू सींग की जीत की खुसी में ओखे सपोटरन ने गोला दागे। लाइसेंस औ चोरी की बन्दूकन सें खूब फायर झोंके। आम आदमी चिमाई साध गओ। एक-दो दिना कौ जोस है फिर अपने आप ठंडौ हो जैहै। येई सोच खें वे अपने-अपने कामन में लग गए। मन्नू खें बस्ता मिलतई, ओनै अपनौ दायरौ बढ़ा दओ। मन्नू के सपोटरन की अब मजई मजा। मन्नू अब ऐंठ खें चलत। जेनै ओखें वोट नई दए सो मन्नू सींग ने उनके कोद निगाह टेढ़ी कर लई। गाँव में तनकई झगड़ा भओ सो ऊ उन्हें समझ लेत। तुरतई पुलिस बुलाउत। दोऊ पच्छन खें नोंच नाँच खें पुलिस चली जात। लड़ाई कौ उन्हें स्वाद मिल जात औ आराम सें बैठ जात। मन्नू सींग की खातिरदारी सें पुलिस ओसें खूब खुस हती। दरोगा से ओखौ दोस्ताना व्यवहार हो गओ। मुरगा-दारू तो प्रधान के घर में आम बात हो गई। दरोगा जी मीट के सौकीन सो हर चार-छह दिनन में प्रधान के इतै दिखात। गाँव में कौन्हऊ न कौन्हऊ समस्या बनी रात सो दरोगा जी खें गाँव में आबे में का दिक्कत। मन्नू सींग के प्रधान बने सें दरोगा जी की आमदनी में इजाफा हो गओ। अब दरोगा जी खें कौन्हऊ चीज की कमी नई रात। घी शक्कर तो प्रधान के लगुआ-भगुआ दरोगन खें थानें में दै आउत। थाने के बगल में सरकारी क्वाटर है। उन्हई में से एक में दरोगा कौ परिवार रहत। खात-पियत कौ सामान दैखे वे आदमी दरोगन के पाँव छूके किरतारथ हो आउत ते। मौसम के हिसाब के फल तरकारी की कमी प्रधान कभऊँ नई परन दई। सचिव, अधिकारी, बैंक मैनेजर सब मन्नू प्रधान सें खुस हते। मनरेगा में अनसड़ रुपइया आ रओ तो सो प्रधान खूब फरन-फूलन लगो। जॉब कार्ड धारकन के खाता में महीना भर कौ रुपइया जमा करा दओ। पाँच सौ रुपइया धारकन खें दै दए, बाकी के रुपइया प्रधान के। जॉब कारड धारक सोचत कौन काम करो सौ पाँच सौ रुपइया भौत है। प्रधान कई धारकन खें बैंक लिबा जात। पहलूँ पूनम होटल में ओखे खूब नास्ता करवाओ जात। जब ऊ एहसानमंद हो गओ सो प्रधान ने कह दई कि जा रुपया निकार ल्या। ओने बैंक से रुपइया निकार खें प्रधान के हाँत पै धर दए। प्रधान ने तै करे रुपइया ओखें दै दए, बाकी के सब ओखी जेब में। सरकार ने कृषि विभाग के कर्मचारी और अफसरन के पेट काट खें लोगन के भले के लानै मनरेगा चला

दई। मनरेगा में प्रधान खूब खुसहाल हो गए। प्रधान ने गाँव की गैलें सुधरवाई पै नीलम के मुहल्ला की गैल ओनै न सुधरवाई। ऊ गली में ओखौ जावै कौ मन नई होत। मन्नू सींग प्रधान नईं चहाँ कछू बन जाय पै वा चप्पल...। नीलम खें दिखखें ओखौ खिलो चेहरा मुरझया जात। ओखे इस्थान पै गुस्सा भर जात। ऊ गुस्सा में ओखें लगन लगत कि नीलम कौ खून पी जावै। नीलम ओखे सामूँ कभऊँ नई झुकी, उल्टी चुनाव में ओखौ जमखें विरोध करो। ओखें हरायें में नीलम नें कसर नई लगाई। भाग्ग सें जीत गओ नईतर सात वोट का हैं? अनबैलट हो जाते ता ऊतौ गओ तो काम सें। प्रधान ने कई देर सोचो कि नीलम या तो गाँव से भग जाय या फिर वा अपनी हार मान लैबै। वे विरोध छोड़ देबै ता ऊ नीलम और कीरत के जॉब कार्ड बनवा दैहै। ऊ ओखे एकऊ रुपइया न लैहै। बैंक से पूरे के पूरे निकार ल्याए करै। ये दोऊ मोय सामूँ झुक जावै औ चार आदमिन के बीच माफी माँग लेबै। प्रधान खें वा लड़ाई आज लौ आँसत। मन्नू सींग कभऊँ सोचत कि का जरूरत हती इनसें उरझें की। पूरौ गाँव चुप बैठो तो मैंने काए औंहड़ मूतो। गाँव खें उजर हतो ता वे सामूँ आते। सब मोय कान भरत रए, अली के दाँव पै सब फुट्टफैल हो गए। प्रधान ने अपने लोगन से कई देर नीलम औ कीरत खें खबर भिजवाई कि वे दोऊ अपनी-अपनी फोटू दै देबै। मैं उनकौ जॉब कार्ड बनवा दैहों। जॉब कार्ड में हर मईना रुपइया डार दए करहीं, वे बैंक से निकार लय करें। सब रुपइया उन्हई के रैहैं। नीलम ने प्रधान के ई प्रस्ताव पै ठोकर मार दई – 'प्रधान खें कह दइयो कि हम ओखी किरपा के भूके नइयाँ। हम जैसे हैं, अच्छे हैं। हमाई फिकर करें की ओखें जरूरत नहियाँ। रुपइयन की दम पै ओनै आधी दुनिया तो अपने कोद कराई लइहै, उतने में नई अफरो का?'

हाँ प्रधान ने आधी दुनिया अपनी कोद कर लई ती। ई आधी दुनिया खें अपने कोद करे में ओखें कोऊ दिक्कत नई परी बलखें या दुनिया अपने आप ओखे कोद झुकत चली आई पै या आधी दुनिया (नीलम-कीरत) ओखे गरे की फाँस बन गई। हरि अनंत हरि कथा अनंता की नाँई येऊ अनन्त कथा है। प्रधान की सब कोसिस बेकार, न नीलम खें झुकनै हतो, औ न वा झुकी।

कल्लू कुम्हार के पनारे कौ पानी अन्ना बहत। आदमी खें निकरे में दिक्कत परत। नीलम कौ घर ओई के बगल में है, सो सब पानी उतई जमा हो जात। नाली बनाबे के लानै कई देर नीलम ने उनसें कही पै उन्नै कान पै नई धरी। आज फिर नीलम ने कल्लू की लुगाई से कहो कि संकर की अम्मा यौ गंदौ पानी सब कहूँ हिलरो परो है, नाली बना देव तो ठीक रैहै। या बात संकर की अम्मा खें उल्टी लगी। वा तुरतई नीलम खें गारी देन लगी। बतबढ़याव बढ़ गओ। कीरत ने बीच-बचाव पार दओ कि आपस में लड़बौ साजौ नई होत। कल्लू नई मानो औनै कीरतऊ खें छिनरा-फिनरा कह दओ। समै दिखखें कीरत पाछूँ हट गओ। मामला सांत हो गओ।

दिन डूबें कीरत अपने चौतरा पै बैठो तो कि पुलिस ने ओखें पकर लओ। कल्लू ने कीरत की रपोट कर दई ती। पुलिस कीरत खें पकर खें थाने लै गई औ ओखी अच्छी धुनाई कर दई। ओखी पूरी देह अभै लौ कसक रई ती। करौंटा लए में एक पीरा की लकीर भूमध्य रेखा सी बनाउत भई चली गई। ओखें प्रधान की करतूत पूरी तरां सें समझ में आ गई। गाँव में अब प्रधान कौ अपनौ खौफ है कि कोऊ ओखी जमानत लौ न करा है। रज्जन गाँव में नहियाँ, रुपइया कमाबे खें बाहर कढ़ गओ। अब का हो है? नीलम निकरवा पाहै ता निकर जैहौं, नईतर जनम भर जेहल में सड़हों। दरोगा न जानै कौन सी धारा लगा दैहै। कीरत खें बारा बजे लौ नींद नईं आई। देह के दरद सें जादा मन में उमड़े सवालन ने ओखे सोउन नई दओ। ओनै कई देर दरोगा के पाँव पकरे, गिगयानो पै ऊ दुष्ट न पिघलो। आज तो ऊ दरोगा ओखे सामई सें नई दिखानो। कीरत बड़बड़ानों – 'ससुर कौ न जानै कहाँ मर गओ?' येई सोचत-सोचत कीरत मुस्किल में एक बजे रात लौ सो पाओ।

नीलम का करै? ओखें कछू समझ में नई आ रहो तो। नीलम ने गाँव के मुड्ढ आदमिन सें कीरत के छुड़वावे की मिन्नत करी। प्रधान जी से को मोल लड़ाई लेबै ईसें वे सब अपने कान दाबें रहे। पुलिस प्रधान जी के हाँत में है। पुलिस से टकराबो......न बाबा न। दूसरी बात कीरत और नीलम के सम्बन्धन ने उनके पाँव आँगू नई बढ़न दए। उनके सम्बन्ध गाँव बालन खें कभउँ नई पचे। उनके हिसाब सें करनी कौ फल तो भोगनई पर है। सबनै नीलम खें ठनानौ जबाब दै दओ। वा केखें कहै, आज ओखौ कोऊ नई हतो। पुलिस न जानै कौन सौ केस लगा खें जेहल में डार दैहै, कछू कहो नई जा सकत। वे तौ मुकदमई लड़त-लड़त मर जैहै। ओखे चारऊ कोद अंधयारौ सौ झुपो तो। कहूँ, उजयारे की लकीर नई दिखा रई ती। नीलम कौ खाबो-पीबो लौ छूट गओ। गाँव बालन ने कीरत औ ओखे सम्बन्ध में न जानै का कौ का कहो पै वा इतनी कभऊँ नई टूटी, बरोबर लड़त रही। कभउँ हारी नइयाँ। अब ओखे लगन लगो कि जीत की सब गैलें बन्द हो गई। जार में पूरी तरां सें फँस गई ती मछरिया। कीरत खें तो मुक्त करवानैई है, चहाँ कछू हो जाय। मुक्ति कौ सहारौ लेखें लड़ गई अपने मन के दुंद में। दुंद के निष्कर्ष सें ओखे पेट में भटा से चुर जात। पेट खलबला जात। फिरउँ ओनै अपने मन खें पक्कौ कर लओ कि कीरत खें छुड़वा हैं चहाँ जैसें छूटै।

जब कीरत जगो तो खूब उजयारौ हो आओ तो। आधी रात लौ ओखी आँखी नई लगी ती। एक पुलिस वाले ने कीरत खें फिरैस होबे के लानै हवालात सें बाहर निकारो। कीरत ने फिरैस होकें कुल्ला करो। ओखें फिर हवालात में ठूँस दओ। अब दूसरौ पुलिस वालौ आ गओ। पहले वाले की ड्यिूटी समाप्त हो गई ती। ई पुलिस वाले कौ चेहरा खिलो हतो। ओने बड़े अपनत्व से कीरत खें टेरो। कीरत गेट के पास गओ। 'तुझे आज छोड़ दिया जायेगा कीरत।' कीरत खें ऐसौ लगो जैसे मरत मछरिया खें पानी मिल गओ होय। कीरत खुस होत भओ बोलो – 'साब आपकी जै होबै।' पुलिस वालौ हंसो – 'कीरत

तूने यह नहीं पूछा कि तुझे क्यों छोड़ा जा रहा है।'

– 'अरे साब छूट जैहों, क्यों, कैसे कौ का मतलब मोखें?'

– 'प्रधान जी और दरोगा जी बहुत खुश हैं। उनके साथ मुझे भी आनन्द मिल गया।' पुलिस वालौ मुस्क्यानो – 'आनन्द आ गया। नीलम भाभी भी बड़ी मस्त चीज हैं।'

– 'हट्ट, का कात हौ साब?' कीरत खें झटका लगो। कीरत कौ 'हट्ट' कहबो पुलिस वाले खें बुरओ लगो। पुलिस वाले ने कीरत कोद खें अपनी आँखें काढ़ी – 'साली सीधे लाइन पर नहीं आ रही थी। तुझे छुड़ाने के लिए विनती कर रई ती, पर फोकट में। अपने दरोगा जी तो ठैरे शिकारी। प्रधान जी ने गोट फाँसकर लाइन क्लीयर कर ली।' औने मिठास कौ अनुभौ करो – 'प्रधान जी और दरोगा जी की महफिल में नीलम भाभी हिरोइन सी दिखती थीं। मुझे मालूम नहीं था कि नीलम भाभी ड्रिंक भी करती हैं। ड्रिंक के मामले में दरोगा जी फेल। ड्रिंक अकेले में क्या हर खेल में दरोगा जी फेल।' पुलिस वालौ वहसियानी हँसी हंसो – नीलम भाभी ने मेरे गाल पर तो ऐसी चिकोटी काटी कि उस खूबसूरत चिकौटी को मैं जीवन भर न भूल पाऊँगा। भाभी दरोगा जी से कह रही थी कि ऐसा बाँका जवान बहुत कम देखने को मिलता है। लेकिन कीरत, भाभी सुबह चार बजे तक लस्त पड़ गई ती।'

'साब आप लोगन ने भौत गलत करो।' कीरत रो परो – 'ऊसई ऊ विचारी खें कम दुःख न हते। तुमने औ ओखें घोंट दओ। अब वा और जल्दी मर जैहै।' कीरत की आँखन से अंसुअन की धारा बह निकरी। ओखें अपने आप पै बहुत लज्जा आई। मोय कारन नीलम की कितनी बुरई दसा भई वा डिरा गई कि कहूँ मोखें जेहल न हो जावै। येई बात कौ फाइदा ई राच्छसन ने उठाओ। कीरत हिलकी भर खें रो परो – 'नीलम तै इतने जल्दी घबरा गई। मोई कौन फाँसी आय लगत हती जुन तैनें इतनौ कठोर निरनै लै लओ। पगलू तैने अपने बारे में नई सोचो। तोखे तो ऊसई भगवान ने...'।

– 'क्यों रो रहा है बे! भाभी बिल्कुल ठीक है।' पुलिस वालौ अपनी मौज में बोलो।

– 'वा तनकऊ ठीक नहियाँ साब।' कीरत ने अपने अंसुआ पोछे – 'ओखें एड्स है साब।'

– 'क्या बकता है बे?' जैसें अनजाने में करिया पै लात पर गई होय

– 'गाँव देहात में कहाँ से आया एड्स?'

– 'साब ओखौ आदमी सहर सें ल्याओ तो।' पुलिस वाले के पाँव तरे की जमीन खिसक गई। ओखौ मूँ करिया पर गओ। ऊ दौर खें दरोगा जी के पास गओ। ओखी बात सुनखें दरोगा जी खें बिसवास नई भओ फिरऊँ मन में हल्की संका बिड़ गई। बात इस्पष्ट करें के लानै ऊ कीरत के ढिंगे पौंचो। पुलिस वाले ने कीरत खें हवालात सें बाहर निकारो। दरोगा जी ने कीरत खों बूट की ठोकर मारी – 'क्यों बे! क्या अंट-शंट बकता है?'

– 'साब मैं सही कहत हौं।' दरोगा खें ओखी बात झूठी लगी। सई बात उगलवायें के लानैं दरोगा कीरत पै पिल परो – 'साले झूठ बोलकर हमें डराता है।' कीरत कल्हारो – 'झूठी नइयाँ साब।'

– 'तब तो साले तुझे भी होगा एड्स। तू तो उसे लुगाई बनाये हुए है।'

– 'नई साब मैंने जाँच करवा लई। मैं कण्डोम....।'

दरोगा के मूँड़ पै आसमान फट गओ।

– अजनारी रोड, नया रामनगर, उरई,

बुन्देली कुण्डलियाँ

– डॉ. ओम प्रकाश बरसैंया 'ऊँकार'

गांधी की फोटू टँगी, हर दफ्तर में आज।
उनकौ सपनौ जौ हतो, भारत पाय स्वराज।
भारत पाय स्वराज, सबइ ने हिम्मत बाँधी।
देबौ बंद लगान, भई गोरन खौं व्याधी।।
निकरन लगे जलूस, आइ फिर ऐसी आँधी।
सत्य, अहिसा सैंइ, राज लैलव तो गांधी।।

राजा अब मंत्री भए, जबर भए सरपंच।
प्रजा पिरै मैगाई में, चमचे रचें प्रपंच।।
चमचे रचें प्रपंच, खाँय वे मक्खन खाजा।
काम चलै दो लाँच, चाँय लादौ सिर करजा।।
वोट नोट सैं पाय, बन गये अब महराजा।
हला देंय वे मंच, करैं ना नैकउ काजा।

लगतइ उनकौ त्याग सब, मिल गव भइया धूल।
हिन्दी की चिन्दी उड़ै, शासन बनौ त्रिशूल।।
शासन बनौ त्रिशूल, भाव चीजन के बढ़तइ।
कब, कित बम फट जाय, रहें सब डरतइ-डरतइ।।
कौन, कितै फँस जाय, लुटेरे डटवाँ फिरतइ।
"देव पाँच सौ" कहे बापु कौ पंजा लगतइ।।

समझें अपने खौं चतुर, बाहर सकें न ढूँक।
टर्र-टर्र टर्रांय वे, कहें कूप-मण्डूक।।
रहें कूप-मण्डूक, गैर की बात न भाई।
निज फूटीं न दिखाँय, हँसें सुन फुली पराई।।
बींग निकार, बिगार काम, झकरा से उरझें।
बैचें भाजी-भटा, जौहरी खुद कौं समझें।।

– १६, जवाहर चौक, झांसी (उ.प्र.)

कवि गदाधर भट्ट और उनका साहित्य

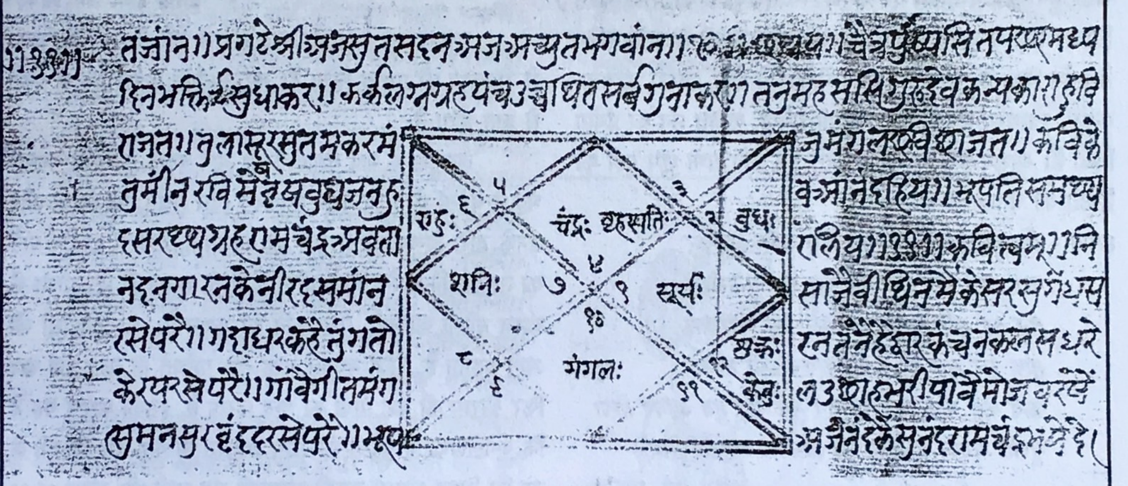
- उदय शंकर दुबे

रीतियुगीन कवियों की परम्परा में गदाधर भट्ट एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता के बल पर पूरा जीवनयापन किया था। दतिया राज्य के दो राजाओं-विजय बहादुर सिंह (शासनकाल सन् १८३६, सन् १८५७ ई.) एवं भवानी सिंह (शासनकाल सन् १८५७ ई. १९०७ ई.) के आश्रय में रहकर कई ग्रंथों की रचना की। गदाधर प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट के पौत्र थे। अपनी प्रवाहमयी शैली तथा ओजपूर्ण भाषा के आधार पर गदाधर भट्ट ने अपने पितामह पद्माकर भट्ट की परम्परा को चिरस्थायी रखा। कठोर काल के झंझावात एवं असुरक्षा के कारण उनकी कुछ कृतियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। आज जो कुछ भी उपलब्ध है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ये पक्के दरबारी कवि थे। इतिहास का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनकी सरस श्रृंगारी रचनाओं पढ़कर जहाँ श्रृंगार रस का आनंद प्राप्त होता है वहीं परुषावृत्ति में लिखी कविताओं को पढ़कर बाहें फड़क उठती हैं।

गदाधर भट्ट के बाबा पद्माकर भट्ट को दतिया के राजा पारीछत (शासनकाल सन् १८०१-१८३६ ई.) द्वारा दतिया स्थित कुंजनपुरा मुहल्ला में एक विशाल हवेली के साथ भारी वृत्ति प्रदान की गई थी। उनके वंशज यहीं रहते थे। गदाधर भट्ट का यहीं पर जन्म हुआ था। किस संवत में उनका जन्म हुआ था यह ज्ञात नहीं है। कवि ने कामांधक और वृत्त चंद्रिका की रचना संवत् १८९४ वि. (सन् १८३७ ई.) में की थी। इस समय यदि कवि की अवस्था ३५ वर्ष मान लें तो कवि का जन्म संवत् १८६६ वि. (सन् १८०२ ई.) स्थिर होता है। कवि का जन्म संवत् कुछ आगे पीछे भी हो सकता है। गदाधर भट्ट ने संवत् १९३९ वि. में दतिया के राजा भवानी सिंह की यशःकीर्ति हेतु 'कैसर सभा विनोद ग्रंथ' की रचना की। इस ग्रंथ के प्रारंभ में कवि ने अपने पूर्वजों का विवरण प्रस्तुत किया है जिससे ज्ञात होता है कि उनके पूर्वज मधुकर भट्ट को गढ़ा-मंडला की रानी दुर्गावती ने संवत् १६८२ वि. में यज्ञ कराने हेतु आमंत्रित किया और उनके चरणों की पूजा की। इन्हीं मधुकर भट्ट के पुत्र जनार्दन भट्ट ने श्री रामचंद्र नखशिख ग्रंथ की रचना की -

जनार्दन भट्ट - *किय सप्तशती सुर गिरा धाम।*
श्रीरामचंद्र नषसिष सुवेष।
बरनिय सुध्यान पूजा विशेष।

गदाधर भट्ट के इस कथन से यह निश्चित होता है कि बुन्देलखण्ड में सर्वप्रथम जनार्दन भट्ट ने श्रीरामचन्द्र नख-शिखग्रंथ की रचना की थी। यद्यपि इस ग्रंथ की प्रति अनुपलब्ध है। कवि ने अपने पितामह पद्माकर भट्ट की कृतियों की ओर भी संकेत किया है -



(गदाधर भट्ट कृत विजय ब्रज विलास ग्रंथ का एक पृष्ठ जिसमें राम जन्म का विवरण है)

''तिहि किय कवित्त बहु काव्य ग्रंथ। श्रीरामचरित वाल्मीकि पंथ। गदाधर भट्ट के इस कथन से निश्चित हो जाता है कि पद्माकर भट्ट ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर श्री रामचरित (राम रसायन ग्रंथ) की रचना की थी। गदाधर भट्ट के पिता का नाम मिहीलाल (महीलाल) भट्ट था। कवि को काव्य प्रतिभा वंश परंपरा से प्राप्त हुई थी। संगीत घरानों की भाँति यह कवि घराना था। दतिया में पद्माकर की हवेली 'कवि जू की हवेली' के नाम से प्रसिद्ध है। गदाधर भट्ट पर उनके पितामह का पूरा प्रभाव पड़ा था। उन्होंने भी अपने आश्रयदाता राजाओं का गुणानुवाद किया है।

सर्जना - गदाधर भट्ट संस्कृत, हिन्दी और फारसी के जानकार थे। उनकी काव्य संपदा विशाल है। उनके द्वारा अनूदित एवं स्वरचित ग्रंथों की संख्या इस प्रकार है - १. कामांधक, २. वृत्त चंद्रिका, ३. विरुदावली, ४. ब्रजविलास विजय भूषण, ५. देशाटन विनोद, ६. अलंकार चंद्रोदय, ७. छंदो मंजरी, ८. कैसर सभा

विनोद, ९. विंध्यवासिनी अष्टक, १०. हित चौरासी की टीका, ११. चाणक्य नीति, १२. नायिका भेद, १३. सभा विलास, १४. कन्हरगढ़ जनोत्सव, १५. वानी पद तथा फुटकर छंद एवं १६. धर्मप्रकाश (संस्कृत) गदाधर भट्ट का केवल एक ग्रंथ वृत्त चंद्रिका का संपादन, श्री वियोगी हरि द्वारा किया गया था जो संवत् १९७९ वि. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ था।

गदाधर भट्ट की यशःकीर्ति के लिये उनका एक ग्रंथ "ब्रज विलास विजयभूषण" पर्याप्त है। यह ऐतिहासिक होने के साथ-साथ साहित्यिक ग्रंथ है। यद्यपि यह ग्रंथ वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है किन्तु इसमें छंदों का वैविध्य, उपमाओं एवं अनुप्रासों का सुंदर चयन, भाषा की सरलता कवि की अपनी विशेषता है। कवि ने अपने आश्रयदाता दतिया के राजा विजय बहादुर सिंह के नाम पर किया है। राजा ने ब्रजमंडल की यात्रा की थी इसीलिये ग्रंथ का नाम ब्रजविलास विजय भूषण रखा गया है। इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १९०४ वि. है।

रामकथा – 'ब्रजविलास' ग्रंथ में नृपति वंशावली का वर्णन करते हुये कवि ने तृतीय एवं चतुर्थ सर्ग में रघुवंश का वर्णन करते छिहत्तर छंदों में रामजन्म से लेकर लवकुश तक की कथा का संक्षेप में वर्णन किया है। रामचरित वर्णन में कवि ने दोहा, सोरठा, इंद्रबज्रा, पद्धरी, स्त्रग्धरा, हरिगीतिका, मालती सवैया, कवित्त छंद का प्रयोग किया है। श्रीरामजन्म का वर्णन करते हुये कवि सभी शुभ ग्रहों की स्थिति को बताता है –

छप्पय – *चैत्र पुष्प सित पक्ष मध्य दिन भक्ति सुधाकर*
कर्क लग्न ग्रह पंच उच्चथित सर्व मुनाकर।
तनु यह ससि गुरदेव कन्यका राहु विराजत।
तुला सूर सुत मकर मंजु मंगल छवि छाजत।
कवि केतु मीन रवि मेष वृष बुध जन हुव आनंद हिय।
भूपति समथ्य दसरथ्थ गृह रामचंद्र अवतार लिय।।

– तृतीय सर्ग, छंद ११

कवि ने पद्धरी छंद में श्रीराम की महिमा का बखान करते संपूर्ण रामकथा को सहज ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत करने का अच्छा प्रयास किया है –

पद्धरी –*श्रीरामचंद्र परब्रह्म रूप। श्री रामचंद्र महिमा अनूप।।*
श्री रामचंद्र ध्रुव धर्म धीर। श्री रामचंद्र संग्राम वीर।।
श्रीरामचंद्र मुनि संग जाय। श्रीरामचंद्र किय मख सहाय।।
श्रीरामचंद्र मुनि तिय उधार। श्रीरामचंद्र प्रभुता अपार।।
श्री रामचंद्र हर धनु चढ़ाहि। श्रीरामचंद्र लिय सिय व्याहि।।
श्री रामचंद्र भृगुनंद जीत। श्रीरामचंद्र किय जग अभीत।।
श्री रामचंद्र पितु वचन मान। श्री रामचंद्र किय वन प्रयान।
श्री रामचंद्र सजि धनु निषंग। श्रीरामचंद्र सिय लखन संग।
श्री रामचंद्र धरि जटा जूट। श्री रामचंद्र वसि चित्रकूट।।
श्री रामचंद्र मुनि गन समेत। श्रीरामचंद्र वन सौष्य देत।।
श्री रामचंद्र हनि काक अच्छ। श्री रामचंद्र महिमा वलच्छ।।
श्री रामचंद्र लखि सिद्ध बाध। श्रीरामचंद्र किय बध विराध।
श्रीरामचंद्र वन वसि विसेष। श्रीरामचंद्र निसिचरी देख।
श्री रामचंद्र अनुकूल रूप। श्रीरामचंद्र किय ता कुरूप।।
श्री रामचंद्र हनि दूषणादि। श्रीरामचंद्र विक्रम अनादि।।
श्रीरामचंद्र खंडीय मरीच। श्रीरामचंद्र अद्भुत अबीच।।
श्रीरामचंद्र लखि मृत जटाति। श्रीरामचंद्र दिय मुक्ति ताहि।।
श्रीरामचंद्र सबरी सिहाय। श्रीरामचंद्र दिय भक्ति ताय।।
श्री रामचंद्र खंडिय कबंध। श्रीरामचंद्र हनुमान संध।।
श्री रामचंद्र सुग्रीव मित्र। श्रीरामचंद्र महिमा विचित्र।।
श्री रामचंद्र हनि वान नीर। श्री रामचंद्र धरमज्ञ धीर।।
श्रीरामचंद्र कपि दल समेत। श्रीरामचंद्र बंधि सिंधु सेत।।
श्रीरामचंद्र दसकंठ जीत। श्रीरामचंद्र किय सुर अभीत।।
श्रीरामचंद्र सिय किय पयान। श्री रामचंद्र चढ़ि धनद यान।।
श्री रामचंद्र पुर औधि आय। श्रीरामचंद्र किय जन उछाय।।
श्रीरामचंद्र सीता समेत। श्रीरामचंद्र लखि सौष्य देत।।

तृतीय सर्ग, छंद १९-३१

गदाधर भट्ट ने अत्यंत सरल ढंग से थोड़े से शब्दों के माध्यम से रामकथा को प्रस्तुत किया है। यह उपर्युक्त पद्धरी छंद के पढ़ने से ज्ञात होता है।

लवकुश के बाद वंशावली को आगे बढ़ाते हुये कवि गदाधर भट्ट ने बुंदेलों के आदि पुरुष हेमकरन (वीर पंचम) की वीरता और उनके द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना, देवी से वरदान पाने का उल्लेख किया है। विंध्यवासिनी देवी के कारण ही वीर पंचम के वंशज बुंदेला कहलाये, ऐसा कवि का कथन है। वह वंशावली को आगे बढ़ाता है, राजा मधुकर शाह तक पहुँचते ही कवि एक बार फिर श्रीराम की यश गाथा का गान करता है, इसका कारण यह है कि बुन्देलखण्ड में बुंदेलों का राज्य स्थापित हो गया था। वेत्रवती के तट पर स्थित ओरछा उनकी राजधानी बन चुकी थी। संवत् १६११ की राजा मधुकर शाह और उनकी रानी गणेश दे कुँवरि धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। भगवान राम में रानी की दृढ़ आस्था और अगाध श्रद्धा थी। रानी गणेश दे कुँवरि ने रामलला की प्राप्ति हेतु उनकी जन्मस्थली अयोध्या में जाकर कठोर व्रत, कठिन तपस्या की यहाँ तक कि सरयू नदी में प्राणोत्सर्ग तक करने का निश्चय कर लिया। फलतः सरयू नदी में स्नान करते समय रामलला की मूर्ति का प्राकट्य हुआ जो उनके आंचल में आकर विराजमान हो गई। अयोध्या प्राप्त भगवान राम की इस मूर्ति को लेकर रानी ओरछा चली आई तथा अपने निज महल में संवत् १६३१ वि. में रामनवमी की शुभ मुहूर्त में रामलला की प्राणप्रतिष्ठा कराया। उसी समय से रानी का राजमहल, रामलला का मंदिर बन गया। उनके पतिदेव मधुकर शाह ने ओरछा का पूरा राज्य भगवान राम के चरणों में अर्पित कर स्वयं उनके दिवान के रूप में राज्य का संचालन करने लगे। गदाधर भट्ट ने इस प्रसंग की चर्चा की है –

पद्धरी - *मधुकर महीप महिमा विसाल।*
सु गणेश कुंवर रानी नृपाल।।
तिहि न्हात अवधि सरजू अमंद।
प्रगटे सुभक्ति लखि रामचंद्र।।

दोहा - *कोटि काम अभिराम छवि भक्त हेत प्रभु काम।*
परब्रह्म पूरन पुरुष प्रगटे सीता राम।।

तृतीय सर्ग, छंद १०-११

राम के प्राकट्य वर्णन के साथ कवि गदाधर भट्ट ने 'रामराजा' से सम्बंधित पांच श्लोकों की रचना की है जिसे पंचरत्न (श्रीरामचंद्र पंचरत्न) का अभिधान दिया है। गदाधर भट्ट कृत श्रीरामचंद्र पंचरत्न के पांच श्लोक आज भी बुन्देलखण्ड के कवि-पंडितों को स्मरण हैं। वास्तव में राम के प्रति लिखे गये पाँच श्लोक पांच रत्न ही हैं। गदाधर भट्ट की ख्याति के लिये ये पाँच श्लोक पर्याप्त हैं -

।।श्री रामचंद्र पंच रानयू।

प्रफुल्ल नीलाब्ज तनु प्रकाशं पूर्णेन्दु बिंबस्य लसद्विलासम्।
प्रसन्न किंजाल्क मनोज्ञ वायं श्रीरामचंद्र सततं नमामि।।
किरीटन कंकण कौस्तुभाढ्यं केयूर कर्णाभरणाभिरामम्।
विचित्र भूषांवर शोभितागं श्रीरामचंद्र सततं नमामि।।
दोर्दंड को दंड विराजमानं तूणीर चर्मासि शरं दधानम्।
प्रोदंड चंडाशु लसत्प्रतापं श्रीरामचंद्र सततं नमामि।।३।।
धनुर्द्धरं धैर्यधरं धराधरं धारा धराभ धरणी जनुद्धरम्।
धुरंधरं धूर्जटि भक्ति बंधुरं श्रीरामचंद्र सततं नमामि।।
श्रीराम चंद्रेस्तु रतिर्मदीया श्रीरामचंद्रेस्तु गतिर्मदीया।।
श्रीरामचंद्रेस्तु मतिर्मदीया श्रीरामचंद्रेस्तु नतिर्मदीया।।
श्रीरामचन्द्रस्य परं पवित्रं गदाभृता निर्मित पंचरत्नम्।
प्रातः पठेद्यो मनसाति भक्तया भवेत्युमानस प्रभु भक्तमुख्यः।।

अर्थ - विकसित नील कमल के समान शरीर की कांति वाले पूर्ण चंद्रमा के समान शोभायमान, खिले हुये कमल-केशर के समान सुन्दर ऐसे श्रीराम को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।।१।।

शिर पर मुकुट धारण किये हुये, कंकण और कौस्तुममणि से विभूषित, भुजबंध, बाजूबंध एवं कर्णाभूषण से रमणीय, विचित्र आभूषणों और वस्त्रों से शोभायमान अंगों वाले श्रीराम चंद्र को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।।२।।

अपने हाथों में धनुष धारण किये हुये, तरकस, ढाल और तलवार से युक्त, प्रचण्ड सूर्य के समान प्रताप वाले श्री रामचंद्र जी को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।।३।।

धनुष, धैर्य और पृथ्वी को धारण करने वाले, मेघ के समान कांतिवाले, महादेव की भक्ति करने वाले ऐसे श्री रामचंद्र जी को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।।४।।

श्रीरामचंद्र जी के प्रति मेरा अनुराग हो, उन्हीं में मेरी गति हो, उन्हीं में मेरी मति हो, श्रीरामचंद्र जी को मेरा प्रणाम है।।५।।

गदाधर द्वारा निर्मित श्रीरामचंद्र जी का परम पवित्र 'पंच रत्न' नामक स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक मन लगाकर मात्र काल पाठ करेगा, वह भगवान का परमभक्त होगा।।६।।

श्रीराम चंद्र पंचरत्न'' लिखने के बाद कवि गदाधर भट्ट ने एक बार पुनः महारानी गणेश कुँवरि, साकेत, ओरछा और राम राजा का स्मरण किया है -

श्री मन्मधोर्भूमिपर्तेयतिष्या गणेश देव्या कृत भक्ति भावः।
साकेत तश्चौउछ पत्तनेस्मिन् विराजते श्री रघुराज रामः।।

बुंदेलों की वंशावली लिखते समय गदाधर भट्ट ने जिस प्रकार राम के सुयश का मान संक्षेप में किया है उससे ज्ञात होता है कि यदि उन्होंने स्वतंत्र ढंग से रामकथा का गान किया होता तो वह एक महत्वपूर्ण रचना होती।

आधार ग्रंथ -

१. विजय ब्रज विलास की हस्तलिखित प्रति
२. बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - गोरे लाल तिवारी
३. दतिया दर्शन - पं. हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, दतिया अधिवेशन, फरवरी १६५६ ई., विंध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन
४. बुंदेलखण्ड के अज्ञात रचनाकार - लेखक डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त बरसैंया, सहयोगी उदय शंकर दुबे, सार्थक प्रकाशन, १०० ए, गीतमनगर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् २००२ ई.

- ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया,
जि. मिर्जापुर (उ.प्र.) २२१३०६



राजा गिलन्द की गाथा

- डॉ. एम.एल. प्रभाकर

इतयास की साँसी, साँसी खोजबीन करी जाय तौ हमाई समज में आउत कै, इतै कैउ ऐसे-ऐसे राजा हो गय जिनने अपनौ सबरौ ममता मोव छोड़ कैं, अपनौ सबई कछू पिरजा कौ भलौ करबे खौं सौंप दवौ। अपने ऊपरै तनकई आँच नई आउन दई, ई सैं के सबई के प्यारे कुआउत ते। ऐसेई एक राजा साब जू हो गय, जिनखौं सबई जनें राजा गिलन्द के नाव सैं जानत हुइऔ। इनकी लोक गाथा साँसऊँ भौतई नौनी है, जीखौं बुन्देली लोक नाटकन में ई तरा सै दिखाव जात, जियै अपन सबई जनें नैचैं लिखे लिखाय रूप में बाँचियो -

पात्र परिचै - १. राजा का कुँवर, २. राजा के कुँवर की माता (महारानी), ३. प्रधान का कुँवर, ४. राजा गिलंद, ५. नाई, ६. राजा गिलन्द की बेटी, ७. राजा गिलन्द का मंत्री, ८. राजा की बेटी (अन्य), ९. राजा की बेटी की भाभी, १०. भीलनी

नोट - बुन्देली लोकनाट्यों के अन्तर्गत - वादक गण (ढोलक, झींका, सारंगी आदि को बजाने वाले) नर्तक, विदूषक एवं पूँछने वाला, गायक आदि रंगमंचीय पात्र होते हैं।

रंगमंच - खुले आकाश के नीचे का समतल मैदान अथवा चबूतरा।

वेशभूषा - लोकनाट्यों के पात्रों की वेशभूषा पात्रों के अनुरूप होती है।

शुभारम्भ - वाद्य यंत्र बजते हैं गायक निम्न गीत गाता है -

ए.... कंठ बिराजौ शारदा, भुजन भीम महाराज।
आज सभा के बीच में सो रखियो मोरी लाज।।
ए... जर जोधन अम्भानी रे राजा, जर जोधन अम्भानी।
जर जोधन अम्भानी रे राजा, आग लगा दई लाखा मढ़ में।

विदूषक एवं नर्तक नाचते हैं, इसी बीच नाई घोड़ी पर बैठकर निम्न गीत गाता हुआ आता है -

ऐसौ लरका नाऊ कौ, जैसौ नइयाँ काऊ कौ।
टूँ-टूँ टइयाँ जी की घुरिया, जा की टूटी डेढ़ पसुरिया,
चढ़कें आवै नाऊ कौ। जैसौ नइयाँ....।
मिलें ना जाकों कभऊँ सवारी, तौई तौ बौ चलै अँगारी।
जी खौं चिलम तमाखू प्यारी। पक्कौ लबरा नाऊ कौ।
जैसौ नइयाँ...।

पूँछने वाला - (पीठ पर गिंदउआ मारते हुए) - को आय भइया रंग में भंग करत आ गवौ, तोय पतौ नइयां राजन कौ दरवार लगौ उर तैं अपनी घुरिया बीच में निपोरैं फिरत।

नाई - हम तौ कोऊ होंय तोय का मतलब, सारे अबै एक हन दों सो...

पूछने वाला - उल्टौ चोर कुतवार खौं आ डाटत। हम राजन के चपरासी आँय,

नाई - तौ जा कतौ, तैं चपरासी हो कैं जा नई जानत कै घुरिया पै को बैठत, हम आँय तोय बाप नाऊ।

पूँछनेवाला - ओ खवास दद्दा राम-राम पौंच जाय, कितै खौ जावौ हो रऔ। अपनौ।

नाई - राम राम चौकीदार भइया - राजन के कुँवर के सगै भुन्सरां उनकी दुलइया जू कौ लुवावनौ करवाबे जानैं।

पूँछने वाला - चलौ खवास दद्दा उतईं सब जनै है सो बैठियो।

(नाई भीतर जाकर विश्राम करता है, राजा का कुँवर खवास को आया देखकर अपनी माता से पूँछता है)

राजा का कुँवर - काय नन्ना जू खवास कीकौ लुवावनौ करन जात।

माता - बेटा तुमाई दुलइया जू कौ तौ लुवावनौ होवै जा रऔ, तुमई ऐसी कतई।

राजा का कुँवर - हमाव बियाव हो गव का।

माता - ओ कुँवर काऊ कौ बियाव बड़े बड़ेरू में होत, तुमाव बियाव अलनन पलनन में हो गव तो।

राजा का कुँवर - मताई तुमनें पैलउँ सैं नईं बताई, अबै तक काय खौं छिपांय रईं।

(माता की बात सुनकर राजकुमार प्रधान के कुँवर को साथ लेकर खवास सहित जाने लगता है तो उनकी भाभी उनसे कहती है)

भाभी - "काय खौं सब खौं जोर कै लाला काय खौं भये तैयार।
कै सुद आई ससुराल की, लाला हरत पराई नार।।"

राजा का कुँवर - "ना सुद आई ससुरार की, भौजी न हरत पराई नार।
नदिया पार मेला भरौ री भौजी, बइयै देखन जात।"
भौजी भुन्सरा होतनईं लौट कै आ जैं

(इस तरह तीनों रास्ते में पहुँचते हैं तो एक बीजक लगा मिलता है जिसको पढ़ने से पता चला तो....)

राजा का कुँवर - मिन्त तुमाई गैल डेयरी बगल गई, हमाई दाँयनी बगल हो गई सो जाव।

प्रधान का कुँवर - मिन्त अकेलें लौट कैं दोऊ जनें इतईं मिल जैबूँ, हम अपनी ससरार से लुवा कें आजैं उर तुम लुवा कैं आ जइयौ। (इस प्रकार दौनों अपने-अपने रास्ते से चले जाते हैं राजा का कुँवर खवास सहित ससुराल तरफ चलने लगता है। ये लोग इस तरफ से जाते हुए गाँव की सीमा पर पहुँचते हैं। वहाँ गाँव में एक राजकुमारी अपनी भाभी जी से पानी भरने जाने हेतु हठ करती हुई कहती है -

राजकुमारी (ननद) - भौजी मैं पानी भरवे जा रई सो -
"कितै धरे री घड़ेलना, कितै धरी नौनी लेज।
कितै धरी मोरी जड़ी कूनरी, मैं पनियाँ खौं जाँव।।"

भाभी - बिन्नू अबै पानी भरबे ना जाव, काय सैं कै घरै तुमाय बाप मताई नइयाँ। बे आजै सो चली जइयौ, नईं मानत तौ -
"घिनौंचन धरे री घड़ेलना, घुल्लन टँगी है लेज।

अटा अटरियन ननदी पैंड़ दौं, हन दो बजर किवार।।

राजकुमारी - भौजी मैं अकेली नोंई जात, संगै संगै सखियाँ जा रई।

"तुम अटा अटरियन पैंड़ दो सो हन दो बजर किवार।

अटा अटरियन कूँद कैं भौजी कढ़ जैहौं वा पार।।

भाभी - नईं मानत सो ऐन चली जाव, अकेलें मोई बात और सुनैं जाव, कै ऊसई तौ भगवान नैं तुमें नौनों रूप दऔ, ऊपर से तुम सिंगार करें जात सो...

"कजरा देखत दस मरैं, ननदी बिंदिया देखत बीस।

सौक पचासक जब मरैं री बिन्नू उगर जाय तारी पीठ।।"

राजकुमारी - भौजी तुमें तौ जानैं काँकी बातें खबर आ रई -

"ना कजरा देतन दस मरैं भौजी, ना विदियाँ देखत बीस।

कोऊ कितऊ न कभऊँ मरै जब उगरै मोरी पीठ।।

भाभी - बिन्नू तुम मोई बातन खौं काटत जात, अकेले तुमाई पानी खौं जावे की हठ सैं तौ जा लगत कै -

"कै कुवलन राही परे मिलैं बिन्नू कै कुँवर दीवान।

गैल मिलैं गँभारू मुन्स जू, सो पनिया भरन जिन जाव।।

(अन्त में राजकुमारी पानी हेतु जाती है, वह कुँवा पर जाकर पानी खींचने लगती है, उस तरफ से खवास और राजकुमार आते हैं। खवास आगे निकलकर राजकुमारी को देखकर कहता है)

नाई - अपन चाय राजन की बेटी होव चाय काउ की होव मोई बात सुनियौ -

"हाथ जोर विनती करौं रे बेटा, मोरे कुँवर अमान।

ऐसी औरत न मिलै रे चाय धरैं लाख औतार।।

चन्द्रबदन मृग लोचनी, अरी ढँक लो अपने अंग।

तोय देखत ठाकुर गिर परे री, धूरा में गिर गय दन्त।।"

राजकुमारी - बब्बा तैं तौ भौतई सियानौ लगत, मायके में रैंकें का घूँघट डार लैंव, तैं अपने कुँवर की फिकर में है सो -

"पकर उठा लो कुँवर खौं रे, रेवता लेय झराय।

भाग सरालो माई बाप के, सो जियत लौट घर जाय।।"

(बेटी की बात सुनकर खवास के नीचे के दाँत नीचे ऊपर के ऊपर रह जाते हैं, वह तुरन्त लौटकर राजकुमार के पास आकर बोला)

नाई - कुँवर मैं अपन सैं अंगाई कढ़ कैं कुँवा पै पौंच गऔ सो उतै एक भाई नौनी बेटी खौं देखी सो ऊँसैं मैंने तनकई तौ कई कै अपनी आंग ढाँक लो, ऊने झट्टई ऐसे जुआब दऔ कै मोय चींटा कैसी काटी लौटने आव।

राजा का कुँवर - बिरतिया जू का साँसऊँ भौतई नौनी है, तौ फिर मैं जाकैं देखत, कैसी साजी उर हुसयार है -

नाई - रन दो कुँवर माँय जान दो, चलौ अपन तौ चलिए।

राजा का कुँवर - अब आ तौ गय हैंई, मोय तनक देख तौ आउन देव।

(खवास से कहकर राजकुमार कुँवा के पास जाकर बेटी को देखकर उस पर मुग्ध होकर उसके अंग देखने के लिए कँदेला उठवाने हेतु कहता है)

"प्रीतम पाँव पलोटिऔ गोरी कर केसन की छाँय।

हमखौं गैल बताइयौ गोरी, ऊँची करके बाँय।।"

राजा की बेटी - *(मन में)* बड़ौ हुसयार है, अपने जान बाँय उठवा कैं कँदेला ढँकौ अंग देखन चाउत। हम तुमसैं चतुर हैं।

(प्रत्यक्ष में) लल्ला हमें झट्ट पानी भरकैं जानै सो -

"गैल लगे दो रूख हैं लल्ला, शीतल उनकी छाँय।

उनई तरे हो गैल गई, सो दूखत मोरी बाँय।।"

राजा कुँवर - बेटी गैल बताउत में तुमाय हाथ पिरात सो मोय पानी पिवा दो -

राजा की बेटी - जादां पियास लगी सो बैठ जाव मैं पानी खैंच रई सो पियाउत।

(राजा की बेटी पानी खींचने लगती है, पानी खीचने में उसका कंदेला खिसक जाता है, जिससे उसके शरीर के अंग देखकर राजकुमार हँसता हुआ कहता है)

राजा का कुँवर - "चन्द्र कुवा मुख साँकरौ उर अलबेली पनहार।

आँचर डारैं जल भरै, काऊ हीन पुरुष की नार।।

राजा की बेटी - *(साहस के साथ)* सुनो कुँवर तुमें बोलवे की तनकई सरम नइयाँ -

"पीने होय पानी पियौ, उर बोलौ वचन समार।

हम हंसन की हंसनी, तुम कंग्गा गैल गमार।।

(यह सुनकर कुँवर लज्जित होकर वापस खवास के पास आकर मन मलीन करके बैठ जाता है, खवास भी समझदार है, वह मन की बात समझते हुए कहता है -)

नाई - काय कुँवर जू बुरऔ मन काय करैं, मिल आय ऊ बेटी सैं।

राजा का कुँवर - खवास कका जू मैंने अपन की बात कौ विसवास नई करौ तौ सो...

नाई - मैंने तुमें कितौ रोको तो, नई माने सो कटवा आय नाक सी, चलौ माँय पबरन दो।

(दोनों साथ में गाँव जाते हैं, जिस दरवाजे पर बेटी जाती है सो उसी के पीछे-पीछे जाते हैं। बेटी यह सब देखकर भावज को घड़ा उतारने को बुलाती है)

राजा की बेटी - ओ भौजी जल्दी तौ आव उतै काय में आ वीदीं तनक इतांय तौ देखौ -

"जेई मुसाफिर कुअला हते री भौजी जेई आए द्वार।

दौरी री दौरी भौजी आइयौ, लिइयो मोरी गगर उतार।।"

भाभी - *(दौड़ती हुई आकर हँसकर)* ल्याव मैं उतार दों तुमाई गगरी, मैंने तुमसे पैलऊँ कइती कै कुअला पानी भरवे जाकैं कौनऊँ सैं मिलनैं हुइयै साँसी भई, लो अब मोई कइ सुनौ -

"चकअइ खौं चकवा मिले री ननदी, कमल सूरज की कोर।

आये तुम्हारे पाँवने री ननदी, जानै परहै भोर।।"

राजा की बेटी - भौजी तुमें भोत चौलैं और रईं, साँसी तौ जा आय

कै - *"ओ मोरी भौजी सादली, सो बोलौ वचन समार।*
आये तुम्हारे वीरना, सो विदा करावन हार।।"

भौजी - बिन्नू, इन बातन सैं नईं चलनैं काम, तुम ऐई के लानें तौ हठ कर रईं तीं, मोई हदकी नईं मानी ती, लुबा ल्याईं अपने रसिया जू खौं, अब भुन्सारै सँगै जइयौ।

(भावज ऐसा कहकर, सास को पाँवने आने की खबर देती है। पाँवनन खौं यथा स्थान ठहराया जाता है। खवास और कुँवर का मन मलीन था कुँवर कहता है)

राजा का कुँवर - काय कका जू अब का करिये, अपन इतै किते आ गये।

नाई - कुँवर साब जू, इतै कीसैं कत तुमाई ससरार आय, उर वे बिन्नू राजा तुमाई दुलइया जू आएँ। सो अब तुमईं समारौ।

(खवास का डेरा पौर में और राजकुमार का डेरा भीतर महलन में दिया जाता है, कुँवर अंदर से किवाड़ बन्द कर लेट जाता है। रात में बेटी को भोजन का थाल देकर भावज कहती है -)

भौजी - जाव बिन्नू राजा अपने रसिया जू खौं भोजन करवा आवो।

राजा की बेटी - मोरी सादली भावज जू तुमईं जा कैं भोजन करवा आवौ।।

भौजी - अब बिन्नू जादां ठनगन ना करौ, लुआवे खौं तौ मोसैं लर-लर कैं गईंतीं, अब कै रईं कै मैं चली जाँवौं।

राजा की बेटी - भौजी तुमतौ जानैं कैसो बतकाव कर रईं, मैं कुँआ पै ई खौं आ गइती, मोय का पतौ हतो कै इनैं आजई आउनैं, मैं तो चीनत तक नईं हती।

भौजी - काय खौं बिन्नू - 'मन-मन भावे मूँड़ हिलाबै' जाव अब अच्छी तरा सैं चीन लो।

(ऐसा कहकर भौजी ननद को भोजन का थाल देकर भेजती है, बेटी वहाँ जाकर भगवान से विनती करती है कि मैं ऐसा नहीं जानती थी कि यह मेरे पतिदेव हैं। ऐसा सोचकर गल्ती हेतु कहती है -)

राजा की बेटी - *"चन्द्र बदन मृग लोचनी, राजा ठाँड़ी आकैं द्वार।*
कर जोरैं विनती करै, राजा खोलौ बजर किवार।।

राजा का कुँवर - (क्रोधित होकर) इतै सै जावो होवै काय सैं कै -
"तुम हंसन की हंसनी, हम कग्गा गैल गमार।
तुम महलन मोती चुनौ, हम जूँठन करैं अहार।।

राजा की बेटी - कुँवर साब जू मैंने अपन सैं जान बूझकैं नौईं कइती, अनजाने में मोय कै आई सो -
"अनजाने की बात कों, राजा तुमई करौ निरधार।
बीती ताय बिसार कैं, राजा खोलौ बजर किवार।।

(बेटी ने कई प्रकार से विनती की परन्तु कुँवर ने किवाड़ नहीं खोले तो बेटी दुखी होकर वापस आकर भावज से कहती है -)

राजा की बेटी - भौजी... भौजी... भौजी...

भाभी - *(ननद की आँखों में आँसू देखकर भाव समझकर कहती है)*
"कैसे सुवना अनमने, उर कैसे वदन मलीन।
का भेंटे नहिं साजना, जासौं मुख दुत छीन।।"

(भावज ने बहुत कुछ पूछा मगर ननदी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। प्रातःकाल विदा होने लगती है। इसी बीच कुँवर खवास के पास आकर कहता है कि -

राजा का कुँवर - खवास कका जू तुम कलेऊ कर लो चाय बाँद लो, तुम चलौ हम आय जात।

नाई - मोय नईं करनैं कलेऊ मलेऊ, मोई रात तौ बड़ी दारै कटी, अपन झट्ट आ जइयौ, मैं तौ जा रऔ।

(खवास चला जाता है, बेटी की विदा होने लगती है, सभी औरतें कुँवर से चुहलबाजी करने लगती हैं, तभी भावज कुँवर के पास जाकर कहती है -

भाभी - कुँवर साब जू का बात है, बिन्नू साब अपनी अगवानी करबे कुअला तक पौंच गईं तीं, तौऊ राते उनकौ वदन मलीन हतौ। सो घरै जाकैं सबई समार लिइयौ। वे तौ खुदईं मना लैं। इतै तौ मायकौ आ हतौ सो सबई की लाज सरमन के माँय कछू नईं कर पाईं।

राजा का कुँवर - *(उदास होकर)* जौ तौ सब अच्छौई-अच्छौ है, जल्दी होव, अबेर न करौ बिलात दूर जानैं दुपरिया ना हो जावै।

(कुँवर की विदा हो जाती है वे बेटी को लेकर चलने लगते हैं रास्ते में राजा की बेटी कुँवर से हाथ जोड़कर विनती करती हुई कहती है-

राजा की बेटी - राजा साब जू, मो सैं गल्ती तौ भौतई हो गई, अकेलें मैनें जानबूझकै नौंई कइती। अनजाने की बात खौं साँसी जिन मानौं, मोव कसूर छिमा कर दो। *(कुँवर कुछ जबाब नई देता है जंगल में एक मउआ के पेड़ के नीचें बैठाकर बेटी से कहता है।)*

राजा का कुँवर - अपन इतईं मउआ के पेड़ के तरैं उसास करौ। हम कुँआ ढूढ़कैं पीवे खौं पानी भरैं लयैं आउत।

(कुँवर चला जाता है, बहुत देर तक वापस नहीं आता है बेटी घबड़ाती हुई उसे खोजने जंगल में रोती फिरती है थककर एक बबूल के पेड़ के नीचे बैठ जाती है। धीरे-धीरे संध्या हो जाती है, इसी बीच बेटी को घोड़े की टापों की आवाज सुनाई दी तो धैर्य बंधा, लेकिन वह घोड़ा वाला कुँवर न होकर शिकारी था। जो राजा गिलंद का मंत्री था, वह बेटी से बोला -)

मंत्री - कवौ बेटी अपन अकेली काय फिर रई, तुमाय संगै कोऊ है नइयां का।

(बेटी से कुछ उत्तर न मिलने पर राजा गिलंद के पास आकर कहता है।)

मंत्री - राजा साव जू बियावान जंगल में एक राजा की बेटी अकेली रो रई है, मैंने उयै समजावे की भौतई कौसस करी लेकन ऊनै कौनऊ जुआप नई दऔ। *(मंत्री की बात सुनकर राजा गिलंद स्वयं उस बेटी के पास जाकर बोले -)*

राजा गिलंद - बेटी हम राजा आयँ, हमाव नाव राजा गिलंद है। तुम इतै ई डाँग में अकेलीं काय फिर रईं। तुमाय संगै कोऊ है कै नइयाँ।

राजा की बेटी - *(बिलखती हुई)* जनीमांस खौं जौन दुख भौतई बड़ौ होत, सो बेऊ दुख मोय है। हमाय भरतार ई घनी डाँग में अकेलौ छोड़ कैं चले गये। मोय जेउ पतौ नइयाँ कै मोव सासरौ कितै है। *(रोती हुई कहती है -)*

"कहाँ जाऊँ कैसी करूँ, कहा रची करतार।
निर्जन वन में छोड़ कैं, मोय गये भरतार।।"

राजा गिलंद - अब तुम रोव जिनौ, जा बताव कै तुम हमाय संगै चलकै मेहलन में रानी बन कैं रै सकत।

राजा की बेटी - नईं राजा साब, रानी बन कैं नईं रै सकत।

राजा गिलन्द - तौ फिर दासी बन कैं रै सकत।

राजा बेटी - दासी... राजा साब तुमईं सोचो दासी कैसे बन जैवं।

राजा गिलन्द - तौ फिर तुमई सांसी साँसी कवौ, कौनऊँ शर्त होय तौ बा बतावं।

राजा की बेटी - मैं बारा बरसैं शंकर जू की पूजा फल फूल खाकैं करौं, जौन जांगा मोव रैवौ हुयै उतै कौनऊ लोग मुंसेलू नई आ सकत। वारा बरस के बीचूँ हमाय भरतार जू आजै तौ मैं चली जैव। कजंत कोऊ नई आव तौ फिर जैसी अपन की मर्जी हुयै सो मानौं।

राजा गिलंद - भौतई साजी बात है, बारा सालैं तुम हमाई बेटी मानक रैव। तेरई साल के लगतईं जौ रिस्तौ मिट जै।

(राजा सभी सैनिकों सहित बेटी को लेकर वापस राजमहल में आते हैं, बेटी को अलग रुकने का प्रबंध करवा देते हैं। बेटी शंकर भगवान की पूजा करती हुई समय व्यतीत करती है। यहाँ प्रधान का कुँवर अपनी विदा कराकर निर्धारित स्थान पर रुकता है। कुछ समय बाद राजा का कुँवर वहीं आ जाता है। उसे अकेला देखकर प्रधान का कुँवर कहता है -)

प्रधान का कुँवर - कवौ कुँवर साव, दुलइया जू खौं काँ छोड़ आय।

राजा का कुँवर - (बहाना बनाकर) मिन्त तुमें का बताँवौ, हमनै भौतई तौ कई अकेलें उननैं कुन विदा करी।

(ऐसा कहकर राजा का कुँवर एवं प्रधान का कुँवर राजधानी वापस आकर रहने लगते हैं। बहुत समय व्यतीत हो जाता है। एक दिन दोनों चौपर खेल रहे थे तो उसी समय प्रधान के कुंवर ने कहा -)

प्रधान का कुँवर - कुँवर साव जू, बिलात दिना हो गय, चलौ विदा करा लिआएँ।

राजा का कुँवर - *(सहमकर)* मिन्त... कियै... कितै... सैं... लुवाउन जात।

प्रधान का कुँवर - कुँवर साब का फिर सुद भूल गई गाँव नाव की। का पौंचे नईं हते उतै।

राजा का कुँवर - जा नौंई कै रय कै पौचें नई हते, अकेले... जा... कै रये के ससरार अब कीकौ लुवावनो करत, उतै को है।

प्रधान का कुँवर - जीब कड़ौरां कैसी बतकारौ कर रये, साँसी-साँसी बताव का बात है।

राजा का कुँवर - तौ फिर साँसी साँसी सुनई लेव। हमं इतै सैं खवास कक्का के संगै ससरार के गैवड़े पौंचे सो उतै एक बेटी कुआँ पै पानी खैंच रइती सो पैलऊ खवास कक्का नें ऊसै कछू कई सो ऊनै खवास कक्का खों टकासौ जुआव दऔ, ऊकै - पछाँय खवास के रोकतई रोकत मैं गऔ सो मैंने तनक हंसी कौ बतकारौ कर धरौ, सो ऊने मोई सैं अण्ट सण्ट बतकारौ कर डारौ। में अपनी सी मौं लैकें भगकैं खवास कक्का नौं आव। होत करत दिन डूबैं ओई द्वारैं पौंचे जितै बा बेटी पानी भर कैं गई। सो देखतनई मोय तरवन हो झार छूट गई। रात में खवास कक्का कौ डेरा पौर में उर मोव भीतर घर में। सो मैंने किवार बन्दकर लय। बेटी मोसे किवार खुलवावे खूब विनती करत रई मैंने नईं खोले सो बा रोउत लौट गयी। भुन्सरा भयें खवास कक्का तौ अगाँई भग आव, मोई विदा तनक देर में भई, सो दुपइया होत-होत मैं ओई डाँग में आ गऔ। बा मोसैं गैल-गैल भौत हा-हा भराई करत आई। अकेलें में नई बोलौ। बीच डाँग में उयै एक मउआ के पेड़े के छायरे में बैठार कै पानी भरवे के बहानें अकेली छोड़ कैं भग आव। तुमसैं मैंने बहानौ बनाकैं कै कइती कै विदा नईं करी। अब बताव कितै जात ससरारै, जाकै का कै उनसैं, कैसे मौ दिखायँ उनैं।

प्रधान का कुँवर - कुँवर साब, मोय मौ सैं जैसी भर भर आ रई। सो का कवौं। जा बताव कै बर्रइयन खौं खोजया कैं तुमई नैं तौ ऊसें आड़ी ठाड़ीं कईं, बा तुम सैं उपत कै नौई बोलन आई ती। ऊपर सै तुम ऐसी जागा छोड़ आये कै कछू कतन नईं बनत। तुमें तनकई सरम नईं आई। तुमनें भौतई गलती करी। अब ऊयै ढूँढ़वे की झट्टई तैयारी करौ।

(दोनों राजा की बेटी को ढूँढ़ते हुए वन-वन भटकने लगे। जंगल में एक भीलनी मिलती है। इन्हें देखकर वह कहती है -)

भीलनी - मालक साव जू इतराजी छिमा करियो। मोई जा लकरियन की मौरी उठवा जइयौ।

राजा का कुँवर - *(उठाते हुए)* तुमाई मौरी तौ भौतई गरई है। जा तौ उठई नई रई।

(दोनों कुँवर बार-बार उठाते हैं फिर भी लकड़ी का गठ्ठा नहीं उठता है तो भीलनी कहती है)

भीलनी - अपन राजन के कुँवर आ कुवाउत, मौरी उठावे में कसालौ पर रऔ।

धरत हुऔ कैसैं कँधन, तुम दीन प्रजा कौ भार।
उठत नईं तुमसैं कऊँ, एक नार कौ भार।।
हम डाँग की भीलनी, अत नैची जात गवार।
देखत में मोखौं लगौ, तुम दोऊ राजकुमार।
हँसी करत में रस रयै, रस में रस सरसाय।
सोच समझ ऐसी लगै, करौ मस्करी जाय।।

राजा औ प्रधान का कुँवर (दोनों सहमें हुए पर साहस के साथ) -तुम डाँग की रानी कुआउत, तुमसैं हँसी मस्करी ना करैं तौ फिर

कीसैं करैं।

भीलनी (मुस्कराते मुँह चलाते हुए) – मो सैं का मस्करी करौ, उतै जाव राजा गिलंद के तै, नई रानी आई सो उतईं जा कैं करौ।

प्रधान का कुँवर – साँसी बताइयौ राजा गिलंद की नई रानी कितै सैं आई।

भीलनी – वे फौज फाँटे के संगै डाँग में शिकार खेलत फिरत ते सो मंत्री खौं एक बमूरा के पेड़ के तरैं रोउत बैठी वा रानी मिली ती सो राजा साब ऊखौं महलन में लियायते। अब ऊके रैबे के लानै नियारौ मैहल बन रऔ।

(भीलनी की बात सुनकर दौनों कुँवर राजा गिलन्द के यहाँ बनते हुए महल के पास जाकर बेलदार बनकर काम करने लगते हैं। एक दिन राजा गिलंद की बेटी नया महल देखने जाती है। जिसे देखकर प्रधान का कुँवर कहता है –)

प्रधान का कुँवर – "चन्द्रमुखी बिलखत रयै, दासी मन मुस्काय।
एक सोय सुख नींद में, एक गिनत-गिनत दिन जाय।।

(बेलदार की ऐसी बात सुनकर राजा गिलंद की बेटी चुपचाप महल चली गयी, फिर नौकर से उन दोनों बोलदारों को एकान्त में बुलाकर पूँछती है –)

राजा गिलन्द की बेटी – साँसी-साँसी बताव तुम दोई जनें को आव उर ऊ बेरा हम महल में देख रयते सो का कइती। साँसी बताइयौ नईतर सूली पै चढ़वा दैं दोई जनन खौं।

प्रधान का कुँवर (निर्भीकता से) – मैंने जा आ कइती कै अपन तौ चन्द्रमुखी हौ, जिनकौ अबै बियाव नईं भऔ उर एक दासी के लानें राजा नव महल बनवा रये, जा कित्ती बुरई बात है।

राजा गिलन्द की बेटी – तुम तौ भौतई चतुर दिखात। अब दोई जनें इतईं हमाय महल में रऔ। तुमाव सब इन्तजाम हो जैहै।

(दोनों कुँवर को रहते हुए बहुत दिन हो जाते हैं तो एक दिन बेटी से प्रधान के कुँवर ने कहा –

प्रधान का कुँवर – हमाई एक ठऊ बात है सो ऊखौ पूरी करवा दो तौ भौतई नौनी रवै, काय सैं कै जीके लानें महल बन रऔ वा कैसी है)

राजा गिलन्द की बेटी – हम मिलांय तौ ऐन देत लेकन हमाई एक शर्त है।

प्रधान का कुँवर – कवौ का शर्त है तुमाई।

राजा गिलंद की बेटी – नई रानी सैं हम मिलवांय देत। अकेलें तुमें राजा के कुँवर के संगै हमाव वियाव कराउनै आय। अब जैसी जानौं सो सोस समज लो।

प्रधान का कुँवर – लेव जौ तौ बाँय हाँत कौ काम आय। तुमें विस्वास न होय तौ ना मिलाव, पैलऊँ तुमाव बियाव करायँ देत।

राजा गिलंद की बेटी – हमें तौ पूरौ विश्वास है, चलौ अबई हाल मिलवांय देत।

राजा गिलंद की बेटी – (पिता के पास जाकर) जे दोऊ जनें अपनै मेहल में बेलदार कौ काम भौत दिनन सैं कर रये, सो इनें देख कैं भौतई दआ आई सो तुमाय ऐंगर आ लुवा लियाई।

राजा गिलदं – (कुवरों से) अपन इतै कैसे आय, हमाय मैहलन में रै रई नई रानी सैं तुमाव कछू रिस्तौ है का।

राजा का कुँवर – हवो राजा साब, हमाई रानी आय, भगवान की मर्जी कछू सो कौनऊँ कारन सै हम उनसैं बिछड़ गयते सो ढूँढ़त... ढूँढ़त पतौ लगौ सो इतै चले आय।

राजा गिलंद – कुँवर साब, तुमाई रानी आय तौ ऐन लुवा लै जाव, मै तौ उनखौं बारा साल तक बिटिया मानक राखवे को वादा करकैं लुवा लियाब तो, अब अपन बारा बरस के पैलऊँ आ गय सो सौंक सैं लुवा जाव हमें कौनऊँ उजर नइयाँ।

(मंत्री राजा आपस में परामर्श करते हैं तो मंत्री कहता है)

मंत्री – जा तौ अपनी भलमन्सयात आय सो रानी खौं पौंचा रये। ई के संगै एक विनती और है हुकम होय तौ कवौं।

राजा गिलंद – तुमई सला दैवे बाय सो ऐन कवौ, ईमें काय की शंका करनै।

मंत्री – मोय जा आ कनैती कै अपनी बिटिया सियानी सौयंवर जोग हो गई। सो कुँवर घर बैठे आ गय सो इतै उतै काय खौं ढूँढ़त फिर बू, बड़े सियाने कनईं लगत कै घर बैठें नाग न पूँजे, बामी पूँजन जाएँ।" ई सैं सब सोस समज कैं बेटी कौ बियाव राजा के कुँवर के संगै कर दो।

राजा गिलंद – तुमनै। तौ भौतई नौनी बात कई, बेटी के बियाव की फिकर मिटजै। दौई जनन की जोड़ी उम्दई रई।

ऐसा कहकर बेटी का विवाह राजा के कुंवर के साथ हो जाता है, दोनों रानियों सहित राजा का कुंवर एवं प्रधान का कुंवर अपने राज्य वापस लौट आते हैं लोक नाट्य समाप्त हो जाता है।

– प्राचार्य, शास. महाविद्यालय पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़

आतंक कौ अजगर

– डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

जाँ देखौ ताँ डोलत है आतंक कौ अजगर।
बोली बम की बोलत है आतंक कौ अजगर।
ऐसी लागत जा जगती का एकई बेर में लीलै।
मों भौत बड़ौ खोलत है आतंक कौ अजगर।
बहुरूपिया रूप बनातई देखौ तौ इयै चायँ जब।
घर-घर में विष घोलत है आतंक कौ अजगर।
कई आतमघाती बन रए कई घुसपैठिए घुसत हैं
अपनी ताकत तौलत है आतंक कौ अजगर।
रुपयन की थप्पी दैकें लुभयाउत है लोगन खों।
मन पैलऊँ टटोलत है, आतंक कौ अजगर।
होकें एकई जुट करनें पर है जाकौ मों कारौ।
भूकम्प सौ झकझोरत है आतंक कौ अजगर।

– गुरसराय, झांसी (उ.प्र.)

बुन्देली लोक गीतों में रामकथा

- डॉ. के.एल. वर्मा 'बिन्दु'

:"कहानियों की जनक लोक कथाएँ हैं और काव्य की आत्मा लोकगीत हैं।" एमोलिन माटनो

यह कथन अक्षरशः सत्य है क्योंकि जब सूर्य की प्रथम किरण ने जगत में स्पन्दन भरा होगा, सम्पुटित कलिका ने अंगड़ाई ली होगी, चिड़ियों ने कलरव से परिणय कर, मौनवृत तोड़ पर फड़फड़ाये होंगे, उसी क्षण हर्ष एवं विषाद की वाह-आह ने जो स्वर मुखरित किया होगा, अपरिचित स्वरूपों से चिर परिचित रागात्मिक परिचय बढ़ाया होगा, उसी समय लोक साहित्य सृजन की प्रक्रिया शुरू हुई होगी, क्योंकि मानव अशिष्टता की गोद में शिष्टता वरण कर सका है। कच्चे लोहे से, अनगढ़ पत्थर से नूतन कला कृति तक आने का सफर तैयार कर पाया है। पंक से पंकज हुआ तदोपरान्त सुरभि से सुवासित हुआ है जन जीवन का उपवन।

लोक साहित्य अंग्रेजी के 'फोक साहित्य' का हिन्दी अनुवाद है, जिसका सामान्य अर्थ है - जन सामान्य में प्रचलित साहित्य जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीय तथा पाण्डित्य की चेतना से अलग होता है। जिसमें किसी प्रकार का अहंकार नहीं होता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने ठीक ही कहा है "लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज उसे समाज, लोक समूह अपनी ही मानता है और जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय, प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।' वास्तव में नागर साहित्य का जनक लोकसाहित्य ही है। जन जीवन को समझने का सबसे बड़ा साधन लोक साहित्य ही है। लोक साहित्य में लोक भावना, लोकभाषा तथा लोक शैली में कही गई मिलती है। यहाँ दुराव नाम मात्र को नहीं मिलता, क्योंकि "लोकगीत जनता का, जनता के लिए जनता द्वारा रचा हुआ काव्य है।" - ग्रिम

किसी भी जाति की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति से अवगत होने के लिए उसके लोक साहित्य का अध्ययन कर ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। करमा जाति के एक लोकगीत में आता है यदि तुम मेरे जीवन की कथा जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो। भारतीय संस्कृति का मूलाधार हिन्दु धर्म है। हिन्दू धर्म की प्राणाधार राम कथा है उसको जन जन के मन में गहरी पैठ कराने का श्रेय महाकवि, महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी को है। रामकथा वाल्मीकि जी उपरान्त लोक साहित्य में स्वच्छन्द सरिता सी निरन्तर प्रवाहित होती आई है। आदि कवि बाल्मीकि ने राम जन्मोत्सव पर गन्धर्वों द्वारा गाने तथा अप्सराओं द्वारा नाचने का उल्लेख किया है।

जगुः कलं च गन्धर्वाः ननुतुश्चाप्स रोगणः
देयदुन्दुभयो नेदुः पुष्पि वृष्टिश्च खात्पतत्।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में राम, लखन, भरत, शत्रुघन के जन्मोत्सव पर स्त्रियों द्वारा लोकगीत गाये जाने का उल्लेख किया है।

गावहिं मंगल मंजुल वाणी, सुनि कलरव कल कंठ लजानी।

बुन्देली लोक कवि भी इस परम्परा के निर्वाह में अछूते नहीं रहे हैं बुन्देली नारियाँ गा उठती हैं -

जनमें हैं राम रघुरइया, अवध में बाजे बधइयाँ।
माई कौसल्या सोर परी है, जनमें है राम जू से छइया।
माई सुमितरा सोर परीं हैं, जनमें हैं लखन जू से छइया।
माई केकेई सोर परी हैं, जनमें है भरत जू से छइया।
अवध में बाजे बधइया।

प्रस्तुत सोहर गीत में अवध के राजा दशरथ के चारों पुत्रों के जन्मोत्सव का सजीव वर्णन है, बुढ़ापे में एक सन्तान नहीं चार-चार सन्तानें हुई हैं। एक रानी नहीं तीनों रानियाँ सोर परीं हैं। बूढ़े पिता-राजा दशरथ को इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है, इसीलिए राज परिवार में आज खुशियों का मेला है। सोहर गाये जा रहे हैं। बधइयाँ नृत्य न्योछावर गीतों का कार्यक्रम गाजे बाजे के साथ सोल्लास चल रहा है।

राम चारों भाइयों सहित अवध की खोरिन में खेल रचा रहे हैं। राजा दशरय पिता कर्तव्य निर्वाह कर उन्हें खेलने से हटकते हैं, किन्तु राम भाइयों सहित उमंग के साथ किलोलें कर किलकारी भरते हैं, उछलते हैं, कूदते हैं, नाचते हैं, खेलते हैं। प्रकृति भी उनकी क्रीड़ा में तालमेल कर साथ देती है। सरितायें उल्लसित हो प्रवाहित होती हैं। इन्हीं भावों भरा बुन्देली गीत इस प्रकार है -

जिन खेलो अवध की खोरन में, जिन खेलो अवध की खोरन में।
राम-लखन, भरत, शत्रुघन, चारऊ भइया किलोरिन में।
गंगा, जमुना उर सरसुती तीनऊ बैने हिलोरिन में।
जिन खेलौ अवध की खोरिन में।

दशरथ जू के चारों पुत्र बड़े होते हैं। विवाह हेतु दूल्हा बनकर जनकपुर जाते हैं। उनके बेशविन्यास की साज-सज्जा एवं अनुपम माधुरी का अनूठा वर्णन बुन्देली गीत में इस प्रकार है -

राम लखन मोरी गली आव रसवारी के भौंरा रे।
मोर मुकुट प्रभु बाँदे चले आव रसवारी के भौंरा रे।
कलगिन बीच वारी सिया खों रिझाव, रसवारी के भौंरा रे।
नैनन सुरमा आँजे प्रभु चले आव, रसवारी के भौंरा रे
भौंहन बीच वारी सिया खो रिझाव रसवारी के भौंरा रे।
पानन बीरा प्रभु चावें चले आव, रसवारी के भौंरा रे।
पीकन बीच वारी सिया खों रिझाव, रसवारी के भौंरा रे।
कानन कुण्डल प्रभु पैरें चले आव, रसवारी के भौंरा रे।

गुँजन बीच वारी सिया खों रिझाव, रसवारी के भौंरा रे।
केसरिया बागो प्रभु पैरे चले आव, रसवारी के भौंरा रे।
पनरस बीच वारी सिया खों रिझाव, रसवारी के भौंरा रे।
हाँतन प्रभु चूरा पैरे चले आव, रसवारी के भौंरा रे।
कंगन बीच वारी सिया खों रिझाव रसवारी के भौंरा रे।
पाउन तोड़ा प्रभु पैरे चले आव, रसवारी के भौंरा रे,
माहुर बीच वारी सिया खों रिझाव, रसवारी के भौंरा रे

प्रस्तुत लोकगीत में बुन्देली संस्कृति, राम की दूला बानक माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। दूल्हा राम सिर पर मौर धारण किए है। कलगी बांधे है। केशरिया बागो पहिने है। कानन कुन्डल हातन चूरा, पाउन तोड़ा धारण किए है। काँजर आँजे है। पान का बीरा चावे हैं। पैरों में माहुर रचा है, दुल्हिन सिया को आकर्षित करने की अनोखी छटा से मण्डित है, इतना ही नहीं रस की फुलबगिया का राम रूप मौरा हैं। ऐसे मधुरिम रूप को, सुहृदय मृगनयनी सहेलियाँ गीत गा-गाकर आतुर हो अपनी गली में बुलाने को पुकारने की बार-बार आकाँक्षा करती हैं। क्यों? सिर्फ रामरूप दर्शन हेतु...... .... अन्य कार्य सीता के लिए है वह भी सिर्फ रिझाने का. ....। अगले गीत में राम सीता की शादी का वर्णन है। चढ़ाव चढ़ने की रस्म हो रही है, सीताजू को चढ़ाव चढ़ रहा है।

मोरी सीता कौ चढ़त चढ़ाव, दौरी ककना काय नईं ल्याय।
गहनो के अनेक नाम काय नई लियाय।

प्रस्तुत गीत में बोल पुनः एक-एक गहने का नाम परिगणन शैली से व्यक्त हो, नारी हृदय की स्वाभाविक रुचि, गहनों का चिर प्रेम युक्त चाव-मुखरित हो उठता है। कहीं बरा-बाजूबन्द, दौरी, ककना, पटेला, चूरा, वजुल्ला, गुन्जे, गजरा, मुंदरी, पैंती, गुन्जे, बखुरियाँ, टिकुली, टीका, बेंदी दाउनी, तरकियाँ, कन्नफूल हमेल, लल्लरी, खँगोरिया, तिदानौ, बिचौली दुर, नथ पुँगरिया, अनोखा, झाँझे लच्छा, पाँव पोस, बिछिया, ऐठी पैजना, छीताफली, पैजना आदि का सरस वर्णन आकाँक्षा बन प्रकट होता है, तो कहीं वस्त्रों में जड़तारू सारी हेतु नारी कंठ मुखरित होने लगता है।

राम विवाह सम्पन्न हो जाता हैं। सीता की विदा का करुणिम अवसर आता है, प्राणों से प्यारी बिटिया स्वजनों से विलग होकर बिसूरती कहीं अन्यत्र जाती है। जिस घर की वह सम्पत्ति थी, प्राणिम आभा थी, सब कुछ थी, घर की रौनक थी। बुन्देली संस्कृति अनुसार पाप मोक्षदायिनी थी वही, उस घर को जो उसका आज तक क्रीड़ांगन था, अपना था, राहगीर की तरह छाया सदृश्य, विश्राम कर छोड़ चल देती है। भावात्मिक करुणा मन में हिलोरें लेती है, जन-जन की आँखों की कोरें आँसुओं से गीली हो जाती है। सीता विदाई करुण क्रन्दन-लोक कवि की वाणी से फूट पड़ता है -

रामा लिवॉय लॅय जात, माई मोरी सुद न बिसारियो
माई के रोय नदी जमना बहत है, बाबुल के रोय बेलाताल
माई मोरी सुद न बिसारियो
बाबुल कयें बेटी रोजई आइयो, मइया कयें दोऊ जोर
भइया कये बैना ओसर आइयो, भौजी कयें कौन काम
माई मोरी सुद न विसारियो

बिटिया की विदा की बेला में माँ की आत्मा फड़फड़ाती है, परकटे पक्षी की तरह विह्वल हो करुणा क्रन्दन करती है। हृदय की अनुहार को विलग कर आकुल हो व्याकुल होती है, क्योंकि नारी जीवन नारी की व्यथा को स्वानुभूति के माध्यम से अधिक आत्मसात करती है। बाबुल के रोने में गाम्भीर रहता है। भाई स्नेहासिक्त हो व्यथित होता है। भौजाई को दुख होता है न के बराबर क्योंकि बुन्देली कहावत में कहा गया है, 'ननद रैन की भली नई होत आय', इसीलिए भौजी ननद के बुलाने पर ''कौन काम'' बोलकर उसकी उपेक्षा करती है, बुन्देली लोक गीतों में ननद भौजी के व्यवहार में माधुर्य नाम मात्र का भी नहीं दिखाई देता है।

लोक संस्कृति में नई नवेली दुल्हिन को गृह लक्ष्मी का दर्जा दिया गया है। बुन्देलखण्ड में बहु लिवाने, बहु उतारने की रस्म निभाई जाती है, स्त्रियाँ मंगलाचार में गीत गाती है। घर-घर में सीता सी बहु आती है बोल गुंजरित होते हैं -

बियाय लियाय रघुवर जानकी जू
धन्य भाग उन राजा दशरथ के जिन बहु पाई जानकी जू
धन्य भाग उन रानी कौसल्या जिन बहु पाई जानकी जू
धन्य भाग उन रानी सौमित्रा जिन बहु पाई जानकी जू
धन्न भाग उन रानी कैकई, जिन बहु पाई जानकी जू
धन्य भाग उन लाला लखन जू, जिन भौजी पाई जानकी जू

सीता जू जैसी सुघड़ सुन्दर बहू पाकर दशरथ जू एवं समस्त रानियों के भाग्य धन्य हो गये हैं, लखन आदि देवर भी भाभी के रूप में जानकी जी को पाकर भाग्यवान हो गये हैं क्योंकि सम्मिलित परिवार की गरिमा, आदर्श बहू के आगमन पर सुरक्षित है, उसके अभाव में नहीं इसी अहम पुनीत भाव की अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में ध्वनित होती है।

रामकथा का वह करुणिम दृश्य आता है, जहाँ करुणा-सागर उमड़ कर अयोध्यावासियों को दुख की अथाह गहराई में डुबो देता है। राम का वनवास होता है, यही क्षण राम को महाआज्ञाकारी सिद्ध कर देता है, मर्यादा पुरुषोत्तम बना देता है। महापुरुषों के उच्चासन पर आसीन करा देता है, किन्तु भरत के जीवन में ग्लानि भर व्यथा की आग सुलगा देता है। सम्बन्ध भावना से पीड़ित हो भरत अश्रु ढुलकाते हैं, विलाप करते हैं जैसेही कैकेई राजा दशरथ से राम वनवास हेतु वरदान माँगती है लोकगीत में पुकार उठता है लोककवि-

कैकेई ने बोले हैं बोल, भरत के दिन दिन अँसुआ गिरन लगे।
अरे हाँ हो राम जी, कुवला होते बाँद लेते, समुंद न बाँदे जाय।
अरे हाँ हो राम जी कागद होते बाँच लेते, कऊँ करम न बाँचे जाय।
भरत के दिन-दिन अंसुआ गिरन लगे।

राम का चरित्र गरिमायुक्त है। सागर की तरह अथाह है।

राम को रोकना सागर को बाँधने की तरह असम्भव है। भरत के वश की बात नहीं है। बचन निर्वाह राम के लिए श्रेष्ठ है। अन्ततः भरत हताश हो, भाग्य की रेखा समझ कर बिसूरते रहते हैं और राम बन को चले जाते हैं। रह जाते हैं खिन्न विषाद पूरित भरत।

स्मृति के माध्यम से प्रिय की याद दुखदाई होती है। प्रकृति भी प्रिय की याद में कष्टदाई होती है, फिर माँ का हृदय तो पलपल प्राणों की धरोहर - बेटा राम के हेतु सदैव आकुल हो व्याकुल होता है। माँ कौशल्या राम लखन सीता के वन गमन पर फूट-फूट कर रोती है, करुण क्रन्दन पर विलाप करती है, निःस्वासें छोड़ती हैं। स्मृति जन्य भावनाओं में आत्मविभोर हो, प्रकृति के क्रिया कलापों से साहचर्य कर मन मसोस-मसोस कर अश्रुबिन्दु ढुलकाती है, विह्वल होती है -

निकर गये दोई भाई वन खों, निकर गये दोई भाई।
राम बिना मोरी सूनी अजुद्दया, लखन बिना ठकुराई।
सीता बिना मोरी सूनी रसोइया, कौन करे चतुराई।
असड़ा गरजे सावना बरसे, पवन चलै पुरवाई।
रिमझिम रिमझिम मेघा बरसे भींज गई अमराई।
कौन विरछ तके ठाँड़े हुइये सीता लखन रघुराई।
भीतर रोबै माई कौसल्या, बायरें भरत से भाई।
ठाँड़ी-ठाँड़ी पिरजा रोबै, जौ दुख सऔ न जाई।
राजा दशरथ पिरान तजे हैं, कैकई मन हर्षाई।
वन खों निकर चले दोई भाई।

बुन्देली लोक कवि ने कैकेई को हर्षयुक्त दर्शाकर क्षण मात्र में पाषाणी सिद्ध कर दिया है, जिसमें कुकर्म पर संसार थू-थू करता है।

वन में राम-सीता-लक्ष्मण तपस्वी वेश धारण किये चले जा रहे हैं। राम अपना दैनिक कार्य स्वयं करते हैं। दूसरों की सेवा उन्हें स्वीकार नहीं है। त्याग, तपस्यामय जीवन की महिमा खण्डित होने का भय उन्हें सचेष्ट किये रहता है और अपने कर्तव्य के लिए सदैव सचेत रहते हैं। यही तो राम के चरित्र की मौलिक विशेषता है। कर्तव्य के प्रति सच्ची निष्ठा है। लोकगीत इन्हीं भावों को व्यक्त करता है-

रामा लखन तपसी दोऊ भइया, सादू बने चले जांय मोरे लाल।
चलतन चलतन कुअलन पौंचे ढीमरन गई घबरांय मोरे लाल।
घरीअक बिलमों ओ मोरे सादू, झारी भराँय लये जाव मोरे लाल।
तुमरी भराई झारी न पियें सादू, सादू धरम घट जाँय मोरे लाल।
चलत-चलत सादू बागन पौचें, मालिन गई घबराय मोरे लाल।
घरियक विलमौं औ मोरे सादू, गजरा गुवाय लये जाव मोरे लाल।
तुमाये गुवाये गजरा न पैरें सादू, साहू धरम घट जाँय मोरे लाल।
चलत चलत सादू तालन पौचे, धोबिन गई घबराय मोरे लाल।
घरिअक विलमौ औ मोरे सादू, उन्ना धुआँय लये जाव मोरे लाल।
तुमरे धुआय उन्ना न पैरें सादू, सादू धरम घट जाय मोरे लाल।
चलत चलत सादू रानी नौ पौंचे रानी गई घबराई मोरे लाल।
घरिअक बैठौ औ मोरे सादू, सेजा पौंढ़ चले जाव मोरे लाल।
तुमाई लगाई सेजा न पौढ़े सादू, सादू धरम घट जाँय मोरे लाल।

रामलखन सीता पर्णकुटी बना जंगल में निवास करते हैं। सीता के आग्रह पर राम स्वर्ण मृग मारने जंगल में चले जाते हैं। लक्ष्मण भी चीत्कार सुन सहायतार्थ वन में भटकते रहते हैं। कुटी में सीता अकेली रहती है कि मौका पाकर रावण आ धमकता है -

सिया हरन के लाने डोला आन धरे दरवाजे।
डोला आन धरे दरवाजे-डोला आन धरे दरवाजे।

लोकगीत असहाय नारी का बिम्ब बिम्बित कर करुणिम दृश्य उपस्थित कर देता है। जन-जन की आँखों के सामने सीता का भोला-भाला करुणिम स्वरूप सामने आता है, जहां गुमसुम चीत्कार है, विकलता है, नारी सुलभ विवशता है, दूसरी ओर रावण की विकराल, भयंकर क्रोधातुर डरावनी हुँकार भरी सूरत है। सीता हरण करने का कुकृत्य करने हेतु रावण को उतावली है और वह उनका हरण करता है। इसकी खबर राम को नहीं है किन्तु गिद्धराज (जटाऊ) अन्याय के विरुद्ध लड़ता मरता है। रावण खड़ग से उसे पंखविहीन कर सीता को ले जाता है, राम जटाऊ का दाह संस्कार कर परम पद प्रदान करते हैं। उसे मोक्ष प्राप्त होता है। कैसा सुन्दर समय था पक्षी तक अन्याय के प्रति प्राण न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे। विश्वकुख्यात सबल शक्तिशाली दुष्ट अन्यायी रावण से लड़ने को तैयार है। एक असहाय बुड्ढा निर्बल पक्षी- जिसमें मौत सुनिश्चित थी किन्तु जटाऊ जी को अन्याय सहन करना जीते जी मरना था, इसीलिए वह रावण से भिड़ जाते हैं, लड़ जाते हैं, उसे लहूलुहान कर स्वयं मर जाते हैं, भारतीय संस्कृति की अनूठी परोपकार युक्त भावों की सबल अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद में लोककवि ने की है -

सूनी मढ़ी हर लियाये जानकी, रामा खबर न पाई मोरे लाल
कौना की बहुआ, कौना की बेटी, कौना पुरुख की नार मोरे लाल
कौना की कइये परम सुन्दरी, कौना हरें लयें जात मोरे लाल
दसरथ की बहुआ, जनक की बेटी, रामा पुरुख की नार, मोरे लाल
उनई की कईये परम सुन्दरी रावन हरे लये जात मोरे लाल
गैला में मिल गये गिद्ध जटाऊ, रथ लीने विलमाय मोरे लाल
मार मार चोंचन लरी लराई, रावन पख गिराय मोरे लाल
ढूँढ़त ढूँढ़त पौचे रामजू गिद्ध डरे दिखाँय मोरे लाल
कऔ तौ गिद्ध फिर तोय जिआवें, कै वैकुण्ठ पौचाँय मोरे लाल
अब न श्रिआव तुम मोरे स्वामी तुमई करौ करनी सुदार मोरे लाल

बुन्देली लोक गीतों में रामकथा के करुणिम दृश्यों को मार्मिक रूप से व्यंजित किया है। सीताजू के वनवास का चित्र इस प्रकार है-

अरे राम जी, सूरज के मुरक गये घाम,
राम के रथ बिलमा लये काऊ सादू ने
अरे हाँ जी राम जी काये के रथला बने काये के डरे बुनाव,
राम के रथ बिलमा लये काऊ सादू ने
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने

अरे हाँजी राम जी को जो रथला बैठी को जो हाँकन हार
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने
अरे हाँजी राम जी सीताजू रथ ला बैठी लखन जो हाँकन हार
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने
अरे हाँजी राम जी कैसे रथला टूट गये कैसें झरे बुनाव,
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने
अरे हाँजी राम जी बैठत रथला टूट गये हाँकत टूटी रस्सी चार
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने
अरे हाँजी राम जी राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने
राम के रथ विलमा लये काऊ सादू ने

सीता की विवशता, असहाय स्थिति साधारण नारी का प्रतिनिधित्व कर जन जन को उद्वेलित कर झकझोर देती है। रथ का टूटना हृदयों का टूटना है, घर का छूटना है। बुनाव का टूटना स्नेह सूत्रों का छिन्न भिन्न होना है, अभिन्न होकर भी भिन्न भिन्न होना है, जो सीताजी के साथ हुआ और उन्हें शरण मिली एक तपस्वी के दर पर ऐसे सशक्त भावों की अभिव्यक्ति लोकगीत है, यही तो इनकी अनुपम भावना थाती है। धरोहर है।

सीता भारतीय संस्कृति की अनूठी प्रतिमा है। भारतीय नारी का आदर्शमय रूप सीता का आदर्श चरित्र है। सब कष्टों के झेलने के पश्चात् भी सीता के मन मन्दिर में राम की अनुपम छवि विराजित है। सुकुमारी सीता ने जीवन पर्यन्त राम के साथ साथ रहकर दुखों में अपने जीवन कमल को विकसित किया है, और जब सुखद क्षण आये वनवास पाकर, जीवन का करुणिम अन्त पृथ्वी में समाधिस्थ होकर किया है किन्तु मन बचन कर्म से राम ही सीता के आराध्य रहे हैं।

जीवन रहे हैं, प्राण रहे हैं। कैसा अनूठा कर्म स्तम्भ है। भारतीय ललनाओं को सीता का पुनीत चरित्र लोककवि भी कहता है -

सिया तुम्हारे मन में बसे हैं रघुवीरा, सिया तुम्हारे मन में बसे हैं,
छाया बनके दुख-सुख आये, भई न कभऊँ अधीरा।
सिया तुमारे मन में बसे हैं रघुवीरा,
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा है,
कोई कवि बन जाये अवश्य सम्भाव्य है।
राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है।

बुन्देली के जन कवि ईसुरी ने भी रामकथा के चुनन्दा प्रसंगों को अपनी चौकड़ियों में बाँधने का सफल प्रयास किया है। राम के वनवास का जो दारुण दुखदाई करुणिम दृश्य है, उसका उत्तरदायी ईसुरी ने कैकेई को माना है। पाषाणी कैकेई ने स्वार्थ पूर्ति हेतु देवतुल्य पति को स्वर्गवासी बनाया। कौसल्या एवं सुमित्रा की एक एक डरइया (पुत्रों) को वनवास दिलवाया, यदि वन में इन्हें कुछ हो जाता दोनों मातायें विधवा होने के साथ निपूती भी हो जाती। पति एवं पुत्र वियोग में दोनों जीवित नहीं रह सकती थी।

कैकेई द्वारा भयंकर विनाशकारी चाल, सोची समझी भयंकर कुटिलता थी। ईसुरी ने प्रस्तुत चौकड़िया में कैकेई की कुटिलता उजागर कर रामवनवास की व्यर्थता सिद्ध कर दी है -

बन खों पठे दये दोऊ भइया, काये कैकेई मइया।
पिता पठै सुरधाम, बोर दई, रघुवंसिन की नइया।
हती सुमित्रा, कौसल्या के, एकई एक डरइया।
ईसुर परी अवध में कारी, को पत-भाँत डरइया।
'ईसुर' परी अवध में कारी, को पत-भाँत रखइया।

रामायण के अन्य करुणिम प्रसंग को भी ईसुरी ने चौकड़िया जैसे छन्द में बाँधकर गागर में सागर भर दिया है। लक्ष्मण शक्ति आहत होने के कारण मूर्छित पड़े हैं। हनुमान जी संजीवनी लेने गये हैं। रात थोड़ी बांकी रह गई है। हनुमान जी विचलित होकर घोका-विचारी करते हैं, नहीं पहुँचा तो अनर्थ हो जावेगा। लक्ष्मण नहीं बचे तो राम राम नहीं रहेंगे। मेरा अभी तक का किया कराया धरा का धरा रह जायेगा कि हनुमान जी ने अति उत्साहित होकर हुँकार भरी और असम्भव को सम्भव कर डाला, जिससे लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा हुई और सेवक के धर्म का पालन यथा -

जो कहूँ बीत जामनी जैहै, का कोऊ मोसें केहै।
मरे धरे लक्ष्मण हम देखे, जियत राम न रैहै।
सुनतन बिपत अवध में परहै, जनक सुता तज दैहै।
फिर पीछें कें मूर संजीवन, लयें जात को खैहै।
'ईसुर' हनुमान दै हूँकें, थोड़ी रात अबै है।

इतना ही नहीं बुन्देली लोक भाषा के अमर गायक ईसुरी की फागों में राम के आध्यात्मिक रूप का सजीव वर्णन यत्र तत्र सर्वत्र दिखाई देता है।

ईसुरी बुन्देलखण्ड के जन-जन के प्रिय कवि हैं। रामचरित मानस की महिमा उन्होंने एक चौकड़िया में समाहित कर दी है। उन जैसे प्रतिभा सम्पन्न कवि का ही कार्य है अन्य का नहीं -

रामें लयें रागिनी जी की, लगत सुनत में नीकी।
छैऊ शास्त्र पुरान अठारा, चार बेद से झींकी।
गैरी भौत अथाह भरी है, थाह मिली न जी की।
ईसुर साँसऊँ सुरग नसेनी, रामायण तुलसी की।

चौकड़िया की समस्त कड़ियाँ भावों की अभिव्यंजना से उसी भाँति लदी है जैसे राम के चरित्र से रामचरित मानस, तुलसी की प्रतिभा से राम काव्य। अतः ऐसी अनोखी सर्जना के सर्जक ईसुरी के लिए कहा जाता है -

रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई ई कलि काल में, रची ईसुरी फाग।।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है। बुन्देली भाषा के लोकगीतों में राम कथा अबाध रूप से वर्णित है। इन गीतों में राम के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। गीतों की स्वाभाविकता सहज ही व्यक्त होती रही है। करुणिम दृश्यों में आत्मा रोई है, आध्यात्मिक रूप पर समर्पित होकर ससीम से असीम बनी है। बुन्देली साहित्य राम कथा को अपने पूर्ण सज धज के साथ संजोये है।

- १६३, कला निकेतन, नीरजा नगर, जे.के. रोड, भोपाल

ब्रजभाषा की कोकिला रानी कमल कुँवरि 'हितदासी'

- डॉ. जयेश खण्डेलवाल (हितजस अलिशरण)

ब्रजभाषा काव्य-कानन की नैसर्गिक शोभा अपने आकर्षण विशेष के लिये प्रसिद्ध है। इस आकर्षण का सर्वाधिक श्रेय इस कानन के गोस्वामी श्रीहित हरिवंश जी, स्वामी श्रीहरिदास जी, श्री हरिरामव्यास जी और सूर आदि मयूरों को तथा गंगा-यमुना, भागवती, मीरा, आनन्दी बाई, बखत कुँवरि और कमल कुँवरि आदि कोकिलाओं को ही है। इनकी मदिर-मधुर वाणी आज भी भावुक हृदयों को ब्रज का अनन्य भक्त बना देती है। प्रस्तुत आलेख में ब्रजभाषा की कोकिला रानी कमल कुँवरि का ही परिचय दिया जा रहा है।

गो. श्रीहित हरिवंशोदित रसोपासना की रसिक कवियत्रियों ने रानी कमल कुँवरि का नाम आज भी स्मरणीय है। इनका जन्म मध्यप्रदेशान्तर्गत दतिया राज्य से तेरह मील की दूरी पर स्थित उदगवाँ नामक ग्राम में विक्रमवेंशीय बहादुर सिंह जी के यहाँ हुआ था। माता-पिता ने कमल कुँवरि का पालन-पोषण एक राजकुमार की भाँति बड़े लाड़-प्यार से किया था। स्वयं कमल कुँवरि ने 'करुणा चौतीसी' नामक ग्रन्थ में इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है कि -

विक्रम के वंश में पमार धारा नगरी के,
शंकर शाह प्रगट भये नीति के निधान हैं।
हिन्दूपति-सुवनु तासु कीरति विलंद छाई,
धन्य बहादुर सिंह जानियौं दीवान हैं।।
राधिका-बिहारी की कृपा सौं हौं प्रगट भई,
जनम भूमि उदगवाँ विशाल सुखदान हैं।
'कमल-कुँवरि' नाम मेरौ तात-मात विदित कियौ,
पाल्यौ करि प्रेम लख्यौ पुत्र के समान हैं।[1]

किशोरावस्था प्राप्त होने पर परिवारजनों ने इनका विवाह सरीला (हमीरपुर) रियासत के दीवान सूर्य वंशीय अनुरुद्धसिंह के पौत्र के साथ किया था। अपने पतिदेव के वंश का परिचय इन्होंने इन शब्दों में दिया है -

जनमी विक्रम वंश में, व्याही वंश दिनेश।
सहर सरीले बसत हैं, अनुरुधसिंह नरेश।।
हिन्दूपति उनके सुवन, साँच प्रजा प्रतिपाल।
शंभु उपासी जग विदित, खल दुष्टन के साल।।
उनके सुत जाहिर जगत, समझौ तेज दिनेश।
बाँचौ उलटौ नाम गुन, जनु दूजौ राकेश।।
छत्रसाल के वंश में, उन सम भयौ न कोय।
मेरे जानौं सो पती, तरुनाई सजि मोय।।[2]

एक अन्य स्थल पर भी उन्होंने स्वयं को सूर्यवंश के राजाधिराज छत्रसाल सुवन जगतराज की सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न नरेश की पत्नी बतलाया है, किन्तु यह सभी अनुसन्धेय है कि इन हिन्दूपति नरेश का नाम क्या था? जिनकी कि ये पत्नी थी -

राजाधिराज छत्रसाल रवि वंश भये,
जगतराज सुवन लखौ तिनके भये आई हैं।
उनकी शुभ गादी पर सतयैं भुवाल प्रगट,
हिन्दूपति शंभु कृपा मंगल जस छाई है।।
दिनकर नरेश वेष धर्म शील प्रजापाल,
पतनी मुहि जानौं पति मेरे सुखदाई हैं।
'कमल कुँवरि' नाम हरिदासन की दास भई,
भागवत पुरान-भाषा गुरु प्रसाद गाई है।।[3]

इस छन्द की अन्तिम पंक्ति से यह भी ज्ञात होता है कि इन्होंने 'श्रीमद्‌भागवत महापुराण' का ब्रजभाषानुवाद भी किया था जो कि अभी तक हमें प्राप्त नहीं हो सका है। इन्हें संस्कृत साहित्य की शिक्षा विद्या निधि पंडित ब्रजलालजी द्वारा प्राप्त हुई थी। विद्या गुरु के रूप में उनका सादर स्मरण करते हुए ये लिखती हैं कि -

गुन की खदान ब्रजलाल वेष विद्या निधि,
कृपा करि बतायौ आनि मंगल सरसाई है।
सोच सैं उबारी हितकारी मोर विद्या गुरु,
भये मिहिरवान भक्ति राधावर पाई है।
लघु मति मलीन दीन पावन करि दई आप,
ऐसे करुनालय-पद वन्दत सिर नाई है।
'कमल कुँवरि' देववानी व्यास कौ पुरान कठिन,
गुरु के प्रसाद भाषा श्रीमत् शुभ गाई है।।[4]

उक्त पंक्ति में महर्षि वेदव्यासजी द्वारा देववाणी संस्कृत में रचित जिस पुराण के भाषानुवाद का संकेत किया गया है। वह संभवतः श्रीमद्‌भागवत महापुराण ही होगा, क्योंकि इन्होंने स्वरचित एक अन्य छन्द में - "भागवत पुरान भाषा गुरु-प्रसाद गाई है" लिखकर श्रीमद्‌भागवत की ब्रजभाषा व्याख्या करने का सुस्पष्ट उल्लेख किया है।

रानी कमल कुँवरि को प्रारम्भ से ही वृन्दावन में निवास करने की, वृन्दावनीय रसिकजनों का सत्संग श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा बनी रहती थी। जिसे उन्होंने स्वरचित पदों में यत्र-तत्र प्रकट भी किया है -

चाहौं श्रीवृन्दावन-वास।
आठ प्रहर येई रट लागी, चरन-कमल की दासि।
रसिकन कौ सत्संग दीजियो, दिन प्रति द्वादश मास।
कबहुँ न करहु चरन तें न्यारी, देखौं रास-विलास।।
राधावर भय बाधा टारौ, सुफल करौ मन-आश।
मेरैं मन चातक रट लागी, जुगल-दरस की प्यास।।
कुंजमहल की खास खवासी, कालिंदी के पास।

'कमल कुँवरि' चरननि की दासी, भय भंजन सुखरासि।।[5]

रानी कमल कुँवरि द्वारा प्रतिलिपि की गई 'द्वादश यश' और ब्यालिस लीला' आदि रसिक वाणी ग्रन्थों की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ यह प्रमाणित करती है कि इनका रसिक वाणियों के प्रति भी हार्दिक अनुराग था। लेखक ने इन दोनों प्राचीन प्रतियों के दर्शन नि. वा. श्री अलबेलीलालजी गोस्वामी (अठखम्भा बाजार वृन्दावन) और नि.वा. बाबा ध्रुवअलीशरणजी (श्री राधावल्लभ मन्दिर, वृन्दावन) के निजी संग्रह में किये हैं। ये प्रतियाँ वि.सं. १६४० में और वि.सं. १६४७ में सरीले शहर के श्री राधाबल्लभ मन्दिर में बैठकर लिखी गई हैं। प्रति की अन्तिम पुष्पिका से यह भी प्रकट होता है कि रानी कमल कुँवरि के आमंत्रण पर जब इसके गुरुवर गो. गिरधारीलालजी सरीले पधारे तभी उन्होंने 'द्वादश यश' की प्राचीन प्रति कमल कुँवरि को प्रदान की थी। पुष्पिका निम्नांकित है -

इति श्री ब्यालीस लीला श्रीहित धुवदास विरचित सर्व लीला संपूरनं।।

दोहा - माधव मास त्रयोदशी कृष्ण पक्ष शुभ जान।
भौमवार अनुरेवती, प्रीति जोग पहिचान।।
एक सहस नौ सै गिनहु, चालिस ऊपर बान।
तिहि दिन लिखि पूरन करी, संवत लीजहु जान।

मिती वैशाख कृष्ण पक्ष १३, भौमवासर संवत् १६४० मु. श्रीजी कौ निज मन्दिर मौ जे षुद लीखी।।

दोहा - यह ब्यालिस लीला लिखी, कमलकुँवरि सुख पाय।
बाँचैं-सुनैं जु प्रेम सौं, राधा-कृष्ण सहाय।।
रसिक मंडली कौं सदा, वन्दत हौं कर जोर।
हम तुम एक जहाज पै सुरति राखिये मोर।।
ब्राह्मण कौं दंडोत है, सन्तनि कौं हरि नाम।
बाँचैं सुनैं जु प्रीति सौं, तिनकौं श्यामा-श्याम।।
रजधानी महाराज की, सहर सरीलैं वास।
हिन्दूपति नृप सुत वधू, रसिकजननि की दास।।
विनती करत निहोरिकैं, सन्ध्या और सवार।
जुगल प्रीति उर में बढ़ै, देखौं नित्यबिहार।।

(नि.वा. अलबेलीलालजी गो., अठखम्भा बाजार, वृन्दावन के सौजन्य से)

श्री स्वामी के जस अमल, लिखैं पढ़ै जो कोय।
'कमल कुँवरि' श्रीहित कृपा, श्रीवन बसि सुख होय।

इति श्रीफलअस्तुती संपूरन शुभं मंगलं ददाति। मिती श्रावन कृष्णा पंचमी शशिवार। संवत् १६४७ मुकाम रियासत सरीलौ श्री राधाबल्लभलाल जी के जगमोहन में उतारी। जैसी प्रति देखी तैसी लिखी मम दोष न दीयते।। हस्ताक्षर श्रीहितदासी कमल कुँवरि।।

दोहा - रसिक मंडली सन्तजन, विनवत हौं कर जोर।
प्रति देखी तैसी लिखी, मोहि न दैवी खोर।।१।।
एक सहस नौ सै बरस, सैंतालिस की साल।
श्रावन कृष्ण सु पंचमी, चन्द्रवार गुरु द्रयाल।।२।।
प्रति दीनी करिकैं कृपा, स्वामी गिरिधरलाल।
आये मेरे भवन में, रसिक मुकुटमणि जाल।।३।।
अति हित सौं पोथी लई, निज कर सैं जु उतार।
बाँचैं सुनैं सु प्रेम सैं, विनवत बार हजार।।४।।
श्रीहित गिरधरलाल के, चरन-कमल उर धारि।
कमल कुँवरि दंपति कृपा, पोथी लई उतार।।७।।
दास चतुर्भुज करि कृपा, यौ वर देउ जरूर।
श्रीवृन्दावन हौं बसौं, सुख आनँद भरपूर।।६।।
रसिक मंडली सुजन जन, दीजै कर सुख सार।
'कमल कुँवरि' श्रीवन बसै, दरसै नित्यविहार।।१०।।
दरसन की डोरी लगी, राधावर की मोय।
श्रीगुरु श्रीगुरु रटत हौं, सफल मनोरथ होय।।१३।।
सब कारज सिध कीजियौ, भय बाधानि जु टार।
कमलकुँवरि दासी भई, बिकी तुम्हारे द्वार।।१६।।

इतिश्री विनय रसिक मंडली सौं, श्री जुगल सौं, श्रीहित हरिवंशजी महाराज सौं, श्रीगुरु सौं।। शुभ संपूरनम् शुभं मंगलं ददाति" पृ. ६३-६५ (नि. वा. बाबा ध्रुवअलीशरणजी, श्रीराधावल्लभ मन्दिर, वृन्दावन के सौजन्य से)

इनकी यह रहनी और कहनी इनके ससुरालीजनों को अत्यन्त अरुचिकर लगी। अतः इन्होंने तरुणावस्था में स्वयं ही राजमहल के राजसी वैभव और अपने कुटुम्ब परिवार का परित्याग कर दिया। वृन्दावन के अखण्ड निवास की अभिलाषा मूलक पदों में इन्होंने ही लिखा है कि -

बसाहौ कब वृन्दावन मोय।
अधम उधारन गनिका तारन, लाज सरम सब तोय।
श्रीब्रजवासी होय न हाँसी विनय करत हौं रोय।
लोग कुटुम-परिवार छाँड़िकैं, रही तुम्हारी होय।
सब अपराध बिसारि दीन लखि, ब्रज कौं लै चलि मोय।
'कमल कुँवरि' चरननि की दासी, तुम बिनु और न कोया।।[6]

संभवतः इसी समय ये श्रीहिताचार्य सुवन गो. गोपीनाथजी के वंशज गो. गिरिधरलालजी (झाँसी वालों) से मन्त्र दीक्षा प्राप्त करके विरक्त जीवन व्यतीत करने लगीं। इन्होंने अपने गुरुवर का सादर स्मरण अपनी अनेक रचनाओं में किया है -

कमल कुँवरि दासी भई, विनय करत है रोय।
वृन्दावन कौ कीजियौ, जो कछु करनौं होय।
को सुधि लेय गरीब की, बिना गरीब निवास।
'कमल कुँवरि' तुम्हरैं बिकी, तुम्हें भेष की लाज।।
रजधानी महाराज की, सहर सरीले वास।
हिन्दूपति नृप सुत-वधू, हरि दासनि की दास।।
श्री गुरु गिरिधरलालजू, त्राहि-त्राहि कर जोर।
विनयवत हौं उर ध्यान धरि, कृपा करौ निशि-भोर।।[7]

रस भारती संस्थान, वृन्दावन में इन्हीं के द्वारा रचित और इन्हीं के करांकित ग्रन्थों की अन्तिम पुष्पिका से यह तथ्य भी प्रमाणित

होता है कि ये वि.सं. १६४६ के कुछ वर्षों पूर्व ही राजमहल त्यागकर सरीले शहर में स्थित श्रीराधावल्लभलालजी के मन्दिर में एकान्त निवास करने लगी थीं। आधारभूत पुष्पिकायें निम्नांकित हैं-

'एक सहस नौ सै बरस, षट चालिस सिर धार।
माघ शुक्ल शुभ पंचमी, शनि बासरहि उचार।।

'इति श्री बसंत लीला विहार शुभ संपूरनं शुभं मंगलं ददाति मिती माघ सुदी पंचमी बसंत लीला कमल कुँवरि कृत शुभ संपूरनं मंगलं दाता। मुकाम राजधानी रियासत सरीला श्री १०८ श्री राधावल्लभलालजी कौ निज मन्दिर। वा कमल खुद। श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री।[८]

'इति श्रीसावन विहार लीला कमल कुँवरि कृत शुभ संपूरनं।। शुभं मिती श्रावन शुक्ल पंचमी गुरुबासर संवत् १६४६ मुकाम श्रीराधावल्लभलाल जी की झूलन कुंज में रियास्त सरीला। जो कोऊ बाँचै-सुनें जै श्रीजी की पहुँचै। साधु-विप्रनि कौं साष्टांग दंडवत दिन प्रति बार-बार।"

दोहा - एक सहस नौ सै बरस, षट चालिस सिर धार।
सावन शुक्ल सु पंचमी, सुखदायक गुरुवार।।
तिहि दिन गायौ प्रेम सौं, सावन कृष्ण बिहार।
प्रारंभिक है तीज कौं, पूरन भयौ विचार।।[९]

।।इति श्री राधिका ब्रज भामिनी की जन्मकथा शुभ संपूरनं शुभं मंगलं ददातु। मिती भादौं कृष्ण सप्तमी शुभ बासर संवत् १६४६ मुकाम श्रीराधावल्लभलाल जी कौ निज मन्दिर रियासत सरीला।

दोहा - गावत-सुनें सप्रेम सौं, बाँचें गुन उर धार।
भय बाधा राधा हरैं, दिन प्रति मंगलचार।।
एक सहस नौ सै बरस, षट चालिस सिर धार।
भादौं कृष्ण सु सप्तमी, पूरी भई विचार।।
कोटिन जप-तप-जग्य करि, संजय नेम अपार।
कमल कुँवरि इक भवन सिधि, कलि न आन उपचार।।
का भाषा का संस्कृत, भजन जुगल कौ सार।
'कमल कुँवरि' नित भजन करि, सुलभ पदारथ चार।।
नहिं कविता नहिं चतुरता, नहिं बड़ बुद्धि विचार।
'कमल कुँवरि' जड़ मन्द मति, जस गावत सुख सार।।[१०]

इन्हीं के स्वाक्षरों में लिखी इनकी रचनाओं की एक प्रति दतिया राजकीय पुस्तकालय में भी सुरक्षित है, जो सरीले स्थित श्री राधावल्लभलालजी के निज मन्दिर में बैठकर लिखी गई है -

"बधाई श्रीलालजी महाराज की शुभ संपूरन शुभं मंगलं ददाति।। कुल बधाई ७० आसौं की बनी मिती भादौं बदी १२ संवत् १६४७ मुकाम रियासत सरीलौ श्रीजी कौ निज मन्दिर।।"

दोहा - एक सहस नौ सै बरस, सैंतालिस की साल।
मंगल दिन आनंद कौ, हरि बासर सु विशाल।।
भादौं कृष्ण वखानिये पूरन भई निरधार।
'कमल कुँवरि' प्रभु तुव सरन, बिक्री लली के द्वार।।

श्रीगुरु-शरणापन्न होने से पूर्व इनका जीवन अनेक संकटों से ग्रस्त रहा। बाल्यकाल से ही माता-पिता का तथा विवाहोपरान्त सास-ससुर का परलोक गमन और तरुणावस्था में पति द्वारा परित्यक्ता होने का कष्ट भी इन्हें झेलना पड़ा किन्तु ये ऐसी विषम परिस्थितियों में भी निरन्तर प्रभु-कृपा की सराहना ही करती रहीं-

बालापन में मात-पितु गये विष्णु के धाम।
सास-ससुर शिव-लोक गये, विधि की करनी वाम।।
तरुनाई में पति-तजी, मोकौं महा निराश।
तब हौं गुरु-सरनैं भई, छोड़ि सबनि की आश।।
जब गुरु हेरे करि कृपा, हित-कुल गिरिधरलाल।
मन्त्र भेष कण्ठी दई, छूटे दुख के जाल।।

श्रीगुरु-चरणाश्रय प्राप्त करके जब ये ऐकान्तिक जीवन व्यतीत करते हुए एकमात्र अपने परमाराध्य श्यामा-श्याम का लाड़ लड़ाने लगीं तो यह बात इनके कौलिक जनों को असहनीय बन गई। अतः उन्होंने इन्हें अनेक यातनायें देना आरम्भ कर दिया। कभी विषाक्त भोजन खिलाया गया तो कभी इनके निवास स्थल में अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गई। कभी इन्हें गहरे जल में डुबाने की चेष्टा की गई तो कभी इनके यहाँ चोरी करवा दी गई। इसी प्रकार सन्त-द्विज-द्रोही चुगलों द्वारा वृथा बदनाम करके इन्हें विविध प्रकार से पीड़ित किया गया, किन्तु 'जाकौ राखै साइयाँ मारि सकै ना कोय' - यह उक्ति इनके जीवन में पूर्णरूपेण चरितार्थ हुई। इन सभी संकटापन्न स्थितियों में भी प्रभु इनकी रक्षा करते रहे और ये भक्तिमती मीराबाई की भाँति प्रभु-भक्ति में अचल बनी रहीं। प्रभु-कृपा के चरित्रों का उद्गान करते हुए इन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में इन घटनाओं का विशद वर्णन किया है -

विष तें जल तें अनल तें, खल-चोरन तें लाल।
सब ठाँ राखी करि कृपा, काटे दुख के जाल।।

वि.सं. १६४४ में माघ मास की पूर्णिमा के पावन पर्व पर ये भ्रातपुर से ओरछे आ रही थीं वहाँ विराजमान सेव्य स्वरूप राजा श्रीराम के दर्शन हेतु, जो कभी राजा मधुकरशाह की रानी द्वारा पुष्य नक्षत्र में सरयू तटस्थ अवधपुरी (अयोध्या) से लाकर वहाँ के मन्दिर में विराजमान किये गये थे। रानी कमल कुँवरि ने मार्ग में बलवन्त नगर में मुकाम किया। वहीं से अघरिया नामक एक दुष्ट दासी को इनके साथ लगा दिया गया; जिसने झाँसी पहुँचकर इन्हें मारने के उद्देश्य से प्रभु के लिए बने राजभोग में जहर मिला दिया। भोग लगने के उपरान्त वह भोग्य सामग्री कमलकुँवरि के साथ सभी ने ग्रहण की किन्तु उसमें मिले जहर का किसी पर कोई कुप्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि कमलकुँवरि के रक्षक प्रभु ने उस विषाक्त सामग्री को पहले ही अपनी दृष्टि से अमृतमयी बना दिया था। भोग में जहर मिश्रित करने का यह षड़यंत्र जब खुला तो वह दुष्टा दासी अपने प्राण बचाने के लिए कमलकुँवरि की ही चुगली करने लगी। यह झूठी भक्त-निन्दा प्रभु से सहन नहीं हुई और उन्होंने ऐसा बानिक बनाया कि उस दुष्टा

दासी को ही वहाँ से भागना पड़ा। इस घटना के निकट पश्चात् ही रचित 'विष मोचक अष्टक' में स्वयं रानी कमल कुँवरि का कथन है कि -

श्री रघुवर नें मोय बचाई।
माघ मकर की पर्व सुहावन, श्री रघुवीर दरस कौं आई।।
कियौ श्रातपुर सैं जु पयानौं, झाँसी के डेरन सुखदाई।
एक सहस नौ सैं जु चवालिस, अब्द पूर्णमासी सुखदाई।।
नारायण की कथा श्रवन करि, श्राघ छत्रपति कौ करवाई।
नाम अघरिया दासी लघु मति, राजभोग में जहर मिलाई ।।
कथा-श्रवन करि सब मिलि पायो, धोखै से नर-नारिन खाई।
कमल कुँवरि रघुवीर कृपा तें, अमित भयौ सुख आनंद छाई।।"

वि.सं. १६४६ की श्रावण शु. एकादशी को ये सरीले में स्थित श्रीराधावल्लभ मन्दिर के जगमोहन में सो रही थीं। रात्रि के चतुर्थ याम में अचानक ही अग्नि की लपटें इनकी ओर बढ़ने लगीं। तभी इनके दीक्षा गुरु गो. गिरिधरलालजी ने स्वप्न में दर्शन देकर इन्हें दूसरे भवन में भेज दिया। इस प्रकार करुणा-वरुणालय प्रभु ने इनकी अग्नि से रक्षा करके शरणागत-रक्षक होने का विरद स्थापित किया। इस घटना का वर्णन स्वयं कमल कुँवरि के शब्दों में -

राधावर नैं मोय बचाई।
लागी अनल भवन के माँहीं, सोवत सैं महाराज जगाई।।
दूजे भवन कृपा करि ल्याये, ताती आँच लगन नहिं पाई।
साँवन सुदी ग्यास बुधबासर, षटचालिस सिर लाल सुहाई।।
कीन्हें काज अनेकनि मेरे, 'कमल कुँवरि' सरनागत आई।।[१२]

द्विज-सन्तों से द्रोह मानने वाले श्रीहरि-विमुख चुगलखोर जब झूठे-झूठे आरोप लगाकर इन्हें वृथा बदनाम करने लगे और अत्यधिक कष्ट देने लगे तब इन्होंने करुण क्रन्दन करते हुए प्रभु से विनती की -

करौ हरि! चुगलन कौ मुँह कारौ।
करत भजन में विघन वृथा ही, नाहक संशै डारौ।
सब घट वासी अन्तरजामी, ये फन्दा निरवारौ।
ऐसी भई आज लौं नाहीं, दास तुम्हारौ हारौ।।[१३]

भक्त हृदया कमल कुँवरि की यह करुण पुकार भक्त-वत्सल प्रभु ने सुन ली और कुछ ही दिनों में उन चुगल-शत्रुओं का समूल विनाश हो गया। इतना ही नहीं उन दुष्टों के घर भी पूरी तरह नष्ट हो गये। अब इन्होंने सरीले शहर से अपना सम्बन्ध पूर्ण रूप से विछिन्न कर लिया और श्रीधाम वृन्दावन में निर्विघ्न निवास करने लगीं -

चुगल रिपु रघुवर धूर मिलाये...
जिन वैरिन उपहार करी ही, उनके खोज उड़ाये।
'कमल कुँवरि' तजि कुटुम कवीला, हरि सौं नेह लगाये।।[१४]

रानी कमल कुँवरि का अखण्ड वृन्दावन निवास किस समय से प्रारम्भ हुआ और ये वृन्दावन में कब तक विराजमान नहीं, यह तो अभी ज्ञात नहीं हो सका है किन्तु आज तक की खोज में उपलब्ध इनकी रचनाओं के रचनाकाल और इन्हें के हस्ताक्षरों में ही लिखी गई प्रतियों के प्रतिलिपिकाल के आधार पर इनके जीवन की सम्पूर्ण समय सीमा वि.सं. १६०१ से लेकर वि.सं. १६५० के पश्चात् तक सुनिश्चित रूपेण मानी जा सकती है।

रसोपासना-विज्ञान-वेत्ता श्रीकिशोरीशरण 'अलि' जी महाराज ने रानी कमल कुँवरि के रसिक स्वरूप का परिचय 'श्रीहित अनन्य रसिकावली' में इस प्रकार दिया है -

संत-इष्ट-गुरु-सेवा जीवन जीवनि मानी।
चित्तवृति नित रमी, सु रस रसिकनि की वानी।।
हियैं फुरी रस लीला दंपति वरनन वरनी।
टीका हित चतुरासी कीनी, सब मन हरनी।।
जग की सम्पति तरकि तजि, दम्पति हित संपति लई।
कमल कुँवरि गुरु कृपा बल, महलनि हितदासी भई।।[१५]

छप्पै प्रणेता ने उक्त छप्पय में तो इनके द्वारा विरचित 'हित चतुरासी टीका' का उल्लेख किया ही है साथ ही अपने वाणी खोज विवरण में भी गो. गोवर्धनलालजी (बड़ी सरकार अठखम्बा, वृन्दावन) के निजी संग्रह में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में इनकी 'चतुरासी तिलक' नाम्नी एक प्रति का उल्लेख किया है। यह गो. श्रीहित हरिवंशजी की प्रसिद्ध रचना 'हित चौरासी' का रानी कमल कुँवरि द्वारा किया गया ब्रजभाषा गद्यानुवाद है। इस टीका की अन्तिम पुष्पिका में रानी कमल कुँवरि ने अपने नाम के साथ 'हितदासी' छाप भी प्रयुक्त की है -

"।।टीका हित चौरासी जी कमल कुँवरि हितदासी कृत संपूर्ण संवत् १६४६ श्री राधावल्लभलालजी की कुंज राजधानी सरीलौ।।

इस अन्तिम पुष्पिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन्होंने कमल कुँवरि नाम के साथ-साथ 'हितदासी' छाप से भी कुछ पद रचना की होगी, किन्तु इनकी 'हितदासी' छाप से की गई रचनायें अभी प्राप्त नहीं हो सकी हैं।

'हित चौरासी टीका' के अतिरिक्त भी इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, परन्तु हमें इनकी निम्नांकित रचनायें ही प्राप्त हुई हैं जिनकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ रस भारती संस्थान, वृन्दावन और राजकीय पुस्तकालय दतिया में सुरक्षित है - १. अनल मोचन अष्टक (दावानल मोचक अष्टक), २. ग्रीष्म रितु के दोहा और कवित्त ३. करुणा चौतीसी ४. कवित्त संग्रह ५. तुलसी चरित्र, ६. द्वादश यश की फलस्तुति, ७. पदावली (फुटकर पद ७२, झूलन के पद ४, गो. हित हरिवंशजू की जनम बधाई, लाल जू की जनम बधाई-७, प्रियाजू की जनम बधाई-२०, गुरुवर्य गोस्वामी गिरिधर लालजू की जनम बधाई, कुल-४१, श्रीकृष्ण वंशावली, श्रीकृष्ण जन्मकुण्डली, भांड़न की नकल आदि), ८. बसंत विहार लीला, ९. बारहमासी, १०. विष मोचन अष्टक, ११ भगवत पुराण की टीका (अप्राप्त) १२. राधिका जन्म कथा, १३. सावन बिहार लीला आदि।

प्रेम प्रकाशित करने की चीज नहीं, अपितु छिपाने की वस्तु है किन्तु वह कस्तूरी-सुगन्ध की भाँति प्रकट हो ही जाता है। प्रेमोपासक रसिकों का जीवन इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है। प्रेमोपासिका रानी कमल कुँवरि के जीवन में भी हम उसे पूर्ण रूप से चरितार्थ देखते हैं। इन्हें भी नित्यविहार जैसी अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई और बहुत रोकने पर भी नहीं रुकी। फलतः प्रकट हो गई उनकी रम्य रचनाओं के रूप में जिनमें से कतिपय छन्द नीचे दृष्टव्य हैं -

आजु गुलाब के हौद भरे, खसखाने विचित्र सुगंध सुहाये।
बेला-गुलाब-चमेली जहाँ सखि, आनिकैं झाड़ विचित्र लगाये।।
फूलनि सेज सम्हारी तबै, श्रीलाड़िली-लाल निकुंज में आये।
शीतल मन्द सुगन्ध समीर, चलै तहाँ केलि करैं मन भाये।।[१६]
बाग सुदेश सरोवर तीर पै, हैं बहु वृक्ष तहाँ सुखदाई।
रंग अनेक विचित्र बने, चहुँ ओर तें फूल रही फुलवाई।।
मन्दिर बँगला फूलनि कौ, खस की परदा डरी सो मन भाई।
राधिका-श्याम बिहार करैं, हरिवंशी ब्यार करैं सुख पाई।।[१७]

संदर्भ -
१. करुणा चौतीसी, रानी कमल कुँवरि, प्राचीन हस्तलिखित प्रति।
२. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ.सं. ६, क्र. २१७
३. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ.सं. १२-१३, क्र. २१७
४. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ.सं. ४, क्र. २८३
५. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ.सं. १२-१३, क्र. २१७
६. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ.सं. २८-२९, क्र. २१७
७. सावन बिहार लीला, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ. ८-१०
८. रस भारती संस्थान, वृन्दावन क्र. २१७ के सौजन्य से पृ. २६-२७
९. रस भारती संस्थान, वृन्दावन क्र. ३२९ के सौजन्य से पृ. ९-१०
१०. रस भारती संस्थान, वृन्दावन क्र. ३२९ के सौजन्य से पृ. ४६-४७
११. विष मोचन अष्टक, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पदसं. १-३
१२. दावानल मोचन अष्टक, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र. पदसं. १,६
१३. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र.पृ. २४-२६
१४. पदावली, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र.पृ. २६, २८-२९
१५. हित अनन्य रसिकावली, किशोरीशरण 'अलि', प्रा.ह.लि.प्र.छं.सं. ६५
१६. व १७. ग्रीष्म ऋतु के दोहा और कवित्त, रानी कमल कुँवरि, प्रा.ह.लि.प्र., पृ. १

- २, सेवाकुंज गली, वृन्दावन जिला मथुरा (म.प्र.)

चौकड़ियाँ

- पं. राजकुमार पुजारी

आमद सें व्यय जांदा होवै, उचित खर्च खों रोवैं
ताकत से तामस जादा हो, नींद से जादा सोवै।
संग्रह अधिक जरूरत से हो, बीज घनो अति बोवै।
मंशा सें लालच जांदा हो, भूख से जादा ज्योंवै।
पुजारी जे लक्षन मिटवै के, मिलै न कछू सब खोवै।

मद में भूलौ न दीवाने, स्थिर कछू ना रानै
देखत के जे महल डुमहले, बल वैभव के वानै
माई बन्धु औ कुटुम कबीला, दौलत माल खजाने
आवें काम न तेरे कोऊ, फिर काहे इठलाने
कंचन सी जा देह एक दिन, चिता में जलत दिखाने।

साचऊँ दो दिन की जिन्दगानी, अमर न कोई प्रानी
राजा रंक धनी भिखमंगा, सुखी दुखी हैरानी
जोगी भोगी मुनि तपस्वी, सूर कूर भटमानी
पापी धरमी लोभी दानी, सज्जन मूरख ज्ञानी
साँची मानो इक दिन सबकी, मिटत शरीर निशानी।

विरथां ऐंठ दिखा रय बल की, खबर न पाई कल की।
जौ तन बलबूजा पानी कौ, मिटत देर न पल की।
कोऊ न अमर भयौ या जग में, झूँठी ऐंठ अकल की।
चार दिना की होत चाँदनी, फिर अँधियारी छल की।
साँची मानो कवै रुक जैहै, धड़कन नाजुक दिल की।।

जग है झूठा झूठी माया, विरथां तू भरमाया।
साथ कछू नईं जैय तुम्हारे, जो भी तुमने पाया
नाते रिश्तेदारी झूठी, झूठी है जा काया
बिना ज्ञान के जानत प्राणी, अपना और पराया
पिता बने जो एक जनम में, दूजे पुत्र कहाया।

झूठे जग के रिश्ते नाते, समझ नहीं हम पाते।
सुख में साथ देत हैं सबरे, दुख में दूर हो जाते।
जियत जियत के रिश्ते नाते, आँख मिचें मिट जाते।
माया मोह के कारण हरि सें, वे न नेह लगाते।
निकर गऔ जब समय पुजारी, सिर धुन धुन पछताते।

पारथ खों जब विचलित पायो, माधव ने समझायो।
सब कछू नाशवान धरती पै, फिर काहे भरमायो।
कोऊ नहिं काऊ को अपनो, है नहिं कोऊ परायो।
जग में जियत जियत के नाते, मन में मोह समायो।
अमर रहो न कोऊ पुजारी, जो भी जग में आयौ।

मोरी पत राखो गिरधारी, भक्तन के हितकारी।
तुमई एक मोरे हो स्वामी, झूठे हैं संसारी।
अशरन शरन शाँति के दाता, विनती सुनो हमारी।
स्वारथ के साथी हैं सबरे, पुन्य पिता महतारी।
अपना लौ प्रभू अपने दास खों, चरनन डरौ पुजारी।

- पुजरयाना, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़

लोक पर्व दिवारी

- डॉ. रामनारायण शर्मा

लोक मानस प्रकृति सें शुरू से जुरौ रओ। ऐईसें प्रकृति के सुहावन-मनभावन अरु बदलत रूप-रंग के संग लोक-मन मोद-प्रमोद से सराबोर हो आनन्द विभोर हो जात। प्रकृति के वरदान लोक के मर्ज में गीत बन मुखरित हो जात। ऐसौ मन सहज, सरल, आस्था-विश्वास सें अपनी संतति की श्री-सम्पति और सुख की कामना सें ओत-प्रोत परम-सत्ता के गुनगान कर संतोष कौ अनुभव करत। प्रात-जागरण पै धरती माता के चरन छूकें, ऊरत सूरज को हाथ जोर प्रणाम कर दिन की शुरुआत करत। ईश वंदना, हवन-जग्य कर चंदन-श्री लगा पूजा-जप कर दिन के शुभ-लाभ की कामना करत। रात में 'दिया-आरती' जगाकें अँधेरे दूर कर शांति व शिव की चाह कर सुबह की बाट में रात बिताउत है। जीवन के कछू पल-छिन व दिन को वो विशेष तिथ-पावन मान पर्व के रूप में कुटुम्ब-परिवार के संग पुराने संकल्प में मनाउत। दिवारी बुन्देलखण्ड के जन-मन कौ ऐसोई एक 'लोकपर्व' है।



दिबाई, दिबारी, दीवाली, दीपावली, दीपमालिका, ज्योति-पर्व व प्रकाश पर्व आदिक नाँव 'लोक-पर्व-दिवारी' सें जुरे हैं, दिया बारी रात, दिव्य रात, अनेकन दीपों की माला और जोत सें जोत सें निकसत उजयारौ सें ईके विभिन्न नांव पैदा भये। वैसें दीवाली 'महारात्रि' में एक रात है। ऐईसें ईकी महत्ता अधिक मानी गई। दिवारी लोक-पर्व कातिक के पैले पक्ष की तेरस सें शुरू होत औ दूसरे पक्ष की दोज के दिन समापन होत। ईमें अमावस कौ दिन मुक्ख 'दिबारी-पर्व' है। जो धूम-धाम सें मनाओ जात।

लोकोत्सव व लोकपर्व की मानता कौ आधार श्री, सुख, समृद्धि (सम्पत) संतति-निरोग, शांति व सगे-सम्बन्धों सें जुरी है। धन-तेरस (धन-धान्न-सम्पति), संतति-निरोग, चौदस के दिन घर-बाहर की साफ सफाई से दैविक-दैहिक तथा भौतिक ताप शमन, दिवारी कों 'लक्ष्मी जी सें मानों जात। ईकी चर्चा सार-रूप में ई तराँ से है।

कातिक कृष्ण तेरस - ई दिना सें दिवारी पर्व शुरू हो जात। घर-बाहर सब साफ-सफाई हो जात। गृहणियाँ नये बर्तन खरीदती जीमें पूजा सामग्री रखकें रात में पूजा होत। सामर्थवान सोने-चाँदी के गैने खरीदत और समृद्धि के संग पूजा करतीं। ऐईसें ई पर्व कों 'धनतेंरस' कत। रात में धन-तेरस वैश्रवण अर्थात् निधियों के राजा धनपति कुबेर की पूजा होत। ईमें धन-दौलत की बात सामें आउत। काएसें मानुस जीवन में धन की महत्ता जग-जाहिर है। परन्तु धनार्जन के श्रोत बंज व्यौपार के अलावा 'धान्न' (धन-धान्य) से जुरी है। ई समय खेत में खरीफ की फसल की आवक सें किसान खुशी सें भाव-विभोर हो अन्नदाता की पूजा कर संतुष्ट हो जात। भारत, विशेष रूप सें बुन्देलखण्ड में ऐसी परम्परा पुरानी है। धन-वैभव, सुख-शान्ति के आधार हैं। इनमें, गो-धन, गज-धन, बाजि धन, और रतन-धन की बात की पुष्टि होत पै सबसें बड़ौ धन तौ सुयोग्य, संतति (सुत) मानों गओ। कायसें अन्य धन तो पल-छिन में नष्ट हो जात। परन्तु सच्चे सपूत व पुत्ररत्न रूपी धन तौ इहि लोक और परलोक दोऊ को संवारत औ कुल-धर्म-समाज देश की कीर्ति-पताका ऊँची करत। धन सें धान्न की महत्ता कृषि प्रधान देश में अधिक मानी गई। हिरणगर्भ की आभा सें लसत किसान प्रजापालक मानो गओ। ऐसे मानक रूप ई पर्व में मिलत। धन्वंतरि पूजा, धनतेरस कौ दूजौ महत्व आयुष के प्रदाता भगवान धन्वन्तरी की पूजा-रचा सें जुरी है। ईसें अकाल-मृत्यु सें छुटकारों मिलत। कायसें अकाल मृत्यु दुख, दरिद्रता के कारण होत। यदि स्वास्थ्य ठीक है तो और देह निरोग है तो असमय मृत्यु कौ डर कम होत। तन स्वस्थ तो मन स्वस्थ होत जीसें मनुष्य अपनी पूरी शक्ति सें काम कर धनार्जन कर सुखी रत। आयुष कौ जोई मतलब है। सो धनतेरस कौ 'संदेश आयुष्मान हों, और धन-धान्य सें भण्डार भरे रयें ताकि सुख-शांति मिले।'' सो ई दिना रात्रि में पूजा कर घी कौ दीप जलाकें घर के दोरें रखो जात। जो दीप-दान कौ सुफल देत।

छोटी दिवाली - दीपावली के एक दिन पैलें छोटी दिवारी मनाई जात। ई दिना सब तरां सें साफ-सफाई, लिपाई, घर-कोंनन की सफाई सें लेकें पूरे मकान की सुपेत खरिया-चूना या रंग सें पुताई कौ काम पूरौ हो जात। ठाठ-छप्पर-खपरैल बदल जात। किबार-खिरकी, दरबाजे रंग-रोगन सें चमक जात गौशाला की सफाई-धुलाई करी

जात जीसें लक्ष्मी जू के आगमन व पूजा-रचा अच्छी तरां सें हो सके। कायसें लक्ष्मीजू कों 'दलुद्दर' (गंदगी) पसंद नइयाँ। वास्तव में गंदगी भरो जीवन नरक भोगे समान होत। गंदगी सें रोग उपजत, रोग सें शोक, दुख होत जो नरक की यातना के समान मानो गओ। सो पूरे निवास सें गंदगी दूर करबे सें तन-मन स्वस्थ हो जात, और रोग-जोग परास्त होत। नरकासुर वध की कथा कौ जोई सार हमें मानें चइये।

दूसरी बातें पुरानी कथा सें जुरी हैं। जैसें नरकासुर नाव के असुर से त्रस्त जन-मन में व्याप्त भय-उत्पात, अनाचार, आतंक कौ निवारन आजई के दिन विष्णु द्वारा वध करें सें भयो तो आजउँ आतंक, अनाचार के उत्पाती असुर प्रवृत्ति के लोग जब-जब चुनौती खड़ी कर रये। हमें एक जुट होके ऐसे नरकासुरन कों 'विष्णु-प्रहार' कर नाश कर सुख शांति की भावना करनें। तबईं नरक-चौदस मनाबे कौ सुफल मिलौ।

एक और कथा जुरी है जब विष्णु जी नें देवी-देवताओं समेत लक्ष्मी जू कों राजा बलि के बंधन सें मुक्त कराओतो। इके बाद लक्ष्मी जू क्षीर-सागर में शयन करबे चली गई ती। सो अपने घर-बार-दुआर गली कूचे की, साफ-सफाई सें लक्ष्मी जू कौ आगमन निश्चै करे सें सुख-शांति मिलत। ऐईसें लोग आजउँ कत - 'लक्ष्मी लक्ष्मी आओ, दरिद्र-दरिद्र जाओ।' लक्ष्मी रूपी धन-धान्य के भंडारन से परिवार समाज व देश की समृद्धि होत। जोई संदेश ई दिना हमें देनें। आज घी के दिये द्वार पै रख के लक्ष्मी के आगमन की बाट जोहनें।

बड़ी दिवाली -

वास्तव में धनतेरस, नरक-चौदस सें लेकें (छोटी दिवाली) अमावस की बड़ी दिवाली तक दीप-दान की रीति चली आ रई। ऐई सें दिवारी मानकें पूजा भई। प्रातःकाल सें आँगन की लिपाई कर चौक काटे जात। घर-चौका, चक्की की साफ-सफाई की जिम्मेवारी गृहणियन की होत। बायरे दद्दा-दादा बाल-गोपालन के संगे द्वार-दरबाजों की सफाई करत। द्वार के बीच में लक्ष्मी जू के आगमन में समादर रूप में लाल रंग (गेरु) सें लिखो जात "।।श्री लक्ष्मी जू सदा सहाय।।" बच्चे पुरानी पोथी-पत्रा कों धूप-दिखा के साफ करत और फिर बाँध के जतन सें रख देत। फिर गो-धन, गज-धन औ बाजद्दन मानकें गौ, हाथी, घोड़े, बैल व अन्य मवेशियन को नदी-तालाब व कुँआ पार नहलाओ जात। स्वयं नहा-धोके रात में लक्ष्मीपूजन की तैयारी में लग जात। जौ सब गरीब-अमीर, अगड़े-पिछड़े के बिना भेद कें होत। अपनी-अपनी सामर्थ सें सब पूजा की तैयारी करत। महिलायें सौदा-सुलभ की चीज-बस्तन की संभार, अपने पहिराबे को ठीक-ठाक कर तैयार होतीं। मेर बाबा के स्थान को विशेष तैयार करती जिते रात में लक्ष्मी जू की पूजा हुइये। ठाकुर जी कौ नहान कर बैठारौ जात।

मौसम व रितु बदलबे की संधि पै जब दिया भर जड़कारो शुरू होत, बरसा की गंदगी की साफ-सफाई, घर-आंगन की चमाचम सें मन में नई उमंग भर जात। ऐई सें दिवाली कौ त्यौहार मन-तन की उमंगन कौ मानो गओ। ईमें श्री रामचंद्र जी कौ राज्याभिषेक की पुरानी कथा आजउँ खुशी देत। बुन्देलखण्ड सब खण्डन में न्यारौ व पुरानो है। इतै की 'विन्ध्येली संस्कृति आर्ष संस्कृति सें पुरानी मानी गई। यह देवी-देवतन, तपस्वीयन की भूमि रई। ईकौ जीवन, वैदिक सूक्तन व गृह-सूत्रन सें बँधौ है। सो लक्ष्मी महत्ता की बात समझबे की जरूरत है।

वैदिक रीति व परम्परा सें सुख-समृद्धि की देवी कों लोग मानत ते। बाद में लक्ष्मी देवी मानी गई। वैसें दिवाली के दिन हम जी लक्ष्मी की पूजा करत वह सम्पूर्ण अखिल में व्याप्त आकाश (विष्णु) की शक्ति हैं। जैसो ई सूक्त में बखान भओ -

"विष्णु पत्नी क्षमाम देवी, माधवी माधव प्रियं।
लक्ष्मी (श्री) प्रिय सखी, देवी नमामि।।"

ऐसी लक्ष्मी जो अच्युत बल्लभां (कभी च्युत) न होने वाले आकाश की शक्ति अर्थात वसुन्धरा (पृथ्वी) को नमस्कार है। ऐसी अच्युत शक्ति जो घरों-जीवों का पालन करत। ऐसी लक्ष्मी की पूजा सृष्टि के विकास के युग में श्री, अर्चि और पृथु के द्वारा नामित भई और पृथ्वी मानी गई। समुद्र मंथे सें उत्पन्न जलज (कमल) पै विराजमान भई। जो अग्नि की खोज के साथ 'हिरण्य वर्णा' मानी गई और अग्नि वैश्वानर जात वेद में ईकी १६ पदों में स्तुति करी गई। जो श्रीसूत्र में लिखे हैं। (कलश संदर्भ)

लक्ष्मीपूजा - सब तैयारी के बाद कातिक की अमावसी रात में मुहूर्त के अनुसार लक्ष्मी पूजा सपरिवार विधि-विधान सें होत। पूजा मेंर घर में दीवार में उकेरी सुराँतू औ लक्ष्मीजू कौ पट चिपका कें सुरू करी जात। नेंचे एक लकड़ी के पटा पै ठाकुर जी कों विराज कें चौकपूर, कलश आदि की थापना के बाद फूल-रोरी, लगाई जात। दीवार पै लक्ष्मी जू के पट के पास हल्दी-घी के लेप सें दक्खिन हत्था अंकित कर ई के बीच चाँदी कौ सिक्का चिपकाओ जात। चाँदी-सोना लक्ष्मी कों प्रिय होत। ईकी पूजा करी जात। फिर हवन-आरती करी जात। फिर १६ दिये जला कें सुराँतू जगाई जात। भोग में मिठाई-पकवान्न आदि अरपन कर नारियल चढ़त और लक्ष्मी जू सें आशीर्वाद सब लोग लेत। पूजा के बाद घर की संतान (लड़कों) कों 'कोरा' (५ अठवाई, मिठाई आदि) प्रसाद रूप में दये जात। छोटे बच्चे बड़ों के पाँवछू आशीर्वाद लेत। सबके तिलक व कलावा बाँध बड़ा भाई या पिता जो पूजा करत उनें शुभ कामना देत। फिर जली सुराँतू (दिये) द्वार, आँगन की वेदी, तुलसी आदि पै रखे जात।

गौ-पूजा- चूँकि गौ पूजा सें देव पूजा करबे समान तौ हैई। गौ-धन पूजा मानी जात। गौ कों तिलक लगा, मुड़करे (भेंड़ की ऊन के) बांध पीठ पै रंग के हत्था या दिये के ठप्पा लगाये जात। गौ कों व रोटी-पक्वान्न खिला के पैरछू आशीर्वाद लओ जात। आज सबई मबेशियन कों हरौ चारौ व अन्न (चोकर) भर-पेट खाबे दयो जात। ई सब के बाद घर-द्वारे खुले छोड़ लक्ष्मी जू के आगमन की सोच

सब मिल-जुल के भोजन करत। जा तौ भई पूजा-रचा की बात। अब कछू विचार करबे की बातें गुनिये व सुनिये -

(१) सुराँतू - इये कछू लोग 'सुराँती' कत। एक विचार सें दिवाली-पूजन के समय दीवार पै बनाई अल्पना जी में १६ खण्ड होत औ 'धन' के (+) चिन्ह जोड़ के बनाई जात। दूजी विचार है कै सुराँतू १६ स्वास्तिक कों जोड़ कें बनाई जात। तीजें (१६) दिये सुराँतू के जलाये जात जो जगह जगह रखे जात। जे स्थान ई तरां हैं - दो घर पै, दस दिशाएँ में अलग-अलग कोनों व कोणों में, एक तुलसी घरा, एक आंगन की वेदी जू पै, एक मेर बब्बा, एक गौशाला ऐसे सुराँतू (१६ दिये) लोकमत के अनुसार रखे जात। लोक ग्यानी विग्यानी है। सो अपनी रक्षा व कामना पूरन के संग लक्ष्मी जू के सबई सुलभ मार्ग में प्रकाश कर देत। लक्ष्मी की स्तुत में भी १६ पद वंदन होत। सो लक्ष्मी पूजन में (१६) की महत्ता है। स्वस्तिक चिन्ह सृष्टि के सृजन कौ रूप मानो गओ और स्वर-व्यंजन की ध्वनियों (अ+इ+उ+म्) सें 'ऊँ' अर्थात् प्रणव=णमू=नमू= नमस्कार व स्तुति के अर्थ में जानों गयो।

(२) दिवारी की रात जागरण करे कौ विधान है। रात में तेल का लेप करबे की रीति है जो 'नाई' घर आकें कर जात। कानात है कै 'दसरये कौ भूकौ औ दिबारी कौ सूकौ' अनिष्टकारी होत। ई में सच्चाई का है? विचारबे की है। हमारे विचार सें तो 'नाऊ' कों ईसें खाना-भेंट दिवाबे की सोच जांदा है। दिन में मालिन फूल-पत्री देकें भेंट ले जात।

(४) दिवारी के दिन व दूजे भोर कुम्हार घैला (कलश) दिया रख जात, बाढ़ई लकड़ी कौ काम औ लुहार किवार में कील ठोक देत, बसोर बाँस कौ सूपा व खजूर कौ बना पंखा देकें अपनी-अपनी भेंट ले जात। धोबी शाम के कपड़ा लै जात और भेंट पाउत ऐसें दिवारी एक सामूहिक पर्व मानो गओ।

गोधन पूजा - दिबारी के दूसरे दिन गोधन की पूजा होत। जो श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाकें ब्रज वासियन की रक्षा करबे सें जुरी है। बुन्देलखण्ड में गोधन पूजा सें जानी जात। जी की मानता ई लोक-स्वर सें देखबे मिलत- "आज दिवारी कल 'गोधना'। माते कौ लरका बाल-किसना"। ई में श्रीकृष्ण औ ब्रज-जन की प्रेम-पगी बात उजागर होत। वास्तव में नन्द गोकुल के महतो (माते) माने गये सो कृष्ण उनके लरका भये जे भाव कित्तने अच्छे हैं। गोधन की पूजा में गऊ के गोबर कै गोधन बना ऊके पेट में चाउर दूध भरो जात। गोधन के चारों तरप घैला (छोटे घड़े) रखे जात जिसके गरे में सूत बांध उनमें पकवान रख के पूजा होत। यह पूजा कृष्ण की क्रांतिकारी घटनान की साक्षी है। जीमें उनने दैवीय अतिवृष्टि व कंस के अत्याचारों को जबरिया दूध-दही कौ टैक्स देबे से मना कर सच्चे राष्ट्र भाव उत्पन्न करे हैं। ऐईसें दिवारी के दूजे दिन बुन्देलखण्ड वासी मौन व्रत साथ कें मौनियाँ नृत्य में दिवारी गाउत औ हर्ष-उल्लास कौ माहौल रचत।

बड़े सुबह देवाले या कारसदेव व हरदौल चबूतरे के सामें गाना-बजाना, मौनिया नाच होत। ईमें सब वर्ग के लोग सामिल होत। नाचबे बारे रंग-बिरंगी पोशाक पहिने, कमर में बैलों के गले के 'झेला' बाँधे, दिवारी की धुन व बाजों की थाप पै अनहोनों नाच करत जैसे 'रास' हो रयो होय। चाचर की धुन पै थरकत नचैया कलाबाजी करत नाच सें सबै मोह लेत। युवा लड़के साफी बाँधे मोर पंख खुरसें, कजरारे नयनबारे, हाथ में मोर पंख कौ मूठा लयें नाचत-नाचत दोपहर मौन व्रत धर कें 'बारादरी' जैसे स्थान पै जात। लौटकें मौन व्रत पुजारी-पंडित सें तोरत। १२ साल बाद जौ ब्रत रामराजा मंदिर ओरछा में जाकें सम्पन्न होत। दिवारी में दोहा-चौपाई व कबीरा गाये जात।

गोधन के बाद भाई-बहन कौ व्योआर 'भइया दूज' की पूजा होत। जीमें बहन अपने भाई की रक्षा कौ संकलप दुहराउत औ मूँसल सें कटैया को कूट भैया के बैरियन को कूटत कत - "भइया के बैरी कौ मों दोंचें।" भइया अपनी बहिना के घर जाकें तिलक कराउत और भेंट देत।

ऐंसें धनतेरस से लेके भाई दूज तक के पर्व 'दिबारी लोक पर्व' माने जात। जीमें धन-धान्य, आयुसमान, सुख-समृद्धि, गोधन की पूजा व भाई-बिन्ना जैसे लोक-कल्याण के पर्व सम्पूर्ण होत।

- रामायण ६६५/३, सिविल लाइन्स, झांसी

जौ खजानौ बुंदेली तक लइयौ

- पं. हरगोविन्द तिवारी 'कविहृदय'

जौ मेला बुंदेली सुहानौं है, सुहानौं जौ प्यारौ ठिकानौं है।
जौ ठिकानौं बुंदेली पुरानौं है, पुरानौं जौ प्यारौ खजानौं है।
जौ खजानौं बुंदेली तक लइयौ, तनक-मनक जौ लयें जइयौ।

इतै मिलत है कुनैतौ, कुठिया, रांटौ, जांतौ, मौट, जतरिया।
सींकौ, चपिया, हंड़ा, मटकिया, उखरी, मूसर, खल्ल, मुसरिया।
जौ खजानौं बुंदेली तक लइयौ, तनक-मनक जौ लयें जइयौ।

इतै मिलत है डिग्गी, तबला, खंजरी, तारें, ढपली, ढपला।
गैंती, फरुआ, सब्बल, तसला, गुट्टां, पिरियां, सूपा, छबला।
जौ खजानौं बुंदेली तक लइयौ, तनक-मनक जौ लयें जइयौ।

इतै मिलत है खिचरी, गुड़ला, खुरमा, बतियां, गड़ियाघुल्ला।
पजामा, पज्जी, मुंदरी, छल्ला, ऐरन, झुमका, टिकली, टिकला।
जौ खजानौं बुंदेली तक लइयौ, तनक-मनक जौ लयें जइयौ।

- इंदिरा प्रियदर्शिनी वार्ड,
तिवारी मुहल्ला, शाहगढ़, जिला सागर

वापसी

- सरोजा शिल्पी

सुमन ने बैग उठाउत-उठाउत घड़ी पै निगा डारी और बड़बड़ाई! कितैकऊ जल्दी करें पै देर होई जात है। और जल्दी सैं किवारे लगा कैं लम्बे-लम्बे डग धरत भई अस्पताल की तरफ चल दई। तबई दूर सैं धोती कौ छोर समारतीं फुआ दिखाई दई। सुमन पास आउतनईं दोई हात जोर कैं बोली - "राम-राम फुआ! राम-राम बेटा राम-राम खुश रओ अस्पताल जा रईं?" फुआ ने हंस कै कई। सुमन ने उत्तर में मूड़ हिला दओ और पूछी - अरे फुआ इतनी जल्दी में कितै भगीं जा रईं? फुआ लपक कैं बोली - "अरे नर्स बहन जी कछू न पूछो, गाँव में काऊं खौं कछू भओ नई कै सब खौं फुअई याद आउतीं जैसें फुआ न भई कौनउँ जादू की छड़ी हो गई कै छड़ी घुमाई और सब काम हो गओ, कितनी बार कई कै अब ई उमर में हम सैं इतैक भाग दौड़ नई होत अकेलें लोग-बाग हैं कै ई कान सैं सुनकें ऊ कान सैं निकार देत।

सुमन मुस्कुरा कैं बोली - "फुआ आप होई इतैक अच्छीं।" फुआ पट्ट बोली - अब का करें बेटा हम सैं काऊ कौ दुःख नईं देखो जात्। अब आजई देख लो पूजा करबे बैठेई हते कै महतो कौ मौड़ा पौच गओ कै अम्मा ने बुलाओ है। ऊकी घरवाली की तबियत खराब हो गई।

सुमन चौंक कैं बोली - "फुआ हम ने तौ सुनी है कै वे भौजी गर्भवती हैं?" फुआ धोती कौ छोर समारत भईं बोलीं - "अरे बिटिया तुमने ठीकई सुनी है ऐई सैं तौ मलतो ऊको पूरो ध्यान धर रई है। ई बार तौ मलतो ने गाँव की कौनऊँ मंदिर-मड़िया नईं छोड़ी जाँ पोता के लाने मन्ता न मांगी होए, विचारी बड़ी आशा लगाये है कै चौथी बार तौ पौतई आंगन में खेलहै।" का ई मेंगाई के जमानें में चौथो बच्चा?" सुमन ने अचंभे सैं आंखे फार के कई! फुआ भी तुनक कैं बोलीं - "तौ वा विचारी का करै पोता की आशा में तीन-तीन पोतीं हो गईं अब भलाँ तुमई बताओ वंश चलावे के लाने एक पोता तौ जरूरी है कै नईं? "लेकिन फुआ" सुमन की बात पूरी भी नईं भईती कै मलतो कौ घर आ गओ। सो फुआ तेज चाल में घर के भीतर घुसत भई बोलीं - "मलतो ओ मलतो" आँगन में घुसींअई हतीं कै का देखतीं है। कै तुलसीघरा के पास पूजा विस्तरी है और मलतो अपनी बड़ी पोती कौ हाथ पकर कैं ऊकी पीठ पै जोर-जोर सैं घूँसा मार रई और बड़बड़ा रई "अरे तुम औरन ने ई घर खौं मिटावे की कसम खाई है का? हमाई पूजा बीच मेंई भंग कर दई हे भगवान हम का करें इन मताई बिटियन कौ।" और वा चउदा-पन्द्रा बरस की मौड़ी डरानी-सिसरयानी सी ठुकत जा रईती। फुआ ने झपट कैं मलतो कौ हाथ पकर लओ "अरे मलतो सिररन हो गई का? मौड़ी खौं मारई डार है का।" मलतो ने ज्योति कौ हाथ जोड़ दओ और जोर-जोर सैं रोन लगी। फुआ ने मलती की पोती ज्योति खौं भीतर जावे कौ इशारो करो और मलतो के पास बैठत भये बोलीं - "अरे का हो गओ मलतो जोन इतेक तमाशो कर रई?" अरे का बतायें फुआ आप खौं तौ पतौई है कै हमाई आँखें पोता देखवे के लाने तरस रई हैं, सो हम बड़े तलोआ वाले बाबा के पास गये ते सो उनने हमाई हालत पै तरस खा कैं एक नारियल दओ तो और कई ती कै "नारियल खौं तुलसीघरा पै धर कैं १०८ परकम्मा लगा कैं नारियल कौ बीज अपनी बहू खौं खुआ दइओ तौ तुमाई बहू खौं पोतई हुइये" अकेलें ई मौड़ी ने बीच में टोक कैं हमाऔ मौन भंग करा कैं कुशगुन करा दओ? हे भगवान अब जाने का होवे वारौ है? "अरे तुम चिंता न करो बाबा जू के आशीर्वाद सैं पोतई हुइये।" फुआ ने मलतो खौं समझात भये कई? "अच्छा पैलें जो बताओ कै शन्तो खौं का हो गओ? "फुआ ऊको बार-बार पेट पिरा रओ कमर पिरा रई और चक्कर आ रये" मलतो धीरे सैं बोली। "अरे तौ तुम ऊके खावे पीवे कौ ध्यान अच्छे सैं धरो करे जबई तौ गोल-मटोल पोता खिला पैहैहै कै नईं।" हओ फुआ आप ठीक कै रईं।"

इतने में छुटकी दादी-दादी चिलयात भई आई!" अरे काय गरो फार रई जे तौ बैठे पाँच हांत के तुमाये सामने "मलतो झल्ला कैं बोली। छुटकी हांपत भये बोली - "दादी अम्मा मछरिया सी तड़प रई।" फुआ उठत भये बोलीं "मलतो लगत है तुमाये पोता खिलावे कै दिन आ गयें। अब जल्दी करो, जल्दी।" मलतो ने मौड़ा खौं अस्पताल चलवे कौ इशारो करो।

शन्तो के "प्रसव गृह में घुसतनई मलतो दोई हाँत जोर कैं भगवान सैं विनती करन लगी। नन्दू भी बेसबरी सैं इतै-उतै टैलन लगो। जैसई ऊखौं नर्स बहन जी दिखानी वो लपक कैं बोलो - सिस्टर का भओ नर्स बधाई देत भये बोली - अरे भइया आप के घरै लक्ष्मी आई है लक्ष्मी।" लक्ष्मी कौ नाम सुनतनई नन्दु के पाउन तरे की धरती खिसक गई। मलतो "सत्या-नाश" कै कैं मूड़ पीट-पीट कैं शन्तों खौं कोसन लगी। फुआ ने जैसें-तैसें समझा-बुझा कैं मलतो खौं शान्त करो। तीन-चार दिना बाद शन्तो अस्पताल सैं घरे आ गई। घर में मातम सौ छा गओ मलतो ने तौ पोती कौ मौ लो न देखो, शन्तो विचारी ऐसी सिसरयानी फिर रईती जैसें कौनऊँ भौत बड़ी अपराधिन होवे। मलतो ने दुःख के मारें तीन-चार दिनन सैं रोटी को एक कौर लौ न टोरो तौ। मलतो की ऐसी हालत देख कै शन्तो ने ज्योति खौं खाना की थारी लैं कैं अम्मा के पास भेजो ज्योति अम्मा के सामने खाना की थारी धर कैं बोली - "दादी कब तक भूखीं रेहो लो रोटी खा लो।" खाना की थारी देख कैं मलतो ज्योति पै झपटी औ ऊ विचारी मौड़ी खौं चार-पांच घूंसा जड़ दये औ चिल्ला कैं बोली - अरे खाना की जांगा थोड़ी सौ जहर दे दो जी सैं तुम औरन सैं छुटकारा मिल जावें।

नन्दू ने परिस्थिति खौं समारबे की भौत कौशिश करी। अकेलें घर कौ माहौल दिन पै दिन बिगड़तई चलो जा रओ तौ मौड़ियन खौं लै कैं मलतो दिन-रात चिकचिक करन लगी घर में रैबो दूभर होत जा रओ तो। मलतो मौड़ियन खौं पढ़ावे के पक्ष में भी नईं हती। ऊकी कैवो हतो - कै मौड़ियन खौं तौ पराय घरे चलो जाने। फिर उनै पढ़ा-लिखा कैं काय खौं पइसा बर्बाद करत। नन्दू मौड़ियन खौं पढ़ा-लिखा कैं काबिल बनावो चाहत तो अकेलें ऊ की समझ में नई आ रईती कै वो ज्योति की पढ़ाई कैसें आगे बढ़ावे। लेकिन कत हैं न कै 'कोशिश करे सैं तौ भगवान भी मिल जात' सो नन्दू ने अपने दोस्तन की सहायता सें कोशिश करकैं ज्योति कौ शहर के कॉलेज में भरती करा दओ। ज्योति घर छोड़वो नईं चाउतती अकेलें दादी के दुव्यवहार और माता-पिता के समझावे पै पढ़ाई के लाने घर छोड़वे पै मजबूर हो गई।

ज्योति शहर में मन लगा कैं पढ़ाई करन लगी। लेकिन ऊखौं माँ और छोटी बहन की चिंता हमेशा बनी रतती। वा जब भी गांव जावे दादी के व्यवहार सैं दुःखी होकैई लौटे। मलतो के मन में पोता न होवे कौ दर्द दिन पै दिन बढ़तई जा रओ तो। जो ऊ की जबान सैं जहर बन कैं निकरत तो, वो जहर घर की सुख-शान्ति खौं खायें जा रओ तो। मलतो खौं जई चिंता खायें जा रईती कै ऊकौ वंश कैसें आंगे बढ़है, पुरखन खौं पानी कौ देहै।

मलतो की गुइयाँ मायाबाई मलती खौं। अपने चार-चार पोता होवे कौ जता कैं मलतो की चिंता में आगी में घी डारवे को काम कर रई ती। एक दिना तो ऊने हदई कर दई। मलतो कौनऊँ काम सैं बजारे जा रईती कै माया खौं दुआरे के चौतरा पै बैठो देख कैं मलतो बोलीं - "बैठीं हो माया"? बस माया जाने कौन बात पै चिंड़ी बैठी ती मलतो सैं इठला कैं बोली - "अरे काय न मजे सैं बैठें भगवान ने हमें खूब मानो चार-चार पोता हैं मरैं भी न तो चारऊ कंधा पै धर कैं गंगा जू तक ले जै हैं। चिंता तो वे करैं जिनके नसीब में पोता कौ मौ देखवो तक नइयां।" माया की बात सुनकें मलतो के मौ सें शब्द न निकरे और मन में तौ जैसें आग लग गई। घरै पोंचतनई ऊ आग ने ज्वाला की रौद्र रूप धर लओ और इतैक रार मचाई कै पूंछो नईं। और अपनी पौतियन सैं पीछो छुड़ावे के लाने लड़-झगड़ कैं घर छोड़ कैं चल दईं। रोड पै मोटर ठांड़ी हती सो ओई में जा बैठी जब तक नन्दू खौं खबर मिली सो वो अम्मा खौं ढूड़वे दौड़ो तब तक मोटर गांब छोड़ कैं आंगे बढ़ गई। नन्दू ने अम्मा खौं ढूड़वे में जमीन आसमान एक कर दये। कुंअन बांस डारे अकेलै अम्मा कौ कछू पतो न परो।

बस आंगे बड़ी सो बस के कंडेक्टर ने पूछी - अम्मा कितै जाने? सो मलतो ऊसैं भी उरज गई ऊने समझावे की कोशिश भी करी अकेलें बात बिगरत देख कैं ड्राइवर साब ने चुप रैबे कौ इशारो करो सो वो चुप हो गओ।

शहर पोंचतनई बस खाली हो गई, सो किलींजर ने मलतो खौं भी बस के बाहर कर दओ। अब अन्जान शहर गांव की अनपढ़ औरत जाये तौ कितै जाये? भूख प्यास सैं बेहाल मलतो तनक देर तौ इतै-उतै भटकी फिर बेसुध हो कैं गिर परी! जब होश आ ओ सौ मलतो ने अपने आप खौं एक खटिया पै परो पाओ। दो-चार औरतें आस-पास बैठीं बातें कर रईतीं। मलतो खौं होश में आओ देख कैं एक औरत मैडम-मैडम करत भई पास बाले कमरा में घुस गई। और एक औरत खौं संगे लैकें लौटी। वा औरत पढ़ी-लिखी कौनऊ भले घर की लग रईती। वा मलतो के मूड़ पै हाथ धर कैं बोली - अम्मा कैसी हो? मलतो ने डरात भये पूंछी - हम कां हैं? "आप एक वृद्ध आश्रम में हो।" वृद्ध आश्रम कौ नाम सुन कैं मलतो खौं कछू समझ में नईं आओ। वा भली आदमिन फिर बोली - "अम्मा आप का नाम क्या है?" मलतों मलतो धीरे सैं बोली। एक औरत ने मलतो खौं नारंगी कौं रस देत भये कई - "लो वाई जौं पी लो।" मलतो ने सकुचत भये गिलास ले लओ। मलतो इतै भौत जल्दी ठीक हो गई और अपने जैसई कई लोगन खौं पाकैं जल्दी घुल-मिल गई। अकेलें गाँव-घर की याद ने ऊखौं कबहूँ चैन सैं सोन नईं दओ। घर सैं दूर हो कैईं ऊखौं समझ में आई कै घर का होत। ऊके लड़ंकू स्वभाव और रूढ़ीवादी अंधविश्वासी विचारन के कारण ऊ खौं हर कोऊ टोकवे। तब मलतो खौ। समझ में आई कै परिवार का होत है घर वारन ने ऊखौं कितनो सहो है। ऊने बहू पोतियन के संगे कितनो गलत व्यवहार करो है। बिना बात के घर छोड़वे जैसी गलती कर दई। अरे वा भी तौ अपने मताई-बाप की बिटिया हती, पै ऊकी अम्मा, दादी ने तौ ऊके संगे कबहूँ ऐसो दुर्व्यवहार नईं करो तो जैसो ऊने अपनी पोतियन के संगे करो।

ऊखौं अपने आप पै बड़ी गुस्सां आ रई ती औ जोई सब सोच कैं वा घरै वापस लौटवे की हिम्मत भी नईं सहेज पा रई ती। अब तौ मलतो अपनी गलतियन पै असुआ बहाबे के सिवा कछू कर भी नईं पा रईती। इतै घर में मलतो के जावे के बाद नन्दू व मौहल्ला पड़ौस के लोगन ने ऊखौं खूबई ढूडों अकेलें मलतो कौ कछू पतो न परो घर बारे भौतई परेशान।" अरे जितै चार बासन होत है तौ वे आपस में खनकतई हैं।" अकेलें कोऊ ऐसो थोड़ी करत जैसो मलतो न करो। जितैक मौ उतैक बातें भईं। मलतो के घर छोड़वे सैं सबई खौं दुःख भओ।

अकेलें समय काऊ के लाने थोड़ी रुकत सो वौ तौ धीरें-धीरें पंख लगा के निकर गओ। और ज्योति पढ़-लिख कैं एक पत्रकार बन गई। ऊखौ ओई शहर के एक अखबार में नौकरी भी मिल गई। आज ज्योति भौतई खुश हती। काय कैं आज व अपनी नौकरी कौं पहलो इंटरव्यू लेवे जा रईती। ऊने बस पकड़ी और इंटरव्यू लेवे के लाने चल दई। वा मनई मन कछू प्रश्न दोहरा रईती कैं ऊखौं का - का पूंछने है, कैसें पूंछने हैं। सोच-विचार में खोई वा कवैं अपने ठिकाने पै पौंच गई ऊखौं पतोई न परो। ऊने दरबाजे पै हस्ताक्षर करैं और भीतर घुस गई। भीतर जाकें ऊने देखो कैं लगभग एकई उमर के कई लोग अपने-अपने कामन में लगे हैं। कोऊ बगिया में काम

कर रओ, तौ कौऊ साफ-सफाई में हात बटा रओ तो।

ज्योति सबई के पास जा कैं एक-एक कर कैं सब की राय जान रईतीं - कैं मौड़ा-और मौड़ियन में भेद करो चाहिये कै नईं? और जोन जा मौड़न की तुलना में मौड़ियन की संख्या कम हो रई है सो आंगे चल कैं ई के का दुष्परिणाम हुइयें। आप औरन ने कबऊं जा बात सोची है? सबई लोगन ने अपनी-अपनी राय ज्योति खौं बताई। कैं तबई ज्योति की निगा एक बूड़ी बऊ पै परी वे बऊ एक कुष्ट रोगी की सेवा बड़े प्रेम सैं कर रईतीं जैसैं कौनऊ अपने भगवान की सेवा में लीन होवै। ज्योति ने उन बऊ के पास जा कैं पूँछी - काय अम्मा का कर रईं? वे बऊ बिना पीछें देखैं बोलीं - बेटा हम इन बैन के घाव साफ कर कैं दबाई लगा रये। ज्योति ने फिर पूंछी - अम्मा आप इनकी सेवा इतैक प्रेम सैं कर रईं का जे आप की कौऊ अपनी हैं? बऊ बिना पीछे देखैं बोलीं - बेटा हम इन बैंन के घाव साफ कर कैं दबाई लगा रये। ज्योति ने फिर पूंछी - अम्मा आप इनकी सेवा इतैक प्रेम सैं कर रईं का जे आप की कौऊ अपनी हैं? बऊ बिना पीछे मुड़े फिर बोलीं - नईं नईं बेटा हम ने अपनन की सेवा नईं करी, अपनन खौं तो हमने दर्द भरे घाव दये हैं जी के लाने तौ भगवान भी हमें माफ न कर है। हमने जो अपराध करे हैं ओई के प्रायश्चित के लाने हम इन रोगियन की सेवा में लगे रत हैं। शायद हम जैसी पापिन खौं पाप सैं मुक्ति मिल जाये। ज्योति ने फिर प्रश्न करो। शायद वा ऊ आवाज खौं चीनवे की कोशिश कर रईती - "अच्छा आप जौ बताओ कैं मोड़ा और मोड़ियन में भेद-भाव करो चाहिये कैं नईं? ज्योति की बात सुनकैं वे बऊ तिलमिला कै पीछें मुड़ कैं बोलीं - नईं-नईं बिटिया, मौड़ा और मौड़ियन में भेद कबहूँ न करो चाहिये। मौड़ी तौ देवी मइया कौ रूप होत हैं, दुनिया चलावे के लाने बेटी भी उतनी जरूरी है जितनौ कै बेटा! बऊ की सूरत पै निगा परतनईं ज्योति की आंखे चमक गईं वा दादी-दादी" कै कैं मलतो सैं लिपट कैं फवक-फवक कैं रोन लगी।

मलतो भी अचानक ज्योति खौं अपने पास पा कैं अपने अंसुआ रोक नईं पा रईती। मलतो ज्योति सैं कौनऊ नादान बच्चा सी लिपट कैं रोत भई बोली - बेटा हमें माफ कर दो, हम तुम औरन के कसूरवार हैं, हमनें तुम सब खौं भौतई दुःख दये बेटा हमाये कारणईं तुमें घर छोड़ने परो। ज्योति रुधे गरे सैं बोली - नईं नईं दादी ऐसो न कओ आप के आशीर्वाद सैंइ तौ हम आज पढ़-लिख कैं अपने पांउन पै ठांड़े हो पाये न हम शहर में पढ़वे-लिखवे जाते और न आज इतैक काबिल बन पाते फिर आप तक कैसे पौंच पाते, आपई बताओ दादी?' ज्योति ने दादी के अंसुआ पौछत भये कई। आस-पास के लोग जौ दृश्य देख कैं अपनी आंखन खौं गीलों होवे सें रोक नईं सके। ज्योति ने फौरन गाँव फौन लगा कैं मलतो के मिलवे की खबर अपने माता-पिता खौं दई। मलतो के मिलवे की खबर पाकैं पूरो परिवार फूलो नईं समानो।

इतै ज्योति ने वृद्ध आश्रम में अपनी दादी खौं घरै वापस लै आवै की बात कई सो उतै की संचालिका जी ने कछू कागजी कार्यवाही करकैं मलतों खौं घरै ले जावै की अनुमति दे दई। मलतो खौं अपने घरे वापस जात देख कैं आश्रम के सबई लोग खुश भये। मलतो तौ फूली नईं समाँ रईती। आज ऊखौं समझ में आ गई ती कै मौड़ी भी मौड़न के जैसीं बुढ़ापे कौ सहारो बन सकतीं हैं। वे भी अपने घर परिवार की देख-भाल अच्छे सैं कर सकतीं हैं, उनै भी अगर विकास कौ मौका दओ जाये तौ वे भी अपने कुल कौ नाम उजागर कर सकतीं हैं। जी पोती खौं मलतो बोझ समझ रईती ओई पोती ने आज मलतो खौं सहारो दओ तौ। आज एक नई समझदार मलतो घरै वापस जा रईती। मलतो की जा घर वापसी मलतो कौ नओ जनम हतो।

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-२, दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

बसन्त आसौं कौ...

- वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'

अबकी आयौ है ऐसौ बसन्त, री।
ऐंगर नईं मोरे कन्त, री।।
सखी! धीरज कौ काँ तक है अन्त री!
बना गये मोय सन्त-री!!
मोसें कैसौ कहत ते पिया-रे!
तुम हौ जीवन, औ प्रानन सें प्यारे!!
सखी! समय के ये देखौ दबारे,
आज चमकत ना एकऊ सितारे,
जाने छाये हैं काँ? कै महन्त-री!
बना गये मोय सन्त-री!!

खेतवा फूले हैं, सरसों है पीली
भ्रमर मतवाले झूमत ज्यों पी-ली।
इतै मुँइयाँ भई मोरी पीली-
पूरी देहियाँ लगै पीली-पीली।।
एक दुःख हो गिनाऊँ? ना अन्त-री।
बना गये मोय सन्त-री!!
मटर-दाने हैं पुट्ठाने गुइयाँ-
घिटियाँ लगीं चना की पुठइयाँ
दुःखवा कासें कहूँ, मोरी 'पुनियाँ!'
चिठिया भेजैं न आवैं गुसइँयाँ-

करकै हारी मैं जन्त्र, मंत्र तन्त्र-री!
बना गये मोय सन्त-री!!
सुनें 'परमार' ज्योतिष के ज्ञाता-
संग जा रई लिबाकैं मैं भ्राता।
उनसें पूँछौं सगुन, हे विधाता-
संग सजना कौ कब तक है आता।।"
बेई करकै कछूक टोरैं टन्ट री।
बना गये मोय सन्त री।
अब की आयौ है ऐसौ बसन्त री।
बना गये मोय सन्त-री!!

- उटियाँ, पो. कबरई, जिला महोबा (उ.प्र.)

बुन्देली भाषा साहित्य के अग्रदूत -

विन्ध्यकोकिल भैयालाल व्यास

- पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

आज हल्दी की दो गाँठें रख कर स्वयं-भू पंसारी जब यह कहते हैं कि 'यदि हम न होते तो आज बुन्देली-भाषा-साहित्य का किंचित कहीं अस्तित्व न होता...।" मानो कुछ आयोजनों की चकाचौंध बिखेर कर वे ही बुन्देली-भाषा-साहित्य के शीर्ष हस्ताक्षर हैं....। जबकि दूसरों के लिखे साहित्य को बटोरकर पुस्तकें छपवाना और उन्हें बेचकर सिर्फ पैसा कमाना ही उनकी सबसे बड़ी बुन्देली सेवा है। ऐसे हो हल्ला के युग में इन पंक्तियों का लेखक अपने 'सत्यार्थी' उपनाम को सार्थक करते हुए साहित्य की दुनियाँ में डंके की चोट पर यह उद्घोष करता है कि बुन्देली-भाषा-साहित्य के इतिहास को भी हिन्दी साहित्य के इतिहास की भाँति (वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल इत्यादि) कालों में विभाजित करना होगा। यूँ तो लोक-काव्य परम्परा में बुन्देली की वीरगाथा काल से जगनिक जैसे लोकगाथा प्रणेता से ही बुन्देली का इतिहास प्रारम्भ होता है। परन्तु शिष्ट साहित्य के रूप में बुन्देली भाषा साहित्य की गंगोत्री राजा डूँगोन्द्र सिंह तोमर के राजकवि श्री विष्णुदास से ही प्रवाहित हुई है; जो आचार्य केशवदास से होती हुई बुन्देली भाषा साहित्य के आदर्श ईसुरी तक पहुँचती है। ईसुरी के पश्चात् ओरछा राजदरबार के अन्तिम राजकवि स्व. मुंशी अजमेरी 'प्रेम' ने बुन्देली भाषा साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण पृष्ठ जोड़ा है। 'अजमेरी' जी के बुन्देली काव्य पर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, महामना मदन मोहन मालवीय, क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर आजाद जैसे न जाने कितने महापुरुष रीझे थे। इस कारण हल्दी की दो गाँठें रखकर पसरट्टा खोले बैठे लोगों को चाहिए कि वे आत्मश्लाघा छोड़कर पीछे मुड़कर देखें और यथार्थ को स्वीकार करें।




तपस्विनी श्रीमती कुन्ती व्यास एवं विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

बुन्देली भाषा साहित्य के वर्तमान काल की बात करें तो बुन्देली-भाषा साहित्य के अग्रदूत के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व हमारे समक्ष उपस्थित है, जिसे हम व्यक्ति नहीं, एक वृहत् संस्थान के रूप में देखते हैं। आशय है पूज्य भैयालाल व्यास 'विंध्यकोकिल' से। बगैर किसी प्रकार की आत्मशलाघा और 'मैं-मैं वाद' के उन्होंने वर्तमान काल के हिन्दी कवि सम्मेलनों में बुन्देली की कविता को स्थापित किया है। वे उस युग के कवि हैं जब हिन्दी कविता को भी ब्रज भाषा काव्य की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जाता था। तब वे जिस दम-खम के साथ कवि सम्मेलनों में बुन्देली कविता पढ़ रहे थे कि श्रोता उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। कंठ इतना मधुर की बगैर माइक के भी हजारों श्रोताओं की भीड़ में जमीन पर एक आलपिन गिरने की आवाज सुनी जा सकती थी। श्रोता उनके स्वर और साहित्य में रस-विभोर हो जाते थे। उसी समय उन्हें 'विंध्य-कोकिल' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

परन्तु मेरे लिए तो वे एक 'तैलचित्र' की भाँति ही रहे हैं। तैलचित्र को दूर से देखने पर ही उसकी गुणवत्ता समझ में आती है, निकट से समझना कठिन होता है। मैं उनसे एक पारिवारिक सदस्य के रूप में जुड़ा, वे मेरे बड़े भाई और मैं उनका अनुज, इस निकटता के कारण उनके कवि स्वरूप की गुणवत्ता का बखान करना मेरे लिए कठिन ही नहीं असम्भव भी है। आज कवि सम्मेलन के मंचों पर बुन्देली कवियों की भीड़ खड़ी है। उस भीड़ के बीच मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि अब से कोई छह दशक पूर्व जब कवि सम्मेलनों में उर्दू, खड़ी बोली और ब्रजभाषा की ही कविता का वर्चस्व था। उस समय की मेरी आँखें साक्षी हैं कि बुन्देली कविता पढ़ने वाले इकलौते एक व्यास जी ही हुआ करते थे, जिनकी बुन्देली कविता हिन्दी, उर्दू और ब्रज भाषा की कविताओं को पीछे छोड़कर अपना प्रभाव दिखा रही थी। इसलिए हम पूज्य व्यास जी को सिर्फ बुन्देली कवि न कहकर बुन्देली कविता का एक महत्वपूर्ण युग कहें तो वह अधिक सार्थक होगा। उन दिनों वे बुन्देली के स्वयं रस-सिद्ध कवि ही नहीं थे, वरन बुन्देली कविता लिखने का एक जीवन्त वातावरण सृजित कर रहे थे।

याद आता है अब से पाँच दशक पहले का समय, जब व्यास जी सहकारिता विद्यालय नौगाँव (छतरपुर) में प्राध्यापक थे। उन दिनों नौगांव एक सैनिक छावनी के रूप में जाना जाता था, ब्रिटिश शासन काल के ही वातावरण में रचा-पची नौगांव छावनी में साहित्य-कला-संस्कृति का सरस वातावरण कल्पनातीत था। परन्तु व्यास जी ने मानो ऊसर भूमि में साहित्यिक संस्कारों की फसल उगा दी थी। प्रत्येक रविवार को एक काव्य-गोष्ठी हुआ करती थी। आज भी यत्र-तत्र काव्य-गोष्ठियाँ हुआ करती हैं, परन्तु उनमें कविगण स्वयं की पेटेण्ट वही रचनाएँ पढ़ते हैं, जिन्हें अनगिनत वार सुना जा चुका है। कुछ कवियों के पास तो मात्र एक ही विषयवस्तु कुल जमा में होती है, बस उसी विषय पर घिसीपिटी कविताएँ सुनाकर पूरा

जीवन निकाल देते हैं, और बड़े ठाठ से स्वयं को बुन्देली का शीर्ष कवि कह रहे होते हैं। जबकि व्यास जी की उन काव्य गोष्ठियों में एक आजीव सी प्रथा थी कि - कोई भी कवि गोष्ठी में पूर्व में पढ़ी कविता नहीं पढ़ सकता था। उसी सप्ताह की पूर्व संगोष्ठी के बाद लिखी ताजा कविता पढ़ने की अनिवार्यता थी। व्यास जी के इस कठोर नियम ने उस समय नौगांव जैसी नीरस भूमि में कितने कवियों को जन्म देकर खड़ा किया था? वह स्वयं में एक उल्लेखनीय इतिहास है।

उन दिनों नौगाँव में प्रतिवर्ष 'मेलावीक' का आयोजन होता था। उसमें क्रिकेट टूर्नामेन्ट ही छाया रहता था, एक प्रदर्शनी भी लग जाती थी। व्यास जी ने उस मेलावीक में एक नई कड़ी जोड़ी थी और राष्ट्रीय स्तर के कवि सम्मेलन होने लगे थे। तब देश के चोटी के कवि नौगाँव आए और साहित्य कला-संस्कृति का वातावरण वहाँ छा गया था। नौगाँव का वह कवि सम्मेलन मैं कभी भूल नहीं सकता, जिसकी अध्यक्षता बिजावर के राजकवि आचार्य महाकवि बिहारी जी ने की थी। जहाँ दूर-दूर के लब्धप्रतिष्ठित कवियों ने काव्य पाठ किया था। वहाँ इन पंक्तियों के लेखक ने पहले पहल मंच से काव्य पाठ किया था। मेरे जैसे कितने लोगों को व्यास जी ने पीठबल देकर मंच पर खड़ा किया है, इसकी निश्चित संख्या नहीं है। इसीलिए वे वातावरण के सर्जक हैं।

कवि सम्मेलन कहीं भी होता, पर आमंत्रित कवियों का आतिथ्यभार हमारी आदरणीया कुन्ती भाभी ही संभालती थीं...। ज्यादातर कवि व्यास जी के घर पर ही ठहरते थे। जब मैं नौगांव से स्थानान्तरित होकर कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) आ गया तो कुछ दिनों बाद व्यास जी भी टीकमगढ़ आ गए। जहाँ वे दो ही प्राणी थे - वे स्वयं और हमारी कुन्ती भाभी। परन्तु किराए का एक बड़ा मकान ही उन्होंने टीकमगढ़ के पपौरा चौराहे पर लिया था। तब साप्ताहिक काव्य गोष्ठियों की योजना तो यहाँ साकार न हो सकी, परन्तु अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों के वे संयोजक अवश्य हो गये थे। पपौरा जी में कवि सम्मेलन होता, परन्तु कविगण व्यास जी के घर ठहरते थे। तब मेरी समझ में उनके बड़े घर किराये से लेने का राज समझ में आया था। एक बार प्रसिद्ध गाँधीवादी कवि श्री वियोगी हरि जी कुण्डेश्वर पधारे। व्यास जी ने मुझे बुलवाया और कहा - गुणसागर! वियोगी हरि जी अब पकी फसल हैं, कौन जाने उनके दर्शनों और सानिध्य का लाभ कब मिले? या न मिले? तुम एक काम करो कि अपनी भाभी को कुण्डेश्वर लिवा ले जाओ ये वियोगी हरि जी के दर्शन कर लेंगी। मैंने आज्ञाकारी अनुज का दायित्व निभाया और कुन्ती भाभी को लेकर कुण्डेश्वर पहुँचा। वियोगी हरि जी को परिचय दिया कि आप हमारी आदरणीया भाभी जी हैं - विंध्यकोकिल श्री भैयालाल व्यास की धर्मपत्नी...। उन्होंने कहा - "ये तो ठीक है कि आप व्यास जी की अर्द्धांगिनी हैं, परन्तु आप काम क्या करती हैं? मैं कुछ उत्तर देता उसके पूर्व ही कुन्ती भाभी ने कहा - "मेरा एक ही काम है - कवियों की सेवा करना।" सुनकर वियोगी हरि जी झटके से उठकर बैठ गए और दोनों हाथ जोड़कर भाभी जी को नमन करते हुए बोले - "मेरा प्रणाम स्वीकार करो देवि! आप स्वयं में महान हैं। कवि की सेवा करना तो क्या, उसकी आदतों को सहन कर लेना भी किसी कवि पत्नी के लिए असाधारण बात है। फिर आप तो पूरी तरह से सेवा करके व्यास जी जैसे सुकवि को सहयोग कर रही हैं....।" ऐसा सुखद संयोग भी विरल है जो व्यास जी को प्राप्त हुआ है। निश्चय ही बुन्देली भाषा-साहित्य के वर्तमान काल में वे अग्रदूत हैं। वे आज अपनी ढलती आयु में भी हम जैसे छुट भैये बुन्देली कवियों के लिए एक प्रकाश स्तम्भ है, प्रेरणा के अजस्र स्त्रोत हैं। वे शतायु होने के पश्चात् दीर्घ काल तक हमारा मार्गदर्शन करें, यही भगवान श्री कुण्डेश्वर जी से विनय है।

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

प्रकृति के सिंगार मँगा दो

- प्रभु श्रीवास्तव 'पीयूष'

नोंनी के नों मायके, से नों दोहा नेक।
संगै छरी छटाक सी, चौकड़िया है एक।।
सब समाज के सामने, भरी तुम्हारी मांग।
जेइ समय की मांग है, पूरी करदो मांग।।
सात वचन दए् पाँच लए, परीं भाँवरें सात।
नैन चार, मन एक भऔ, फिर तुम काये लजात।।
लै गये ते बारात सो, आज आइ बा रात।
बातन बातन बीत रइ, अबइ मान लो बात।।
बेला की सुख सेज पै, 'बेला' तब डग दैय।
मन मानों सिंगार जब, मँगा अपुन सें लैय।।
मँगनारी जिन जानियौ, जौ हमाव अधकार।
जुगन जुगन सें सजन सें, माँगत रइँ वर नार।।
सीता जू ने माँग कें, कंचन मृग की छाल।
कैसे दिन देखे हते, जानत हौ सब हाल।।
सतभामा ने मँगा लए, पारजात के फूल।
उनके मन सें उतर गईं, तुम नइँ करियौ भूल।।
सोंनों चाँदी काँ लगै? काँ हीरन कौ हार।
रुच रुच अपने हाँत सें, रचो तुमें करतार।।
सोंनों चाँदी चाउत नइँ, ना हीरन कौ हार।
मँगा सकौ तौ मँगा दो, प्रकृति कौ सिंगार।।

जे कछू भूसन बसन मँगा दो, तन पै तुमइँ सजा दो।
भुंसरिया तारे की बेंदी, बलम हमें बनवा दो।
उँगत भाँन सें लाली लैकें, मोरे अधर रचा दो।
स्याम घटा की कजरौटी सें, नैनन कजर लगा दो।
इन्द्र धनुस की सतरंग चुनरी, प्रीतम मोय उड़ा दो।
अँगिया सिला तरइँयन की प्रभु, सूरज चंद्र टँका दो।

- चित्रांश कॉलोनी, मऊ रोड, टीकमगढ़ (म.प्र.)

भड्डरी साहित्य में लोक शिक्षा

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

ज्योतिषशास्त्र एक ऐसा बृहद्शास्त्र है जिसका महत्व सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर आज तक अक्षुण्ण है। हमारे ऋषि मुनियों ने विविध साधनाओं द्वारा योग विधाओं, दर्शन एवं ज्योतिष के गूढ़तम रहस्यों की खोज की। उन्होंने अपने अलौकिक ज्ञान से सम्पूर्ण सौर मण्डल के दर्शन किए और उसके समस्त तत्वों को ज्ञात कर उसे क्रमबद्ध किया। सृष्टि में व्याप्त अज्ञानांधकार को विनष्ट कर चहुँओर ज्ञान का प्रकाश बिखेर दिया तथा इस तथ्य का रहस्योद्घाटन किया कि ग्रहों की स्थिति मनुष्य जीवन को प्रभावित करती है, उसके समस्त कार्यव्यवहार उससे प्रभावित होते हैं। शुभ, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु एवं वर्ष आदि का ज्ञान हमें ज्योतिष से ही होता है। ज्योतिष के अनुसार शुभाशुभ विचार कर ही मनुष्य अपने समस्त कार्य करता है। हमारे हिन्दू जीवन में प्रचलित सोलह संस्कार ज्योतिष के अनुसार ही सम्पन्न होते हैं। ज्योतिष के अभाव में कोई भी धार्मिक, सामाजिक कृत्य पूर्णतः को प्राप्त नहीं हो सकता।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति में हमारी सनातन संस्कृति पर आघात किया है। अति आधुनिक बनने के व्यामोह में हम अपने शास्त्रों व संस्कारों से छिटक रहे हैं, ज्योतिषशास्त्र हमारे लिए अति दुरूह विषय बन गया है हम इस दुरूह विषय को जानने की बजाय उससे दूर भाग रहे हैं जिसका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ रहा है। असामयिक मृत्यु, दुर्बल सन्तति, बुद्धिहीनता, अल्पायु, दुर्घटनाएँ आदि अनचाही स्थितियाँ हमारे समक्ष आ जाती हैं इनसे मुक्ति का एकमात्र उपाय हमारा ज्योतिषशास्त्र है। अगर मनुष्य के समस्त संस्कार, कार्य व व्यवहार ज्योतिष के अनुसार सम्पन्न हो तो इन अयाचित स्थितियों से बचा जा सकता है। ज्योतिष के इन अतिगूढ़तम विषयों को लोक साहित्य में अति सरल रूप से जनसामान्य के सम्मुख प्रस्तुत किया है। छन्दबद्ध ये उक्तियाँ आरजा कहलाती हैं। खेतीबारी, लग्न मुहूर्त, ऋतुकाल, स्वप्न विचार, यात्रा विचार, छींक विचार, वर्षा एवं वायु विचार आदि विषयों पर अनेकानेक विलक्षण आरजाएँ साधारण ग्रामीण बोलचाल की भाषा में रची गयी हैं। सुप्रसिद्ध लोक रचनाकार भड्डरी कृत एक आरजा प्रस्तुत है, जिसमें ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय शुभाशुभ विचार का संकेत दिया गया है -

चलत समय ने उरा मिलि जाय, वाम भाग चारा चषुखाय।
काग दाहिने खेत सुहाय, सफल मनोरथ समझहु भाय।।
नारि सुहागिन जलघट लावै, दधि मछली जो सनमुख आवै।
सनमुख धेनु पिआवै बाछा, यही सगुन है सबसे अच्छा।
लोआ फिर फिर दरस दिखावै बाये ते दहिने मृग आवै।
भड्डर ऋषि यह सगुन बतावै, सगरे काज सिद्ध हो जावै।

यदि यात्रा के समय नेवला मिल जाय या बाँई ओर नीलकंठ चारा खा रहा हो या दाहिने हाथ की ओर कौवा खेत में दिखाई दे तो कार्य सिद्धि सुनिश्चित है तथा सुहागिन स्त्री सामने से घड़ा भरकर ला रही हो या सामने से दही या मछली आ रही हो, या गाय बछड़े को दूध पिला रही हो तो यह उत्तम शकुन है। इसी प्रकार लोमड़ी का यात्रा के समय बार-बार दर्शन देना बाई ओर से दाहिने ओर से मृग का जाते हुए दिखना ये सभी शकुन यात्रा के लिए अत्यन्त ही उत्तम है। इस प्रकार की गई यात्रा सफल एवं सिद्धि प्रदायक होती है।

इसके विपरीत इन परिस्थितियों में की गई यात्रा अशुभ एवं अनिष्टकारी होती है -

स्वान धुने जो अंग अथवा लोटे भूमि पै।
तो निज कारज भंग अति ही असगुन मानिये।
भैंस पाँच षट स्वान एक बैल एक बकरी जान।
तीन गाय गज सात प्रमान चलत मिलै मत करौ पयान।

अर्थात् यदि यात्रा के समय कुत्ता अंगफड़फड़ाने लगे या भूमि पर लोट जावे तो कार्य सिद्धि नहीं होती। तथा यात्रा के समय पाँच भैंसे या छह कुत्ते या एक बैल या एक बकरी या तीन गाय या सात हाथी मिल जाय तो यात्रा नहीं करनी चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष के अनुसार दिशाशूल में यात्रा करना निषिद्ध है, या भद्रा या दिक्शूल हो और यात्रा करना आवश्यक हो तो पूर्व दिशा में गोधूलि के समय, पश्चिम में प्रातःकाल, उत्तर में दोपहर के समय और दक्षिण दिशा में रात्रि के समय प्रस्थान करना चाहिए। जैसा कि इन पंक्तियों में कहा गया है -

पूरब गुधूलि पश्चिम प्रात, उत्तर दोपहर दक्खिन रात।
का परै भद्राकादिक्शूल कहै, भड्डरी सब चकनाचूर।।

यदि दिशाशूल हो तो कब और किन दिशाओं में यात्रा नहीं करना चाहिए इसका संकेत करते हुए लोककवि का ममाना है कि-

सोम शनीचर पुरुब न चालू, मंगल बुद्ध उत्तर दिशि कालू।
बिहफै दक्खिन करै पयाना, नहि फिर समझौ ताको आना।।
बुद्ध कहै मैं बड़ा सयाना मोरे दिन जनि करो पयाना।
कौड़ी से नहिं भेंट कराऊँ क्षेम कुशल से घर पहुँचाऊ।।
इक्का सुक्का पश्चिम बार यात्रा को करिये न विचार।

अर्थात् सोमवार तथा शनिवार को पूर्व दिशा में मंगल व बुद्ध को उत्तर दिशा में गुरुवार को दक्षिण दिशा और इतवार शुक्रवार को पश्चिम दिशा में यात्रा नहीं करना चाहिए।

यात्रा के लिए निकलते समय किन वस्तुओं का सेवन करना चाहिए इसका भी विचार ज्योतिष शास्त्र में मिलता है। लोक कवि ने इसका स्पष्ट संकेत इन पंक्तियों में किया है -

रवि ताम्बूल सोम को दर्पण भौमवार गुड़ धनिया चर्बन।
बुद्ध मिठाई गुरु को राई, शुक्र कहै मोहि दही सुहाई।।
शनि कहै जो अदरक पाऊँ कालहु कोटि जीति घर लाऊँ।

अर्थात् यात्रा या कोई शुभ कार्य हेतु जाते समय रविवार के दिन पान खाकर सोमवार को दर्पन देखकर, मंगल को गुड़ और धनिया खाकर, बुध के दिन मिठाई खाकर, गुरु को राई खाकर, शुक्रवार को दही खाकर तथा शनिवार को घृत खाकर यात्रा करना मंगलकारी है।

दिशाशूल विचार करते हुए लोककवि भड्डरी ने एक स्थान पर यह भी कहा है -

दिशाशूल ले जाओ बायें राहु योगिनी पूठ।
सम्मुख लेवे चन्द्रमा लावे लक्ष्मी लूट।।

यदि दिशाशूल बांये राहुयामिनी पीठ पीछे और चन्द्रमा को सम्मुख रखकर जो यात्रा करता है उसे अत्यन्त धन प्राप्त होता है।

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहण के शुभाशुभ पर विस्तृत विचार मिलता है। ग्रहण जहाँ किसी राशि को शुभ तो किसी को अशुभफलदायी होता है। लोककवियों ने ग्रहण विचार से सम्बंधित अनेक आरजाएँ लिखी हैं। एक आरजा प्रस्तुत है जिसमें एक माह में दो ग्रहण पड़ने पर क्या प्रभाव होता है, इसका संकेत किया गया है -

एक मास में ग्रहने दोई, तुरतै अन्न मँहगे होई।

यदि एक माह मे दो ग्रहण पड़ जायें तो अनाज निश्चित रूप से महँगा हो जायेगा। इसी प्रकार यदि कर्क राशि में चन्द्रमा हो और उस दिन मंगल हो तथा ग्रहण पड़ जाये तो निश्चित रूप से अकाल पड़ता है। यथा -

कर्क राशि में मंगलकारी ग्रहण परे दुर्भिक्ष विचारी।

ज्योतिषशास्त्र में इस बात पर भी विचार किया जाता है कि कौन-सी तिथि कब, कितने समय पर पड़ती है, तो वह किस प्रकार का फल देती है? ज्योतिषाचार्य भड्डरी के कथनानुसार -

चैत अमावस जे घरी, परती पात्रा माहि।
तेता सेरा भड्डरी, कातिक धान बिकाहि।

अर्थात् चैत के महीने में पत्रा में अमावस जितनी घड़ी होगी, कार्तिक में उतने ही सेर अनाज बिकेगा। इसी प्रकार लोकसाहित्यकार ज्योर्तिविद भड्डरी का अनुमान है कि यदि आषाढ़ शुक्ल पक्ष में बुध उदय हो और सावन में शुक्र अस्त हो तो अकाल अवश्य ही पड़ेगा। यथा -

सुदि अषाढ़ में बुद्ध को, उदय भयो जो देख।
शुक्र अस्त सावन लखो, महाकाल अब देख।।

होली, दीपावली एवं अन्य तीज की तिथियों के शुभाशुभ का संकेत करते हुये लोककवि भड्डरी का कहना है कि -

होली शुक्र शनीचरी मंगलवारी होय।
चाक चहौड़े मेदिनी बिरला जीवे कोय।।

अर्थात् यदि होली शुक्रवार, शनिवार एवं मंगलवार को पड़ती है तो निश्चित रूप से अकाल पड़ेगा तथा मनुष्य का जीवन संकटों से घिर जायेगा। इसी प्रकार यदि मंगलवार को दीवाली पड़ जाये तो किसान को लाभ तथा व्यापारी को हानि होती है। यथा -

मंगलवारी परे दिवारी, हंसै किसान मरै व्यापारी।

अक्षय तृतीया पर्व भी यदि गुरुवार को पड़ जाय तो ज्योतिष के अनुसार अन्न की उपज अच्छी होती है और चारों तरफ खुशहाली छा जाती है।

अखै तीज तिथि के दिना, गुरु होवें संजूत।
तो भाँखै यो भड्डरी, उपजे नाज बहूत।।

इसी प्रकार तिथियों का विचार करते हुये ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों को जानने वाले भड्डरी कवि का अनुमान है, कि यदि माघ सुदी सप्तमी मंगलवार को पड़े तो अनाज में कीड़े पड़ जायेंगे यह सुनिश्चित है, और यदि माघ सुदी अष्टमी को कृतिका नक्षत्र हो तो फागुन में समय अच्छा नहीं रहेगा एवं सावन मास में महँगाई बढ़ जायेगी। वहीं अगर माघ के महीने में पाँच इतवार पड़ जायें तो समय सुखद एवं आनन्द से बीतेगा। यथा -

माघ सुदी जो सप्तमी, भौमवार की होय।
तो भड्डरी जोसी कहै, नाज किरानो होय।
माघ सुदी आठें दिवस, जो कृतिका रिषि होय।
कै फागुन रीनों पड़े, कै सावन मँहगो होय।
माघ पाँच जो हो इतवार, तो भी जोसी समय विचार।

पूस, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मास की तिथि व नक्षत्रों का विचार करते हुए ज्योतिषाचार्य भड्डरी कवि कहते हैं -

काहे पंडित पढ़ि-पढ़ि मरौ, पूस अमावस की सुधि करौं
मूल विसाखा पूर्वाषाढ़ झूरा, जाने बहिरे ठाढ़।
जेठ पहिल परिवा दिना, जो बुध बासर होय।
मूल आषाढ़ी जो मिले, पृथ्वी कम्पे सोय।
जिस वारा रवि संक्रमै, तासो चौथे बार।
अशुभ परन्तो शुभ करै, जोसी ज्योतिष सार।

अर्थात् यदि पूस मास की अमावस्या को मूल बिसाखा या पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो तो शीघ्र ही अकाल पड़ेगा और यदि ज्येष्ठ बदी प्रतिपदा को बुध और आषाढ़ की पूर्णिमा को मूल नक्षत्र हो तो भूकम्प की आशंका की जाती है। वहीं इसके विपरीत संक्रान्ति के दिन से चौथे दिन तक अशुभ दिन में भी किया गया कार्य शुभफलदायक होता है।

इसी प्रकार अक्षय तृतीया को यदि रोहिणी नक्षत्र, पूस की अमावस्या को मूल नक्षत्र, कार्तिक पूर्णिमा को कृत्तिका नक्षत्र न पड़े तो समझ लेना चाहिए कि यह वर्ष दुष्ट, दुर्जनों के प्राबल्य का होगा उनका प्रभुत्व बढ़ेगा और वे सज्जनों को कष्ट देंगे।

रोहिनी अक्षय तीज को, मूल अमावस पूस।
कतिकी पर कृतिका नहीं, बाढ़े खलदल खूस।।

नवीन वस्त्र कब और किस दिन धारण करना चाहिये इसका संकेत करते हुए भड्डरी कवि कहते हैं -

कपड़ा पहिरै तीन बार, बुद्ध बृहस्पति शुक्रवार।
हारें उबरे का इतिवार, भड्डर का है यही विचार।।

अर्थात् नवीन वस्त्र बुद्ध, बृहस्पति एवं शुक्रवार को धारण

करना चाहिए और यदि बीच में आवश्यकता हो तो इतवार को पहना जा सकता है अन्य दिन में पहनना शुभ नहीं होता।

अंगों का फड़कना, छींक आदि के शुभाशुभ का विचार भी ज्योतिष में किया जाता है। कौन से अंग का फड़कना शुभ और कौन से अंग का फड़कना अशुभ एवं छींक का कब और किस तरह आना शुभ व अशुभ फल देने वाली होती है, इस पर ज्योतिषाचार्य लोककवि भड्डरी ने लिखा है कि -

सम्मुख छींक लड़ाई भाखै, पीठ पछिली सुख अभिलासै।
छींक दाहिनी धन कौ नासै, बायी छींक सुख सदा प्रकाशै।
ऊँची छींक सदा शुभ जानो, नीची छींक अधिक भय मानो।
आपुन छींक महा दुःखदायी, कहै भड्डरी ज्योतिष बनाई।
आपुन छींक राम वन गयऊ, सीता हरन तुरन्तै भयऊ।।

अर्थात् सामने की छींक से लड़ाई, पीछे के छींक सुखदाई, दाहिनी छींक धन विनाशक, बायी छींक सुख प्रदायक, ऊँची से लाभ, नीची से हानि और अपनी छींक महादुःख देने वाली होती है, ऐसा भड्डरी कवि का मानना है क्योंकि अपनीं छींक के कारण ही राम गबन एवं सीता हरण जैसे अशुभ कार्य हुए।

विभिन्न दिशाओं की ओर आने वाली छींक का शुभाशुभ फल के सम्बंध में विचार करते हुए भड्डरी कवि ने लिखा है कि -

पूरब मंगलकारी, अगिन कौन शुभ भारी।
दखिनै छींक निडर हो जारी, वायुकोन विरधैहारी।
पश्चिम छींक भोजन मिले, नैरित छींक विवादे करे।
उत्तर खूबै झगड़ा होय, ईशान धन प्राप्ति होय।

अर्थात् पूर्व, अग्निकोण एवं दक्षिण दिशा में आने वाली छींक शुभ होती है वही वायव्यकोण, नैऋत्य और उत्तर दिशा में होने वाली छींक अशुभ एवं कलहकारी होती है। पश्चिम दिशा की छींक से स्वादिष्ट भोजन तथा ईशानकोण की छींक से धन की प्राप्ति होती है।

खेती किसानी, के लिए शुभ तिथि एवं मास आदि के सम्बंध में भी भड्डरी कवि ने लिखा है कि -

नागिन तीन सौ साठ दिन, ना करि लगन विचार।
गिन नौमी आषाढ़ वदि, होवै कोनउ बार।
रवि अकाल मंगल उगै, बुध्द समान भाव में।
सोम, शुक्र जो बीझै होय, फहमी फूल बलन्ती होय।

अर्थात् हे कृषक! तू वर्ष के सभी दिनों की गणना छोड़कर केवल एक दिन की गणना कर कि आषाढ़ वदी नौमी को कौन सा दिन है ओर उसका फल क्या है? यदि रविवार आषाढ़ वदी नौमी को रविवार हो तो दुर्भिक्ष पड़ेगा, मंगल हो तो पक्षियों को कष्ट मिलेगा, बुध्द हो तो समान भाव रहेगा और यदि सोमवार शुक्रवार या गुरुवार हो तो पृथ्वी पर अधिक फल पैदा होंगे।

इसी तरह यह भी कहा जाता है कि -

आगे रवि पीछे चते, मंगल जो आषाढ़।
तौ बरसै अनमोल हो, पृथ्वी आनंद बाढ़।।

अर्थात् जिस वर्ष सूर्य के पीछे मंगल रहता है उस वर्ष वर्षा अच्छी होती है और पृथ्वी पर आनन्द छा जाता है।

यदि बैशाख शुक्ल तृतीया के दिन गुरुवार हो तो अन्न की पैदावार उत्तम होती है और प्रजा सुख एवं आनन्द से रहती है। यथा-

सुदी बैशाख तीन गुरुवारी अधिक अन्न ते प्रजा सुखारी।

कुत्ता का काटना तो अनिष्टकारी होता है, लेकिन अगर किसी नक्षत्र विशेष में कुत्ता काट ले तो ज्योतिष के अनुसार उसकी गणना कर क्या फल होता है, इसकी गणना करते हुए कवि भड्डरी का मानना है कि -

भरणी विशाखा कृतिका, आर्द्रा औ मघमूल।
इनमें कटे कुक्करा, भड्डर है प्रतिकूल।

अर्थात् यदि भरणी, विशाखा, कृतिका, आर्द्रा व मघा नक्षत्र में कुत्ता काट ले तो उसका परिणाम महाअनिष्टकारी होता है। छिपकली के गिरने का क्या फल होता है, यह भी ज्योतिष शास्त्र में वर्णित है। लोककवि ने भी इस ओर संकेत किया है -

सिर पर गिरे राजसुख पावे, औ ललाट ऐश्वर्य लियावै।
कंठ मिलावै पिय को लाई, काँधै पड़े विजय दरसाई।
जुगल कान और जुगल भुजाहू, जोधा गिरे हाय धन ताहू।
हाथन ऊपर जो कहूँ गिरई, सम्पति सकल गेह में धरई।
निश्चय पीठ परै सुख पावे, परै नित मित्र अभंगा।
जुगल जाँघ पर आन जो परई, धन जन सकल मनोरथ भरई।
परै जाँघ नर होइ निरोगी, परब परे तन जीव वियोगी।

इसी प्रकार यदि रोहिणी उत्तरा, रेवती एवं स्वाति इन तीनों नक्षत्रों में अर्द्ध रात्रि के समय कन्या का जन्म हो तो वह मृत्यु को प्राप्त होती है तथा माता के लिए अत्यन्त कष्टदायक होती है। ऐसी कन्या यदि जीवित रह भी जाये तो कुल को कलंकित करती है। यथा-

रोहिनी, उत्तरा रेवति, स्वाति कन्या जन्में आधी रात।
आप मरै माई दुःख पावै, जिये तो कुल में दाग लगावै।

ज्योतिष शास्त्र में इस बात पर भी विचार किया गया है कि सुहागिन स्त्री को कब और किन नक्षत्रों में चूड़ियां पहननी चाहिए। आरजा दृष्टव्य है -

पुख्ख पुनरबस परहरै, रोहिन डारै मार।
तीनऊ उतरा न मिलै, जो चाहौ पतिराज।"

अर्थात् पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्र में सुहागिन स्त्री को चूड़ियाँ नहीं पहननी चाहिए।

निष्कर्षतः लोकसाहित्य में ज्योतिष के जिन गूढ़तम रहस्यों को सरलतम बनाकर सरल शब्दावली में जन-जन तक पहुंचाने का कार्य लोक साहित्य प्रणेता भदुरी ने किया है वह निश्चय ही लोककल्याणकारी एवं परहितकारी है। और इस बात में कोई सन्देह नहीं कि यह युग युगान्तर तक लोगों को शिक्षा देता रहेगा तथा उनका मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

- श्रीकृपा निकेतन, आदर्श नगर, नं. १ स्कूल के पीछे, छतरपुर

बुन्देलखण्ड में कन्या विवाह के गीत

- कु. रामकिशोरी गुप्ता

हमारे देश में और विशेष रूप से हिन्दुओं में विवाह को एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मान्यता दी गई है। विवाह स्त्री-पुरुष का वह पारस्परिक सम्बंध है जो धर्म तथा नियमों से बंधा होता है। बुन्देलखण्ड में लड़का और लड़की के विवाह की तिथि निश्चित हो जाने पर दोनों पक्ष विवाह की तैयारी अपने रीति-रिवाजों के अनुसार शुरू कर देते हैं। इस अवसर पर भिन्न-भिन्न रसों के मधुर गीत गाये जाते हैं। वर पक्ष के घर गाये जाने वाले गीतों को 'बन्ना' कहते हैं। इन बन्ना गीतों में माता-पिता एवं वर की कोमल तथा मधुर कल्पनाओं तथा भावनाओं का समावेश होता है।

पुत्र विवाह की असीम लालसा प्रत्येक माता पिता के हृदय में रहती है। माता का हृदय पुत्र के विवाह की कल्पना मात्र से आनन्द विभोर हो उठता है। बुन्देलखण्ड में ऐसी मान्यता है कि विवाह के अवसर पर दूल्हे को अढ़ाई दिन का राजा माना जाता है, उसे राजा के समान ही मान सम्मान दिया जाता है। इसके साथ ही साथ यह भी धारणा विद्यमान है कि प्रत्येक वर-कन्या को राम-सीता, पिता को दशरथ और जनक तथा माता को कौशल्या तथा सुनयना के रूप में स्वीकार किया जाता है यथा -

"बैठे-बैठे कौशल्या की गोद रामचन्द्र दूल्हा बने।"

एक अन्य - "छवि ले लो निहार छवि ले लो निहार जे बनरा राम नगीना।" - आदि-आदि।

समाज में कन्या का विवाह एक भीषण समस्या के रूप में विद्यमान है। विवाह योग्य कन्या माता-पिता के लिये असाध्य पीड़ादायक होता है। उन्हें रात-दिन उसके विवाह की चिन्ता सताए रहती है। उनके आँखों की नींद, मन की शान्ति, जीवन का सुख, हृदय का आनंद, विवाह योग्य कन्या को देखकर समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि पुत्री का जन्म होते ही माता-पिता का हृदय वेदना से भर जाता है। इस भाव की सहज अभिव्यक्ति दृष्टव्य है, कन्या अपने आजुल (दादा) से उनकी अनिद्रा का कारण पूछ रही है -,

"झमक अटरिया बेटी चढ़ गई आजुल सोओ कि जागो मोरे लाल।
हम कैसें सोएँ बेटी लाड़ली, हमें चिन्ता तुम्हारी मोरे लाल।"

हर माता-पिता की हार्दिक इच्छा होती है कि उनकी बिटिया उनसे अधिक सम्पन्न घर में जाय, जहाँ उसे मायके से अधिक सुख सुविधायें मिलें। प्राचीन समय में नाई और ब्राह्मण ही घर वर देखने जाते थे। उन्हीं के बताये अनुसार माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह तय कर देते थे। प्रस्तुत है एक गीत की पंक्तियाँ -

"कौना ने लिख दये घरई के अंगना, कौना लिखे परदेस मोरे लाल।
बमना ने लिख दये घरई के अंगना, नउआ ने लिखे परदेस मोरे लाल।

माता-पिता अपनी बेटी के लिये अच्छा घर वर न मिल पाने के कारण दुखी थे, किन्तु मनोनुरूप घर वर मिल जाने से विवाह की सभी रस्में पूरी करने के पश्चात् बेटी की विदा करते समय उन्हें कितना दुख होता है का मार्मिक चित्रण लोकगीत में अवलोकनीय है-

"कौना के रोय-रोय नदिया बहत है, कौना के रोय सागर ताल मोरे लाल।
कौना के रोय-रोय छतियाँ फटत हैं, कौना के हियरा कठोरे मोरे लाल।
बाबुल के रोय-रोय नदिया बहत है, माई के रोय सागर ताल मोरे लाल।
भैया के रोय-रोय छतियां फटत है, भौजी के हियरा कठोर मोरे लाल।

पुत्री का माता-पिता, भाई-भाभी आदि से विदा हो कर जा रही है उस समय माता-पिता के मन के उद्गार देखिये निम्न पंक्तियों में -

"कौना कहे बेटी नित उठ आइओ, कौना कहे दोई जोर मोरे लाल।
बाबुल कहें बेटी नित उठ आइयो, माई कहें दोई जोर मोरे लाल।"

पुत्री विदा के समय माता-पिता, भाई भाभी, बहिनों आदि से लिपट-लिपट कर रोती है, वह अपने परिवार जनों से बार-बार भेंट करती है। उसके कदम आगे नहीं बढ़ते। वह पुनः माँ से चिपटकर रोने लगती है। उस अवसर पर उसे जबरन डोला में बैठाया जाता है। इसका मार्मिक हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत है -

"पकर हथुलिया बेटा डोला में धर दई, डोला किलकत जाय मोरे लाल।

गीत के मनोभावों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। जिसे सुनते या गाते समय कोई भी कितना ही कठोर क्यों न हो उसका हृदय द्रवीभूत हो आंखें आंसुओं से नम हो जायेगी। प्रस्तुत है -

"परदा उठा बेटी ढूँकन लागी, कहाँ गये माई बाप मोरे लाल।
गैला में दिख गये बन के बरेदी, भैया संदेश ल्यें जाओ मोरे लाल
हमरे खेलत की धरी है पुतरियाँ, नदिया में दइयो बहाय मोरे लाल।

कन्या पक्ष पर जोर जबरदस्ती कर दहेज लेना निश्चित रूप से निन्दनीय है, अपराध है किन्तु सुयोग्य घर वर मिल जाने पर कन्या के माता-पिता की चिन्ता दूर होने से उनकी छाती फूल जाती है, और वे आनन्द विभोर हो जाते हैं। वे अपनी लाड़ली बेटी को अपनी सामर्थ्यानुसार भरपूर दान दहेज देते हैं। लड़की के ससुराल पक्ष वाले नई बहू से प्राप्त दान दहेज के सम्बंध में प्रश्न पूछते हैं यथा -

"कौना ने दीन्हो सवा मन सोना, कौना ने लहर पटोरे मोरे लाल।
कौना ने दीन्हों खेलत को घुड़ला, कौना ने सेंदुर भर माँग मोरे लाल।

नई बहू बतलाती है -

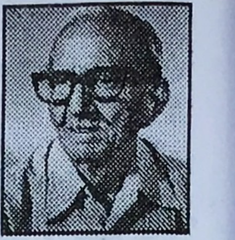
"बाबुल ने दीन्हों सवा मन सोना, माई ने लहर पटोरे मोरे लाल।
भैया ने दीन्हों खेलत को घुड़ला, भौजी सेंदुर भर माँग मोरे लाल।

हमारे बुन्देलखण्ड में विवाह अवसर पर गाये जाने वाले इन लोकगीतों में भावों की जो सहज, सरस, सरल और हृदयग्राही अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उसकी कल्पना खड़ी बोली के गीतों में नहीं की जा सकती है।

- पुराने पोस्ट ऑफिस के पास,
हवेली रोड, टीकमगढ़

धरोहर लेख -

बुन्देलखण्ड के गौरव काव्याचार्य केशव और उनकी कला



- कीर्ति शेष अम्बिका प्रसाद दिव्य

हिन्दी जगत में सूर तुलसी और केशव जैसे नाम हैं जिनसे अपरिचित होना स्वयं अपने ही से अपरिचित होने के समान है। तीनों को हिन्दी का प्रमुख कवि माना जाता है। परन्तु प्राचीन साहित्यकारों ने उन्हें एक ही श्रेणी में नहीं रखा। उनके विषय में एक दोहा प्रचलित है।

सूर सूर तुलसी शशी उठगन केशवदास,
अब के कवि खद्योत सम जह तह करत प्रकाश।

इससे स्पष्ट है कि सूर को प्रथम तुलसी को द्वितीय और केशव को तृतीय स्थान दिया गया है। परन्तु केशव को यह स्थान स्वीकार नहीं था। वे अपने को सूर और तुलसी से भी अधिक श्रेष्ठ कवि समझते थे। कहा जाता है कि वे तीनों एक बार अकबर बादशाह के दरबार में बुलाये गये थे। अकबर ने उन तीनों महापुरुषों से प्रश्न किया था कि तुममें सबसे बड़ा कवि कौन है। प्रश्न को सुनते ही केशव बोल पड़े थे, महाराज मैं। केशव की इस धृष्टता से अकबर को कुछ खिन्नता हुई। वे त्योरी बदलकर बोल उठे, सो कैसे, केशव ने उत्तर दिया, जहाँपनाह ये दो तो महात्मा हैं कवि नहीं। मैं महात्मा नहीं एकमात्र कवि हूँ, और इस प्रकार कविता की दृष्टि से इन दोनों से श्रेष्ठ हूँ। इस उत्तर को सुनकर अकबर के मुख पर प्रसन्नता की एक रेखा दौड़ गई। केशव ने ऐसे ही चातुरी से अपनी गर्वोक्ति का समर्थन किया जैसे कि एक कवि के लिए उचित थी। केशव का कथन किसी सीमा तक उचित ही था। वे कवि थे। काव्य कला में पारंगत काव्याचार्य। इसमें अणु मात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। केशव ने काव्यकला में जो दक्षता प्रदर्शित की है वह अद्वितीय है। आज तक कोई ऐसा अन्य कवि आविर्भूत नहीं हुआ जो उनका स्थान ले सके। केशव का पाण्डित्य चमत्कृत किये बिना नहीं रहता। उनको भाषा पर एवं पिगल शास्त्र पर कितना अधिकार था कहते नहीं बनता। केशव ने कितने ही ग्रन्थों की रचना की। उन सबसे प्रमुख उनकी रामचन्द्रिका है। इस ग्रंथ में कथा वस्तु तो रामायण की है परन्तु कला कौशल उनका अपना। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रन्थ की रचना कला कौशल के प्रदर्शन के लिये ही की गई है। उन्होंने वस्तु का सांगोपांग वर्णन नहीं किया, परन्तु उनकी सांकेतिक शैली इतनी गूढ़ और रहस्यमय है कि वह सांगोपांग वर्णन के परे ही पहुंच जाती है। उनके एक एक छन्द को पढ़कर और उसके अर्थ को समझकर ऐसा लगता है जैसे कि कोई भूल भुलैयों से भटका हुआ व्यक्ति उनके बाहर निकलकर आनन्द का अनुभव करता हो। और एक आश्चर्य की भावना को मूक अभिव्यंजना दे रहा हो। रामचन्द्रिका का प्रथम छन्द ही देखने योग्य है।

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारे सब काल,
कठिन कराल त्यो अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल प्रेति पठवे कलुष को।
दूरि के कलश अक भवसीस संसि सम,
राखत है केशवदास दास के वपुष को।
साकरे की साकरम सनमुख होत हीतो,
दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख कौ।

इस एक छन्द में ही सातों काण्ड रामायण सांकेतिक भाषा से कह दी गई है। इस सांकेतिक भाषा को समझे कौन। उसको समझने के लिए केशव सा ही कोई महान पंडित होना चाहिए। टीकाकार का कार्यकर्म कभी कवि से भी अधिक क्लिष्ट हो जाता हैं कभी-कभी वह कवि को भी परास्त कर आगे निकल जाता है और ऐसे अर्थ ढूँढ़ निकालता है जो कवि के स्वयं विचार क्षेत्र में नहीं रहे। केशव की इस रामचन्द्रिका के कितने ही टीके हुये हैं परन्तु सर्वप्रथम टीका जानकीदास टीका है। ये मैथिल ब्राह्मण थे। इनका टीका नवल किशोर प्रेस लखनऊ से सन् १८८२ से प्रकाशित हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि जानकीदास जी ने टीका करने से जो पाण्डित्य दिखलाया है वह कम स्तुत्य नहीं। उन्होंने अपनी बुद्धि को ऐसी सीमाओं तक दौड़ाया है जहां तक उनका अनुसरण करते हुये भी आज केपाठक को पहुंचना कठिन प्रतीत होता है। उनकी भाषा उनके समय की है। उनकी शैली भी उनके अपने युग की है जो पाण्डित्य से बोझिल एवं द्रूह है।

छन्द का साधारण अर्थ यह है - जिस प्रकार एक हाथी का बच्चा कमल के डंठल को सहज ही सब समय से तोड़ डालता है उसी प्रकार गणेश जी भयंकर कठिन महाकाल को तोड़ डालते हैं। जिस प्रकार बालक कमलिनी के पत्रों को तोड़ डालता है उसी तरह गणेश जी विपत्तियों को तोड़ डालते हैं और जिस प्रकार बालक पैर से दबा कर कीचड़ को पाताल को भेज देता है उसी तरह गणेश जी पापोंको कुचल कर पाताल को प्रेषित कर देते हैं। जिस प्रकार महादेव जी चन्द्रमा के कलंक को दूर कर अपने मस्तक में रखते हैं उसी प्रकार गणेश जी अपने भक्तों के शरीर को निष्पाप बनाकर रखते हैं। संकट में पड़े हुए व्यक्ति ज्यों ही उनके सम्मुख होते हैं उनके संकटों को वे जंजीरों के समान ही तोड़ फेंकते हैं। इसी कारण से दशों दिशायें मंगल कामना से गणेश जी के मुख की ओर ताकती रहती हैं। दस मुख का अर्थ दसों दिशाओं से अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश से हो सकता है। इन तीनों देवताओं के मुख मिलकर दस होते हैं।

इसके अतिरिक्त जानकीदास जी ने जो छिपा हुआ रहस्य उसमें पाया है वह देखिये उनकी स्वयं की भाषा से।

बालक पाँच वर्ष को हाथी सो जैसे मृणाल पोनारों को सब

काल में तोरि डारत है, तैसे गणेश कठिन ओ कराल भयानक ओ अकाल कहो असमय को जो दीह कहे बड़ो पुत्र मरणादि को दुख है ताको तोरत है औ जैसे बालक पद्मिनी कमलिनी के पात को हरत तोरत हते पे ये विपति दरिद्रादि को हरत है औ बालक जैसे पग सो दाबि पक कहे कीच को पेति के पाताल को पठावत है, तेपे ये कतुष जे पाप हैं तिनको पठावंत है। इहा गजराज कौ त्याग करि बालक समया सो कह्यो कि पंधिनी पचावि तोरन में बालक को उत्साह रहत है तेसे गणेश जू को विपत्यादि बिदारणेम बखो उत्साह रहत है। कोतुक ही बिदारत है जो गणेश जू दोसन के कलंक को अक कहे चिन्ह को दूरि करिके जैसे भव महादेव को शीष को शशि है कलंक रहित ताहि विधि दारुन के वपुण शरीर को राखत है ओर जनक सन्मुख होत ही साकर राज भयादि ताकी साकर बन्धन जजीरन कही वही रहति ऐसे जे गजमुख गणेश, है तिनके मुख को दशमुख जे ब्रह्मा विष्णु महेश है तिनके मुख जोवे कहे निरखित है स्तुति करत है अथवा दशमुख जे दसौ दिशा है तिनके दो मुख है अर्थ यह दशो दिशन के प्राणी स्तुति करतहै। तो इहा स्तुति सो अभिकांक्षित वस्तु को मांगिवो सूचित भयो तासो आशीर्वादात्मक मंगल है दूसरो अब जो ग्रन्थ कवि लोग करत है ताकी कथा प्रथम संक्षेप सो कहत है सो युक्ति सो याही मंगलाचरण से कह्यो हे बालक या पदते श्री रामचन्द्र को जन्म सूचित भयो ओ सबको कालरूप है सुबाहु ताडकादि है, तिन्हं मृणालन पोनारिन के समान सह जेही तोरि डारत भये मारत भये औ कठिन औ कराल कड़े भयानक ऐसा जो धनुष है औ अकाल कहे कुसमय को जो दीह बड़ो दुख है व्याहकृत उत्सव में परशुरामकृत दुख गर्वगति समेत तिंनहुन को त्यो कहे ताही प्रकार तो मृणालनं बहुवचन है तासो ताड़कादि वध धनुभंग परशुराम गतिर्भग सर्वत्र समता कियो। यह बालकाण्ड क्या है।

ओ राज्यत्याग रूप जो विपति है ताको हठिके करत कहे ग्रहण करत भये भर तादि को गह्यो नमानो आप पद्मिनी कमलिनी के पास कहे पुष्प पत्र समं सुकुमार है। यह अयोध्याकाण्ड की कथा है। ओ पक ज्यों के कहे पक के सदृश नीच ऐसा जो विराध है, ताको पेति के पताल को पठावत भये वाल्मीकीय रामायण में लिख्यो है कि काहू अस्त्र शस्त्र सो न मरै तब रामचन्द्र जीवित ही गाडि लियो ताही प्रकार कलुष पाप रूप जे खर दूषाणादि है तिनहुनन को मारयो। यह आरण्यकाण्ड कथा है। ओ कलंक को है उरु चिन्ह जाके ऐसा जो बन्धु पत्नी भोगी बालि है ताको दूरि करत मारत भये औ दांस जो सुग्रीव है ताको भव महादेव के शीश के शशि के सम राखत भये जैसे भवशीश शशि को राहु को भय नहीं रहत तैसे शत्रु भय रहित सुग्रीव को कियो अथवा महादेव के माथे से द्वितीया को चन्द्रमा है यासो या जनायो कि भव संसार को राज्य पाइ सुग्रीव की ओर बढ़ती हूहै। यह किष्किन्धा काण्ड की कथा है। तथा इसी पद में सुन्दर काण्ड है। केशव जे रामचन्द्र है तिनके दास जे सुग्रीव है तिनके दास जे हनुमान है ताके बपुष का शरीर को भवशीश शशि सम राखत भये कि लंका में प्रकाशित करते भये कलंक रूप से सिंहिका अच्छकुमारादि है तिनको दूरि करके कहे मारकि यह सुन्दरकाण्डकी कथा है। ओ रामचन्द्र के सम्मुख होत ही विभीषण के साकर कष्ट की जो साकर जजीर रही शीत कहे न रहत भई रामचन्द्र है दर्शन ही सो विभीषण को दुख दूरि भयो तब दस मुख जो ब्रह्मा विष्णु महेश है ते विभीषण को मुख जोवत भये कि धन्य है विभीषण जाको रामचन्द्र अंगीकार करयो औ गजमुख जे गणेश है तिन मुख कहे आदि दै और देवता है ते को कहे कहा है अर्थ यह गणेशादि देवता तो जीवत ही भये औ आकर जे यमादिक है तिनको साकर कहे कष्ट दैवेया ऐसा जो रावण है सो रामचन्द्र के सम्मुख होत ही न रहत भयो गजमुख जे गणेश है तिनके मुख कहे श्रेष्ठ ऐसे जे रामचन्द्र है तिनके मुख को जोवत भयो अर्थ यह उनके लोक को प्राप्त भयो अथवा मुख जोवे। कहे मुख में लीन होत भयो। तुलसीकृत रामायण से लिख्यो है कि तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सबन अचम्भो माना। यह लंका काण्ड की कथा है।

ओ सांकर जो रावण है ताके साकर जो रामचन्द्र है तिन्हें अयोध्या के सन्मुख होत की दसमुख जे ब्रह्मा विष्णु महेश है ते मुख कहे मुख्य औ गज मुख जे गणेश है ते रामचन्द्र को मुख जोवे कहे स्तुति करत है अथ वा दसमुख कहे दसौ दिशा के मुखे औ गजमुख मुखकहे हाथिन से मुख्या ते मुख जोसे कहूँ रामचन्द्र, को` मुख निहारत है। यह उत्तरकाण्ड की कथा है।

छन्द में बालक शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे जानकीदासजी के अनुसार, रामचन्द्र जी के बालक रूप के प्रति संकेत है। उन रामचन्द्र जी ने सुबाहु एवं ताड़का आदि को इस तरह तोड़ तोड़ फेंका जैसे वे कमल के डंडल मात्र हो। इसके अतिरिक्त उन्होंने जनक जी के सीता स्वयंवर से इस प्रकार छन्द की दो पंक्तियों से बालकाण्ड की समस्त लीला का संकेत कर दिया गया है। फिर रामचन्द्र जी ने राज्य का त्याग किया, भरत नें लोटा लाने के लिये हठ किया परन्तु रामचन्द्र जी ने राज्य त्याग के दुख को एवं भरत के हठ को उसी प्रकार तोड़ फेंका जिस प्रकार कोई बालक कमलिनी के पत्रों को तोड़ फेके। इन दो पंक्तियों में अयोध्याकाण्ड की समस्त लीला का संक्षेप में ही वर्णन हो गया। फिर रामचन्द्र जी ने व्याध और खरदूषण को उसी तरह कुचल कर पाताल को पठा दिया जिस प्रकार हाथी का बच्चा कीचड़ को पैर से दबाकर पाताललोक पठा देता है। यह आरण्यकाण्ड की कथा है। आगे चलकर किष्किन्धाकाण्ड आता है। उसमें बालि को समाप्त कर सुग्रीव को द्वितीया के चन्द्रमा के समान भय रहित करके राज्य से स्थापित किया गया जैसे कि द्वितीया का चन्द्रमा शंकर जी के मस्तिष्क पर निष्कलंक और निर्भय होकर रहता है। इन्हीं पंक्तियों में सुन्दरकाण्ड की कथा सन्निहित है। केशव जो रामचन्द्र है, उनके दास सुग्रीव हैं और सुग्रीव के दास हनुमान हुये। हनुमान को लंका में इस तरह स्थापित किया गया जैसे द्वितीया का चन्द्र महादेव जी के मस्तक पर है और उन्होंने कलंक रूप सिंहिका तथा अक्षय कुमार को नष्ट कर दिया। इसके पश्चात लंका

काण्ड की कथा आती है। रामचन्द्र जी के सन्मुख होते तब विभीषण के संकट दूर हो गये। तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश विभीषण के मुख को देखने लगे। गणेश जी आदि देवता तो उनके मुख को देखते ही रह गये। साकर से अभिप्राय है रावण का। रावण भी रामचन्द्र जी के सनमुख होते ही साकर के समान ही टूट गया। आगे कथा आती है उत्तरकाण्ड की। इसमें केवल इतना ही संकेत है कि दसों दिशायें, तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं गज प्रमुख दिशाओं, के हाथी रामचन्द्र जी की वंदना करते हैं। इस प्रकार एक ही छन्द से सातों काण्ड की कथा का संकेत है।

इस प्रकार दर्शनीय है कि रामचन्द्रिका का प्रथम छन्द ही कितना रहस्यमय है। उससे सातों काण्ड रामायण मूल रूप से भरी हुई है। उस एक छन्द मात्र को पढ़ने से सातों काण्ड रामायण पढ़ने का फल उपलब्ध हो सकता है। वह बीज रूप है। इसमें केशवदास जी का पाण्डित्य एवं उनके टीकाकार जानकीदास जी का पांडित्य ऐसा जान पड़ता है जैसे दो समानान्तर रेखाओं पर चला हो। कवि केशव दास वे इस छन्द की रचना ऐसी ही गूढ़ योजना से की रही होगी कि उससे सातों काण्ड रामायण का संक्षिप्त बोध हो जाने या जानकीदास जी केशवदास जी के समकालीन होते तो वे इनका लोहा मानते। परन्तु यदि छन्द से अपनी कुछ विशिष्ट छन्द योजना न हो तो टीकाकार कहां तक दौड़ सकता है। केशवदास के छन्द की शब्द योजना, वाक्य विन्यास एवं भाषा का गठाव ऐसा है जो जानकीदास जी के अर्थ के अतिरिक्त भी और भी कितने ही अर्थों को जन्म दे सकता है। केशवदास का आचार्यत्व अपने में इतना समृद्ध था और सम्पन्न है कि उनके एक दो टीकाकार नहीं लगभग ३२-३३ टीकाकार हो गये और उन सबने कुछ न कुछ नवीनता एवं वैचित्र्य को स्पष्ट किया। वे सब टीका आज उपलब्ध नहीं। केशव की गर्वोक्ति कि मैं कवि हूँ, सर्वथा न्यायसंगत थी। वे कवि थे, काव्य कला के धनी, बुन्देलखण्ड के गौरव।

-सौजन्य : जगदीश किंजल्क

१४५-ए, साईनाथ सी-सेक्टर, कोलार, भोपाल

लघु कथा -

उत्सव

- साकेत सुमन चतुर्वेदी

अपने शहर के बुजुर्गवार और अच्छौ लिखवे वारे कविअन में उनकौ नाव हतो। अपने भरे पूरे कुटुम्ब में दस मोड़ी-मोड़न के सगै वे बीस-पचीस नाती-पोतन के बब्बा और नाना हते। कछू सालन पैलां बीमारी सें उनकी घरवारी सुरग सिधार गई तीं तबसें वे अनमने ढीले-ढीले से रै रएते। यैसों नईं हतो कै उनकी घर में पूँछ नईं ती या उनकी नईं चलतती। मोड़ी-मोड़न से लैंकें चेटीं-चेंटा सबई उनखां खूब चाउततें और उनकी बात माननते खूब उनकी सेवा करते मगर अकेलौपन उनें खटकत रततो। जीकी भरपाई वे कविताऐं लिखकें करत रतते। कछु दिनन सें उनके हाथन-पांवन के जोड़न में गठिया कों दरद रैवे सें उठवे-बैठवे, चलवे-फिरवे में तकलीफ होंन लगी ती। जीसें उननें खटिया पकर लईती। एक दिनां अपने मोंड़न खों अपने ऐंगर बिठाकें उननें कई - बेटा तुमन नें मोरी और मताई की खूब सेवा करी परमेसुर की कृपा सें तुम सबई खूब चैन सें खाओ, जेई मोरी उसें विनती है, और मोरी इच्छा है कै सात दिनां में मोरी जा कविता की हाथ सें लिखी कापी की किताब छपवाकें, मोड़िअन खाँ, रिश्तेदार खाँ, शहर के साहित्यकारन खाँ और मिलवे-जुलवे वारन खाँ बुलाकें मोरी कविता संग्रह कौ विमोचन करा दो। काऐ कै अब जिन्दगानी कौ कछूँ भरोसी नईआँ। मोंड़न नें उनें धीरज बढ़ाओ - दद्दा कैसी बातें करत हों तुमाई किताब एक नईं दस छपनें हैं, तुम खूब लिखौ, अबै तौ तुमें मुलक जीनें है। अपनों कामकाज छोड़ मोंड़न ने किताब छपवा दई। सबरे लोगन खों सातवें दिनां कविता की किताब के विमोचन कौ न्यौतौ पठा दुओ। सातवें दिनां घर के सामें खाली परी जगां में पण्डाल, लाइट, मंच बनाकें कुर्सी बिछा दई गई। भोरई सें उननें परमेसुर के नाम की रटन लगा रखी हती, उनमें आज बब्बा की फुर्ती पतौ नईं कासें आ गई ती वे बिना कोऊ के सहारे कें, उठ बैठकें गरम पानी सें सपरकें परमेसुर की फोटो के सामें पूजा पाठ करकें अपनी छपी किताब खों उलट-पलट कें दिन भर देखत रऐ। संजा कें लोगन कौ आवो शुरू हो गओ वे सबसें मिलकें खूब खुशी सें मनमें जैसें नच रएते। मोड़न नें मंच पें चलवे की कई तौ अपने हाथ खों पकरवे खों मना करकें, सूट-बूट में संजे-संवरे फौजी नाई कदमताल सी करत मंच पैं पौंच गए। सबरे लिखवे-वारन सें जै रामजी करकें बतयान लगे। बातन में खुशी से जैसे उनकों मौ फुकना जैसों फूल रओ तो। कार्यक्रम शुरू भओ उनने शारदे मैया खों हाथ जोरे मुड़ी नवाई, फोटो पै माला चढ़ाई औ सबरे मंच पै बैठे लिखवे वारन खों माला गरे में डारकें हँस हँसकें खूब गरे मिले। अपनी किताब की विमोचन की बेरां उनके मों पै हुलास हीरा की नाई दमकन लगी ती वे संगी-साथिअन सें ऐसें बतआरऐ ते जैसें ज्वानी में घोरा पें बैठो दूल्हा बतिआत है। खूब बधाई मिलीं खूब फोटो खिंची और खूब उनकी तारीफें भई फिर संचालक ने उनें कछू कैवे और कविता पढ़वे मंच पै बुलाओ। माईक पैं पौंच कें उननें सबखों न्योर-न्यौर के धन्यवाद दओ स्वागत करो। किताब छपवावे में घरवारन को सहयोग बताओ और छपवो परमेसुर की कृपा बताई। एक कविता पढ़कें वे मंच पै जई के तई बैठ गओ। मंच सें और सामे सें उनसें और कविता पढ़वे कौ अनुरोध करो गओ मगर वे टस से मस नई भओ। बगर वारे ने उनें उठावे की कोशिश करी तौ वे एक बाजू लुढ़क गये। उनकी जिन्दगानी के प्राणन कौ कविता कौ हंस आकाश छूवे उड़ चुको तो, उनकी खुली आंखें आत्मिक शान्ति के जैसें गीत गा रई ती।

- ३६/१५, प्रेमगंज, झाँसी (म.प्र.)

ओमशंकर असर का ओरछा हाउस से यूरोप तक ख्याति का सफर

- उमाशंकर तिवारी

ये तो सिर्फ वक्त ही जानता था कि जो सफर 'ओरछा हाउस' नौगांव से शुरू हो रहा है वह कितनी मंजिलें तय करता हुआ सुदूर विदेशी धरती तक पहुँच जायेगा। अजब के ये रंगीन बादल बड़ा लम्बा सफर करने के आदी हैं। सरस्वती जिसके हाथ में कलम सौंपना निश्चित करती है, उसके प्रशिक्षण के लिये भी वही साधन उपलब्ध कराने का दायित्व उठाती है।

श्री ओमशंकर खरे 'असर' के नानाजी ओरछा हाउस नौगांव में, बुन्देलखण्ड की इस सबसे बड़ी रियासत के राजनैतिक प्रतिनिधि (वकील) के रूप में रहा करते थे और नौगांव में उनका मातृपक्षीय सम्बंध होने के साथ-साथ, उनकी जन्मजात अभिरुचि कलात्मक होने से, इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये प्रेरणा स्रोत के रूप में उनके सगे मौसेरे बड़े भ्राता श्रीयुत श्री कृष्ण खरे मौजूद थे। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.एड. आनर्स पास करके नौगांव के एजेन्सी दफ्तर में नियुक्त थे।



अंग्रेजों के जमाने में नौगांव की स्थिति का जिक्र अगर किया जाये तो वह मध्यभारत (सेन्ट्रल इण्डिया) की चाणक्यपुरी जैसी आबरू रखती थी। बुन्देलखण्ड की सारी पैंतीस रियासतों के वकीलों की कोठियां वहां थी और एक शानदार गहमागहमी के दौर में नौगांव गुजरा है। वहां मिलिट्री का 'किचनर कालेज' भी था जहाँ वायसराय कमीशन प्राप्त करने वाले कैडिटों की ट्रेनिंग होती थी और उनमें पाकिस्तान के शासक जनरल टिक्का खान भी प्रशिक्षित होने के लिए रहे थे।

श्री श्रीकृष्ण खरे अपने समय के अच्छे कवि थे और भारत के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ रसराज के नाम छपतीं थी। श्री असर के प्रेरणास्रोत "कैशो दादा" ही थे, लेकिन उनका युवावस्था में ही निधन हो जाने से साहित्य की जो अभिरुचि श्रीकृष्ण जी ने जागृत की थी उसका अनुसरण असर जी की ममेरी बड़ी बहिन सत्ता दीदी ने किया और असर की काव्यात्मक क्षमता को रास्ता दिखाने की जिम्मेदारी उन्होंने सम्भाली। यह सूचनाएँ असर जी ने वार्तालाप के दौरान मुझे बताई थी।

वो जमाना छन्दबद्ध कविता करने का था। उनकी कविताओं का संशोधन उनकी दीदी करतीं थी। असर जी की यह अभिरुचि उनकी है। "हॉबी" के रूप में परवान चढ़ने लगी। द्वितीय विश्वयुद्ध काल शुरू हो गया था और असर जी के घर में उस जमाने की शानदार विदेशी भारी भरकम मैग्जीन 'स्फीयर' (अंग्रेजी में) आती थी जिसमें योरोपियन पेंटरों के चित्र छपते थे और वे उन्हें मैगजीन से काटकर एक एलबम में चस्पा कर लेते थे।

यही वो पृष्ठभूमि है कि जिसने कलम और कूची श्री असर के हाथ में कालान्तर में थमा दी।

अगर पेंटिंग की बात की जाये तो उनकी तूलिका ने सन् १९४७-४८ से वाकायदा कनवैस सम्भाला। वे योरोपियन आर्ट के शैदाई थे और वहीं से उनने स्वयं को अभिप्रेरित किया। उन्होंने मिनिचेयर पेन्टिंग की भारतीय विद्या का अनुसरण किया लेकिन "जदीद पेंटिंग" के रूप में जिसमें "एब्सट्रेक्शन" ज्यादा मुखर होता है। यह क्रम बराबर चलता रहा। वे ब्रश और बाजार से लाये गये सामान इस्तेमाल नहीं करते थे। उन्होंने ब्रश के स्थान पर अपना चाकू तैयार किया और देशी रंग जैसी नील, खड़िया, ईंगुर, सिन्दूर, पीली और नारंगी पेड़ी (खड़िया) अलसी के पकाये गये तेल में खरल से घण्टों घौंट कर तैयार करते और इसकी खास बात यही रही कि ऐसे चित्रों की 'सरफेस' कभी खराब नहीं होती या धूमिल पड़ती है। सिल्क के कपड़े से तस्वीर पोंछ दीजिए और वह तरोताजा हो जायेगी।

उन्हें झांसी महोत्सव १९९७ में चित्रकला के लिए सम्मानित भी किया गया और उनके चित्रों की प्रदर्शनी भी लगी। श्री असर की इस क्षमता के बारे में यह भी कहना जरूरी है कि कुछ समय पूर्व फ्रांस के राजदूत सपत्नीक उनसे मिलने झांसी उनके घर भी पहुँचे और इतने प्रभावित हुये कि पेरिस से इन पेन्टिंग का एलबम प्रकाशित कराने के लिये इन चित्रों की रंगीन छाया प्रतियां मांग लीं। श्री असर ने उनसे कहा था कि यह कार्य उनकी 'हाबी' का हिस्सा है कोई व्यवसाय या इनकी बिक्री करने का मामला नहीं।

श्री असर सन् ३५-३६ में झांसी भेज दिये गये और मऊरानीपुर के मिडिल स्कूल से झांसी की प्राइमरी पाठशाला में कुछ दिन जाने के बाद झांसी की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था सरस्वती पाठशाला में पहुंच गये। इस पाठशाला में बहुत बड़े उसूलों के गांधीवादी, स्वतंत्रता प्रेमी अध्यापक पढ़ाया करते थे। राजनीति के प्रति रुझान बढ़ने का बीज यहीं से पड़ गया। मुहल्ले में साम्यवादी नेता पंडित सुखनंदन व्यास, पंडित दुर्गाप्रसाद व्यास के प्रेरणा से वे युद्धकाल में ही साम्यवादी मुखपत्र 'पीपुल्स ऐज अंग्रेजी' में पढ़ने क्या आत्मसात करने के आदी हुए।

वैसे असर जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि दूसरी थी। ये बानपुर चंदेरी राज्य के सेनाधिकारी बख्शी बहादुर राव रैयाराव के प्रपौत्र पितृपक्ष से थे, तो मातृपक्ष से इनके नाना जी बांदा जिले के जमींदार और इनकी नाना साहिबा बुंदेलखण्ड की स्टेट गौरिहार के दीवान साहब की पुत्री थीं। रियासती और जागीरदाना माहौल मातृ

और पितृपक्ष दोनों तरफ था लेकिन जनवाद इस पर हावी हो कर रहा। यह वह जमाना था कि इसके पास मार्क्सवादी किताबों (राजनीतिक साहित्यिक) किताबों का जखीरा इकट्ठा हो गया।

स्कूली दिनों में इन्हें कसरत कुश्ती का शौक लगा और वे अखाड़े में हाथ पैर मजबूत करने में जुटे तो मार्क्सवादी किताबों और अंग्रेजी साहित्य के आस्वादन ने इनके व्यक्तित्व को नई धार दी। सन् ४५-४७ में इण्टरमीडियेट की पढ़ाई के दौरान जीआईसी झांसी में इनके शिक्षक थे प्रेमचन्द्रीय पीढ़ी के श्रेष्ठ कलाकार पंडित गंगा प्रसाद मिश्र, और अंग्रेजी स्वर्ण पदक प्राप्त शिक्षक एम.यू.खान, आफाक अहमद और श्री प्रियनाथ भट्टाचार्य जी। इन अध्यापकों ने श्री असर को विद्या की प्राणदायिनी संजीवनी दी। श्री असर अभी लेखक बनने की नहीं सोच रहे थे। लेकिन समय ने प्रेरित किया और वे महान उपन्यासकार, कथाकार बाबू वृन्दावन लाल वर्मा के श्री चरणों में जा बैठे और कविता का ककहरा पढ़ने वाला युवामन 'कथा' सृजन का परीक्षण लेने लगा।

कलावा हाथ में बंधवा कर वे वर्मा जी के शिष्य बने। बाबूजी का श्री असर के अलावा ऐसा अन्य शिष्य है ही नहीं और बाबूजी के सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा (सक्कन भाई साहब) उन्हें अपना छोटा भाई मानते रहे। इस कालखण्ड तक श्री असर की कुछ रचनाएँ आगरा कॉलेज की वार्षिक मैगजीन में छपी और आगरा कालेज में अध्ययन ४७-४६ के दौरान महाकवि हरिशंकर शर्मा ने 'निराला' दैनिक निकाला था इसमें श्री असर प्रशिक्षु के तौर पर काम करने लगे। वे 'अड़ियल' के नाम से व्यंग्य रचनाएँ भी इसमें छापने लगे। इस जमाने में हिन्दी समाचार पत्र अंग्रेजी में प्राप्त 'न्यूज बुलैटिनों' को हिन्दी में अनुवादित करके समाचार रूप में छापते थे। श्री असर उस जमाने के अंग्रेजी अखबारों के और न्यूज बुलेटिनों के अंशों को हिन्दी में अनुवाद करके समाचार संकलन की जिम्मेदारी निभाते थे।

हुआ यह कि श्री असर ने तय किया कि वे सिर्फ पत्रकार बनेंगे लेकिन बने तब जब वे सरकारी सेवा से निवृत्त हो पाए। यह दौर १६८८ के बाद शुरू हुआ।

उनका कविता के क्षेत्र में पदार्पण ५१-५६ के दौरान बांदा में हुआ जब वे महान कवि बाबू केदारनाथ अग्रवाल के परममित्र बने और मार्क्सवादी अध्ययन की पृष्ठभूमि पर जनवादी काव्य रचना का बीजारोपण किया गया। इस दौरान काव्य गोष्ठियां, विचार गोष्ठियाँ बाँदा में आयोजित की गयीं। बुन्देलखण्ड के महान हिन्दी सेवी मुंशी मथुरा प्रसाद जी और उनके सुपुत्र श्री देवेन्द्र खरे जी ने असर जी को पठन-पाठन की अभूतपूर्व सुविधा अपने पुस्तकालय से उपलब्ध कराई और साथ-साथ श्री देवेन्द्र जी को श्री असर के मौसेरे भ्राता लगते थे ने संस्कृत साहित्य और वैदिक साहित्य से परिचित कराया।

उस जमाने में आज जैसे बड़े-बड़े अखबार निकल रहे हैं। बुन्देलखण्ड में नहीं। रेडियो तक बांदा में नहीं आया था। अतः प्रकाशित होने की जगह कविता, लेख, कथा गोष्ठी में ही पढ़ी और सराही जाती थी। श्री असर भी यहीं तक महदूद रहे।

तब कवि केदारबाबू की "नींद के बादल" और पावलों नेरूदा की कविताओं का एक लघु संस्करण ही प्रकाशित हुआ था लेकिन उनकी ख्याति हिन्दी क्षेत्रों में फैल चुकी थी।

इस दौरान जनवादी प्रगतिशील काव्य रचना के अलावा श्री असर प्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानंदन पंत की रचना पद्धति से प्रभावित हुये और बहुत सी कविताएँ उन्हीं की पद्धति में लिखीं।

श्री असर के गजल के प्रति समर्पित होने का समय मिर्जापुर प्रवास के दौरान आया जब वे हुरमतुल-इकराम, अनवर मिर्जापुरी और वहां के हिन्दी कई अदीबों से मिलते रहे। इस विद्या के प्रति उनका लगाव उस समय बढ़ा जब अपने आठ नौ साल लखीमपुर खीरी प्रवास में महापंडित बच्चूलाल अवस्थी ज्ञान और प्रसिद्ध शाइर श्री वशीर बद्र उनके प्रगाढ़तम मित्र बने। नई गजल किस रंग में सजधज कर आ रही हैं, इसका सटीक आभास श्री असर को १६६०-६६ के कालखण्ड में हुआ।

गजल के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा बढ़ती ही गयी और सभी उनकी बयाजों (डायरियों) में लगभग ४००० प्रकाशित और अप्रकाशित गजलें सुरक्षित हैं।

श्री असर के पत्रकार क्षेत्र में जाने की लगन कभी ठण्डी नहीं पड़ी। वे अखबारों से बराबर जुड़े रहे। मिर्जापुर के अखबार 'ग्रामवासी' में लिखते रहे और झांसी आने पर उन्होंने उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मंत्री श्री ओमप्रकाश रिछारिया के सम्पादन में प्रकाशित साप्ताहिक 'अर्थयुग' में जमकर लेख, व्यंग्य, कविताएं लिखीं। सन् १६८८ में सेवानिवृत्त होने के बाद १६८६ से कई वर्ष अंग्रेजी वित्तीय पाक्षिक बैंक समाचार के सम्पादन और उसमें लेखन करते रहे। इस दौरान उन्होंने देश के प्रमुख राजनीतिज्ञों, उद्यमियों के बारे में और वित्तीय विषयों पर जमकर कलम चलाई।

चूंकि इतिहास यूं समझिए कि उनका घरेलू समान है, इसीलिये सन् १६६२-६३ से उन्होंने झांसी-बानपुर के इतिहास पर काम शुरू किया था जो सन् २००७ मे पूरा हुआ और इस श्रम की उपलब्धि स्वरूप उनकी तीन किताबें उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रकाशित की। १३०० पन्नों की झांसी क्रांति की काशी, महारानी लक्ष्मीबाई और उनकी झांसी, तथा बानपुर नरेश महाराजा मर्दन सिंह जू देव, ये दो छोटी पुस्तकें हैं।

बुन्देलखण्ड में इससे पहले पहरा के जागीरदार श्री प्रतिपाल सिंह जू देव ने १२ खण्डों में वृहद इतिहास लिखा जो १८६४-१६२८ तक लिखा गया और अब प्रकाशित हुआ। इस महानग्रंथ के सम्पादन का गुरुतर भार बुन्देलखण्ड के प्रख्यात साहित्यकार प्राध्यापक डॉ. बहादुर सिंह जी छतरपुर ने उठाया। इस अवसर पर सन् २०११ के बसारी समारोह में श्री असर को विशेष रूप से आमंत्रित करके सम्मानित किया गया। इस शानदार समारोह में बुन्देलखण्ड के सांसद, विधायक तथा महाराज पन्ना राज्य श्री लोकेन्द्र सिंह जू देव भी पधारे

और श्री असर को प्रकाशित पत्रिकायें भेंट की।

श्री असर ने लम्बे समय तक साप्ताहिक मार्गदर्शन झांसी, दैनिक जागरण, अर्थयुग, साप्ताहिक, अर्थयुग साप्ताहिक द्वितीय संस्करण में, एहसास ए चमन, मंजरनामा और ब-कलम खुद दैनिक जागरण, सप्तधारा, अर्थयुग में मनयोग से लिखा।

श्री असर अब ८३ वर्ष के हैं लेकिन अभी थके नहीं हैं और 'मार्गदर्शक' साप्ताहिक में आजकल "मैं भी मुँह में जबान रखता हूँ" लिख रहे हैं।

श्री असर ने बुन्देलखण्ड के तमाम नामचीन हिन्दी, उर्दू कवियों शाइरों के कृतित्व-व्यक्तित्व पर लेखमाला प्रस्तुत की है। मार्गदर्शक साप्ताहिक में कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने "महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन" पर उन्होंने ३६०० किताबें लिखी और प्रकाशित कराई और धारावाहिक लेख लिखे, और यह सारे लेख लन्दन की ब्रिटिश इंडिया लायब्रेरी में सुरक्षित किये गये हैं।

जहां तक विदेश में वे जाने-पहचाने जाते हैं, उनमें अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, चेक गणराज्य, नेपाल आदि भी हैं। इन देशों के राजनयिकों से उनकी गहन मित्रता रही है। जर्मन राजनयिक श्री रेनरजेरोश ने तो उनके महाग्रंथ "झांसी क्रांति की काशी" की भूमिका लिखी है और फ्रांस के भारत में राजदूत रहे श्री आन्द्रे लिविन तो उसने सपत्नीक घर पर मिलने आए और कई घण्टे उनके आवास पर बिताए।

श्री असर मधुमक्खी की तरह ज्ञान-विज्ञान-लेखन का मधु इकट्ठा करते रहते हैं। वे न कोई ख्याति चाहते हैं, न किसी प्रकार की मान्यता प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। गजल कहना, लेख लिखना और कविताएँ दर्ज, करना ही उनकी एक मात्र व्यस्तता है।

श्री असर ने अपनी एक गजल के शेर में कहा है -

"दिल हैं बया का घौंसला, खारों की गोद में,
लटका रहेगा मुद्दतों अपने बबूल पर"

लेकिन सुखद आश्चर्य तो यही है कि भीड़ से श्री असर जितना बचना चाहते हैं उतना ही वे प्रशंसकों मित्रों से घिरते जा रहे हैं। अभी हाल ही में उनकी रचनाओं पर प्रकाशित पत्रिका "संकेत" ने जिसका प्रसारण भारत में हुआ, ने श्री असर पर जो विशेष अंक निकाला है, उसके कारण उत्तर दक्षिण, पूर्व, पश्चिम के सभी स्थानों से उन्हें बधाई मिल रही है।

लेकिन वे छतरपुर में हुये अपने सम्मान को जो "बुन्देली बसंत पत्रिका" के सौजन्य से हुआ को ही अपनी एकमात्र प्रशस्ति मानते हैं और कहते हैं कि "जो व्यक्ति अपने घर में सम्मान का पात्र नहीं बनता वह कहीं सम्मान का पात्र नहीं बन सकता।" यह कथन गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर का है जिसकी एकमात्र कामना री असर ने की थी। जो सफर ओरछा हाउस से कभी शुरू हुआ था वह जर्मनी, फ्रांस, अमरीका जैसे देशों तक सम्पन्न हो सका। बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक प्रशस्ति के अंकन ने ही श्री असर को असरवान बनाया है।

उनके कक्ष में तीन चित्र प्रमुख हैं, महारानी लक्ष्मीबाई, महाराजा छत्रसाल, और महाराजा मर्दन सिंह जूदेव बानपुर। बुन्देलखण्डवासियों को अपने, इस महान साहित्यकार पर गर्व है, प्रभु उन्हें दीर्घायु करे, यह कामना है।

- ६२५/११, सिविल लाइन,
सेवाराम मिल कॉलोनी, झाँसी (उ.प्र.)

गनेश जू के चुखरवा

- के.एल. सोनी 'विनोदी'

गणपत महाराज अपनो, चुखरवा सम्हारो।
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

सबरे चुखरवन पै बड़ो वरद हस्त है।
हर चुखरा मोटो औ हर चुखरा मस्त है।।
चुखरन की जात से सब कोऊ पस्त हैं
चुखरयाई करवे में चुखरा जो व्यस्त है।।
चुखरन ने देश हाँ पोलो कर डारौ।
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

चुखरन की चांदी औ चुखरन को सोनो है।
चुखरन के कब्जे में घर को हर कोनो है।
बिलैया के चूहन के मिले हाथ दोनो है।
देश को दुर्भाग्य जो, बस ऐई रोनो है।
कीको विरोध करें डरो मों पै तारौ।
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

चुखरन के रूप रंग हो गये अनंत हैं
कौनऊ बदमाश औ कौनऊ बड़ो सन्त हैं।
कोनऊ है नायक तो कौनऊ खलनायक
कौनऊ है समझदार कौनऊ नालायक।
कौनऊ है जीजा तो कौनऊ है सारो
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

कछू घुसे मन्दिर औ मस्जिद की पोल में।
कछूअन की नाक मूंछ शक्कर के घोल में।
कछू घुसे सोर्स में कछू घुसे फोर्स में,
कछू कछू भर्ती है दो नम्बर कोर्स में
कौनऊ है गौरो तो कौनऊ है कारौ
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

चुखरवा-चुखरवा हैं इनमें न भेद हैं
जौनई में खात करे ओई में छेद है।
बगल में है छुरी औ ओठन में राम है
एक हाथ माला और दूजे जाम है।
भगतन पै प्रभु कछू दया तो विचारौ
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

चारऊ ओर फिर रई चुखरन की फौज है
गणपत जू भूखे चुखरन की मौज है।
गली गली हल्ला औ गली-गली शोर है
गणपत महाराज कौ हर चूहा चोर है।
अपने ई मन्दिर से इनहाँ निकारौ
गजब करें डारत चुखरवा तुम्हारौ।।

- महाराजपुर, जिला छतरपुर

गुदना सबसें पैलौ गानौ

- प्रेमनारायण पाठक 'अरुण'

गुदना गुदो गाल पै बाँकौ, माथे बिंदिया टाँकौ।
नाक कान छतियन बाँहन में, पेट पींट लौ झाँकौ।
जाँघन पिड़रीं पोर उँगरियन, उघरें जितनौ ढाँकौ।
'अरुण' गुदे हैं अंगन अंगन, आँक सकौ तौ आँकौ।

गुदना गुदवावे कौ चलन कौनऊँ नव नोंईं, जौ तौ जुगन-जुगन सें चलो आव, भगवान कृष्ण कौ गुदनारी बनकें गुदना गोदवौ आज लौ लोकगीतन में सब जनें गाउत हैं, ऐंसौ मानो जात है कै मानव सभ्यता कौ विकास हराँ हराँ होतई गव, औ चित्रकला जैसई उनके हाँत में आई, सो गुदना गुदवावे की कला उनके जीवन कौ एक अंग बन गई, जोंन आज लौ चली आ रई, अकेलें अब जा कला हराँ-हराँ हिरात सी जा रई, कछू पैलाँ हमईं नें देखौ कै मेलन ठेलन में गुदना गोदवे वारे बैठे रात हते, औ जनी मान्स ऊ के दरद सें भलाँई, अँसुवा पोंछत जावें अकेलें गुदना गुदवावे खाँ ना मानत हते। आदिवासियन सें शुरू भई जा कला हराँ हराँ सबई वर्ग के भैया बैनन लौ आ पोंची, औ सबनें ई खाँ जी भरकें अपनाव, जे गुदना अपने देशई भर में नईं, सारे संसार में गुदवाय जात हैं, जबै सोने चाँदी के जेबरन कौ जनम न भव हुइयै, ईसें सब जनें अपने शरीर पै इनें गुदवाकें, गाने कौ शौक पूरौ करत हते, सजावौ सँबरबौ तौ आदमी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, औ कला संस्कृति कौ अंग मानो अई जात है। पुरुष की अपेक्षा महिलायें सजवे सँवरवे खाँ जादाँ महत्व देती हैं, ईसें गुदना सोऊ महिलायें जादाँ गुदवाउत हतीं, आदिवासियन में तौ गुदना गुदवावौ एक संस्कारई मानो जात, आज भी गाने, फूलन, औ उन्नन सें सजवौ वे अस्थाई सिंगार मानत हैं, अकेलें गुदना खां वे प्राकृतिक, स्थायी अलौकिक सिंगार मानते हैं, उनकौ मानबौ है कै गुदना जीवन भर कौ आभूषण है, जोंन बचपन सें लैकें मरवे लौ उनके सँगै रात है और मरबे के बाद आत्मा के सँगै परलोक लौ चलो जात है, जी खाँ कोऊ औ नईं छुड़ा सक्त, आदिम जन जातियन के लोगन में अपने शरीर पै शुभ चिन्ह, पशुपक्षी, मोर पपीहा, गहनन के चिन्ह, अपनौ नाम या अपने इष्ट, अपने प्रेमी कौ नाम, या अपने मन पसन्द की चित्रकारी पेड़ पौधा, आदि अपने शरीर पै स्थायी रूप सें गुदवाउत हैं, औ जा गुदना की प्रथा उनमें भारी लोकप्रिय हैं, गुदना शरीर कौ अलंकरण तौ मानो अई जात सँगै सँगै एक दूसरे खाँ आकर्षित करवे के लानें, मंगल के लानें, जादू टौना से बचवे के लानें, औ बुरई नजर सें बचवे के लानें गुदना गुदवाय जात हैं, सँगै सँगै रोग राई सें बचबे के लानें, बात पीड़ा सें बचवे के लानें सोऊ गुदना गुदवाय जात हैं।

आदिवासियन के हर समाज में इनें गुदवावे की मान्यतायें सोऊ अलग-अलग हैं, इनें गुदवावे की ललक लड़कियन में पाँच या सात वर्ष की उम्रई सें लग जात, औ वे बचपनई से गुदना गुदवाउन लगती हैं, और ब्याव होवे के पैलाँ तौ सबई गुदवाई लेतीं हैं। वे सब कछू छोड़ सकतीं अकेलें गुदना के बिना वे रैई नईं सकतीं, जौंन जनी कें माथे सें लैकें पिड़री लौ गुदना न गुदे होंय वा जनीं नई मानी जात, औ उयै समाज में स्थानई नईं दव जात, ईसें वे बिना गुदना के रैई नईं सकतीं, जरूरई गुदवा लेतीं हैं, उनकौ मानवौ है कै गुदना शरीर की सुन्दरता खाँ तौ बढ़ाउतई हैं, मरवे के बाद गुदना में भरो जादू और लोक विश्वास आत्मा के सँगै जाकें उनकी सबई तरां सें रक्षा करत है।

मेघिया जाति की मान्यता है कै गुदना जीवन की सबई जरूरतें पूरी करत है, सुन्दरता बढ़ावे के सँगै जे शरीर की भी रक्षा करत हैं, जे सुहाग के चिन्ह भी माने जात औ भूत प्रेतन सें रक्षा भी करत हैं, कछू गुदना जंगलन में जहरीले जीव जन्तुअन सें और हिंसक पशुअन सें भी बचाउत हैं, कभऊँ कभऊँ तौ बच्चन के सुखी और लम्बे जीवन की कामना के लानें उनें बचपनई में गुदवा दव जात। गुदना सें प्रेम और सम्मान में बढ़ोत्तरी होत है, कन्यन खाँ सावन के मईना में मेलन में जाकें गुदवा दव जात है। कभऊँ-कभऊँ गोदवे वारे इनके डेरई पै आ जात, महिलायें व्याव के पैलां माथे पै बूँदा या फूल, नाक पै तीन बुँदकियाँ, गाल और ठुड्डी पै एक एक बूँदा, आँखन की बिरौनी के ऊपरै फूल पत्तियन की बेलें, कनपटी पै तीन तीन लकीरें गुदवाउतीं हैं, कानन पै फूल, कानन के पाछें पाँच पाँच लकीरें गुदवाई जाती हैं, मेघिया जाति की औरतें दोई हांतन की उंगरियन की पोरन सें लैकें कँधा लौ गुदवाउतीं हैं, उंगरियन में अंगूठी या पत्तेदार वेल, और हथेली के पाछें पान कौ चिन्ह गुदवाउतीं हैं, कलाई पै कड़ा, और कलाई सें कँधा लौ बेलें, फूल, तोता, मैना, मोर, साँप मछरिया आदि के चित्र गुदवाउतीं हैं, परी सीधे हाँथ में, पक्षी औ मछरिया कलाई सें कँखरी के बीच में गोदे जात हैं, हँथेली के पाछूँ या ऊँठा के बीचऊँ बीच सुहाग चिन्ह जरूरई बनवाउतीं हैं, जोंन चौक के आकार कौ कलश चौघड़ा कहाउत है, गुदना में कम रुचि रखवे वारीं या कम गुदवावे वारी औरतें ई सुहाग चिन्ह खाँ जरूरई गुदवाउतीं हैं।

बैगा जनजाति में तौ गुदना सबसें जादाँ लोकप्रिय हैं, महिलायें ई खाँ स्वर्गिक अलंकरण मानती हैं, वे शरीर के अधिकांश भागन में गुदवाउतीं हैं, स्वर्ग में जेई गुदना उनकी बैगा जाति की पैचान बनाए राखत, ऐसौ उनकौ मानवौ है, गुदना की सामाजिक मान्यता भी भौत जादां है, कजन्त कौनऊँ महिला गुदना न गुदवाहै तौ ऊखाँ भगवान के सामूँ सब्वल सें गुदवावनें परत। ऐसौ भी उनकौ मानवौ है, गुदना सें स्त्री कौ मान सम्मान बढ़ जात। जादाँ गुदना गुदी महिला कौ ससुरार में भी भौत मान सम्मान होत है, गुदना न गुदवावे वारी महिला खाँ गरीब परिवार कौ मानो जात, गुदवावौ नारी कौ धरम मानो जात है। जे लगभग आठ साल की उम्मर सें गुदवावौ शुरू कर

देती हैं, और व्याव के बाद लौ गुदवाउतीं अई रातीं हैं, शरीर पै गुदना एक बेर में नईं गुदवाय जात, जे फुटकर फुटकर गुदवाउतीं हैं, सबसें पैलां गाल, फिर पींठ, जाँघ, पछाऊँ और आखिरी में छाती पै गुदवाउतीं हैं, चौमासे खाँ छोड़ कें सबई रितुअन में गुदना गुदवावे की प्रथा है, जब कौनऊँ बिटिया गुदना गुदवाउत होवे, ऊ बेरां उतै लरका या कौनऊँ आदमी नईं जा सकत, उनकौ विश्वास है कै जौंन पुरुष महिला खाँ गुदना गुदवाउत देख लौ है तौ ऊ खाँ अच्छौ शिकार नईं मिलत। बैगा महिलायें बादी जाति की स्त्रियन सें गुदवाउतीं हैं, उनकौ मानवौ है कै गुदना शरीर खाँ तौ सजाउतई हैं, संगै वादी की बीमारी सें भी बचाउत है, जहर भी असर नईं कर सकत, औ रोग बीमारियन सें लड़वे की क्षमता भी शरीर में बढ़ जात है, जे मशीन सें कभऊँ गुदना नईं गुदवाउतीं।

कोरकू समाज में सोऊ गुदना कौ विशेष स्थान है, गुदना भौत पवित्र माने जात, और जे पाँच छह वर्ष सें गुदवावौ चालू कर देत हैं, और व्याव के पैलां इनके शरीर कौ अधिकांश भाग गुद चुकत है, स्त्रियाँ बचपनई सें सुन्दरता बढ़ावे के लानें और आकर्षक दिखवे के लानें अपने शरीर पै गुदना गुदवाउतीं हैं। इनके लिलार पै अंग्रेजी के M आकार कौ गुदना, ऊपर नेंचे बूँदा, नाक के दोऊ कोद एक एक बूँदा दोई गालन पै एक एक बूँदा, ठुण्डी पै तीन सें पाँच लौ बूँदा गुदवाउतीं हैं, दोई हांतन की हथेलियन के पाछें बुंदकियाँ, चौक, बाहन में बुँदकियाँ, साँकर, तिकोनी आड़ी तिरछी लकीरें, गुदवाई जाती हैं, जाँघन और पाँवन में फूल, पत्ता, बेल, लतायें, चौक और बुँदकियन सें बनीं अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ गुदवाउतीं हैं।

भारिया समाज में सोऊ गुदना कौ बड़ौ महत्व मानो जात है, कन्यायें पाँच छह बरसई सें गुदना गुदवावौ चालू कर देतीं, इनमें पाताल कोट की भारिया महिलायें, ओझा जाति की स्त्रियन सें गुदवाउतीं हैं, यानें कै गोदवे वारी स्त्रियाँ दूसरे समाज की होती हैं, इनमें सामान्य परम्परागत तरीका से सुई और काजर की सहायता सें गुदना गोदे जात, इनके हाँथ सें गुदे गुदना बड़े सुन्दर और कलात्मक रात हैं, इनमें दोई हाँतन में बेलें, इमली के पत्ता, कांस, फूल, मोर, घुरवा, बिच्छू औ अनेक तरां की मन पसन्द कलाकृतियाँ गुदवाई जाती हैं, 'धन्धा' नामक गुदना इनमें बड़ौ प्रचलित है, ई में छह बुंदकियन खाँ एक रेखा सें जोर दव जात, और ई बुंदकियन में एक मानव कौ सबरौ शारीरिक आभास होवौ मानो जात, जैसें एक बुँदकिया कौ मूँड़, दूसरे कौ शरीर, दो बुँदकियन के हाँथ, औ दो बुँदकियन के पाँव, ई धन्धा गुदना कौ खुलासा भी महिलायें करतीं हैं, लड़की कौ होवे वारौ पति कौ संकेत वे ई बुँदकियन में मानतीं हैं।

देबार जनजाति की स्त्रियां खुद गुदना गोदवे की कला में चतुर होती हैं, और अपने शरीर के अंगन में कुल्ल तरां के गुदना गुदवाउतीं हैं, जे अपनी जाति के अलावा दूसरी जाति की महिलायन खाँ भी गुदना गोदकें सजाउतीं हैं, गुदना गुदती बेरां लोकगीत सोऊ इनमें गाये जाते हैं, जे अनेक आकार के वृक्ष, फूल, पत्ता, पशु, पक्षी, मधुमक्खियां, बिच्छू, साँप, मन्दिर, तालाब, सूरज, चन्द्रमा, चौक जैसी आकृतियाँ गुदवाउतीं हैं, गुदना गोदवे वारीं भौत हुश्यार रातीं हैं, कौन जाति की महिलायन में कौन-कौन गुदना गूदनें आउत वा जानकारी इनें पूरी पूरी है, इनें ई के बारे में कछू नई बतावनें परत और कौन जाति के कौन लोक रीति कौ चलन है, ई सबकौ ज्ञान भी इनें पूरौ पूरौ है।

राजस्थान की घुमन्तू जाति 'लोहगढ़िया' भी गुदना खाँ जीवन कौ एक अंग और सबसें बड़ूडी गानौ मानतीं हैं, जे माथे पै बूँदा, फूल, चन्दा, ॐ, आँखन की कोरन में, कनपटी, नाक, गाल और ठुड्डी पै एक एक बुँदकियाँ गुदवाउतीं हैं, गरे में हार घाँई तीन, पांच पुतरियाँ भुजन में बजुल्ला कलाई पै मोर, मछरिया, बिच्छू, फूल, पत्ता, गमला, और पंजा पै 'सीतारसोई' हँथेली के पाछें ऊँ पेट और टुड़ी लौ न्यारे न्यारे जेवर पिड़रियन पै फूल और पत्ता गुदवाय जात है।

भील समाज में शरीर के अंगन पै अनेक तराँ के गुदना गुदवावे कौ चलन है, पुराने समय में घर की स्यानी औरतें गरमी के दिनन में बियाँ या बालोर के रस सें बबूल के काँटे या सुर्दे सें गुदना गोदतीं हैं, कनपटी पै चिरल्या, माथे पै टिपका, दोई गालन पै तीन तीन दाने, नाक पै बायीं ओर तीन दाने, ठुड्डी पै नौ दानें, लिलार, पै एक सें लैकें इकईस दाने, छाती पै आँवा, गौर, भुजन पै 'हरण्यो धोणी' छितरा, खजूर, वाकडेल्यो, हाँथ के कोंचा पै चौक, मोर फूलड़ी, बावड़ी, बाँवियन की सुन्दर सुन्दर कलाकृतियाँ गुदवाई जातीं हैं।

जनजाति समाज में गुदना गुदवावे की प्रथा आज भी उतनई दिखाई देत जितनी पैलां हती। कन्यायें पाँचक साल की उमर सें गुदना गुदवावौ शुरू कर देतीं हैं, और व्याव लौ उनके अधिकाँश अंग गुद



जात हैं, कजन्त कौनऊँ स्त्री नये ढंग के गुदना गुदवा लेवे या जौन प्रकार उनकी समाज में नईं गुदवाये जात अगर वे गुदवा लेवें तौ फिर ऊ कौ निपटारौ उनकी पंचयातई करत, जीमें उनें गुदना गुदवावे कौ दण्ड दव जात है, अगर कौनऊँ महिला ऐंसे पुरुष कौ नाम गुदवा लेवे जौंन की उनके समाज में मनाही होय तौ ऊ स्त्री की समाज में भौत बदनामी होत और जनजातीय पंचायत उयै भौत कड़ी सजा सोऊ देत है।

शुरुआत में नोंकदार पथरा, जानबरन के सींग और हड्डियन सें शरीर पै विचित्र आकृतियन के घाव बना दये जात हते। जिनपै जंगली जड़ी बूटियन कौ रस लेप कें पकाये जात हते, औ जड़ी बूटियन सें अई उनके घाव सुखाय जात हते। अफ्रीका की अनेक जातियन में आज सोऊ ई तरां के गुदना गोदवे कौ चलन है, हराँ हराँ ई कला में और विकास भव, फिर कटइया के काँटन सें गुदना गोदन लगे। जिनके घाव दुधी और जड़ी बूटियन सें सुखाय जान लगे। अपने देश में आज भी देवर, करजट (मुस्लिम नट), चपरमँगता भाट आदि जातियन में ई प्रकार के गुदना गोदवे की प्रथा है। फिर लोहे की सुइयन सें कालिख लगाकें गुदना गुदन लगे, इनमें तीन तराँ की सुईं होत तीं एक बारीक दूसरी तनक ऊ सें मोटी औ तीसरी ऊ सें भी जादाँ मोटी होत तीं, जिनसें गुदना गोद दुधी के रस की जाँगा, लालटेन या डिब्बी की करोंछ लगाउन लगे, ईसें गोदवे की कला में और जादाँ निखार आउन लगो। औ ऐई समय सें बेल, लतायें, आदमी और पशु पक्षियन की आकृतियन के गुदवावे कौ चला चलो।

फिर बैटरी सें चलवे वारी मशीनन सें गुदना गुदन लगे, जौंन आज भी जे मशीनें चल रईं, औ अब तौ बिजली सें भी चलवे वारी मशीनें आ गईं जिनसें गुदना गोदवौ और सरल हो गव, कला में निखार आव, कष्ट भी कम होत, सफाई भी उमदा आ जात, मशीन सें गहरे नीले, हरीरे, लाल सबई तरां के रंग बिरंगे गुदना गुदन लगे, गोदवे की कला भील, करजट, भाट, चपरमँगता, देवार, ओझा, और वादी समाज बारे जादाँ बारीकी सें जानत हैं। भील देवार, ओझा और वादी समाज में स्त्रियाँ गुदना गोदती हैं, जबकें चपरमँगता और भाट समाज में पुरुष वर्ग गोदवे कौ काम करत है, इन जातियन में स्त्रियन कौ गोदबौ एक अपराध मानो जात है, करजट और बसदेवा समाज में स्त्रियाँ और पुरुष दोई गुदना गोदबे कौ काम करत है, देवार स्त्रियाँ गोदवे की कला में भौत हुश्यार होतीं हैं, जे गाना गा-गा गुदना गोदतीं हैं, और उनें अनेक समाज के गुदना और गोदे जावे वारे स्थान कौ भी अच्छौ ज्ञान रात है, कला की दृष्टि सें भाट समाज के गोदवे वारे सबसें अच्छे माने जात हैं, फिर सबई जातियन नें कौनऊँ न कौनऊँ मान्यता खाँ मानत भये गुदना गुदवावौ शुरू कर दव, ई सें जा कला आदिवासियन के सँगै-सँगै सबरे संसार में फैल गई।

महाकवि ईसुरी नें तौ ई गुदनन की सुन्दरता देखकें मुलक्कीं फागें लौ लिख डारीं -

गुदनू गोरे गाल पै टाँकौ, लगा गई गुदना कौ।
पन्ना हरो जड़ो सोने में, मानों बड़ी जमा कौ।
बुध की गोद लयें यों राजत, परत चन्द्र में झाँकौ।
विष की बूँद लयें ग्रीवा में, बैठो पती उमा कौ।
'ईसुर' कात नजर लग जैहै, घूँघट पट सें ढाँकौ।

और गुदना के बारे में तो गंगाधर व्यास जू नें तौ इतै तक लिख डारौ है -

गुदना लगत गाल पै प्यारौ, गोरी चतुर तुमारौ।
गोरे वदन गाल के ऊपर, बन बैठो रखवारौ।
देखन देव नजर भर हमखाँ, न घूँघट पट डारौ।
ठाँड़ीं होओ देख लें चित सें, जी ललचात हमारौ।
'गंगाधर' की तरफ हेर लेव, दैकें तनक इसारौ।

लगभग सबई लोक कवियन नें गुदना के बारे में कछू न कछू जरूरई लिखो, और आज लौ कवि गुदना की सुन्दरता कौ बखान करत जा रये हैं। आखीरी में हम जोई कैवी कै जौ आदिकाल कौ गानौ आज भी ओई रीत सें चलो आ रऔ है।

गुदना सबसें पैलौ गानौ - पैरत आव जमानौ।
लता, बेल, ललरी निरखतन-फीकौ परत तिदानौं।
अन्न बन्न के गुदवा गुदवा - हो गव खुशी गुड़ानौं।
'अरुण' सबई नें धारो तन पै - जौ अनमोल खजानौ।

- सटई, जिला छतरपुर

मैंगाई की मार

- कीर्ति शेष डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश'

अब कैसें होय गुजारौ भइया, कैसें मने दिवाई।
सुरसा कैसो मों वारई है, जा डाकिन मैंगाई।

खावे को है नाज न घर में, चूहा पेलें दंड उदर में।
रोटी के तो लाले, मामू माँगत मगद-मिठाई।।

फट गये सबरे उन्ना-कपड़ा, मोंड़ी मोड़ा कर रयें झगड़ा।
कपड़ा तो आउत पचास कौ, सौ लग रई सिलाई।

घूरे जैसौ हो गओ सब घर, फूटी पौंर, मढ़ा और छप्पर।
चार साल सें घर-बाहर की हो नई पाई पुताई।

साग-पात सब ताव दिखा रये, बैंगन खुरचन भाव बिकारयो
लौकी-धनां तुरइया नें है, डबल छलाँग लगाई।।

मोंड़ी-मोड़ा होतइ जा रये, सबरे प्रान हमाये खा रये।
इतै मार मैंगाई की है - उत अत धरें लुगाई।

काँसें बनवादें हम गानों, सोनो ऊँचे मोल बिकानों।
चाँदी दर पोंची चंदानें, मैंगाई से बड़ी फजीयत हो रई यार हमाई।

- आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

पंगत

- कल्याण दास साहू 'पोषक'

अपनें इतै पुराने जमाने सेंइ पंगतन की पिरथा चली आ रई औ चली जानें। औसर-काज पै कुटुम-कबीला, संगी-साथी, पई-पाँवने और जात-बिरादरी के भइआ-बन्दन खों बुलाकें भोजन कराबौ हमाइ संसकिरती में रचौ-बसौ है। आव-आदर सें, मान-पान सें खान-पान कराबे की किरिया कौ नामकरन पंगत के रूप में करौ गओ। पंगत सब्द में बुन्देलखण्डी मिठास है। नाव सुनें सें पेट में चोंखरे दौरन लगत। जा लगत कै - कितउँ डट कें पंगत जे लई जाय।

पंगत के कैउ रूप (परयाय) हैं - पाँत, जेवनार, खाना, भोज, ब्रह्मभोज, पिरीती भोज, सुरुचि भोज, मिरतू भोज। कथा-भागवत के समापन पै जौंन भोज होत उयै भण्डारौ कैत। कछू बिरादियन में पंगत खों 'दावत' कै-कें पुकारो जाउत। कितउँ-कितउँ धारमिक इस्थानन पै, तीरथन पै सोउ पंगते होन लगीं उयै 'लंगर' कैउत। राजा-महाराजन के इतै 'राजा-साई' भोज की विवस्था हती। कच्ची पंगत होत ती, पक्की पंगत होत ती। कितउँ-कितउँ दोई पंगते (कच्ची 'औ' पक्की) इकट्ठी होत तीं, उयै 'मिरजापुरी' पंगत के नाम सें हम-सब जानन लगे।

मनुस जौंम में जनम सें लैकें मिरतू लौं जितने संसकार होत हैं, उन औसरन पै पंगत दैबे कौ चला चलौ आ रओ है। जिनकी चरचा करबौ जरूरी है, जैसें - भए की पंगत (जनम भए पै दई जात जियै 'दसटोंन' कउत), रए की पंगत (जनम के एक साल बाद दई जात जियै 'बरसगाँठ' की पंगत कउत), करे की पंगत - जनीं राखबे पै दई जात ती, छोड़े की पंगत - लुगाई छोड़बे पै दई जात।, चरे की पंगत - जब कौनउँ चरौ विद जात, अरे की पंगत - जब कोंनउँ अरौ-टन्टौ हो जात। मरे की पंगत - मिरतू होवे पै (बड़े-बूढ़न की), तरे की पंगत - येइ खों 'पटा' या सिराध कत हैं।

येइ तराँ सें बाल-बच्चन कौ मूँड़नौं होबे पै, रक्कस लगबे पै सोऊ पंगत कौ रिवाज है। येसइ करमचारी की पक्की नौकरी लगबे पै परमानेन्ट की तरक्की होबे पै पिरमोसन की 'औ' नौकरी पूरे होबे पै रिटायरमेन्ट की पंगत सोउ होंन लगी। चुनाव की पंगत जीतबे के बाद दई जात है।

ब्याव - काजन में सगाई सें लैकें दसमान्नीं लौं पंगतन कौ दौर चलतइ रउत। ओली - पक्यआत की पंगत, तेल-मड़वा की पंगत, ब्याव के दिना मैर की पंगत, ऊंबनी की पंगत, लोगन की पंगत, लुगाइयन की पंगत, समाज की पंगत, पर-समाज की पंगत, बरातियन की पंगत घरातियन की पंगत, पौन्छक की पंगत, कुंवर कलेऊ की पंगत, विदा की पंगत, गौने की पंगत। जौंन दिनाँ बरात लौटत 'ऊ' दिना बराती लौटबे के पैलाँ 'जनीं-मान्सें' (न्यौतान्नीं) पंगत कौ दसतूर करतीं उयै 'गौरइंयन की पंगत' कओ जात है। नए जमाने में 'आसीरवाद समारोय' की पंगत होन लगी। फिर दो तीन दिनाँ बाद दसमान्नीं की पंगत कौ रिबाज है।

कैबे कौ मतलब कछू भी औसर-काज होय, पंगत जरूर हुइयै। कछू जनें जिनकी हैसियत पंगत दैबे की नइं होत, तौ 'वे' बुलऊआ कराकें बसेता बँटवा देत 'औ' कन्या जुवा देत। कोउ ने गइया खों लोड़ मार दई 'औ' गउ माता बेहोस हो गईं तौ 'ऊ' खों पुन्न-धरम करने परत, 'औ' बारा गाँव के पंचन खों पंगत देने परत। बड़े-बूढ़े सुरग सिधारत तौ उनकौ किरिया-करम करौ जात औ सूतक (सुदृदका) की पंगत, फिर गंगा-जू सें लौटबे के बाद तेरइं की पंगत कौ रिवाज है।

ई-तराँ सें बारा मइंना पंगतन कौ दौर चलतइ रत। जिन मइंनन में सारंग होत, उन मइंनन में ब्याव सादियन की घनीं-घनीं पंगतें होतइ रतीं। आदमी जें-जें के छक जात। जब सारंग नई होत, तौ कछू न कछू काज होतइ रत। करय-दिनन में पटा (सिराध) की पंगतें होतइ।

पैलइ सें पंगतन कौ चलोबा चल रओ। अपनें पुरखा बताउन लगत कै - उनके जमानें में पंगतन में बड़ी मजा आउत तो। औसर-काज पै सबइ जनें इकट्ठे होत ते। जो रिसाने रत ते, उनें मनाव जात तौ। सबइ जनें सुर में रत ते। कच्ची पंगत होत ती। बन्न-बन्न के बिंजन बनत ते। कढ़ी-भात, देवलन की दार, रोटी, घिउ-सक्कर और गोंरस की भरमार हती। भोजन बनावे में सबइ जनें हाँत बटाउत ते। आठ-आठ दिनाँ लौं रिस्तेदार मेले रत ते। घिउ-दूद की कोंनउँ कमी नइं हती।

खाते-पीते घरन में तेरइं की पंगत में मालपुआ बनत ते, जिनमें घिउ निचुरत रत तौ। निपनियाँ दूद की तसमई बनत ती। मान्सन की अच्छी खुराकें हतीं। खूब मैंनत करत ते। डेढ़ सेर अन्न खाबे वारे हते। खूब जन्ट-पन्ट रत ते। ब्यावन में माँड़े की पंगत की का कनें? डेउआ सें दोंना में घिंउ परसौ जात तौ फिर बोर-बोर कें माँड़े खाय जात ते। कढ़ी-बरा, भात और घी-सक्कर खों सान कें कालोंनी बनत ती। ऊके खाबे कौ मजा अलगइ हतौ। अबै की औलाद खों तौ, ऊसौ भोजन नसीबइ नइं हो रओ। वे आ.... कुआत तीं पंगतें। कजिन की दार पक्की पंगत भइ तौ भर-भर दोना सुद्द घी की मिठाई खाबे मिलत ती। तगड़ी खुराक हती। खूब ताकत हती। 'अहार ढकेले पहार' की कानात खों साकार करत ते।

पैलाँ की का कनें? बढ़िया छेवले के पत्तन की पातरन पै भोजन परसौ जात तौ। बड़े-बड़े दोंना बनत ते। बड़ी-बड़ीं बाखरें हतीं, बड़े-बड़े चोंतरा हते। लेन सें सब पंच भइया बैठत ते। सब जनें मिलकें परस कराउत ते। सियाँनों आदमी निगरानी करत तौ, कै - कउँ परसबे में चुक्का तौ नई पर गओ। जब सब जगाँ परस हो जात ती, तो अग्याँ मिलत ती लगन दो ठाकुर जू खों भोग, होंन दो लक्ष्मी-नारान की। सब जनें चैंन सें-सान्ती सें पंगत जेउत ते। एकइ सगै सब जनें अचेउत हते। एकइ सगै सब जनें उठत-बैठत हते। जूँठी पातरें उठाबे वारन की लेन लगी रत ती। लर-लर परत ते पातर उठाबे के लानें। भगवान कृस्न ने सोऊ जूठी पातरें उठाईतीं, जइ भावना सबके मनन में बसी हती।

अब तो पंगतें टेबल-कुरसी पै बैठकें खाबे कौ रिबाज चल

गओ। अबै की औलाद ऐसी है, कै - पूरी परस नइं हो पाउत और खाबे खों चिपट जात और झटपट खा-खूकें एक दो तीन। बिचारे अगल-बगल में बैठबे वारे सरम के मायँ भूँके उठ बैठत। परसइया ऐसे कै - केवल ठँड़े-ठँड़े गुटक्र खात रत, कै - दाँत क्रड़त रत। जूँठी पातरें तौ क्रेऊ छियन नइं चांउत। अब तौ पंगतन में इतनीं भीड़ बढ़ जाउत कै - हुरदंग - सौ मचन लगत। परसइयन की कमी पर जाउत। येइ सें कछू जनें बफर (गिद्धभोज) की पंगत करन लगे। भीड़इ-भीड़ दिखाउत। नायँ ढक्क्र लगत सो माँय पीँच जात। माँय ढक्क्र घलत सो नाँय खों आ जाउत। चैंन सें खा नइं पाउत। ठँड़े-ठँड़े खात रओ। पलेट खों पकरें-पकरें हाँत पिरान लगत। जीइ निरनय नइं कर पाउत कै - क्र खाबें क्र नईं खाबें? नांय हूदा घलत माँय हूदा घलत। उन्ना तौ साजे बच नईं सकत, भिड़कें मानत। राइ-राइ से बच्चा 'औ' बड़े-बूढ़न के लानें तौ बफर...अखर जात है। बफर में अफरत नइयाँ।

पंगतें बने खों बनाउत 'औ' मिटे खों मिटाउत। बनें खों ऐसौ बनाउत कै - बड़े आदमी के इतै पंगत है, तौ बेहार तगड़ौ जुरत औ गरीब-गुरबा के इतै है, तौ न के बराबर। ईखों एक उदाहरन सें अच्छी तराँ समज सकत। गाँव के लम्मरदार चुनाव लरकें अच्छौ पद पा गए। उननें भागवत कराई। इलाके भर के आदमियन खों न्यौत दओ। अधिकारियन खों चूल सै, करमचारियन खों इक्रारी। ऐसइ बड़े-बड़े बेपारी औ दुकानदारन के सँगै करौ। असपेर भर के बड़े-बड़े किसान, पंच-सरपंच जुरे। बारा बजे दिन सै बारा बजे रात लौं भण्डारौ होत रओ। उनकौ पूरौ खरचा भओ पचास हजार रुपइया, चढ़ोत्तरी जुरी पांच छह हजार। ऐसइ उनने भतीजे कौ ब्याव करौ, सो दस लाख रुपइया जुरे। फिर तौ उनने नियम सौ बना लओ तौ "लपकी गाय गुलेंदे खाबे" घाँई हर साल इलाके भर खों पंगत दै-दै कें अपनों घर बनाउत रए।

मिटे खों ऐसौ मिटाउत कै - एक प्राइवेट इस्कूल के मास्साब ने अपनी मौंड़ी कौ ब्याव करौ। उननें सोउ असपेर भर खों न्यौत दओ। करजा करकें पंगत और ऊपरी ताम-झाम पै पचास-साठ हजार रुपइया खरच कर दये। जब बेहार की रकम समारी, तौ! कुल पन्दरा हजार रुपइया जुरे। ऐसौ चला सौ चल गओ कै तुमें गुन्जास होय चाय न होय जमाने के सँगै चलने पर रओ।

वैसें पंगतन सें समाज में जात-पाँत, छुआ-छूत कौ भेद नइं रओ। पैलां केवल बिरादरी-भइया और नातेदारन खों बुलाकें पंगत दई जात ती। अब तौ जात सें जादाँ परजात (बेहारियन) खों न्यौतन लगे। सातउ-जात के लोग-मान्स जुरत। भाई चारे में बढ़ोत्तरी हो रई। पंगतन में आपस की बुराई, भलाई में बदल जात। भइअन-भइअन की फूट, एक्र में तब्दील हो जातइ। ई-बहाने रिस्तेदार जुर जाउत। सब जनें हिल-मिल लेत। एक-दूसरे की राजी-खुसी कौ हाल-चाल पूँछ-पाँछ लेत। कुवारे लरक्र-बिटियन कौ पतौ पर जातइ। जीबे-मरबे कौ पतौ लग जातइ।

पंगतन सै पिरेम-भाव बढ़तई। पंगत कौ नाव सुनतइ सबखों भीत हाल-फूल होंत। बाल-बच्चा भीतइं खुशी मनाउत। जनीं-मान्सें पंगतन के लाने ललच्यात रतीं। काय कै - आज के जमानें में इक दूजे सें मिलबौ जुरबौ पंगतन मेंइ हो पाउत। येइ सें गाँवन में-सहरन में, देसन में-विदेसन में, जातन में-पाँतन में, धरमन में, सम्प्रदायन में, पंगत कौ बड़ौ महत्व है। कछू बिरादियन में मांस-मदिरा की पंगतें होंन लगी, जी सें लड़ाइ-झगड़ा सोऊ हो जाउत। मूँड़ा-फोरी होन लगतइं। थानें कचेहरी तक की नौबत आ जाउत। कितउँ-कितउँ पंगतन में दूसित भोजन करबे सें कैऊ जनें अस्पताल सोउ पौंच जात। पंगतन में अन्न की बरबादी सोउ होन लगी। आदमी खात कम है, बगरात जादाँ हैं। कछू जनें गर्रान लगत। हँसी-मसकरी करत-करत लरन लगतइ। पंगत कौ मजा किरकिरो हो जातइ।

राजा होय चाय रंक होय, पंगत सें सबकौ पालौ परतइ। राजदार होंय चाय बाजदार होंय पंगत सबखों जेनें परत। चाए कितेकउ बड़ौ आदमी होय 'वो' बिरादरी सें बड़ौ नइं हो सकत। बिरादरी-भइयन के सँगै बैठकें भोजन करने परत औ मौक्र पर जात तौ एकइ गिलास सें पानी पीने परतइ। कछू जनन कौ ढबालौ तौ पंगतइ पै आसरित है।

सहरन में तौ कैउ जनें बिना न्यौते के पंगत जें कें मूँछन पै ताव देत आ जाउत। ऐसइ एक जगाँ पंगत में बिना न्यौते के दो तीन जनें पौंच गए और जेउन लगे। घर-धनीं ने उनसें पूँछी कै - अपुन खों हमनें चीन्हों नइयाँ। तौ 'वे' अलफतिया बोलो कै - हम लरक्र वारे हैं। घर-धनी ने कइ कै - भइया इतै मिरतू भोज की पंगत हो रइ। हमाए घरे ब्याव नइं हो रओ। तौ वे ठलुआ-ठेंगा भौत सरमिन्दा भए। ऐसी कैउ घटनायें सहरन में घट जातीं, जा कौनउँ अनहोंनी बात नइयाँ।

पैलाँ पंगतन के लाने तगड़े नियम बनें ते। जिनकौ कड़ाई सें पालन करने परत तौ। कजिन कौनउँ पंगत में सें अदबीच में उठ गओ तौ ऊ कौ 'दाँड़' करौ जात तौ ऊखों पंचन कौ कैबौ मानने परत तो। पंचन के बनाये नियम आज के कानून सें जादाँ ताकतवर हते। मजाल काउ की कै - पंचन की अवहेलना कर सके। की-की मताई ने इतनौं दूद पिआव कै - पंचन की आग्याँ कौ उल्लंघन कर सकै। नियम माने नियम। बे सबके लानें एक से हते। पंच ऐसे कै - दूद कौ दूद औ पानी कौ पानी कर देत ते। समाज में पंचन की बड़ी मान्ता हती। पैलाँ कोउ ने पंच्चयात बुलाबे की धौंस दै दई तौ आदमी दब कें रै जाउत तो। पंचन में परमेसुर बसत ते। अब असुरता पंचन में बस गई। मौं चींन-चींन कें बरताव होंन लगौ। चींकनोपन हावी हो गओ। पंचन की मान-मरजादा रसातल खों चली जा रयी।

पैलाँ मना-मना कें पंगत खुआई जात ती। अब तौ तुमाई अटकी होय तौ जैं लो, नइं तौ भूँके फिरत रओ। कोउ पुछइया नइयाँ। घर धनी सामयाने के गद्दा-पल्ली, कुरसी-टेबल, भाँड़े-बासन औ पंगत के गुणा-भाग में वीदो रत, कै-हलवाई की हुकुम-अदूली में उलझौ रत, कै-डेंड़क्र लै कें कुत्ता-कुतियन खौं भगाउत फिरतइ। न्यौतार आरकेसटरा में मस्त बनें रत। कछू जनें डी.जे.कौ मजा लेत रत। पंगत कौ कार-किरम आदी रात लौं चलत रत। बीच-बीच में बिजली धोकौ देत रत।

- शरद कुंज, किले के पास, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़

खजाने जैसा दिल और अनवरत लुटाने का हौसला

- डॉ. कामिनी

सीताकिशोर बेहद सामान्य नाम है और नाम से भी ज्यादा सामान्य आदमी किन्तु उनको समझने और जानने के लिए बहुत समय चाहिए। डॉ. सीताकिशोर खरे के व्यक्तित्व को शब्दों की परिधि में बाँधना सरल नहीं है। उनका व्यक्तित्व कभी-कभी बालक जैसा सरल और निश्छल दिखाई देता था तो कभी बूढ़े जैसा चिंतनशील और गंभीर और कभी-कभी झुंझलाता हुआ अकुलाता हुआ तथा क्रोधित। क्षणिक, गुस्सा, फिर शांत और सब कुछ भूलकर संतुलित व्यक्तित्व।

दतिया जिले की सेंवढ़ा तहसील के छोटे आलमपुर में ७ अगस्त १९३५ को जन्म हुआ। पिता श्री रामभरोसे और माँ श्रीमती रजको थी। आरंभिक शिक्षा के लिए समीपवर्ती ईंगुई और दिगुवाँ की पाठशालाओं में जाना पड़ा था। भिंड जिले के दबोह मिडिल स्कूल से कक्षा ८ पास करके ९वीं कक्षा में उन्होंने सेंवढ़ा हाई स्कूल में प्रवेश लिया और उसी वर्ष सन् १९५३ के अक्टूबर में निम्न श्रेणी शिक्षक की नौकरी पाकर उन्होंने स्कूली पढ़ाई को विराम दे दिया था। २९ स्कूलों में नौकरी चली। इसी बीच बी.ए. और एम.ए. प्राइवेट करने के बाद उन्होंने १९७८ में जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर से हिन्दी विषय में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। व्याकरण और भाषा विज्ञान के वे अधिकारी विद्वान थे। १९८९ में उन्हें डी.लिट. की उपाधि से विभूषित किया गया। 'बुन्देली बोली और व्याकरण' से सम्बंधित शोध-कार्यों में उनका सहयोग अंचल और देश की सीमाओं को लाँघता हुआ वाशिंगटन और कनाडा के शोध-छात्रों तक को सुलभ रहा है। उनकी शोध-दृष्टि व्यापक थी। अनेक छात्रों ने उनके मार्गदर्शक में पी. एचडी. की। वे सेंवढ़ा कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त हुए थे। शून्य से शिखर तक की यात्रा बड़ी संघर्षपूर्ण रही।

डॉ. सीताकिशोर खरे कवि के रूप में काफी चर्चित और लोकप्रिय रहे। एक अच्छे अध्यापक के रूप में वे छात्रों के प्रिय रहे। उनके अंतस् में भावुकता का खजाना छिपा था। भावों के मीठे बताशों की मठास उनकी कविता में है। एक हाथ होने के बाद भी वे ऐसे काम करते थे कि कोई दो हाथों वाला न कर पाये। उनकी बुंदेली ठसक देखने बनती थी। वे न तो कुंठित थे और न विद्रोही। वे तो सबके सहयोगी थे। उनकी बुंदेली काव्यकृति जिसमें ७०० बुंदेली के दोहे संकलित हैं - कालजयी कृति है। उनकी रचनाओं में शाश्वत् दृष्टि है। मौलिक उद्भावनायें हैं। उनका चिंतन सीमाओं में बंधा नहीं है। वे एक अच्छे समीक्षक और आलोचक भी थे। वे अपने व्यंग्यों के द्वारा स्वस्थ वैचारिक भूमि बनाने का प्रयास करते थे। बुन्देली शब्दों की महक उनकी रचनाओं में है। वे बुंदेली बोलते थे। बेहद प्यार करते थे अपनी बुंदेली को। अनेक सम्मानों से उन्हें सम्मानित किया गया। वे दिखावा पसंद नहीं करते थे। उनके विद्यार्थी, उनकी यादों को संजोये हैं। उनके मित्र उनकी कविताओं को दोहराते हुए सुने जा सकते हैं। सब उन्हें आदर से दादा कहते थे। बहुत छोटी चिट्ठी लिखते, एक-एक लकीर असर करने वाली और अंत में 'सबका सीताकिशोर' लिखकर चिट्ठी समाप्त। मोती जैसे अक्षर। हर चीज दादा में विशिष्ट थी। घुंघराले बाल, मोटे ग्लास के चश्में में से झाँकती आँखें, सादा धोती-कमीज में उनका व्यक्तित्व प्रभाव छोड़ता था। उनकी जिंदगी स्वयं के लिए लापरवाह और बेसिलसिले थी। फक्कड़ संत जैसा विरक्त व्यक्तित्व। उनके पास ज्ञान का खजाना था। चलते-फिरते शब्द कोश। वे दिव्य पुरुष प्रज्ञापुरुष और भावपुरुष थे। वे तो एक संस्थान थे। व्यक्ति नहीं।

इस गली में एक नंगा फकीर रहता था।
गौर से ढूँढ़, खजाना वहीं से निकलेगा।।

उन्होंने चुनौतियों को सदैव स्वीकार किया। कभी गलत समझौते नहीं किये। संघर्षों ने उनके व्यक्तित्व को माँजकर और चमका दिया था। धुन के पक्के और जीवट वाले इंसान थे वे। ऊपर से सख्त और भीतर से साफ और नैंनू की तरह कोमल। सदैव दूसरों की मदद को तत्पर। बहुत बड़ा दिल, जिसमें दुनियाँ भर को स्नेह बाँटने की सामर्थ्य थी। विशुद्ध जमीन के आदमी और आदमी को आदमी बने रहने देने के लिए अजीब छटपटाहट थी।

मैं एक आदमी हूँ -

मुझे आदमी बना रहने देना।
कहीं इन उनके कहने से



मेरा बंटवारा न कर देना। - सीताकिशोर

सीताकिशोर के कवि ने भूख की तीव्रता को भोगा था। उसे डर था कि कहीं भूख का अर्थ भारत न हो जाये क्योंकि पूँजी के कान नहीं आँखें होती हैं। 'आँसू का मोल चुकाने वाला यह सौदागर, रोज अमावस-सा काला विष पीकर जी लेना चाहता था।'

पग-पग पर संघर्षों, मुठभेड़ों का मारा हूँ।
मंजिल पर है आँख, थका हूँ और न हारा हूँ। - सीता किशोर

वीरेन्द्र जैन के अनुसार - 'सीताकिशोर लोकचेतना में आधुनिकता के अग्रदूत थे।" वे विद्या के व्यसनी थे। जिस आँचलिकता में सीताकिशोर खरे के व्यक्तित्व का निर्माण और साहित्य का सृजन हुआ वह समाज का यथार्थ था। जीवन के अनुभवों का संवाद था। वे 'बूढ़ी सी परम्परा' की नींव हिलाने का हौसला रखते थे। दो टूक बात कहने की दम-खम उनमें थी -

बुल-बुल का करहै इतै, का कोइल कौ काम।
घर-घर पिंजरन में पले, उल्लू नमक हराम।। - सीताकिशोर

सीताकिशोर की काव्य-यात्रा लोक कवि के रूप में शुरू हुई थी। उन्होंने फागें लिखीं। गारी लिखीं। उनका अंतरिक्ष 'इस दौर से गुजरे हैं हम' प्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं। डॉ. के.बी.एल. पाण्डेय ने लिखा है - "सीताकिशोर के न रहने का शोक और अभाव एक का नहीं सबका है। देह क्षीण होती रही लेकिन जीवन का कोई लक्षण कम नहीं हुआ था। उन्होंने लिखा नहीं रचा है। रचने में प्राण लगते हैं। सीताकिशोर ने प्राण लगाये।" सीताकिशोर का जाना एक शब्द साधक का अवसान है। महाशक्ति का शांत हो जाना है। २४ जून २००६ की काली भयावह रात। न रहने की खबर से सब शोक-मग्न थे। सारा जहाँ हिल गया। उनके लिए सब दुखी थे। क्योंकि वे सबके थे। वे तो पारसमणि थे जिसको उनका संपर्क मिला वह कुंदन बन गया। उन्होंने जो भी सोचा सामूहिक रूप से सोचा। गजब का आत्मविश्वास और दृढ़ता थी। बहुत जिद्दी आदमी जो सोच लेता करके मानता। बिना गृहणी के गृहस्थ। पूरा जीवन लगा दिया। घर-परिवार को समर्थ करने के लिए। वे उदार, सदाशय और सहृदय व्यक्ति थे। खजाने जैसा दिल और अनवरत् लुटाने का हौसला। वे एक ऐसे छायादार वृक्ष थे जिसके नीचे बैठकर न जाने कितने थके-हारे राही शीतलता और स्फूर्ति प्राप्त करते थे।

दादा ने संबंधों का रचनाशास्त्र रचा था। रिश्तों की खूबसूरत इबारत उन्होंने लिखी थी। बहुत बड़ा साहित्यिक परिवार था। उनका दृष्टिकोण ऊँचा था। उनका सोच समाज को स्पंदित करता रहेगा। उनके पास भाषा की ताकत थी। धारदार क्रियायें थीं। अभिव्यक्ति की कुशलता थी। सीताकिशोर सामाजिक बदलाव और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए प्रतिबद्ध थे। उनके आत्मसंघर्ष ने ऐसे साहित्य का सृजन किया जो कालजयी है। अपराजेय जिजीविषा के धनी थे वे। सीताकिशोर एक विचारधारा का नाम हैं। सबकी चिंता करने वाला, सीताकिशोर, सदियों बाद पैदा होगा। बुंदेलखण्ड की माटी उनसे गौरवान्वित हुई है।

- प्राचार्य, शास. गोविन्द महाविद्यालय, सेंवढ़ा

बुन्देली कविता -

बैर के विष बीजा बो दये

- डॉ. शंकर लाल शुक्ल

होकें बड़े बड़िन संगे, वे ऐसे नेता हो गये,
आंत हिलारे भइयन में, बैर के बिष बीजा बो दयें।

जिन भइयन संग, छोटे में हुदरात फिरे,
हिलमिल खेले खेल, बनाये घरगूला,
ताल तलैयाँ सपरे, खेतन में लोरे,
दिन दिन भर साउन में, झूलतते झूला।
राजनीत ने जौका भइया कर डारो -
बखरी में दीवार उठी, दो आंगन हो गये।
बैर के विष बीजा बो दये।...

ऐसौ पंचाती राज हुये, का गाँधी जानत्ते,
वे तौ पंचन खौ भइया, परमेश्वर मानत्ते।
देखौ तुमने जा चुनाव में, लट्ठ औ बन्दूक चले,
हँसत उजर गये कैउअक आँगन, कैउअन के कट गये गले।
जानी दुश्मन जा चुनाव में, आज सगे भइया हो गये।
बैर के बिष बीजा वो दये।...

बचपन की यादें रै रैकें, हमखों आज रुलातीं
इक झूला में परे एक संग, बाई हमें झुलातीं,
उटे दूद के भरे कटोरे, पीते औ बगराते।
पकर पकर कें सपराते थे, भग भग हम थे जाते,
अपऔं पराऔ कभऊँ न जानों बाप मताई के आगें,
उतरन पैरत्ते भइया की, जूठन खाउत्ते मांगे।
कैसो आओ विकट समइया, अपयें विराने हो गये।
वैर के विष बीजा बो दये।...

ईमान ने सब उन्ना उतार दये, साँचउँ सच हो गऔ नंगा।
भाईचारे में आग लग गयी, गली गली हो रओ दंगा।
आंदी चल रई है स्वारथ की कोऊ न काऊ की मानें,
कोउ न अपसर ऐसौ देखो, रिसपत न लइ हौ जाने।
चोर चोर मौसेरे भइया नेता औ अपसर हो गये।
बैर के विष बीजा बो दये।...

होकें बड़े बड़िन संगे वे ऐसे नेता हो गये,
आंत हिलारे भइयन में बैर के विष बो दये।।

- भाण्डेर, दतिया (म.प्र.)

बुन्देली लोकगीतों में मान-मनौव्वल

- श्रीमती ब्रजलता मिश्र

बुन्देलखण्ड की पावन वसुन्धरा लोकगीतन की रस-धारा सें बरहमेस हरी-भरी रउत है। जाकी माटी मिले लोक-जीवन के मीठे सुर जब कानन में गूँजत है, तौ अपुन सबइ कौ उछाह दिन-दूनौ रात चौगनौ बड़ जात है। आग्रह की झलक जाँ-ताँ देखबे खों मिल जात है। जीवन में सरसता लियाबे के लानें जे सब बातें भौतइ जरूरी होत है। इनके बिना सबइ कौ जीवन सुनौ उर अधूरौ है - चाँएँ दई-देवता होंय, चाँएँ जनी-मान्स। देखन होय तौ अपुन चलियें कैलास परबत पै, जितै

"हट पर गईं गौरा नार - महादेव ! मड़ी बना देओ बाग में।"

महादेव भोले संकर ने गौरा रानी की मन्सा पूरी कर दई औ एक सुन्दर बगीचा में मड़िया बनवा दई। गौरा रानी प्रसन्न हो गईं, अकेलें उनके बेटा के डौल तौ देखौ -

"गनेज्जू बब्बा गजरा कौ बिरजे रे।
गजरा कौं बिरजे बे तौ ठाँड़े मलिनियाँ के दोर रे।
गनेज्जू बब्बा हो SSS!"

अब आपइ देख लेओ कै गनेज्जू (गनेस जू) खों गजरा की ऐसी लावटी लगी कैबै मालिन के द्वारेंइ पौंच गए।

अब माखन चोर कन्हैया कौ हाल देख लेओ। बे तौ भूकन के मारें ऐसे बेहाल हो रए, कै रो-रो दै रए। उनें माखन मिसरी, दई-मलाई सबइ कछू तौ चाँवने। सबइ हड़ गए काय सें कै बे तौ-

खाबे खों माँगे माखन, मिसरी, ऊपर सें माँगे मलैयो।
मलैया दैया काँसें ल्याऊँ, रोवै कन्हैया।"

जेइ माखन चोर कन्हैया बड़े होकें गोपी ग्वालन के संगै होरी खेल रए। अबीर-गुलाल, कुमकुम रंग के डरन सें जब बे मैया जसोदा नों दुक जात है, तौ गोपी उनसें आग्रह करती हैं, कै तुम होरी खेलौ नइँ तौ हाँत जोरकें हमसें हारी मानो। बे कउतीं हैं -

"कै तौ निकस कें होरी खेलौ, कै मुख सें कओ हारे, जोर कर आँगें हमारे'

जौ तौ अपुन औरन ने देवतन की हट (हठ) देखी। अब हट तौ हटइ होत है, चाँएँ बौ देवतन की होय, चाँएँ जनी-मान्स की। क्वाँर की नवरात्रन में सुअटा खेलतन में बिटियन की हट भी कम नइँ होत। बे कउतीं हैं -

"चाराना चँदेरी जैहौं, बाराना बैरागी जैहौं
दाने खों दरबाजें जैहौं, पान खान पत्ता लै जैं हौं
पानी पियन महोबे जैहौं।
ठाड़ी हौं तौ सरगै जैहौं, बैठी हौं तौ गड़-गड़ जैहौं।"

बे अपने मताई बाप कौ कैबौ नइँ मानबे कौ प्रन करती हैं।-

"माई कौ कहौ न करहौं, बाबुल कौ कहौ न करहौं।"

उनें अब अपएँ भैया-भौजाई के बोल-भी नइँ सँउँनें -

"भैया के बोल न सैहौं भौजी के बोल न सैहौं"

चकिया पीसबौ, रोटी पैबौ, गोबर डारबे पानी भरबौ जैसे सबइ काम मना करबे की हट देखो -

"चकिया कौ डड़ा न छीहौं, चूले के जराँ न जैहौं।
गुबरा की हेल न धरहौं, पनियाँ की खेप न धरहौं"।

तातौ भोजन करवे की उर बासौ भोजन कौ एक कौर ना खाबे की हट करतीं हैं, कायकै बासे भोजन सें स्वास्थ्य खराब होत है। उनइँ के शब्दन में सुनो -

"तातौ होय लप-लप खैहौं, बासौ होय कौर न दैहौं।"

ऐसे लाड़-गोड़ की पली पुसी बिटिया कौ ब्याऔ होत है। सासरे में बाकौ हटीलौ देवर बात-बात में मचलत है, तौ बौ कउत है - "ऐसौ हटीलौ बारौ देवरा, अरी मचलै मोरे अँगना।"

एक दिनां उरद की दार बनाई तौ देवरा ने रोटी नइँ खाई, कायकै बौ मचल गऔ कै भाजी बनाऔ। अब बौ ननदी नों जाकें उरानौ दै रई कै -

मैंने कर लई उरद की दार, ननद बाई!
देवरा मचल रऔ भाजी कौं।"

जौ हाल तौ देवरा कौ है। अब उनके राजा (घरबारे) कौ मचलबौ तौ देखौ। बे गेंदा के फूल के लानें मचल रए, बा फूल कौ मौसमइँ नइयाँ - *"गेंदा हजारी, कहाँ पाऊँ री, जे राजा गेंदा खों बिरजो।"*

साँउँन के मइँना में राजा (घरबारे) रिसा कें परदेस जाबे की तैयारी करत हैं, तौ गोरी धना उनसें आग्रह करती हैं। कै बे पर की सालै परदेस चले जाएँ, अकेले आसों कौ साँउँन हेंईं आएँ घर कौ करैं। 'बे कै रइँ हैं' -

"आसों के साँउन राजाघर करौ, परके करियो बिदेस।

जब राजा नइँ मानत है तौ गोरीधना धमकी और प्रलोभन (लालच) दैकें उनें समझाउती हैं -

"जाओ तौ राँदौ राजा खीचरी, रैहौ तौ राँदौं रसखीर।
रैहौ तौ ओढ़ौं हरी चूनरी, जाओ तौ दक्खिन चीर।।

गोरीधना कौ आग्रह मान कें राजा बिलम गए, परदेस नइँ गए। अब गोरी उनसें गरे कौ हार बनवाबे कौ आग्रह कर रई हैं -

"बनवादो गरे कौ हार सजनवा! अब बरखा ऋत आ गई। खेती किसानी के काम में नफा-नुकसान तौ लगौइ रत है। जब घर नइँ बन पाऔ तौ एक दिना की बात है कै संजा के हार-खेत सें उनके घरवारे घरे लौटे तौ गोरी धना ने हँसकें किबारे दै लए उर सोनें के ककना बनवाबे कौं अड़ गई -

"हँस दै लए झँझर किवारें राजन! ककना बनवा दे डारे सोने के।"

ना हार बनौं, ना ककना बने। काय कै सोने कौ भाव दिन पै दिन चड़ रऔ सो गोरी धना सोने सें चाँदी पै उतर आईं। अब बे करधौनी लैबे कौ आग्रह कर रई -

"सैंयाँ! लै दै करधनियाँ, मँगाय दै करधनियाँ, में तोसें बिरजी।

उनके राजा ने उनें करधौंनी बनवा दई। मायके में भतीजौ भए कौ सँदेसौ लैकें लिबउआ आए। सो हौंसी फूली बे करधौनी पैरकें फूलीं नइँ समा रई। मायके पौंचकें अपनी भौजाई सें -

"ककनवा माँगें ननदी लाल की बंधाई।"

अड़ियल भौजाई भी अड़ गई। बोली कर ककना ना दैंहौ। मोरी रानी जू,

ना दैंहौं महारानी जू। कर ककना।

जब ककना नइँ मिलौ तौ उन्ने जड़ाऊ बेंदा की जुगाड़ लगाई उर बोलीं-

लाल के बधाए में जड़ाऊ बेंदा लेउँगी।

जड़ाऊ बेंदा लेउँगी में बेसर बेंदा लेउँगी।

बेंदा नइँ दैनें परै - तासें भौजी बहानौ बना रइँ हैं कै मेरे बेटा नइँ, बेटी भई है। सियानी ननदी की चतुराई तौ देखौ। बे कै रई हैं - *बेंदा पीछें लेउँगी में बेटी देख लेउँगी।*

ननदिया कौ कभउँ न बुलावे की बात कैंकें 'भौजी रोस में आकें बेंदा फेंक देती हैं। मायके की आस भौत बड़ी होत है। ननदिया कौ नेह भरौ आग्रह देखौ - *भतीजे की पासनी में बिना बुलाएँ आऊँगी।"*

जैसे खिसयानी बिलैया खम्माँ नोंचत है, तैसेंइँ भौजी खीज जाती हैं और ननदी सें कउतीं हैं -

मोरे पिछवारें बमुरिया की पेड़ौ, में बई तरें आज तीनउँ जनें बाँदौं।
तोय बाँदौं तोरे भैया खों बाँदौं, कस बाँदौं ननदेउआ।

इतनौ अपमान, सैकें ननदी रोस सें भर जातीं हैं उर रिसाकें अपएँ सासरे चलीं जाती हैं। तौ भौजाई की ठसक देखौ। बे भैया सें कउतीं हैं -

"रिसाय चलीं जैतें, मनाबे ना जैहें, हम राजा कोउ खों बुलाबे ना जैहें।"

तीन साल के बाद जब फिर भौजाई के पाँव भारी भए तौ उने फिर ननदी बुलाबे की याद आई। जब उननें भैया सें कई, तौ भैया खों अपइँ बैंन के संगै घरबारी कौ बेघर याद हतौ सो उन्नें बड़े स्वाभिमान के संगै जौ कै दई -

धना! हौ तौ गुनन की पूरीं, बचन की साँची,
हमाई बैंना नइँ आहें रे।

जा तरा सें मान-मनौअल रूठबे-मनाबे के अनगिनते लोकगीत हमाए बुन्देलखण्ड में गाये जात हैं। हँसी-मजाक, मनोरंजन, सहनसीलता लौहरे-जेठे की मान-मर्यादा, वाकूपटुता कौ सँदेसौ देत भए जे लोकगीत हम सबके जीवन कौं सरस बनाउत हैं।

- ३५२, नानकगंज, सीपरी बाजार, झांसी

बुंदेली बसंत

- एल.एम. चौरसिया

बुंदेली बसंत की सानी; और ना कहूँ दिखानी।
बिलवारी गूंजै खेतन में, गांवन फाग दिवानी।
पिसी, जवा, सरसों उर बटरा, राइ करै अगवानी।
महुआ आम करौंदन फैली, है बहार मस्तानी।।

दूल्हा बन बसंत जू आये, सकल बरात सजाये।
हाली-फूली प्रकृति दिलइया, हरदी आंग चढ़ाये।
मनमौंजी मकरंद मस्त हो, स्वागत गीत सुनाये।
कोहे कोहै कहै कुयलिया, जब प्रियतम घर आये।।

पुरवा प्रेम संदेशौ लाइ, महक उठी अमराई।
डारन डारन हार पहारन, कोयल कूंक लगाई।
द्वार खोलकें कली अली की, करन लगीं पहुनाई।
सज धज कंत बसंत बाग में, दीनी अलख जगाई।।

बिछ गओ लो बसंत को फट्टा, जुर आये फरचट्टा।
अलसाइं कलियां अंगड़ाई, लै लहराय दुपट्टा।
मतवारे भौरा मस्ती में, मारें खूब उचट्टा।
गदराई अमियां चुटयावै, दै रये सुआ झपट्टा।।

बगिया में बसंत के आयें, कलियां मोद मनायें।
खिलीं अधखिलीं कलीं डार पै, झूम झूम अंगड़ायें।
रंग बिरंगीं पंखी अपने, पंखन सें सहलायें।
भौरन की टोली मस्ती में, मदन आग सुलगायें।।

भौंरा हो गये बड़े गुमानी, करन लगे मनमानी।
खिलीं अधखिलीं कलीं ना देखें, भाव कुभाव ना जानी।
जबसें मिल गइ इनै बाग की, कलियन की निगरानी।
जन्मसिद्ध अधिकार मानकें, करत खूब शैतानी।।

आली अली बाग में घूमें, मतवारे से झूमें।
हाले फूले मचा रहे हैं, शहनाई की धूमें।
रस के प्यासे रसिक बावरे, कलियन के मुख चूमें।
कंज कली यौवन के मद में, स्वकीया सी लूमें।।

फिर रइं है भौंरन की गोले, मदन भार सें डोलें।
रस के प्यासे बड़े सयाने, मीठी बोली बोलें।
अंग अंग रंग अनंग के बरबश, भीतर बाहर घोलें।
बड़े जतन से कंज कली के, पट पराग के खोलें।।

फागुन मस्ती लै कें आये, हरे पात पियराये।
ज्यों तरुणी ब्याव से पैलां, हरदी लेप कराये।
मौंरे आम करौंदा फूलें, महुआ द्रग भर आये।
ठिठुरी कलीं शिशिर की मारीं, लै उसांस अंगड़ाये।।

- सीताराम कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली लोककथा - बब्बन नाऊ

- अजीत श्रीवास्तव, एडवोकेट

ऐसें-ऐसें एक राजा हते। दैव योग से उनके साथ ऐसी अनहोनी भई कि उनके मूँड़ में दो सींग कड़ आये। राजा नै बड़ी साफा बांध के छुपा लओ।. काऊ खों कानो-कान पतौ नई चलो कि राजा के सिर पै दो सींग हैं। पै मूड़ कौ एक धरम होत कि उमें बाल होत सो राजा खो वे बाल जब इकाऊ लमया जायें सो कटाने परत तीं जब जब राजा ने बार बने तबई राजा नै ऊ नाऊ कौ मूड़ कटवा देत ते। इकाऊ दुक्के वे बार बनवाउत हते।

होत-करत एक ऐसा काल आ गऔ कि राजा के राज में बार काटबे नाऊ नई बचें। पै बार तौ बढ़बे सें रुकत न हते। फिरकें बढ़ गये। तब नाऊ की ढुढ़ाई भई, सो एक बूढ़े बब्बन नाऊ मिले। बब्बन खो शक पैलई से हो रओ तो कि सबरे खवास कों हिरात जा रये। पै राजा कौ हुकुम, टारो भी नई जा सकत तो। राजा के बार बनाबे पें पौच गये। एक गुप्त कोठा में राजा नै अपनौ स्वापा उतारो सो बब्बन नाऊ खौ दो सींग दिखा परे। देखतनई वौ सब समझ गओ। ऊनै राजा के बार बनाये। जैसई काम करके निपटे, राजा नै पाग बांधी और सिपाइयन से कई बब्बन नाऊ कौ मूड़ काट दो। बब्बन घिघयान लगे। औ कई-मराज मोरो विनतबाई सुन लई जाय। अब मैं राज में अकेलौ खवास खिदमत खों बचों, यदि मोय मरवा डारो जैहै तौ अपुन के अगली बेरा को बार बनाहै। सो मोई जान बखसी करी जाय।

राजा नै कई - "बात तौ तें सई कात, पै तैनें हल्ला कर दओ सो सबरे मै बात फैल जै कि राजा के सिर में दो सींग। बब्बन नाऊ नै चरनन में गिर कै कई, 'मराज जान बख्सी होय जा बात में जियत काऊ सें नई कैहों।'

राजा नै सोचविचार करो फिर कई - "बब्बन नाऊ यदि तुमनै जा बात काऊ से कई तो वोई दिना तुमाओ सर कटा दओ जैहे।"

बब्बन नै जुहार करो औ भग लओ। पै बब्बन नाऊ की जा कमी हती कि बौ कौनऊ बात पचा नई पात तो। सो घरै तौ गऔ बा बात घुरी नई सो ऊकौ पिरानी पेट। खवासन नै कई जतन बब्बन नाऊ ने बात नई बताई खबासन ऊकी घर से घरवारी हती, नस-नस सें परिचित हती, सो बोली "तुमायें पेट में बात फंसी, औ तुम मोय बता नई रये, सो एक काम करौं, डांग चले जाऔ कौनऊ पेड़े से कै आऔ, तबई तुमायं पेट कौ दरद मिटनै।"

बब्बन नाऊ खों जा इलाज जम गओ, एक बिलात मौटो, पुरानौं पेड़ ठाड़ो हतो सो ऊने ओई से कै दई, औ ऐसें नई कई चिल्ला-चिल्ला कैं कई दार कई "राजा के सिर पै दो सींग-राजा के सिर पै दो सींग।"

जैसई-जैसई बौ कत रओ, ऊकौ पेट कौ दरद मिटा गऔ सो वो घरै आ गऔ, बात हती सो आई-गई हो गई पै होनी खों तौ और कछू घटानै तो। ऊ राज में एक संगीत मंडली, संगीत-गीत सुनाबे आ रई ती, सो बा ओई डांग में पौंची। दुपाई कौ घाम हतो सो ओई बिरछा के नैचे रुक गई, मई कलेवा भऔ, दुपाई काटी। मई पर रय ऊ मंडली के उस्ताद नें परे-परे पेड़ खौ तको सा कई 'काहो अच्छो पेड़ो है येई की लकड़ियन सें संगीत को साज बनत बन ना जान दो' संगीयन ने हामी भरी सो वे मई मेल गये। डारै काट काट के ऊकी लकरिया कि एक पेटी (हारमोनियम) बनाओ गऔ, दो तबला बनाये गये, दो झांझे बनाई गई। फिर के चले सो उनई राजा के दरबार में अपनी कला दिखान पौच गये।

राजा कौ दरबार खचाखच ऐंन तांन के भरो हतो, काये से कि परदेस के संगीत मंडली आई हती। राजा नै हुकुम करो सौ मंडली के पेटी बारे नै पेटी (हारमोनियम) बजाओ जैसई बजो सो ऊमें से संगीत में निकरो

"राजा के सिर पै ऽऽ दो सींग... राजा कै सिर पै ऽऽ दो सींग"

तबई झांझे वारे नै ताल ठोक दई और जैसई झांझे को सुर कड़ों

"किन कही, किन कही, किन कही,"

"किन कही, किन्ने कही, किन्ने कहीं"

औ तबई ताल मिलाबे तबलची नै तबला बजावौ शुरू करो सो ऊँमें से आवाज कड़न लगी।

बब्बन नाऊ, बब्बन नाऊ बब्वन नाऊ"

राजा के कान खड़े हो गये ऊने गौर से सुनों सो समझ गओ, ऊने मंड़ली को कार्यक्रम बंद करवे इशारा कर दऔ।।

राते राजा ने बब्वन खौ टिराओ औ सूने कोठा में लै जाके पूछी सो बब्बन नै सांसी सांसी बता दई "मराज में जात कौ ठैरो खवास, मोये पेट में कौनऊ बात कौन पचत है सो मोरो पिरानो पेट, सो में अकेलों डांग जाकै एक पेड़ से कै आओ तो, मोरी जेई गलती भई मराज, मोई जान बकसी होय जू।" राजा नै गुप्तचरन के संगै बब्वन खों पेड़ देखबे पौंचाओ पेड़ कटो हतो, जौ भी पतौ चलो कि ओई मंड़ली ने काट के साज बनवाये ते। राजा नै वे साज जप्त कर लये औ ऊ बिरछा खौ कटबा कै रोटी बनावे चूल्हे के लानै लकईयां करा कै महल में धर लऔ। बढ़ई नें बनाई टिकटी, मोई किसा निपटी, अब हमाई किसा लेत बिसराम, सुनबे बारन खौ राम राम।

- राजीव सदन मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

दो-दोहे

लाली ससुरारें गई दिए महाउर पाँव।
उतै पौंच जो कछु भयौ बाकौ अर्थी नाँव।।

अलग अलग भाषान में बोलें यही कमाल।
हे सखि! कित्ते चतुर हैं भौंह, आंख अरु गाल।।

- ओम शंकर खरे 'असर'
२१३, वासुदेव, झाँसी (उ.प्र.)

अनुवाद की समस्यायें और मुंशी अजमेरी के अनूदित ग्रंथ

(चित्रांगदा तथा स्मरण के संदर्भ में)

- डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

अनुवाद का काम काफी जटिल होता है। अनुवाद करते समय अनेक समस्याओं से निपटना पड़ता है। अनुवाद की सबसे बड़ी समस्या है अनुदित कृति की भाषा में मूल कृति की भाषा और भावों की संगति बैठाना। भाषा और संस्कृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है। भाव को संस्कृति की उपज न भी मानें तो वह संस्कृति के हवा-पानी से पोषित तो होता ही है। अलग-अलग भाषाओं के अलग-अलग सांस्कृतिक परिवेश होते हैं, यहाँ तक कि प्रत्येक शब्द की अपनी अपनी पृष्ठभूमि होती है, जिसे शब्द का माहौल कह सकते हैं। उसमें परिवेश और समय के साथ-साथ कुछ घटता बढ़ता रहता है। लिंग, वचन और अर्थ सम्बन्धी कुछ न कुछ परिवर्तन भी होते रहते हैं। अर्थ विस्तार और संकोच के अतिरिक्त आदिष्ट अर्थ भी निहित हो जाता है। परम्परा के कारण कुछ शब्द अपना अर्थ खो देते हैं। जैसे नामों के रूप में राम, कृष्ण, शंकर या नर्स के लिए सिस्टर ऐसे ही शब्द हैं जो अर्थशून्य मात्र व्यक्ति प्रतीक हैं। इन नामधारी व्यक्तियों को गाली देने में कभी व्यक्ति के मष्तिष्क में यह बात नहीं आती के ये शब्द उसके आराध्यों के नाम भी हैं। उनके मन्दिरों में जाने पर उन्हीं शब्दों का अर्थ बदल जाता है। नर्स को सिस्टर कहने पर भी कभी बहिन का भाव नहीं उभरता।

और भी उदाहरण दृष्टव्य है। 'अधिकार' शब्द का संस्कृत में अर्थ है - कर्तव्य। बिना किसी ध्वनि परिवर्तन के आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी इसका प्रयोग हो रहा है किन्तु संस्कृत से उलटे अर्थप्रभुत्व या स्वत्व के रूप में।

अनुवाद की इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर किसी विद्वान ने अनुवाद को मूल की चौथी कार्बन कॉपी की संज्ञा दी थी।

प्रमुखतः अनुवाद दो तरह का होता है। एक शब्दानुवाद, जिसे रद्दी और घटिया कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें शब्दशः शब्द के चक्कर में भाषा अटपटी हो जाती है और मूल कृति के विचार और भाव विश्रृंखल। कविता के अनुवाद में तो वह समस्या और भी कठिन हो जाती है। मूल कृति के भाव साधारणीकरण में असमर्थ हो जाते हैं और काव्य का रस सूख जाता है।

दूसरा है भावानुवाद। यह अनुवाद कृति की आत्मा की रक्षा की दृष्टि से अधिक उपयुक्त होता है, किन्तु 'आलोचना के लिए आलोचना' की इसमें अधिक गुंजाइस रहती है। केवल भाषा को ध्यान में रखकर आलोचना के लिए कृति के अनेक अंशों को पकड़ा जा सकता है।

तीसरा एक और अनुवाद भी होता है - व्याख्यात्मक। यह शास्त्रीय ग्रंथों के लिए अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि उसमें रसानुभूति की अपेक्षा नहीं होती, बल्कि विषय को अधिकाधिक सुबोध बनाना होता है। हालाँकि साहित्य में भी इसके प्रयोग हुए हैं। उदाहरणार्थ - विश्वताल लाल 'शैदा' का कामायनी का अनुवाद, रामचरित मानस का मानस पीयूष नामक अनुवाद, गीता के तो इस तरह के अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं।

अनुवाद की कठिनाई को रेखांकित करने वाली एक फ्रांसीसी मान्यता है कि अनुवाद एक महिला की तरह है। यदि वह सुन्दर है तो वफादार नहीं है और यदि वफादार है तो सुन्दर नहीं है।"

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने गीतांजलि का अँगरेजी अनुवाद स्वयं ही किया था, और उसी अनुवाद पर उन्हें नोबिल पुरस्कार मिला था, जबकि वे स्वयं उससे सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने, किसी भेंटवार्ता में, उसे अपने ही सिक्के को खोटा करना बताया था। समस्या वही थी भाषा के परिवेश की।

इसका प्रायोगिक अनुभव करने के लिए ऐडविन अरनॉल्ड के 'गीत गोविन्द' के अंग्रेजी अनुवाद 'इण्डियन सोंग ऑफ सोंग्स' को पढ़कर यह महसूस किया जा सकता है कि वह भारतीय मानस; विशेष कर हिन्दू मानस को, हाल्हादित करने में उतना समर्थ नहीं है जितना जयदेव का मूल 'गीत गोविन्द'।

बात है हिन्दी जगत के सव्यसाँची स्व. प्रेमबिहारी अजमेरी (मुंशी अजमेरी) द्वारा रवीन्द्र नाथ टैगोर के 'चित्रांगदा' गीति नाट्य का मूल बँगला से खड़ी बोली (परिनिष्ठित हिन्दी) में अतुकान्त छन्दों में अनुवाद की और 'स्मरण' नामक लघु काव्य के ब्रजभाषा में अनुवाद की।

वैसे तो देश की संस्कृति का अन्तःसूत्र एक ही हैं फिर भी अलग-अलग भाषिक क्षेत्रों में उसमें कुछ क्षेत्रीय विशेषताएँ पनप जाती हैं, और वे निश्चित रूप से उस क्षेत्र की बोली-वाणी को भी प्रभावित करती हैं।

यद्यपि मैं बँगला भाषा का जानकार होने का दावा तो नहीं कर सकता हूँ। तो भी भाषा विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते बंगला की भाषिक प्रवृत्तियों से परिचित अवश्य हूँ। बंकिम-चन्द्र चटर्जी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, शरद् चन्द्र चट्टोपाध्याय, विमल मित्र, महाश्वेता देवी, अमरेन्द्र घोष, बादल सरकार आदि बंगला के मूर्धन्य लेखकों के साहित्य के सुयोग्य अनुवादकों हंस कुमार तिवारी, धन्य कुमार जैन आदि द्वारा हिन्दी में किये गये अनुवादों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि बंगला में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग बहुलता से होता है तथा पदों में भाव प्रवणता की प्रधानता रहती है।

दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय समतुल्य पदावली की खोज तथा अनुवाद में भाव प्रवणता को यथानुरूप उतारने के लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं के मर्म को समझने वाला विद्वान होना आवश्यक है।

अजमेरी जी बँगला और हिन्दी के श्रेष्ठ विद्वान थे। अतः चित्रांगदा में बँगला के समतुल्य हिन्दी पदावली का प्रयोग उनके लिए कोई कठिन काम नहीं था। वे कवि भी थे इसलिए हिन्दी में बँगला के पदों के भावनात्मक माहौल को उसी भावभूमि पर उतारने की

उनमें सामर्थ्य थी।

अनुवाद की एक कसौटी यह भी है कि आप अनुवाद को पढ़ते समय यह भूल जायें कि आप अनुवाद पढ़ रहे हैं बल्कि उसमें ही रचना के मौलिक होने का आभास होने लगे। अनुवादक ओझल हो जायें और ऐसा प्रतीत हो कि मूल रचयिता ही अपनी कृति को आपकी भाषा में सुनाकर रसप्लावित कर रहा है। इस कसौटी पर चित्रांगदा खरा उतरता है। मूल रचना के एक-एक पद की हिन्दी के एक-एक पद की तुलना यहाँ अभीष्ट नहीं है। यहाँ तो केवल यही अपेक्षित है कि अनुवाद के रसास्वादन में कहीं व्याघात तो नहीं है। मुंशीजी को एक अच्छे अनुवादक का प्रमाण पत्र देने के चक्कर में क्यों पड़े रहे? रसास्वादन के लिए चित्रांगदा को मुंशी जी की मौलिक रचना ही मान लें तो क्या हर्ज है?

अनुवाद परिनिष्ठित हिन्दी में किया गया है। उसमें जाय, धाय, लखौ, पै, लों, जैसे शब्दों का प्रयोग सुष्ठु हिन्दी के अनुरूप नहीं है। लों (तक) शब्द से मुंशी जी का अधिक लगाव प्रतीत होता है। उसका अनेक जगह प्रयोग किया गया है। जैसे - वरंच एक वर्ष लों बसन्त की...। मैंने उदयांचल लों। सूर्य नहीं उगता जब लों। आदि।

दूसरा अनुवाद है - रवीन्द्र नाथ टैगोर की 'स्मरण' नामक रचना का। इसका अनुवाद अजमेरी जी ने ब्रजभाषा में किया है। 'स्मरण' टैगोर के सत्ताइस छन्दों की मार्मिक लघु रचना है। रवीन्द्र नाथ टैगोर की अर्द्धांगनी श्रीमती मृणालनी देवी की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण उनके विरह विगलित हृदय से उठे उच्छवास हैं।

मेरी समझ में यह एक साथ लिखी गयी रचना नहीं है। विरहजन्य पीड़ा से मंथित हृदय की समय-समय पर उठी पीड़ा को उन्होंने शब्दायित किया है। मानो मृणालनी देवी की अपार्थिव उपस्थिति कवि को व्याकुल करती रही और वे उस स्मरण उपस्थिति को शब्दों को सौंप कर सँजोते रहे। यही 'स्मरण' नामक रचना का मर्म है।

टैगोर ने भले ही इन सत्ताइस छन्दों की रचना को 'स्मरण' नाम से संग्रहित कर दिया है और उन सब का केन्द्रीय भाव भी यही है, किन्तु उनमें विरहाकुल मन की अलग-अलग स्थितियाँ भी हैं। इस बात को इस ग्रंथ (प्रेम प्रवाह) के सम्पादक ने भी महसूस किया तथा एक-एक या एक से अधिक पद्यों को कुछ मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत शीर्षकों की आवश्यकता का अनुभव किया। प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी तरह मुझे इस कार्य में लगना पड़ा। इसके लिए मुझे 'स्मरण' के पद्यों को अनेक बार पढ़ कर रचयिता की भावना में तल्लीन होना पड़ा। मेरे द्वारा सुझाये गये उप शीर्षकों को थोड़ा-बहुत हेर-फेर कर या शब्दों का ब्रजीकरण कर सम्पादक ने स्वीकार भी किया है। तात्पर्य यह है कि मैंने अजमेरी जी के अनुवाद में भावों की कोमलता तदनुरूप पदावली का प्रयोग आदि को बहुत बारीकी से समझने की पूरी कोशिश की। मैं फिर वही बात कहना चाहता हूँ कि जब हम बंगला के अधिकारी विद्वान नहीं है तो उसे मुंशी जी की स्वतंत्र रचना मान कर उसके भाव और भाषा से निस्रत रस का आस्वादन क्यों न करें?

एक बात और भी है जिसे शायद सब लोग न जानते हों कि अजमेरी जी स्वयं सहधर्मिणी वियोगी थे। इस कारण टैगोर के मर्मस्पर्शी भावों के साथ उनकी संवेदना एकाकार हो गयी। जानकार विद्वानों का मत तो यह है कि उससे भी आगे निकल गयी।

मुंशी अजमेरी जी आत्मश्लाघा के अभाव में साहित्याकाश से ओझल से हो रहे थे। उनके पौत्रों श्री विद्या सागर जी शर्मा तथा श्री गुणसागर सत्यार्थी के सारस्वत श्राद्ध से वह धुन्ध काफी छट गयी है और छटती रहेगी। ईश्वर उन्हें आयु, शक्ति और सामर्थ्य दे ताकि वे अपने प्रयास में निरंतर अग्रसर होते रहे।

- पुरानी नजाई, टीकमगढ़ (म.प्र.)

विदा गीत

- मुक्ता प्रसाद गुप्त 'रत्नेश'

बाबुल कितै पटक दई मोकों, मों बिन कैसी लगहै तोकों।
हा मेरी मइया हा मेरी काकी, हा मेरे वीरन हा मेरी भाभी।
कौन भार जा झोंकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।
पाला पोसा बड़ा बनाया, बेहद प्यार तुम्हारा पाया।
निज करमन कों ठोकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।
मैं हूँ कान गही सी छिरिया, विधना काय बनाई तिरिया।।
अब जनम भर हड़िया छोंकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।
सखियन के संग कब खेलूँगी? बागन झूला कब झूलूँगी?
मैं खुद कों कैसे रोकों? बाबुल कितै पटक दई मोकों।
सास-ससुर मोय कैसे मिलहैं? ननद-जिठानी में कैसे हिल हैं?
'रत्नेश' पड़ गई शोकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।।
समझदार तुम बिटिया हमारी, चतुराई सें बनजैव प्यारी।।
बच्ची पीठ मैं ठोकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।
सास-ससुर की सेवा करियो, पति की आज्ञा सिरपै धरियो।
बिटिया सीख हमारी तोकों, बाबुल कितै पटक दई मोकों।

- आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)



बिजावर स्टेट के कवि

- मनमोहन पाण्डेय

बिजावर वर्तमान समय में जिला छतरपुर मध्यप्रदेश की अविकसित तहसील है, प्रदेश के मुख्य मार्गों से जुड़ा न होने के कारण शिक्षा-व्यापार-स्वास्थ्य इत्यादि सुविधाओं के न होने के कारण निरंतर पिछड़ रहा है। बिजावर का वैभवशाली अतीत रहा है। प्रकृति की गोद में यह सुकुमार क्षेत्र वन संपदा से भरपूर था जिसका पूर्णतः दोहन हो चुका है, बदले में उसे कुछ नहीं मिला। फलस्वरूप बिजावर की समस्त प्रतिभा छतरपुर, रीवा, भोपाल इत्यादि शहरों की ओर पलायन कर गई है।

बिजावर के नामकरण की दो किंवदंतियाँ हैं - पहली खटोला उर्फ खट्टवल राज्य के गोंड़ सरदार ने भूमि की उर्वरा शक्ति तथा आक्रमणकारियों से बचने हेतु वनों-पर्वतों की प्रचुरता देखकर इसे अपना निवास स्थान बनाया तथा इसे विजयवर कहा जो कालांतर में बिजावर हो गया है। छतरपुर जिले की सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला चन्दला पहाड़ जो बिजावर के दक्षिण पश्चिम में २ कि.मी. की दूरी पर स्थित है, आज भी गोड़ों की बस्ती के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं।

दूसरी यह कि गोड़ों के शासनकाल में यह स्थल गुड़ानों कहलाता था इसका प्राचीन नाम लोहागढ़ था क्योंकि यहाँ पर प्रचुर मात्रा में कच्चा लोहा प्राप्त होता था, जिसे शुद्धकर लोहे के बर्तन कड़ाही इत्यादि बनाये जाते थे बिजावर की बनी कड़ाहियाँ आज भी दूर दूर तक प्रसिद्ध हैं, चूँकि यह प्रदेश अत्यंत उपजाऊ बिजवार था। अतः बुन्देली ठाकुरों ने इस बिजौरा या बिजवार कहा। जो वर्तमान समय में बिजावर कहा जाने लगा। महाराज छत्रसाल ने अपने मुँह बोले पुत्र नारायण सिंह परमार को इस क्षेत्र से गोंड़ सरदारों को निकाल बाहर करने की आज्ञा दी। नारायण सिंह ने इन्हें दमोह के आगे तक खदेड़ दिया। फलस्वरूप उन्हें बिजावर की बैठक उपहार स्वरूप दी। जहाँ उन्होंने अपने परिवार के बन्धु बांधवों सहित बिजावर को राजधानी बनाकर उसके आसपास के क्षेत्र का शासन किया। नारायण सिंह अपने अन्तिम काल में नारायण दास कहे जाने लगे। छत्रसाल के पुत्र जगतराज के पुत्र पहाड़ सिंह ने जैतपुर का राजा बनने पर १ लाख कीमत का बिजावर का भूभाग अपने भाई वीर सिंह को प्रदान किया - वीरसिंह के सहायक बेनीबहादुर ने नारायण दास का शासन समाप्त कर इसे ३ लाख कीमत का राज्य बनाया। वीरसिंह बाँदा के नवाब के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। तब बिजावर की गद्दी नाबालिग केशरी सिंह को प्रदान की गई। केशरी सिंह के पुत्र रतन सिंह जू देव बिजावर नरेश बने। इनके समय में बिजावर नगर का अभूतपूर्व विकास हुआ। उन्हीं के नाम पर रतन गंज मुहल्ला बसाया गया, जिसमें सभी जाति के लोग निवास करते थे। बिजावर केवल मोहनगंज व रतनगंज तक ही सीमित था। बिजावर नगर की शेष बस्ती राजा सावंत सिंह के काल में हुई मुगल शासन काल की उथलपुथल मार काट से परेशान होकर सभी जातियों के बुद्धिमान, कुशल, धार्मिक लोग बुन्देलखण्ड में आये। बिजावर नरेश ने उन्हें अपने नगर में सम्मान व स्थान दिया। अधिकांश कायस्थ आगरा से आये जो राजा के मुसाहिब मंत्री बने। इन्हीं की सन्तान ने राजकाज संचालन में राज्य की सेवा की।

राजा रतन सेन के समय में मुसाहिब शिवलाल उर्फ बखत सिंह ब्रज भाषा के उल्लेखनीय कवि थे। रतन सेन के पश्चात् उनके निःसन्तान होने के कारण उनके भाई के पुत्र लक्ष्मण सिंह जू देव सिंह सत्तारूढ़ हुए। इनके कार्यकाल में चौबाराम कायस्थ इनके मुसाहिब मंत्री थे। लक्ष्मण सिंह जू देव के देवलोक प्रस्थान के उपरांत उनके पुत्र भानुप्रताप सिंह जू देव गद्दीनशीन हुए इनके कार्यकाल में हनुमंत कवि हनुमत प्रसाद हुए जो राजा सावंत सिंह के समय की रहे। राजा सावंत सिंह के कार्यकाल में बिहारी लाल ब्रह्म राजकवि हुए जो राजा के सर्वाधिक स्नेह का पात्र श्री हनुमत प्रसाद ब्राह्मण थे तथा बिहारी लाल जी ब्राह्म भट्ट के गुरु थे। बिजावर राज्य के राज्याश्रित। इन्हीं चारों कवियों की कुछ रचनायें निम्नलिखित हैं - मुसाहिब शिवलाल उर्फ बखत सिंह - इनका कविता काल सन् १८१० से १८३२ तक रहा आप रतन सिंह जू देव के मंत्री थे।

"रैयत है राजी सैन सैनापति साजी सबै
चोर औ चबाइन की नसल नसानी है।
राम कृष्ण वारे जस जाहर जहान भयौ
वेद हू पुरानन की कहत कहानी है
राजा रतनेश जू तिहारे राज मंडल में
भूमि हरयानी भई नई ठकुरानी है
जैसो होत पानी तैसी होत अबादानी
जैसी अबादानी तैसौ तैसौ होत पानी है।

१. **मुसाहिब चोबाराम -**

कविता कार्य काल १८३२ से सन् १८४० तक लछमन सिंह जू देव के मुसाहिब रहे। संवत् १८८६ से १६०४ तक के रचनाकाल में आपने चंपूकाव्य (गद्य एवं पद्यमय रचना) भगतन माल की रचना की। उन्हीं के शब्दों में - "तिनके सुत मति मंद अति उपजौ चौबाराम। मंत्री लछमन भूप कौ बसत बिजाउर ग्राम।।" आपने अनेक भक्त कवियों विशेष तौर पर नाभादास जी की भक्तमाल का अध्ययन कर "भगतन माल" की रचना की।

संबत नौ सै सैकरा छत्तिस ऊपर साल।
फगुन बदि ससि द्वादसी धारी भगतन माल।

भक्तन माल में से गद्य का कुछ अंश दृष्टव्य है -

सबेरे क्रस्न दास जी ने सूरदास जी कौ पद सुनायौ सूरदास तौ पहुँचे ही भक्त हते जान गये सो बोले यह करतूत तुमारे कौतुकी लाला की है, अपने बाबा की पछकरी अरु दोई जने भगुवत के प्रेम में मगन हो गये। दोनों जने गुरु भाई हैं। वल्लभाचार्य जी के चेला है और क्रस्न लाल जी प्रभु के असनानन कौ येक कलसा जल जमुना जी कौ विश्रांत घाट सें गोबरधन जी अपने आश्रम को लै आवै करौ। नौ कोस आउने

जाउने।। प्रभु ने रोकी कै कूप से पानी भरवौ करौ अब जमुना जी कौ परिश्रम ना करो तेहु पर ना मानी तब प्रभु ने सिर के बाल दिषाये के तेरे कलसा के धरने से हमारे सिर पर बोझ परत है तमाम बार झर गये। देखे तब लहचार होके कुँआ कौ जल भरने लगे।"

चोबाराम के दो पद - १. (राग गौड़ त्रिसाल)

झूला झूले राधा श्याम विहारी
विन्द्रावन में घलो हिडोरा साजी साज सुनारी।
वे पीतांबर कछनी काछें उनकी कुसुमी सारी
उनकी अलकें सुन्दर झलकें उननें माँग समारी
उनके सिर सिर पेंच विराजै उनकी बीजरवारी
उनके नाक बुलाक विराजें उनकी बेसर प्यारी
बाँकी जुगल विराजें झाँकी चोबाराम निहारी

२. *जमुन जल झूला झूलें प्रात*
स्यामा स्याम लाल सुंदर लख रति अरु काम लजात
मेघा मरमें पीत पिछारी बिजुली सी दुर जात
उनकी अलकें लख धुँघरारी अलि फीके परजात
उनकी चोटी ललित पीठ पर नागिन सी लहरात
चोबाराम जुगल जोड़ी की बार बार बलिजात।

२. मुसाहिब हनुमत प्रसाद -

'हनुमंत कवि' आप बिजावर नरेश भानुप्रताप सिंह जू देव तथा सावंत सिंह जू देव के समय में राजाश्रय में रहे उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे जिनमें दो ग्रंथों की पांडुलिपियां मेरे दादा 'घनश्याम' साहित्य भूषण के पास उपलब्ध थी (१) नायिका भेद (२) नख शिख वर्णन - इनके दो कवित्त प्रस्तुत कर रहा हूँ -

नवोढ़ा उदाहरण - *अजब अहेरी तेरी गजब गहेरी बात*
सुद्ध होय मेरी बुद्ध निकट न जात है
पीतपट देख नैन मूँदत विरात मानो
स्यामरंग रंजन कौ अंजन ललात है।
भनै हनुमंत कान बान सुन आन मुख
अधिक डरात विलसात सतरात है
सीत भान निरख तपाइ जात तन मेरौ
भानु क्रसान पाई अति सियरात है -

२. मध्या - *धोखे आइ नाह केल मंदर के अंदर ही*
चोंक कें लजाय कछू अधर हँसोहें भे
नहीं नहीं करै नहीं नहीं पाइ जात गात
कंप सरसात भाँत भाँत दरसौहें भे
भनें हनुमंत कंत निकट पधार पट
झपट उधार अंक भुजन भरौहें भे
भोहें बरजौहें अनखौहें तिरछौहें भई
नैनन परसोहें उरसौहे ललचौहे भे।

३. आनंद सम्मोहिता - चौपही -
प्रौढ़ा प्रौढ़ावस्या गीता - आनंद सम्मोहा हरि प्रीता।

उदाहरण -*सौत कौ मान विलोक गुमान तें, मान सौ ठान हियें रिस जागी*
पोंढ रही पट ओढ अटा चल, साँझहु तें भल नीदन लागी
आइ कें कंत भनै हनुमंत, चढ़ौ परयंक भयौ अनुरागी
बाँह भरै भुज पीठ परै लख, लौट हरें हरें हीय सों लागी

"नख शिख वर्णन" से लिया गया कवित्त -

कर्ण वर्णन - *कंचन के मुक्तन की सुक्तन के दला है दोई*
श्रवण तुला के कै पला है पावनी केये
स्वर्ण कर्णकार विकार विच पुष्प चार
वचन अमी के पान पात्र जुगती के ये
भनै हनुमंत चंद्ररथ के चक्रा हैं जुग्म
अजब मनीषी नीखी बनक बने हैं ये
सुंदर सुवर्न स्वर्न वर्न लतिका के पर्न
पीके रुच कर्न नीके कर्न कामनी के ये।

कुच वर्णन - सांसे मांझ ढारे कै सुधारे जुग कूट मैन
पान वारे घट धों पयूख मिसरत हैं
पंकज कली के अमली के फीके कर्न हारे
स्वर्न की थली के छली संभु मिसरत है
भनै हनुमंत भारे ताल फल डारे वार
और उपमान मान वारे घसरत हैं।
अैन अनयारे छवि वारे ये तिहारे कुच
प्यारे पै विसारे ना विसारे बिसरत हैं।

राज्याश्रित कवियों के अतिरिक्त बिजावर नरेश भी कवि थे - महाराज सावंत सिंह द्वारा रचित स्तुति वृन्दावन में स्थित काँच के मन्दिर में जो उन्हीं के द्वारा निर्मित है, गर्भद्वार के आरंभ में दी लिखी गई है-

श्रीकृष्ण चंद्र मुकुन्द माधव जयति जय जग नायकं
श्याम सुंदर श्यामघन जय संतजन सुख दायकं
सिर मुकुट मंजु मयूर मणिमय श्रवन कुंडल शजितं
पटपीत कटि तट लकुट करधर अधर वेनु विराजितं
वृज चंदवृज गोपीन पति बलवीर भुजबल मंडनं
खल अखल अघ बक सकट तृनधर कंस भुजबल खंडनं
कछु जोग जप तप बनत नहिं तुव नाम बल अभिलाषियौ
तुव चरण तक सावंत आयौ शरण अपने राखियौ

बिजावर राज्य के अन्य प्राचीन कवि - ठाकुर कवि, सवाई महाराज लछमन सिंह जू देव, देवी प्रसाद प्रीतम, घनश्याम कवि (भीमपुराण के प्रणेता) शंकर, कृष्णलाल, अवधलाल, बिहारी लाल ब्रह्मभट्ट, (साहित्य सागर एवं अनेक ग्रंथों के प्रणेता) अमान सिंह जू 'सुन्दर', मौलवी सुब्हानबख्श, राजकुमार भारतपुरा वाले, श्री बल्देव प्रसाद खरे, गोवर्धन भट्ट, प्रमोद भट्ट, रमेश पाण्डेय, हर प्रसाद गुप्त हरिहर, कालिका प्रसाद कमलेश, अंबिका प्रसाद रसरंग, पदमेश जी, गोरे लाल पाण्डेय, शिवनाथ पाण्डेय 'शिवा' एवं अनेक आधुनिक कवियों से बिजावर नगर शोभावान हैं - सरदास सिंह दीवान, पुरुषोत्तम भट्ट, भूपत सिंह, रमन व्यास, पतरा वाले तथा गोविन्द प्रसाद खरे, छोटे लाल खरे, रामकिशन भट्ट भी बिजावर के ही कवि हैं।

- मऊ चुँगीनाका, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड के उत्सव और नारी

- डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

आज हम प्रतिदिन पत्र पत्रिकाओं में नारी शोषण की विभिन्न घटनायें पढ़ते हैं। बड़ी विडम्बना है कि जिस बालिका को देवी स्वरूपा मानकर हम सभी पूजते हैं, कन्या भोज आदि करके पुण्य कमाते हैं, उसका चरण स्पर्श करके मोक्ष की कामना करते हैं, कल विवाहोपरान्त हम उसी कन्या को वधूरूप में पाकर प्रताड़ित करते हैं, और मात्र कुछ धन दहेज के लालच में, उसे आग की, धू धू करती लपटों में झोंककर, अथवा उसके गले में फांसी का फन्दा डालकर, उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देते हैं।

समाज में नारी की वर्तमान दशा को देखते हुये हमें हमारे पूर्वजों को दी हुई सांस्कृतिक विरासत झकझोरती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुसार समाज, नारी एवं पुरुषरूपी दो पहियों पर चलता है।

"एक चक्रो रथो यद्ध देक पक्षो यथा खगः।
अभार्यो अपि नरस्तद्ध दयोग्यः सर्वकर्मसु।।"[१]

अर्थात् एक चक्के का रथ कुछ दूर चलकर ही गिर जावेगा और एक पंख से चिड़िया फड़फड़ाकर ही रह जावेगी, थोड़ी दूर भी नहीं उड़ सकेगी। उसी तरह अकेला पुरुष भी कोई कार्य नहीं कर सकेगा। हमारे पुराण तो यहां तक कहते हैं -

"पुमानर्द्ध पुमांस्ता वद्यावद्धार्यो न विन्दति।"[२]

अर्थात् पुरुष का कलेवर तब तक पूर्णता को धारण नहीं करता, जब तक कि उसके आधे अंग को आकर नारी नहीं भर देती।

अस्तु नारी समाज का वह अत्यावश्यक अंग है, जिसके अभाव में समाज की संरचना साकार हो ही नहीं सकती। पुरुष का स्वरूप नारी के साथ ही सम्पूर्ण होता है। इसी कारण नारी को अर्द्धांगिनी कहा गया है। भगवान शंकर का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप हमें सकल समाज की प्रेरणा देता है। ब्रह्मा जी के क्रोधित ललाट से उत्पन्न रुद्र के स्वरूप पर पुराण कहते हैं -

"अर्द्धनारी नरवपुः प्रचण्डो अति शरीरवान्।
विभजात्मान मित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः।।"[३]

अर्थात् उसका अति प्रचण्ड शरीर आधा नर और आधा नारी रूप था। तब ब्रह्मा जी अपने शरीर का विभाग कर, ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

अस्तु नर नारी दोनों के द्वारा ही समाज का विकास संभव है। नारी के बिना नर अस्तित्वहीन हो जाता है। बुन्देलखण्ड में नर नारी के सम्बन्धों के विषय में कहा जाता है -

घर है घरवारी बिन सूनौ, रात बिना दिन ऊनौ।
जैसे सब तिथियन में नौंनी, होत सिरोमन पूनौ।
सोंन, जुही, सेवती, निवारी, है गुलाब खुसबू नौं।
तैसेंई नारी बिन नर को दुख को दरिया दूनौ।।"[४]

आज के समाज में नारी की बड़ी दुर्दशा है। बुन्देलखण्ड के उत्सव पर्व एवं खेल इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी हैं कि गौरवमयी प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुरूप नारी को प्रतिष्ठित एवं उसे उस प्रतिष्ठा के योग्य बनाने में, बुन्देली उत्सव एवं खेल सानी नहीं रखते। हम कुछ बुन्देली उत्सवों एवं खेलों पर प्रकाश डालकर उनके पीछे छिपे हुए मनोविज्ञान को समझने का प्रयास कर रहे हैं -

चैती सुकुल प्रतिपदा - इस प्रतिपदा पर अरुन्धती व्रत किया जाता है। अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ की पत्नी थी। सप्त महर्षियों में अरुन्धती का भी एक नाम है जो समस्त नारी समाज के लिये प्रेरणा एवं गौरव की बात है। इस व्रत दिवस से नारी का समाज में अपने नारीत्व के लिये स्वाभिमान का जागरण होता है।

बराबरसात - ज्येष्ठमास की अमावस्या को सुहागिन स्त्रियां इस व्रत का पारायण करतीं हैं। इस व्रत की पूजन पद्धति में सात अंक का विशेष महत्व होता है। इस वृत की एक क्रिया है जिसमें सुहागिन स्त्री की ओली में सात मालपुये डाले जाते हैं जो कि इस बात के द्योतक हैं कि उत्तेजना, शान्ति, क्रूरता, मैत्री, अस्मिता, विलासिता, परिश्रम आदि सातों भावनात्मक कृत्य सूर्य रश्मि के सातों रंगों के साथ मिलकर शुभ्र श्वेत वर्ण का ऐसा सामन्जस्य स्थापित करें, कि सम्पूर्ण समाज श्वेत रंग की धवलता सा स्वच्छ व पवित्र हो जाये।

इस व्रत के माध्यम से सुहागिन स्त्रियों को पतिव्रत की शिक्षा मिलती है क्योंकि हिन्दू संहितानुसार पतिव्रत सती के सम्बन्ध में कहा गया है -

"पृथिव्यां यानि तीर्थानि सती पादेषु तान्यपि
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीसु वै
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।"[५]

अर्थात् पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी सती साध्वी स्त्री के चरणों में निवास करते हैं। समस्त देवताओं और मुनियों का तेज भी सती स्त्रियों में स्वभावतः रहता है। सती नारियों की चरणरज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है।

इस बराबरसात व्रत से नारी समाज में स्वाभिमान की जागृति होती है।

कुनघुसी पूनौ - असाढ़ मास की पूनौं को यह उत्सव सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हर्ष व उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव के दिन पूरे घर की सफाई होती है फिर घर की एक दीवार पर सास अथवा घर की सबसे बड़ी बहू द्वारा अन्य सभी बहुओं की प्रतीक स्वरूप आकृतियां बनाई जाती हैं, जिनका पूजन किया जाता है। पूजन के बाद सास अपनी सभी बहुओं का तिलक करके उन्हें सुहागवती रहने का आशीर्वाद देती हैं एवं उत्तम भोजन के बाद उन सभी बहुओं को उपहार प्रदान करती है।

कुनघुसी पूनौ के शाब्दिक अर्थ पर विचार करने से ज्ञात

होता है कि कुन अर्थात् कुल, घुसी अर्थात 'के अन्दर' तथा पूनौ अर्थात् पूर्णिमा होता है। अस्त इसे हम कुल के अन्दर पूर्णिमा बिखेरने वाली कह सकते हैं। स्मृति कहती है -

"पितृभि भ्रार्तभिश्चैताः पतिभिदेर्व रैस्तथा।

पूज्या श्रूवयितव्याश्च बहुकल्याण भाप्सुभिः।।

अर्थात् प्रचुर कल्याण की कामना करने वाले पिता, भ्राता पति तथा देवरों को चाहिये कि वस्त्राभूषणों द्वारा स्त्रियों को अलंकृत करे क्योंकि प्रचुर कल्याण केवल नारी द्वारा ही संभव है।

उस परम तेजोमयी, गरिमामयी, सृजनहारी नारी की यह कैसी विडम्बना है कि 'मातृदेवो भव' कहकर हम उसी नारी को विभिन्न यातनायें देकर प्रताड़ित करते हैं और उसका अस्तित्व तक समाप्त करने का प्रयास करते हैं। बुन्देली पर्व 'कुनघुसी पूनौ' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि बुन्देलखण्ड में नारी कितनी सम्माननीय है, वन्दनीय है और अर्चनीय है।

हरी ज्योति पर्व - श्रावण कृष्ण अमावस्या को बुन्देलखण्ड के घर घर में बालिकाओं के पूजन वन्दन द्वारा यह पर्व सोल्लास सम्पन्न होता है। इस पर्व में घर की माँ व बड़ी भाभियों द्वारा घर की एक स्वच्छ दीवार पर घर की सभी कन्याओं को प्रतीकरूप में चित्रित किया जाता है एवं उनके पूजन के पश्चात् साक्षात् देवीस्वरूप जगत्जननी, सृष्टि पोषक कन्याओं को तिलक लगाकर, उनके चरण छूकर, उन्हें इच्छित भोजन वस्त्रादि प्रदान किये जाते हैं। आचार्य पतंजलि का कथन है - "यदि पुनाति प्रीणातीति वा पुत्रः दुहितर्यत्यैतद् भवति"

अर्थात् यदि पुत्र पवित्र करता है या आनन्दित करता है तो पुत्री भी पवित्र व आल्हादित करती है। बुन्देलखण्ड में कन्यापूजन प्रकृति पूजन है। इस पर्व के नाम 'हरी ज्योति' पर विचार करने से यह भाव प्रकट होता है कि यह पर्व भगवान हरि (विष्णु) की ज्योति (शक्ति) का पर्व है। अर्थात् हरि जिससे स्वयं ज्योतित होते हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि स्त्री/कन्या का पूजन कर हम हरि की शक्ति का पूजन करते हैं क्योंकि कन्यायें हमारी प्रेरणा स्त्रोत होती हैं तथा स्वयं में वे शक्तिपुंज होती हैं। यहाँ के निवासी नित्यप्रति कन्याओं में साक्षात् मां भवानी के दर्शन प्राप्त करते हैं।

नागपंचमी - श्रावण शुक्ल पंचमी को नागों के आवाहन द्वारा यह पर्व मनाया जाता है। इस दिवस पर स्त्रियाँ अपने घर के दरबाजे पर नागों को अंकित कर, उनका पूजन अर्चन करती हैं।

नागपूजा का आध्यात्मिक क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। मानव शरीर के अंदर छह चक्र होते हैं। मूलाधार चक्र से ब्रह्मांड तक बेधन होने पर कुण्डलनी जागृत होती है जिसकी गति सर्प सी होती है। अतः नागों का विधिवत मान्त्रिक पूजन कुण्डलनी शक्ति के जागरण में सहायक है।

वैसे तो यह आम धारणा है कि स्त्रियां स्वभाव से बहुत डरपोक होती हैं परन्तु समय आने पर वे साक्षात् चण्डी का रूप धारण कर लेती हैं। निर्भयी चण्डी का रूप धारण करने के लिये यह आवश्यक है कि स्त्रियों में डर न हो। नाग तो साक्षात् काल ही होता है और नाग पूजन कर स्त्रियों के मन में डर निकल जाये, यह भी नाग पूजन का एक सापेक्ष अर्थ हो सकता है।

नागपंचमी के दिवस पर यहाँ की महिलायें गाती हैं -

घुडिला बांधौ डार, फेरि बगिया में आये

धरियो रौंस में पाँऊ, झपटि कारे ने हो खाये।।"[६]

घोड़े को बगिया में बांधकर जैसे ही आगे बढ़े, एक काले नाग ने झपट कर काट लिया।

फिर नाग से डसित व्यक्ति को उपचार हेतु एक ओझा के पास ले जाया जाता है वहां वह ओझा उस काले नाग को देवताओं की आन देते हुये कहता है -

राजा रामचंद्र ने लंका टोरी बासुख के घर टक्खा

अब उठि जागि संभार ओ हनुमान की हंकार ते टीर गई गेट लंका

चलो जो हनुमन्त छतवन्त को, अब जागि चेत सम्हार तोपै

अगडबम महादेव चढ़ि आओ।।"[७]

हरछठ - भाद्रकृष्ण षष्ठी को यह व्रत महायोगी भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई हलायुध धारण करने वाले बलराम जी के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ वृत रखतीं हैं तथा इस व्रत में 'जोता बोया' हुआ अन्न ग्रहण नहीं किया जाता है, क्योंकि अन्न तीन कोषों से युक्त होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल कोष-स्वाद भार से युक्त होता है, सूक्ष्म कोष-प्रभाव व गुण युक्त होता है तथा कारण कोष-संस्कार से युक्त होता है। अस्तु जैसा अन्न होगा वैसे ही संस्कार होंगे। अतः प्रकृति के समीप पहुँचने के लिये प्रकृति के संस्कार से युक्त प्राकृतिक रूप में उपजे अन्न को ही इस व्रत में ग्रहण किया जाता है।



इस दिवस पर सात प्रकार के अनाजों का पूजन होता है, जो कि विभिन्न गुणों से पूरित होते हैं। जैसे - मक्का - क्षमताशीलता, धान-रसिकता, ज्वार-कठोरता, मूंग-गतिशीलता, अरहर-विचारशीलता, चना-आकर्षण तथा गेहूँ-गम्भीरता का द्योतक माना जाता है। इन सातों गुणों का समानुपातिक व्यवहार मनुष्य जीवन में आत्मिक उन्नति हेतु अत्यन्त आवश्यक है। इन सातों अनाजों के पूजन का तात्पर्य मात्र इन सातों गुणों को समानुपातिक रूप से जीवन में उतारने का उपक्रम है।

यह हरछठ व्रत स्त्रियों को प्रकृति के साथ सामन्जस्य स्थापित करते हुये समाज को अबाध रूप से चलाने के लिये विभिन्न गुणों, आचार व्यवहार के अनुपालन की शिक्षा प्रदान करता है तथा उन्हें समाज व प्रकृति के मध्य एक तारतम्य स्थापित करने की प्रेरणा देता है।

संतान सातें - भाद्र शुक्ल सप्तमी को बुन्देलखण्ड की महिलायें इस व्रत को धारण करती हैं। जिस प्रकार से वृक्ष की पूर्णता उसके फल फलने में निहित होती है उसी भांति स्त्री भी माँ बनने पर पूर्णता को प्राप्त होती है।

इस व्रत में स्त्रियाँ उमा महेश्वर का षोडषोपचार द्वारा पूजन अर्चन कर यह कामना करती है कि वे अपने कानों में 'माँ' जैसे परम पवित्र, अक्षय शब्द की गूंज सुन सकें। इस व्रत को फल सप्तमी, मुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मुक्ति हेतु मनुष्य को देवऋण, ऋषि ऋण और पितृऋण से उऋण होना पड़ता है। देव ऋण तथा ऋषि ऋण से तो मनुष्य अपने कृत्यों द्वारा उऋण हो जाता है परन्तु पितृऋण से उऋण होने के लिये सदाचारी पुत्र का उत्पादन ही एक मात्र परिशोधन है। अतः मुक्ति के लिये भी इस व्रत का महात्म है।

स्त्री समाज में माँ बनने के पीछे यह भी एक लालसा का कारण हो सकता है कि वह माँ बनकर सकल समाज पर स्नेह की वर्षा कर समाज में स्नेहासिक्त वातावरण का सृजन कर सके।

अखती - बैसाख सुदी तृतीया को यह पर्व बुन्देलखण्ड में विशेष उल्लास के साथ नारी समाज के बीच मनाया जाता है। इस दिवस को त्रेता युग की आदि तिथि भी मानते हैं। इसी तिथि को कामदेव की पत्नी रति की स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर भगवान ने कामदेव और रति के प्रेम को अक्षय बने रहने का आशीर्वाद दिया था। अतः इस दिन जो भी कार्य किया जाता है वह अक्षय होता है, ऐसा बुन्देलखण्ड के वासियों में विश्वास है। इस दिवस पर महिलायें - लक्ष्मी जी सहित भगवान नारायण का पुष्प, धूप, चन्दन आदि से पूजन अर्चन करती हैं फिर सायं बेला में वट वृक्ष के नीचे जाकर अलग अलग प्रकार से हास परिहास करती हैं।

किशोरियाँ इस दिवस पर अपने हाथों से गुड्डे-गुड़ियाँ बनाती हैं फिर उनका पूजन करती हैं। इस पूजन के पीछे यह मनोवैज्ञानिक सोच छिपी रहती है कि सामाजिक जीवन की जिम्मेदारी बालायें उठाना सीखें। इस पर्व से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को विशेष सम्बल मिलता है। पति की सामीप्यता प्राप्ति का दिग्दर्शन इस बुन्देली लोकगीत में दृष्टंव्य है -

''अखती खेलन कैसे जाऊँ री बरा तरे मोरे लिबऊआ
पैलऊ लिबऊआ नौआ जी आओ, नौआ के संग नई जाऊँगी
दूजे लिबऊआ ससुरा जी आओ, ससुरा के संग नई जाऊँगी
तीजे लिबऊआ देवरा जी आओ, देवरा के संग नई जाऊँगी
चौथे लिबऊआ राजा जी आये, राजा के संग चली जाऊँगी।''[६]

समाज में नारी अपने लिये पूजनीय स्थान कैसे बनाये, इसके लिये उसे विभिन्न खेलों के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है। आइये कुछ उदाहरण इन बुन्देली खेलों के भी देखें -

मामुलिया - जेठ मास की तपती गर्मी के बाद असाढ़ मास की रिमझिम बूंदों से बुन्देलखण्ड की पथरीली भूमि पर मुक्त आनन्द की एक ऐसी निर्मल सरिता प्रवाहित होती है, जिसमें समूचा बुन्देलखण्ड रसमय मधुरता एवं प्रेम से सरोबोर हो उठता है। इसी वातावरण में उन्मुक्त मुस्कान के साथ बुन्देली किशोरियाँ यह मामुलिया का खेल खेलती हैं। इस खेल में बबूल अथवा बेर की एक कटीली डाल को लेकर यहाँ की किशोरियाँ उसे विभिन्न प्रकार के फूलों से सजातीं हैं और गातीं जातीं हैं -

''ल्याइयो ल्याइयो रतन जड़े फूल, सजइयो मोरी मामुलिया।
ल्याइयो ल्याइयो गेंदा हजारी के फूल सजइयो मोरी मामुलिया।
ल्याइयो ल्याइयो चम्पा चमेली के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया।
ल्याइयो ल्याइयो घिया तुरैया के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया।
ल्याइयो ल्याइयो सदा सुहागिन के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया।।''[१०]

इस मामुलिया में कटीली डाल पुरुष प्रकृति का प्रतीक है एवं फूल स्त्री प्रकृति का प्रतीक है। यह स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का द्योतक है। अस्तु यह मामुलिया खेल, पति पत्नी रूप का एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव से जुड़ने की शिक्षा किशोरियों को प्रदान करता है।

इस मामुलिया खेल के पीछे जो सामाजिक मनोविज्ञान दिखता है, वह अद्वितीय है। परिवार में, समाज में, सदैव नयी नयी कठनाईयां, उलझने आदि आती रहती हैं। ये सभी जीवन में, परिवार में, समाज में काँटों की प्रतीक हैं। अब किशोर बालायें इन कांटों को विभिन्न प्रकार के फूलों से सजातीं हैं और वे सभी कांटे समाप्त प्राय हो जाते हैं। इस मामुलिया खेल के माध्यम से स्त्री समाज अपने व्यवहार, कर्म, क्रिया, तेज ओज आदि फूलों से परिवार व समाज की सभी कांटारूपी समस्याओं को सजाकर, सुखमय, आनन्दमय वातावरण की सृष्टि करती हैं। अस्तु यह मामुलिया खेल किशोरियों के मन मस्तिष्क पर यह शिक्षा प्रदान करता है कि किस तरह के सामाजिक पारिवारिक समस्याओं का निदान शान्तिपूर्वक किया जाना चाहिए।

आजकल शहरों के बड़े-बड़े ड्राइंगरूमों में 'मामुलिया' एक सजावट का साधन बनी दिखलाई पड़ती है, परन्तु बुन्देली भावनाओं के अनुरूप मानव का प्रकृति के साथ तारतम्य की अनुपम कड़ी के

रूप में मामुलिया की प्रतिष्ठा आज भी मननीय है। फूलों को कांटों के साथ सजाने की विश्व प्रसिद्ध जापानी कला 'इकेबाना' शायद इसी मामुलिया का परिमार्जित स्वरूप है।

चपेटा - यह खेल श्रावण मास से प्रारंभ होता है। वैसे तो अवकाश के समय बुन्देली बालाओं के बीच यह खेल मनोरंजन का एक अच्छा साधन है। इस खेल में पत्थर के चौकोर पांच अथवा छः टुकड़े लिये जाते हैं जिन्हें लड़कियाँ अपने हाथों से उछाल उछाल कर खेलती हैं। इन पत्थर के टुकड़ों को ही चपेटा या गट्टा कहा जाता है। ये पत्थर के चपेटा पुरुषों के प्रतीक हैं, जिन्हें लड़कियाँ अपने हाथों से एक एक करके हवा में उछालती हैं, फिर उनके नीचे आने पर उन पर सजग दृष्टि रखते हुये उन्हें लपक कर चपेट लेती हैं। यहाँ पर चपेटों को हवा में उछालने का तात्पर्य पुरुषों का समाज में स्वच्छन्द विचरण मानने से उस पर नारी समाज की सजग दृष्टि से स्थिति काफी स्पष्ट हो जाती है। चपेटों को धरती पर फेंककर फिर उन्हें उठाकर, फिर चूमकर आदि की क्रियायें पुरुषों के साथ नारी सम्बन्धों के विविध पक्षों को उजागर करती है। मुख्य चपेटा को घर का मुखिया माना जाये एवं अन्य चपेटों को घर का सदस्य तो निश्चित रूप से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि मुख्य चपेटा के माध्यम से अन्य चपेटों को नियंत्रण में रखना, शायद सम्मिलित परिवार में सौहाद्र बनाये रखने की कला का बोध कराता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी इस खेल का बुन्देली समाज में अत्यधिक महत्व है। इस खेल के द्वारा यह भी शिक्षा मिलती है कि यदि मुख्य चपेटा पति हो तो उसके माध्यम से काम, क्रोध, लोभ एवं मोह पर नियंत्रण प्राप्त कर परम आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है।

डॉ. ए.के. जड़िया लिखते हैं -

रंग बिरंगे चपल चपेटा, मेहंदी छू छू जावैं
कैसऊ व्योम विहार करैं, पर लौट लपक आ जावैं
नरम हथेलिन सौं निरमम, पथरन को झेल रही हैं
कर्मठता को खेल, इनै, बालायें खेल रही हैं।।"

उपर्युक्त उत्सवों एवं खेलों के माध्यम से यह ज्ञात है कि बुन्देली समाज में नारी को कितना दिव्य स्थान प्राप्त है। यहाँ के समाज में नारी सदैव से ही प्रेरणा स्रोत रही है और आज भी है। वृद्धावस्था में एक पुरुष अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में कह ही उठता है -

अब को सुद कर है जा तन की, को जाने जा मन की।
भाई बन्द, उर कुटुम कबीला, चाह करैं सब धन की।
नारी बिन कोऊ नई बांटत, बिपदा चौथेपन की।
खूब परख लई अन्ध लकरिया, अरर्धांगिन, जीवन की।[१२]

अस्तु इस बुन्देलखण्ड में नारी के मातृ, पत्नी, बहिन एवं बेटी रूपी चारों रूपों में से किसी भी रूप के लिये कोई भी अनर्गल बात कोई भी सुनने को तैयार नहीं होता है।

संदर्भ -

१. भविष्य पुराण - ब्रह्म पर्व - अध्याय षष्ठम श्लोक सं. ३०
२. वही, अध्याय सप्तम
३. विष्णु पुराण - प्रथमांश - अध्याय सप्तम श्लोक सं. १३
४. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य-रामचरण हयारण मित्र पृ.सं. ३६७
५. वृहत्संहिता - वराहमिहिर कृत-सती महात्म श्लोक सं. ३
६. मनुस्मृति - तृतीय अध्याय - श्लोक संख्या ५५
७. बुन्देली लोक साहित्य - डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, पृ.सं. १७६
८. वही, पृ. १७७
९. बुन्देली लोक साहित्य - डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, पृ. ९८
१०. बुन्देली बाल लोक साहित्य - डॉ. हरिमोहन पुरवार, पृ. ४०
११. बुन्देली जन जीवन - एक परिचय - डॉ. हरिमोहन पुरवार, पृ. ३०
१२. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण हयारण मित्र पृ. ३६८

- भरत चौक, उरई, जिला जालौन (उ.प्र.)

बुन्देली हायकू

- राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

(१) देश बचाने,
आतंकी न माने तो,
मज़ा चिखाने।

(२) कर्ज चुकाने,
तुम कछु तौ करौ,
देश के लाने।

(३) बातन से तौ,
मानत हैं नइयाँ,
लातन भूत।

(४) बुन्देली धरा,
हर गाँव, शहर,
वीरन भरा।

(५) सूर तुलसी,
बने है इतिहास,
केशवदास।

(६) दुर्गा व लक्ष्मी,
रचौ है इतिहास,
आल्हा ऊदल।

(७) झाँसी की रानी,
वीरता की निशानी,
नारी नई है।

(८) लोग करत,
रामायण को भूल
महाभारत।

(९) लाबरी खात,
कसम रामधई
आदमी जात।

- शिवनगर कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

दहेज कौ लालच

- शकूर मुहम्मद

जेठ मास की दुपरिया, ततूरी सें बचबे के लानै रमू ने पावन में छेवले के पत्तन खौ बाँद लओ। एकई घुनीतौ लगोतो कै कबै मौसी के इतै पौंच जाबें।

काल हाटे चौदा खौं मौसिया मिल गयते उनई ने जा खबर पोंचाई ती कै, उनके गाँव में एक ग्राम सेवक बाबू जी अपनी बिरादरी के आय हैं, नौनें आदमी जान परत बोली बानी में तौ फूल झरत। उनकौ लरका चौदमीं जमात में पड़ रओ, समज में आ जावै तौ घर-वर तकलो।

रमू की सोना बिटिया पढ़ी-लिखी, कामकाज में छोछायली, रैन कैसी पुतरिया। औईकी चिन्ता नें रमू खौं ई उमर में बढ़ौ बना दओ। जितै सें जैसी खबरें आई सबई जगाँ सें लरका बारे लामें लामें मगर कैसे मौ बाउत मिले, यैसें लगबे जैसे बे रमू की गरीबी कौ दाँत निपोर कें मजाक उड़ा रय होबें। बौ का करै अपने करेजे पै गतकौ दैकें रै जाबै। भगवान! बिटिया दई तौ जा गरीबी काय दई।

दिन लौटें रामू मौसी के घरै पौचो, मौसी दुगई में बैठी सिपारी खौं कुतर कुतर कें खैर, तमाकू सें अपनो मौ रचा रई ती। उतई लिंगा मौसिया बैठे चिलम की सुट्टू मार रयते। मौसिया नै कई कै भीतर कड़ आव, आज तौ तुमाय मूँड़ पै होकें जा पूरी दुपरिया कड़ी।

रमू ने लामी साँस लेत भई कई कै, का करें मौसिया। हमाई जौंन चिन्ता है बा अपुन औरें दूर करा दो तौ बड़ी किरपा हुइयै। रमू मौसिया के नेंगर जा बैठो औ तौलिया सें पसीना पोंछत भओ, ओइसें हवा सोउ करन लगो।

मौसी हमाव तौ देश दुनिया की बातें सुन सुन कै जी उकराँयदी हो गओ, जौलों सोना बिटिया के हाँत पीरे नईं भय तौलों मोय चैन काँ। येई डरन के मारें, मैंने तौ ऊ खौं पड़बे जाबौ बन्द कर दओ। मौसी बीच में बोल परीं का...। जौ तैने नौनों नई करो, तोरे का मूड़ पै चड़ी ती। अरे! पड़ लिख जाती तौ ऊकौ जौ जीवन सोऊ सुदर जातो, अरे राम...राम।

मौसी! तुम नई जानती, तुमें अबै बेई पुराने जमाने की बातें याद हैं, आज तौ हद्द हो गई। जबसें जे टी बी औ मोबाइल चले, सब कछु उल्टौ पुल्टौ हो रव। अब अपुन औरन सें का बतायें, कैबे में सरम आउत, अपुन हमाय मताई-बाप जौ ठैरे। हमाय गाँव की एक बिटिया...। रमू कत-कत रुक गओ। अब अपुन औरें बताऔ, हम कैसें औ कीके भरोसें स्कूलें पौचाते।

मौसी नें बेमन सें कई, ठीक है तोरी मर्जी। परौं ग्राम सेवक बाबू बड़ी रूँदे पौंच गयते जितै तुमाय मौसिया बखरनी कर रय ते। मौसिया ने बखर ढील कें मउवा के छाँयरै जा बैठाव, पैलें नाय माय की बातें होत रई फिर मौसिया ने हराँ से अपनी बात कै दई।

पैलें तौ बे भारी आना कानी करत रय, कैरय हुइयें कै उनें अपने लरका कौ वियाव दो साल नईं करनै जौलों लरका पड़ लिखकें नौनों अपने पावन पै ठाँड़ो नईं हो जात। जैसई, मौसिया के हाँते असली नस पकर में आई उननै सब बक दओ। रमू नौनीं किसा जैसी हूँका दै दैकें सुन रव तो, नस की बात सुनकें बोलो, का...। मौसी बोली अरे- बेई लैबे दैबे की बात! लैबे दैबे की बात सुनकें रमू कौ जी सनाकौ खाकें रै गओ।

रमू हकलया कें बोलो, मौसिया नै तौ जा कुआइती कै... .। मौसी बीचई में टपक परीं बोलीं कै, हाँ सांसी तौ आय पैलें तो उननै तुमाय मौसिया सें जेई कईती कै, हम लै दैकें शादी नई करत, हमतौ नौनी बिटिया चाउत हैं। सो भइया! काऊ के मन मैं का-कैसौ छिपो है, हम तुम का जानै बौ तौ पनमेसुर जानै।

अरे, बेटा! तैं फिकर काय करत, अबै हम तौ बैठे हम मर गय का। हा-हा बिनती सौ नौ गिनती करें करें जा बात बनी, बेतौ भारी गाबौ गा रय ते कै हमनै इत्तौ पड़ाव लिखाव, बड़ौ करो। भलो होवै बाबूजी कौ उननें तुमाय मौसिया की बुढ़ापे की लाज राख लई, बड़ी खेंचातानी सें पचास हजार औ हीरो होण्डा मोटर साइकिल पै बात बनीं।

रमू ने कई मौसी पचास.......। मौसी ने कई काय नई तुमाई ठैरी एक बिटिया, हम जानत तुम ईसें जादा देव। मौसी तुमें हमाई हँड़िया के नौन कौ पतौ है फिर कैसौ बतकाव कर रई, जा परी मैंगाई औ चार साल सें परी जा सूका, पेट पालबौ तौ भारी पर रओ। मनई मन बोलौ कै जा के पाँव न फटी बिमाई बौ का जाने पीर पराई।

रमू गुर भरौ हँसिया होकें रै गव, बोलो - मौसी, मौसी ने रमू की बात की अनसुनी कर दई औ बोली - जाव कछू खेत-पटिया गानें धर कें इन्तजाम करौ, मौसिया ने जुबान दई सो उनके बुढ़ापे कौ ख्याल करियो। तोय तौ खुशी भऔ चइये काय सै सोना खौं राजन कैसौ घर मिल गओ सो तुम ऊमर फौरो न पखा उड़ाव, सो तैं तौ सकारूँ घरै जा और बियाव कौ इन्तजाम करौ भले आदमियन की बारात ठैरी नातर बिटिया खौं जिन्दगानी भर तानें मिलें।

रमू की रात बरया बटकें तारे गिनत गिनत कड़ी। बेर-बेर हिल्की भर आवै, हे भगवान! ई गरीब कौ का हुइयै। कन लगत कै बिटिया कौ बाप होबौ बड़े भागी पुरुषन खौं मिलत, इतै तौ सब उल्टौ हो रओ, हे भगवान! तुमई जानियो।

गाँव में जा खबर फैल गई कै सोना कौ वियाव तै हो गओ, बड़े घर में बियाई जा रई। रमू ने पैसा धेला के लानै साव तलासे, गुंआरी गाने धरी तौ जाकै पचास हजार कौ इन्तजाम भओ। हीरो होण्डा के लाने का करें का ना करें। सब नाते रिस्तेदारन की सांकर बजाई। सब जगाँ नाई मिली। मौसी मौसिया ने सोऊ हाँत ठाँड़े कर दय, सुक के सब सन्गी हतै आज ई समैया में कोऊ काऊ कौ नइयाँ।

आज रमू के इतै नौनी चैल पैल हती, नाते रिश्तेदार आ गय, घर नौनों सज गऔ। सोना की गुइयाँ उयै सजा सवार रई। इतै रमू कौ करेजौ सोसन के मारैं छल्ली हो रऔ।

बरात आ गई...! बरात आ गई...! गाँव के मौड़ी-मौड़ा नाँय-माँय होकैं चिल्ला रय। गैंवड़े के स्कूल में बरात कौ डेरा दै दऔ। आगौनी की पंगत होन लगी। बरात उठबै कौ पैलौ गोला दग गऔ, बरात की पैठाई डर गई। हराँ-हराँ बरात दौरे पै आ गई, घोड़े पै सवार दूला नौने फब रयते, टीका कौ समैया आ गऔ। बाबूजी रमू के मौसिया को हाँत पकरैं रमू के लिंगा पौंचे औ कईकै, टीका दस हजार सैं काय हो रऔ। कन लगत कै सबरे नैगन मैं टीका कौ नेंग सबसैं बड़ौ होत। बाबू जी लामी सासैं भर रय। जैसैं उनपै कौनऊँ नै डाँको डार दऔ होवै। सोसन लगे कै गइया की गइया जात औ संगे पगैया जात। रमू मुल्जिम की नाईं हाँत जोरैं बाबूजी के सामू ठाँड़े हो गय।

बाबूजी ने रमू कौ हाँत पकरौ औ एक कुदाऊँ लै जाकें बोले - काय रमू जौ सब का आय, जब तुमाई हैसियत हमाय बराबरी की नई हती तौ काय के लानै जौ सब चैटक करो।

रमू ने अपनी सुआपी बाबूजी के पाँवन में धर दई औ बोलो - बाबू जी! हम ठैरे गरीब आदमी, हम अपुन की बिराबरी कैसे करें। बाबूजी! जो बिटिया देत बौ सब कछू देत फिर पूरी जिन्दगानी डरी है दैवे के लाने, हमाई ई बिटिया के सिवाय औ को बैठो जी खौं दैने होबै, अब तौ हमाई लाज तौ अपुन के हाँतन में है।

बाबूजी की आँखें लाल पीरी हो रई तीं, उनकौ मौ गुस्साँ सैं तमतमा रऔ तो। जोर सैं चिल्ला कैं बोले - भाड़ मैं जाय तुमाई इज्जत विज्जत और येसी हतो सो पैलाँ काय नई बताओ, हमाय हीरा से लरका खौं तौ सेकरन तेल लगाउत फिर रयते। बौ तौ हमऊ बुड़िया की बातन में आ गय नातर...! जौ वियाव न हुइयै...। बाबूजी ने जोर सैं हाँक लगा दई। जा सुनकें सबई घराती बराती सनाकौ खाकें रै गए। ऐसैं लगौ कै सब जनी-मान्स पाखान के हो गय होबैं। बाबूजी ने अपने बेटा सैं कई कै चलौ बेटा, हमें येसे भिकारियन के इतै वियाव नई करने। हम जा समज लैंय कै हमनै कौनऊँ जुआ खेल लऔ।

दूला राजा जैसें जेई बाट तकै बैठे ते, घोड़ी पै सैं छक्क सैं नैंचे उतर गय। जौ सब देख सुन सोना की मताई की दत्ती बंद गई, रमू अलायदे एक कौने मैं पगलया से गय।

बरात लौटन लगी, सोना के मन में न जाने का कैसौं हो रऔ तौ कोऊ समज नई पाव। छिन भर मैं सब बीरान हो गऔ। कन लगत कै हिम्मत करौ सो हाती बांदी, सोना खौं स्कूल की सुधा मैडम की बतैं तरैया में झूलन लगीं, बे कभऊँ कभार बिटियन खौं साहस, हौंसला, देश दुनिया, समाज, संस्कारन की नौनी बातैं बताऊत रत ती।

सोना की आँखन मैं चमक आ गई, ठाँड़ी भई, कछौटा बाँदो औ सब लोक लाज भूल कैं, बायरैं कड़ आई वा शेरनी की नाईं दलाँक कैं बोली, ठैरौ...। सबई जनै जाँ के ताँ ठैर गय। फिर सोना बोली - येसैं कैसैं जा रय कछू परसाद तौ लैकें जानै परै, हम सोऊ तुम जैसे स्वार्थियन सैं सम्बन्ध नईं करन चाऊत। जिनै समाज की समज न होबै, जिनमैं भलमनसाहत न होबै, जिनै आदमी की पैचान न होबै येसे स्वार्थी लोगन सैं रिस्तो करबौ अपनै आप खौं मारबे जैसो है।

सोना खौं पाछे सैं सबई गाँव की स्यानी बऊ बिटियन ने घेर लऔ जीसैं लगबै कै सोना खौं पाछे सैं कौनऊँ ताकत मिल रई होबै। गाँव के सब नर नारी एक दूसरे कौ मौं देखें जा रय ते कै इन आँखन ने ना तौ आज लौ देखौ हुइये औ न कानन सें येसौ सुनौ हुइयै। सोना ने अपनी एक गुइयाँ सैं मोबाइल माँगो औ फौन लगा दऔ। ये भइया, तनक झेल में उतै पुलिस आ गई, पुलिस ने बरात खौं घेर लऔ। दरोगा जी ने फौन करबे बारे कौ नाव पूछो, उनै भरोसौ नई भऔ इतनौ भर कै पाए, साबास-बेटी।

ग्राम सेवक बाबू और दूला खौं पुलिस ने अपने कब्जे मैं कर लऔ। ग्राम सेवक बाबू गिड़गिड़ा रयते, अपनी गल्ती पै पछता रयते। अकेलें उतै उनकी सुनवे बारौ को हतो। उने उनकी करनी कौ फल मिल रऔ तो। पुलिस बरात खौं पकर कैं कानून की गली धरा कैं लै गई।

इतै गाँव में नाते रिस्तेदारन मैं खुसर पुसर होन लगी कै सोना बिटिया ने भली नौनो करो होबै, पै ऊकी शादी कैसैं का हुइये, का सोना जिन्दगानी भर यैसई बैठी रैय, सबई के दिमाग में जोई सवाल गूँज रऔ तो।

रमू के दूर के रिस्तेदारन में रामदीन कक्का जिनकी अस्सी-नब्बे साल की उमर हुइयै अपने परिवार के संगे वियाव में आयते, भौत मनई मन दुखी हो रय ते, उनकी समाज में नौनी इज्जत हती, असपेर में लोग उनकौ भारी मान पान करत ते। अपने नाती खौं बुलाव औ बोले - बेटा! तुमाव हम आज वियाव कर रय, अबई और इतई। नाती ने बब्बा के आंगे हामी में मूड़ भर हिला दऔ।

रामदीन कक्का ने नाते रिस्तेदारन में बड़े बूड़न खौं लिगाँ बुलाऔ औ दो चार गाँव के माते मुखिया बुलाय सबके आँगे अपनी मन की बात कै दई। सुनबे बारन की खुशी कौ ठिकानौ नई रऔ। सब जनै उठे औ रमू के लिंगाँ पौंचे रमू एक कौने में घुट-मुटइयाँ बनै पगलयानै से डरे ते उनसैं जब सब जनन ने रामदीन कक्का की बात बताई, रमू खौं अपनौं जैसौ लगो। सबने धीरज धराऔ और पूरी किसा बता दई।

पंडित जी खौं बुला लऔ फिर सैं बाजे बजन लगे नैंग चार होन लगे, खुशयाली होन लगी। सोना बिटिया कौ नौनों वियाव भव! सोना की हँसी खुशी विदा भई।

सो भइया कन लगत कै भलमनसाहत आज सोऊ जिन्दा है, बिना भलमनसाहत के सब जग सूनौ है।

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

तंत्र-मंत्र के फेर में माधव जी सिंधिया

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

लोकमानस आदिकाल से ही तंत्रमंत्र एवं जादू-टोनों पर विश्वास करता रहा है। आज भी पढ़े-लिखे और अपढ़ सभी का मन बड़े चाव से कान लगाकर इन कहानियों को सुनता है, और फिर बुद्धि सर हिलाकर कहती है कि अरे सब बकवास है। ऐसा कहीं होता है? पर मैं जिस काले जादू एवं मारण मंत्र की कहानी सुनाने जा रहा हूँ इसका उल्लेख भारत के महान इतिहासकार डॉ. यदुनाथ सरकार ने अपने ग्रंथ 'मुगलराज के पतन' खण्ड तीन में और मराठा इतिहास के अधिकारी विद्वान गोविन्द राम सखाराम सरदेसाई ने 'मराठों का नवीन इतिहास' खण्ड तीन में किया है। इस घटना का उल्लेख माधव जी सिंधिया से सम्बन्धित पत्र संख्या ५६१ में भी है।

इस काले जादू के शिकार थे १८वीं सदी के महान मराठा सेनानायक माधव जी सिंधिया और जादू करवाने वाले प्रतिनायक थे हिम्मत बहादुर गुसाई। दोनों व्यक्ति अपने युग के इतिहास के उल्लेखनीय व्यक्ति और प्रमुख अभिनेता थे। इनके बिना उत्तरकालीन इतिहास न लिखा जा सकता है न सुना जा सकता है। माधव जी सिंधिया पानीपत के तीसरे युद्ध की पराजय के बाद मराठों को भारत पुनः सबसे बड़ी सैन्यशक्ति बनाने वाले त्रिदेवों (माधवराव पेशवा प्रथम, माधव जी सिंधिया और नाना फड़नवीस) में से एक थे। वे दुर्बल मुगल बादशाह शाहआलम के त्राता थे। उसके सम्बल और रक्षक थे। वे उसकी सूखती सत्ता की बेल को पानी देने वाले थे। वे मराठों के सर्वश्रेष्ठ सेनापति एवं ग्वालियर के मराठा राज के संस्थापक थे, और हिम्मत बहादुर गुसाई इतिहास की वह सख्शीयत थी, जिसने अपने शौर्य, कूटनीति और समझदारी से मराठों, अंग्रेजों, रुहेलों को छकाया और उनको अपनी अहमीयत का अहसास कराया। उसने मुगल दरबार के प्रभावशाली अमीरों को अपने इशारों पर नचाया। उसके पास नागा सन्यासियों की जुझारू सेना थी जो किसी भी शत्रु की जीत को हार में बदल सकती थी। वह जन्मजात राजा नहीं था। उसका जन्म बुन्देलखण्ड के कुलपहाड़ नामक स्थान में ब्राह्मणकुल में हुआ। वह सनाढ्य था। उसके पिता बचपन में ही मर गये थे। उसकी विधवा माँ ने अकाल के वर्ष में उसे और उसके बड़े भाई उमराव को भूखों मरने से बचाने के लिए नागा सन्यासी राजेन्द्र गिरि के अखाड़े को दे दिया। दोनों भाई राजेन्द्र गिरि के विश्वास पात्र बन गये। अनूप गिरि हिम्मत बहादुर अधिक चतुर था। राजेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद वे अखाड़े के स्वामी बन गये। गुसाई ऐसे नागा सन्यासी थे जिनका बाना सन्यासी का और कर्म लड़ना था।

काले जादू की कहानी उस समय प्रारम्भ होती है जब सिंधिया उत्तर भारत के रजवाड़ों में मुगलबादशाही की सत्ता को फिर से स्थापित करने और उसकी साख को जमाने में लगे थे। तभी १७८९ में वे बीमार पड़ गये। पहले मामुली ज्वार आया फिर सारे शरीर में सूजन आ गई। सिंधिया का बीमार होना मामुली बात नहीं थी। वह मुगलबादशाह का बजीरे आजम था। सारे भारत में उसकी बीमारी की खबर फैल गई। पहले देशी इलाज हुआ किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। बड़े-बड़े वैद्यों ने प्रयास किया पर रोग थमने का नाम नहीं ले रहा था। देखते देखते सारे शरीर में फोड़े हो गये। पीड़ा और जलन के कारण सिंधिया चिड़चिड़ा हो गया। वह अपने राजवैद्यों से नाराज हो गया और उसने कह दिया कि वैद्यों से कुछ नहीं पा रहा हो तो वह अपने इलाज के लिए अंग्रेज डॉक्टरों की सेवा लेगा। राजनीतिक परिस्थितियों और अंग्रेजों से अपने सम्बन्धों को देख यह कदम उसके लिए आत्मघाती हो सकता था। अंग्रेज और ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में अपना राज्य चाहती थी और सिंधिया उसकी राह में सबसे बड़ा रोड़ा था। उसने अभी अभी अंग्रेजों के शिकंजे से छुड़ाकर मराठों के शिविर में ला दिया था और अंग्रेजों को कूटनीति में मात दी थी।

सभी राजवैद्यों ने मिलकर परामर्श किया पर न वे रोग को जान पाये न दवा को। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि रोग शरीर के भौतिक विकार के कारण नहीं है, जादू टोने के कारण है। ज्योतिषी भी इसी निर्णय पर पहुंचे कि रोग का कारण जादू है। शुभचिंतकों ने शंका जाहिर की कि कोइ शत्रु अनुष्ठान करवा रहा है। सही बात का पता लगाने के लिए देशभर में गुप्तचर फैला दिये गये। तभी १४ जुलाई को इस रहस्य का खुलासा हो गया। सिंधिया के कारिन्दों को वृन्दावन में एक बूढ़ी औरत का पता चला जो यह बोलती सुनी गई कि सिंधिया को मैंने रोगी किया है। वह मेरे जादू से मरेगा, उसे कोई नहीं बचा सकता। सिंधिया के कर्मचारियों ने बुढ़िया के बारे में आसपास के लोगों से पूछा तो पता चला कि वह कुटिल तांत्रिक है। सिंधिया के कर्मचारियों ने उसे धर पकड़ा। वह पहले तो मुकर गई पर जब उसे धमकाया गया तो उसने सिंधिया पर जादू करने की बात स्वीकार कर ली। उसने उन दो आदमियों को भी पहचान लिया। उसमें से एक गुसाईं सन्यासी था, दूसरा नादिर नामक मुसलमान।

तांत्रिक औरत को सिंधिया के पास लाया गया। इस समय तक सिंधिया मौत की कगार में आ गये थे। डराने-धमकाने और लालच देने से वह मारन मंत्र काटने और रोगमुक्त करने के लिए पूजा करने को राजी हो गई। बुढ़िया ने अनुष्ठान प्रारम्भ किया और सिंधिया की हालत में सुधार होने लगा। पूजा पूरी होते ही सिंधिया रोगमुक्त हो गये। नादिर और गुसाई ने स्वीकार किया कि हिम्मतबहादुर गुसाई ने तांत्रिक बुढ़िया को अनुष्ठान करने के लिए धन दिया था।

सवाल उठता है कि हिम्मत बहादुर गुसाई ने सिंधिया को क्यों मारना चाहा। इसका उत्तर पाने के लिए हमें इतिहास को देखना होगा। उस समय हिन्दुस्तान का मुगलबादशाह बहुत कमजोर, डरपोक और अयोग्य था। अमीर और सरदार स्वार्थी थे और निष्ठाहीन गुटबंदी में लगे रहते थे। एक दूसरे को नीचा दिखाना और बादशाह को अपने प्रभाव में रखना उनका पहला और आखिरी काम था। बादशाह के प्रति वफादारी तो नाम मात्र को भी नहीं थी।

कमजोर एवं कान के कच्चे बादशाह और स्वार्थी तथा अयोग्य अमीरों को देखकर हिम्मत बहादुर के मन में भी दिल्ली के बादशाह को बस में कर सत्ता संचालन की महत्वाकांक्षा जाग गई। वह जानता था कि उसके पास एक शक्तिशाली सेना है, मुगल सरदारों से अधिक बुद्धि है, साहस है तब वह अपनी शक्ति को इन अमीरों के लिए क्यों लगाये। पर वह डरता था कि अगर वह खुलकर

सत्ता पाने की चेष्टा करेगा तो दरबार उसे हिन्दू होने के कारण स्वीकार नहीं करेंगे इसलिए वह परदे के पीछे रहकर सत्ता का उपभोग करना चाहता था। डॉ. यदुनाथ सरकार ने माना कि उसमें व्यक्तिगत साहस का अभाव था और निम्न कोटि के प्रपंचों से उसका चरित्र भी गिरा हुआ था (मुगल राज का पतन, पेज. १६४), इसलिए उसने हितैषी अफरसियाव को मीर बख्शी बनवाने और उसका पक्ष मजबूत करने के लिए माधवजी सिंधिया को बादशाह की सहायता के लिए बुलाने के लिये बादशाह को राजी कर लिया। १७८८ में सिंधिया दिल्ली आ गया। इसी बीच अफरसियाव की भी हत्या हो गई। गुसाई नाबालिग बच्चे और अफरसियाव की विधवाओं का संरक्षक बन गया, उसने अफरसियाव के नाबालिग लड़के को बादशाह को घूसदेकर मीरबख्शी बनवा दिया था, पर सिंधिया के आने से हालात बदल गये।

गुसाईं का विचार था कि सिंधिया दिल्ली से धन लेकर लौट जाएगा फिर वह बादशाह को मनमर्जी से हांकेगा क्योंकि मीर बख्शी नादान बालक था। पर सिंधिया दूसरी मिट्टी का बना था। वह दिल्ली में टिक गया और व्यवस्था सुधारने में लग गया।

सिंधिया छल प्रपंच और निष्ठाहीन राजनीति से घृणा करता था। वह जीवन मूल्यों पर आस्था रखता था। उसे आदमियों की परख थी। हिम्मत बहादुर की करतूतों और उसके कपटपूर्ण स्वभाव के कारण वह उसे पसंद नहीं करता था। उसने ऊपरी तौर पर गुसाई के परामर्श पर चलने का दिखावा किया पर व्यवहार में उनका पालन नहीं किया। उसने उससे दूरी बनाए रखी। उसने गुसाईं को बादशाह से मिलने का अवसर नहीं दिया। हिम्मत बहादुर शीघ्र ही जान गया कि सिंधिया के रहते वह अपनी महत्वाकांक्षा पूरी नहीं कर पाएगा।

अलीगढ़ के किले में अफरसियाव की सम्पत्ति सुरक्षित थी, जहाँ उसका भाई जहांगीर किले का अधिकारी था, उसने गुसाईं के कहने से सिंधिया के आदेशों का उल्लंघन करना शुरू कर दिया। सिंधिया ने जब जहागीर से किला छोड़ने को कहा तो उसने गुसाई के कहने से आज्ञा का उल्लंघन किया। सिंधिया ने शांति से किला जीत लिया। उसे किले से हिम्मत बहादुर गुसाई के जहांगीर को लिखे भड़काने वाले पत्र मिल गये। उसे गुसाई की हकीकत का पता चल गया। सिंधिया उसे ब्राह्मण होने और सन्यासी होने के कारण दण्ड देने से डर रहा था। उसे दिल्ली से दूर रखने के विचार से गौंठ में २० लाख वार्षिक आय की जागीर और वृन्दावन में एक जागीर देकर खुश करना चाहा परन्तु वह दिल्ली नहीं छोड़ना चाहता था। नाराज होकर उसने दरवार में आना छोड़ दिया पर दिल्ली नहीं छोड़ी। सिंधिया ने उसे बीस हजार रुपये मासिक देना प्रारम्भ कर दिया परन्तु उसके सिंधिया के खिलाफ न तो उसके कुचक्र समाप्त हुये और ना ही वह शांत बैठा। जब सिंधिया राजपूताने में जयपुर के राजा से कर लेने गया तो गुसाईं ने जयपुर के राजा को कर न देने एवं सिंधिया का विरोध करने के लिए राजपूत संघ बनाने के लिये प्रेरित किया।

सिंधिया की अनुपस्थिति में दिल्ली में भयंकर घटनायें घटीं। नजीव रुहेला के नाती गुलाम कादिर ने जो बहुत सुन्दर जवान था बादशाह की शहजादी को छेड़ दिया। शाहआलम ने इस अपराध में उसका पुरुष अंग कटवाकर हिजड़ा बना दिया। गुलाब कादिर बादशाह का शत्रु बन गया। उसने कट्टर मुसलमानों को एकत्र कर अपनी शक्ति बढ़ाली और एक दिन भरे दरबार में शाहआलम को सिंहासन से उतारकर घसीट-घसीट कर मारा और उसे अंधा कर दिया। शहजादियों को अपमानित किया गया। दिल्ली में कादिर की नादिरशाही चलती रही। कोई बादशाह को कादिर के कहर से न बचा सका।

अंत में सिंधिया को सूचना मिली। वह दिल्ली आया। उसने कादिर खां को पराजित कर बंदी बनाया और उसे उसके साथियों सहित मौत की सजा दी। बादशाह को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया।

हिम्मत बहादुर अब लाचार था। उसने सिंधिया को हटाने के लिये तंत्र-मंत्र और मारण मंत्र का सहारा लिया। हिम्मत बहादुर गुसाईं के विरुद्ध सिंधिया विरोधी होने के पर्याप्त प्रमाण सिंधिया के पास थे, इसलिये जब इस षड़यंत्र में हिम्मत बहादुर का नाम आया तो उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि वह काम गुसाई ने ही करवाया है।

अब रोग मुक्त होते ही सिंधिया ने हिम्मत बहादुर को सजा देने का विचार किया। खतरे को भांपते ही गुसाई ने अपनी चाल तय कर ली, वह जानता था कि अगर कोई उसे बचा सकता है तो वह पेशवा है। अतः वह पेशवा की शरण के लिये भागा और अलीबहादुर की शरण में चला गया, जो मराठों का प्रभावशाली सेनानायक और बाजीराव पेशवा प्रथम एवं उसकी प्रेमिका मस्तानी का पौत्र था। उसने गुसाई को नाना कड़नवीस से मिलवा दिया। नाना सिंधिया के बढ़ते प्रभाव से प्रसन्न नहीं था। अतः उसने हिम्मत बहादुर को शरण दे दी।

सिंधिया ने अलीबहादुर से अपने बैरी को उसे सौंपने की मांग की। अलीबहादुर ने इंकार कर दिया। अब सिंधिया ने युद्ध द्वारा अपने शत्रु को प्राप्त करना चाहा। अली बहादुर भी तैयार था। दो मराठी सेना परस्पर युद्ध करने के लिए सामने आ गई। पूना की सैना सिंधिया से इस पर नाराज थी कि पेशवा के झण्डे के नीचे आए किसी व्यक्ति को पेशवा का दूसरा अधीनस्थ सरदार पकड़ने के लिए पेशवा की सेना से युद्ध करे। यह पेशवा का अपमान है। सिंधिया के विश्वास पात्र साथी रानों जी ने सिंधिया को समझाया और अपनी बात पेशवा के सामने रखने की सलाह दी। सिंधिया विवेकी था उसने सारे विवरण सहित पेशवा को सामने अपनी बात रखी और हिम्मत बहादुर को उसे सौंपे जाने की विनती की। पर ना फड़नवीस के कारण उसने हिम्मत बहादुर को सौंपे जाने की बात नहीं मानी। नाना ने सिंधिया को सलाह दी कि वह इस बार हिम्मत बहादुर को माफ कर उसके खर्च की व्यवस्था कर झांसी के किले में आदर सहित रखे। अगर फिर से वह सिंधिया विरोधी कार्य करे तो सिंधिया उसे दण्डित कर सकता है। सिंधिया इससे आहत हो गया। उसने नाना से कहा इस आदमी ने मुझे मारने के लिए पैशाचित जादू करवाया और दो तीन माह तक मार्मन्तक पीड़ा दी फिर भी वह आपको अच्छा लगता है यह बात उस भ्रातत्व भाव के प्रतिकूल है जो आप मुझ पर प्रगट करते हैं।

कुछ समय बाद अलीबहादुर गुसाईं को सिंधिया को सौंपने पर राजी हो गया। इस पर गुसाई ने आत्महत्या की धमकी दे डाली। उसने अलीबहादुर से कहा अगर आप नहीं रखना चाहते तो मुझे पेशवा के पास भेज दें किन्तु सिंधिया को नहीं सौंपे वरना मैं आत्महत्या कर लूंगा। पेशवा को ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। आखिरकार सिंधिया को उसे क्षमा करना पड़ा। गुसाई सिंधिया के शिविर में नहीं गया, सिंधिया स्वयं अलीबहादुर के शिविर में गया और उसे क्षमा देदी।

- कटरा बाजार, टीकमगढ़ (म.प्र.)

ओरछा : पर्यटन की संभावनाएँ

- डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

ओरछा मुगलकालीन बुन्देलखण्ड की यशस्वी राजधानी रही है। यह बेतवा नदी के किनारे, चट्टानों से टकराती लहरों के गुंजायन से युक्त, वृक्षों की हवा से लहराती टहनियों से मनोहर धुन निकालती, गगनचुम्बी भवनों की नगरी है। बुन्देली स्थापत्य कला और भित्ति चित्रकला को पढ़ने का यह मूल स्थान है। ओरछा को रामराजा का मंदिर और हरदौल के बलिदान का स्थान होने के कारण पूरे देश की आस्था का गौरव प्राप्त है। महाकवि केशव के सृजन का केन्द्र होने के कारण ओरछा हिन्दी साहित्य की जननी कहा जाता है। यहाँ के वन क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर आजाद के क्रियाकलापों के साक्षी हैं। यहाँ बेतवा के किनारे अनेक लोकआस्था के मेले लगते हैं। पढ़ने वालों के लिये यहाँ केशव शोध-संस्थान है। यहाँ वह सब कुछ है, जो एक घुमक्कड़ या पर्यटक देखना पसन्द करता है और ओरछा में एक अच्छी बात यह भी है कि यहां अमीर पर्यटक, गरीब पर्यटक दोनों अपनी आर्थिक स्थिति के अन्दर ठहरने की सुविधा पा जाते हैं।

वर्तमान में ओरछा मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के झांसी रेलवे स्टेशन से, झांसी मानिकपुर-बनारस-हावड़ा-जबलपुर-इलाहाबाद आदि रेलमार्ग पर मात्र पन्द्रह किलोमीटर दूर एक छोटा स्टेशन है। झांसी रेलवे स्टेशन से ओरछा जाने के लिए सभी प्रकार के वाहन आसानी से मिल जाते हैं। ओरछा से जुड़ा हुआ मार्ग ही आगे खजुराहो जाता है। खजुराहो यहां से सड़क मार्ग से एक सौ साठ किलोमीटर के लगभग है।

स्थापत्य कला दर्शन - बुन्देली स्थापत्य कला, बुन्देली शिल्प के दर्शन ओरछा में ही होते हैं। राज-भवन की मोटी-मोटी दीवालें सर्दियों में ऊष्मा और गर्मियों में ठंडक प्रदान करती हैं। मानव श्रम की कर्मठता और श्रमजीवियों की दास्तान का दस्तावेज ओरछा में देखने को मिलता है। बुन्देला राजा रुद्रप्रताप ने अप्रैल, सन् १५३१ ई. में बेतवा नदी की विभक्त दो धाराओं के बीच में ओरछा दुर्ग की नींव रखी। रुद्रप्रताप के उत्तराधिकारियों भारतीचन्द, मधुकरशाह, और बीरसिंह बुन्देला (१६०५-२७) ने ओरछा के स्थापत्य गौरव में हीरे टांक उसे अमिट स्याही बना दिया। बीरसिंह देव बुन्देला के समकालीन महाकवि केशव ने अपने ग्रन्थ वीरसिंह देव चरित्र् में ओरछा के सामाजिक वैभव का अद्भुत वर्णन किया है, उनकी एक चौपाई यहां प्रस्तुत है-

नगरी गीतन की माधुरी। मोहित मनु माधौ मधुपुरी।
वाजत घंट घनै घरयाय। झांझ झालरैं भेरी तार।
ठोरे ठोरे कीरंतन घनैं। अति ऊँचे देवालय बनै।
जहं तहं हरि लीला सुनि मीत। रामकृष्ण के गावहिं गीत।।१।।

भारतीचन्द और मधुकरशाह के समय स्थापत्य (१५३१-१६९२) - ओरछा के इन दोनों शासकों के समय में दुर्ग, परकोटा, राजमहल, दीवानखाना, शिवालय, बारूदखाना, रानीमहल, फूलबाग, चतुर्भुज मंदिर, नगरकोट, सामंतों के लिये अनेक भवन और इन भागों को जोड़ने वाला पुल। राजधानी के स्वरूप को प्रकट करने वाला पूरा आकार बन कर तैयार हो चुका था। ये पूरे भाग पर्यटकों को घूम-घूमकर देखने में अत्यन्त चित्ताकर्षक लगते हैं। बुन्देली कंगूरे, महराब, टोड़ियां, बुर्ज, वातायन, जालियां, मंडप, तीर चलाने के सुराख, वातानुकूलित स्नानघर, शौचालय, स्तंभ मजबूत फाटक, विशाल आंगन, खुली छतें आदि देखकर पर्यटक दांतों तले अंगुली दबाने को विवश हो जाता है। क्या मजबूती थी, क्या कलात्मक अभिव्यक्ति थी, भाव भी था, साथ समर्पण भी था। अनुसंधान करने वालों का कहना है कि ईंटें, चूना यहीं तैयार किया जाता था, शिल्पकार राजस्थान से बुलवाये जाते थे। देशी कारीगर और मजदूर भी उन शिल्पकारों के साथ काम करते थे। पत्थरों की टोड़ियाँ जरूरत पड़ने पर चंदेरी, पन्ना की खदानों से आती थीं।

पर्यटकों में अनेक शोध-छात्र भी होते हैं, प्रायः विदेशों से आने वाले पर्यटक गंभीर जिज्ञासु होते हैं। वे शिल्प के मूल को गहराई से समझने के इच्छुक होते हैं। अमेरिका के निवासी एक सज्जन बीरसिंह बुन्देला पर शोध कार्य कर रहे हैं। वे दतिया में आकर चार बार तमाम अनसुलझे प्रश्नों को लेकर मुझसे सम्पर्क कर चुके हैं। हम लेखक बन्धुओं को चाहिये कि जिज्ञासुओं की मदद को हमेशा प्रस्तुत रहें, ताकि पर्यटन को पूरा प्रोत्साहन मिले।[२]

बीरसिंहदेव बुन्देला के (१६०५-१६२७) समय का स्थापत्य- बीरसिंहदेव बुन्देला को मुगल सम्राट जहाँगीर का संरक्षण एवं समर्थन प्राप्त था और बड़ौनी के जागीरदार के रूप में सन् १६०५ ई. के पहले उन्होंने मुगल विरोधी गतिविधियों का संचालन कर काफी धन एकत्रित कर लिया था। इस धन का उपयोग बीरसिंह देव ने मथुरा-वृन्दावन-बनारस सहित बुन्देलखण्ड में अनेक महल, भवन, तालाब, मंदिर आदि बनवा कर किया। इस प्रकार वीरसिंह देव पर्यटकों को देखने, शोधार्थियों को पढ़ने के लिये बहुत कुछ दे गये हैं।

ओरछा में बीरसिंहदेव की अनुपम कृति जहाँगीरी महल है। यह स्वास्तिक के आकार का पांच मंजिला है। दतिया का सातखंडा महल भी इसी योजना के अनुसार इन्हीं ने करवाया था। स्थापत्य के सभी विशेषज्ञ विद्वानों रायकृष्णदास, हैवेल, पर्सी ब्राउन ने बीरसिंह देव की इस कृति को स्थापत्य की दृष्टि से बेजोड़ बताया है। बीरसिंह देव के और अन्य निर्माण कार्यों में मुगल शैली का फूलबाग उद्यान, उद्यान के चारों ओर के कक्षों की टुड़ियों में पत्थरों को तराशकर हाथी, मोर, कमल, फूलों की कलियों की आकृतियां उकेरी गई हैं। उद्यान में अभी भी उसी समय की मिट्टी की नालियां बनी हुई हैं। जहाँगीरी के पीछे उदोतसिंह (१६८९-१७३६) का बनवाया शीशमहल

है। सुन्दर टायल्सों से जड़े इस महल में पर्यटकों के ठहरने की सुविधा प्राप्त है। नगर की अन्य प्रमुख इमारतों में विश्वप्रसिद्ध रामराजा का मंदिर, लक्ष्मीनारायण का मंदिर, हरदौल की पालकी, बगीचा, सावन-भादों, महाकवि केशव निवास, नृत्यांगना प्रवीणराय का महल, नौ-चौकिया भवन, सुदूर पहाड़ियों पर स्थित कालेखां का मजार, बेतवा के तट पर स्थित बुन्देला राजाओं की समाधियां हैं। पूरा का पूरा ओरछा इमारतों से भरा पड़ा हैं। जो पर्यटक पैदल चलकर घूमने के आदी हैं, उन्हें ओरछा के जल-जंगल-जनजीवन का पूरा आनन्द मिल जाता है।[३]

ओरछा की भित्ती-चित्रकला – ओरछा की भित्ती चित्रकला बुन्देली-चित्रकला का स्कूल है। यहां विष्णु के अवतारों के चित्र, गजेन्द्र मोक्ष का चित्र, समुद्र मंथन का चित्र, राम-दरबार में हनुमान का चित्र, नारियों का हाथी की आकृति के रूप में अंकन, बेलबूटों का अलंकरण, लोकशैली के वस्त्रों का प्रदर्शन,मलखम्ब के चित्र, दंगल के चित्र, राम की बाललीलाओं के चित्र, लक्ष्मीबाई का अंग्रेजों से युद्ध के चित्र, जहांगीर बादशाह का चित्र, महारास लीला के चित्र, कृष्ण की लीलाओं के चित्र आदि। ऐसे अनेक चित्रों का अंकन, गहरे लाल, पीले, नीले, काले सभी रंगों का बारीक सुन्दर कलम से उपयोग बखूबी किया गया है कि पर्यटक एकटक होकर देखते रह जाता है। लोग ओरछा के चित्रों का फिल्मांकन, कैनवास पर अनुकृति अंकन बड़े चाब से कर ले जाते हैं। ओरछा की चित्रकला पर कई शोध हो चुके हैं। पर अभी काफी गुंजायश है। यहां के लोक-चित्र शैली पर अभी अच्छा काम होना शेष है। चित्रांकन ओरछा के राजा महल, लक्ष्मी मंदिर, पंचमुखी महादेव, रायप्रवीन महल, जहांगीरी महल में देखे जा सकते हैं।[४]

यह चित्र एक समय में नहीं बने, यह लगातार सत्रहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक बनते रहे। इससे लगता है कि ओरछा में चित्रकला के अच्छे जानकार कारीगर रहते थे, जो कन्नी-रंग की कलम दोनों चलाने में प्रवीण थे। कुछ कारीगर राजस्थान से आये हुये, तो कुछ बुन्देलखण्ड के भी रहे होंगे। चित्रकला भी साहित्य की तरह, मानव की अन्दरूनी उमड़-घुमड़ की अभिव्यक्ति है।

बेतवा के तीर – बेतवा नदी बुन्देलखण्ड की जीवनदायनी माँ के समान है। इस नदी में औषधीय गुण हैं। कादम्बरी के रचैयता बाणभट्ट ने बेत्रवती का गुणगान किया है, कालिदास के मेघदूत को मार्ग दिखाने वाली यह पुण्य सरिता है। पुराणों में भी बेतवा के अनेक पावन प्रसंग आये हैं। यह बेतवा ओरछा की शोभा है, यहाँ अनेक लोकआस्था के मेले लगते हैं। ग्रामीणों के लोकनृत्य, लोकगायन, बुन्देली पहनावा आदि ओरछा की विशेष पहचान है। विदेशी पर्यटक इन मेलों को देखकर प्रभावित होते हैं।

बेतवा नदी का ओरछा में सुरम्य प्रवाह है, कहीं वह चट्टानों से टकराकर शोर करती दिखती हैं, कहीं घूम-घूमकर नृत्य घेरा सा बनाती हैं। आसपास वृक्ष वातायन का काम करते हैं। नदी के बीच-बीच में उभरी चट्टानें, पर्वतश्रृंग उसकी शोभा में चांद के साथ सितारे जैसे लगते हैं। जब इन पर्वत श्रृंगों पर सूर्य की रोशनी पड़ती है, तब ये श्रृंग चांदी के समान चमकते हैं। मध्यप्रदेश में सबसे अधिक पर्यटक ओरछा और खजुराहो ही आते हैं। बेतवा से ओरछा में पर्यटकों के लिये, जो सुरम्य वातावरण दिया है, वह मध्यप्रदेश में अन्य जगह देखने को नहीं मिलता है।[५]

रामराजा मंदिर – रामभक्त श्रद्धालुओं के लिये आस्था का बहुत बड़ा केन्द्र है, यह मंदिर। यहां सैकड़ों तीर्थयात्री प्रतिदिन दर्शन लाभ के लिये आते हैं, विशेष अवसरों पर यह संख्या हजारों में पहुँच जाती है। बुन्देला, परमार, धंधेरे ठाकुरों के लिये रामराजा से बड़ा कोई देवता नहीं है। ओरछा के शासक मधुकर शाह बुन्देला की परमार रानी गणेश कुँवरि को रामराजा भगवान की मूर्ति अयोध्या में सरयू नदी में स्नान करते समय मिली थी। वे वहाँ से पूरे श्रद्धाभाव और सम्मान के साथ मूर्ति को पैदल चलकर अयोध्या से लेकर आई थी। मान्यता है कि उन्होंने यह रामराजा की मूर्ति रनिवास में रख दी थी। बाद में वह मूर्ति वहां से हिली नहीं और तब से वह रनिवास ही रामराजा का मंदिर हो गया। प्रतिवर्ष इस मंदिर में हजारों शादियां होती हैं। विदेशी लोग भी यहाँ आकर शादी कर लेते हैं। पर्यटकों के लिये यह धार्मिक आस्था का केन्द्र बहुत बड़े आकर्षण का केन्द्र है।[६]

क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर का स्थान – झांसी-खजुराहो मार्ग से ओरछा की ओर चलने पर रास्ते में सातार नाम की छोटी नदी मिलती है। ये नदी तीन किलोमीटर आगे बेतवा में मिल जाती है। इस गाँव का नाम ढिमरपुरा है, यहाँ से ओरछा तीन किलोमीटर है। वर्तमान में यह एरिया ओरछा की सीमाओं में ही माना जाता है। प्रसिद्ध काकोरी काण्ड के बाद १९२५-२७ में क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर अंग्रेजों की आंखों को धोखा देते हुये यहां सातार नदी के किनारे एक कुटिया डालकर रहते रहे। यहीं से वे साधु के वेष में झांसी क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालन के लिए आया जाया करते थे। आसपास के कृषकों और ग्रामीणजनों का उन्हें पूरा सहयोग प्राप्त था। यहां पर्यटकों के लिये स्मारक भी बनाया गया है। ओरछा की ओर जाने वाला पर्यटक इस धरती की रज अवश्य लेना चाहता है।[७]

ओरछा में पर्यटन के विकास के लिये संभावनायें और अपेक्षायें – अकबरनामा में ओरछा पर आक्रमण के संदर्भ में सतधारा नदी एवं सघन वनों का उल्लेख किया है। सेनाओं को प्रयाण मार्ग बनाने के लिये प्रतिदिन जंगल काटना पड़ता था। बीरसिंह देव बुन्देला के समकालीन कवि केशव ने अपने ग्रन्थ वीररचित् ओरछा के वैभव-सुन्दरता-भवनों-उद्यानों का काव्य रूप में विशद वर्णन किया है। अक्टूबर १६३५ ई. में शाहजादा औरंगजेब ओरछा जुझार सिंह बुन्देला पर चढ़ाई करने के लिये आया था। उसने अपने पिता बादशाह शाहजहां को ओरछा के पर्यावरण की ऐसी प्रशंसा लिख कर भेजी कि वह भी ओरछा देखने के लोभ का संवरण न कर सका। वीरसिंह देव के पिता ओरछा के राजा मधुकरशाह ने अपने एक पद में लिखा है कि "ओरछा वृन्दावन सौ गाँव।[८]

वर्तमान में पर्यटन को विकसित करने एवं बढ़ावा देने के लिए उक्त परिस्थितियों को पुनः लाने की जरूरत है। वर्तमान में ओरछा में सामूहिक विवाह समारोहों का प्रचलन बहुत बढ़ा है। ऐसे समारोहों से गंदगी बहुत फैलती है। जबकि पर्यटन क्षेत्र को इससे कोई लाभ नहीं होता है। पर्यटन के विकास की दृष्टि से ऐसे आयोजनों पर प्रभावी नियंत्रण लगाना बहुत आवश्यक है। ओरछा पर्यटन क्षेत्र की सबसे बड़ी उपलब्धि वहाँ के पर्यावरणीय वातावरण की है। उसको खोने पर ओरछा का बहुत नुकसान होगा।

ओरछा में कुछ ऐतिहासिक महत्व की इमारतों में तहसील कार्यालय एवं अदालत लगती है, और ऐसी कुछ इमारतें आवास के रूप में उपयोग की जाती हैं। पर्यटन को प्रोत्साहन करने के उद्देश्य से इस प्रवृत्ति पर रोक लगाना आवश्यक है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये इतिहास, कला, संस्कृति, पर्यावरण की रक्षा करने के साथ पर्यटकों के खान-पान और उनकी सुरक्षा की व्यवस्था मुकम्मल व्यवस्था जुटाने की आवश्यकता है। आवागमन की सुविधायें बढ़ती रहें और पर्यटन के विषय में बच्चों को भी पढ़ाये जाने की व्यवस्था होना जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ -

१. वीरसिंह देव रचित् (केशव कृत, सम्पा. श्याम सुन्दर द्विवेदी, मातृभाषा प्रयाग, सं. २०१३) पृ. २३६

२. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (गोरेलाल, का.ना.स., इंडियन प्रेस प्रयाग, सं. १९९०) पृ. १२४, मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास (डॉ. भगवान दास गुप्त, हिन्दी बुक सेन्टर, दिल्ली १९६, पृ. १३२-३३, बुन्देलखण्ड के दुर्ग) डॉ. के.पी. त्रिपाठी, समय प्रकाशन दिल्ली, २००५ (पृ. २५-२६)

३. मआसिरुल उमरा, भा.-१ (अनु. ब्रजरत्नदास, ना.प्र.स. वाराणसी, सं. २०४६) पृ. २०४-२०५, मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास (डॉ. भगवानदास गुप्त) पृ. १३३-३५

४. ओरछा के भित्ति चित्र (पुरातत्व संग्रहालय आयुक्त, भोपाल, २००३) पृ. ७-३२, ओरछा (सूचना एवं प्रचार विभाग विन्ध्यप्रदेश, सम्पा. विद्यानिवास मिश्र) पृ. ६८-७३

५. बुन्दे. दर्शन (मोतीलाल त्रिपाठी, लक्ष्मी प्रकाशन झांसी, १९८०) पृ. १४९-१५२, टीकमगढ़ दर्शन (सम्पा. महेन्द्र द्विवेदी, शान्तिचन्द्र, ग्राम भारती ग्वालियर, १९७८) पृ. २०-२४

६. मुगलों के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास (डॉ. गुप्त) पृ. १३४-१३५, बुन्देलखण्ड दर्शन (मोतीलाल त्रिपाठी) पृ. २१७-१८, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (गोरेलाल), पृ. १२७

७. टीकमगढ़ दर्शन (सम्पा. महेन्द्र द्विवेदी) पृ. ६९-७०, बुन्देलखण्ड दर्शन (मोतीलाल त्रिपाठी) पृ. ११७, ओरछा (सूचना विभाग, विन्ध्यप्रदेश) पृ. ७५-७६

८. वीरसिंह देव चरित् (सम्पादक श्याम सुन्दर) पृ. २१०-२३८, अकबरनामा (अबुलफजल कृत, अनु. मथुरालाल शर्मा, कैलास पुस्तक सदन, ग्वालियर, १९७५) पृ. ४६१, शाहजहांनामा (मुंशी देवीप्रसाद कृत, सम्पादक रघुवीर सिंह, दि मैकमिलन दिल्ली १९७५), पृ. १०३

- कुंजनपुरा, दतिया (म.प्र.)

पूरब कों जात ते

- भास्कर सिंह माणिक

पूरब कों जात ते, सो पच्छिम कों जा रये।
पुरखन की बातन कों, ठेंगा दिखा रये।
महिरिया कों संगे लये पिकनिक कों जा रये।
सबेरे के निकरे उर रात के आ रयें।
ऐसे उन्ना पेरें जे, सबई को लजा रये।
आधे आँग ढके उर आधे दिखा रये।
इनकी का के देवे मनमानी चला रये।
मर्यादा की के दई सो भौंरिया से भन्ना रये।
वरघाई छिचलतते सों मों मुरझा गये।
जुवानीं बिला गई, खजूर से सर्रा रये।
बैंठ के खात रये, अब ठाड़े खा रये।
हाँत में पलेट धरे, रईसी बगरा रये।
दार कड़ी छोड़ दई, बरा बरी छोड़ दई।
मटर पनीर के रये उर छाँच को खा रये।
फुलकिया की कै दई, सो मों मटका रये।
तन्दूर की रोटियन को भेरा के खा रये।
अब धोती कुरता को, कों पैरत माणिक।
हमाये पुतरा, अंगरेजन से दिखा रये।

- भगतसिंह नगर कौंच, जिला जालौन (उ.प्र.)

चमचा पुराण से

- एन.डी. सोनी, विवेक

चमचागीरी आय नईं, जौ गुड़ियन कौ खेल।
चमचा में गुन पाइये, रेत सें काड़ै तेल।
रेत सें काड़ै तेल, जोतवौ जानें ऊसर।
जितै न जावै सूज, पेंड़वै चमचा मूसर।
अफसर बरिया पेड़, छाँयरी चमचा सीरी।
सुख सें जियो 'विवेक', सीककें चमचागीरी।

सुख सें चाहौ जो जियन, चुटिया बाँदो गाँठ
अफसर के चमचा बनौ, फिर तुम देखौ ठाठ।
फिर तुम देखौ ठाठ, चैन पर जैहे जी में।
सर कड़ाई में रबै, उंगइयाँ पाँचऊ घी में।
झूँटी मानों साँच, कड़ै अफसर के मुख सें।
कत 'विवेक' कट जैय, जिन्दगानी जा सुख सें।

चमचा के चमचा बनौ, तो पा जैहौ गैल।
फिर कऊँ कोंचा पकरियो, उंगरी पकरौ पैल।
उंगरी पकरौ पैल, खुसामद के गुन सीकौ।
गुरु मंत्र के बिना, बनें न चेला नीकौ।
कछू दिनन तक धोव, गुरु के धोती-गमछा।
कत 'विवेक' बन जैव, तरक्की पाकें चमचा।

-राजमहल के पास, टीकमगढ़

कुकर्म कौ फल

- डॉ. दुर्गेश दीक्षित

आजकल बिजली की हालत भौत खराब है। गाँवन में तौ दस घंटा की कटौती हो रई। जबई व्याई करबे की बेरा होत, तबई बिजली चली जात। अब बताब का करें गाँव के आदमियन खौं अंदयारे में खानें पीनें परत। उन्ना बिछावनें आऊत। चौका बासन झारा बटोरी कित्ते काम होत घर गिरस्ती के। लोगन की रोरो कैं रात कटत, गर्मी के कारन बेचैंनी बनीं रत उर रात भर मच्छर चींथत रत। साँसी कई जाय तौ ईमें बिजली वारन कौ कोंनऊ दोष नइयाँ। जित्ती पैदा हो रई, ऊसें दूनी खर्च के लानें चानें। अब बताव ऊकी पूरती कैसें हो सकत? ऐइसें गाँवन में इंदयारौ डरो रत।

गनेसगंज में इंदयारौ डरो तो। लोग इंदयारे में ब्याई म्याई करकें सो गये। पूरे गाँव में सोते पर गयेते। इतेकई में स्यामलाल के घरै रोबापोंकी की आवाय सुना परी। रामकली बुरई तराँ सैं चिल्लया रईती। उर स्यामलाल बुरई तरा सें बड़बड़ा रओतो। मताई बाप के ललकारबे की आवाज सुनकें पूरौ मुहल्ला जग परो। लरका बिटिया, लोग लुगाई सबई अपनीं अपनीं टौरचें लयें स्यामलाल के घरै पौच गये। रामकली अदमरी सी एक कुदाँऊ डरी ती उर मताई बाप मूँढ़ पकरें पौर के दोरें बैठे असुवा बोआ रयेते। रामकली के दो फूँकना सै मौड़ी मौड़ा सिसयाने से डबरियाँ भरें बैठे ते उर स्यामलाल बमक बमक कैं गेरँऊ लठिया घुमा रओतो। जौ सब तमासौ देख कैं पुरा परोसी ता करकें रै गये। सोसन लगे कै जा मुखिया जू की राजन कैसी गिरस्ती ई स्यामलाल ने रनबन की कर डारी। मुखिया जू कौ पूरे गाँव में दबदबा हतो। का मजाल कै उनके सामैं कोउ मौ उकास सके। अकेलैं ई लरका ने उनकी इज्जत खौं धूरा में मिला दई।

अकेले सपूत हते सो मताई बाप खौं भौतई लाड़ले हते। मुब्बा पाकैं मन कौ धन करत रये। अच्छे साके कौ ब्याव भओ उर अच्छी फूल सरीसी पढ़ी लिखी बऊ धन मिल गई। जैसो ऊकौ नाव हतो रामकली ऊसई ऊकौ सुभाव उर काम-काज हतो। चार छः सालै तौ ऊकी सुख में कढ़ गई उर लबकुस जैसे दो सोनें कैसे कुँवर हो परे। पइसा की तौ उन्नों कोनउ कमीं हती नईं। लाड़ले लल्ला हते वे। मताई बाप सैं पाँच माँगतते उर उनें दस मिलतते। सो उनसैं इतै उतै के अलुवा ठलुआ गुर कैसी मांछी से चिपके रत्ते। हराँ-हराँ वे कुसंग में परकैं पियँन खान लगे। पैलाँतौ वे दो चार साल दुक छिपकैं पियत रये। हराँ हराँ ऐसी आदत बिगरी कैं चौबीसई घंटा नसा में झूमत रत्ते। रात कैं गिरत उठत घरै पौच पाउतते। जातनई रामकली की डाँट फटकार करन लगतते। जौ सब भोगत भोगत रामकली खौं चार-छः सालैं कढ़ गईतीं। ऐसी कानात कई जात कै आदमी जानिये बसें उर सोनौं जानिये कसैं। रामकली के दुख दर्द खौं कोउ का जानें? ऐसी कानात कई जात कै - "जाके पाँव न फटी बिमाई, बौ का जानें पीर पराई।" अरे थैलिया की चोट तो बानिअई जानत। अरे जीकौ बगर जात ओइयैं रूखों खानें आऊत। एक दिना की होय तौ आदमी सै लेत। सैबे की कोनऊ सीमा होत। कन लगत कै हाहा नौ विनती उर सौ नौ गिनंती। रामकली उनें समजा कै हार गई अकेलें उनपै कोंनऊं असर नई परो। ऐसी कानात कई जात कै कुत्ता की पूँछ पुगइया में डारी उर जब कढ़ी सो टेड़िअई की टेड़ी कढ़ी। दिन पै दिन स्यामलाल की आदतें बिगरतई चलीं गई। अब तौ आउतनई वे रामकली की सुटाई करन लगे। उननें मार मार कैं रामकली के हाड़ खुनखुना कर डारे। एक दिनां तो वे कुण्ड में डूब मरबे खौं दौर परीं। पुरा मुहल्ला के लोग उनैं समजाबुजाकैं लौटा ल्आये। अकेलैं स्यामलाल तौ मँगूसरौ सौ उतै जमों बैठो रओ। ऊके सामैं तौ आग लगै चाय धुआँ धुँदाय, टूटी पलकिया सरगै जाय। कछू जनें तौ जा सोऊ कन लगत कै सबरऊ गाँव भगत जाय उर बै कत कै बिछौना बिछाव। रामकली अब ई संसार में रन नईं चाऊतती। अकेलैं दोई मौड़न कौ मौ देख देख कैं रै रै जातती। वा सोसत रत्ती कै हमाये मरबे पै इनन की का गत हुइयै। ईसैं छाती में गतकौ दै दै कैं रै रै जात ती।

स्यामलाल के मताई बाप लरका की करतूतें देख कैं गड़े गड़े जा रयेते। कोउ सैं कये में का सार है। कोउ कछू पुजै नईं देत। हँसी के करइया तौ सैकरन ठाँढ़े। कन लगत कैं मूरख सें दुख रोय उर रोता सैं घी खोय। कभँऊ-कभँऊ रामकली खौं अपने लिंगा बैठार कैं समजाउत बुजाउत रये अकेलैं ऊसैं का होत तो। ऐसी कानात कई जात कै 'अपनौ दाम खोटौ तौ परखइया खौं का दोष।' इत्ते समजाये बुजाये कौ रामलाल पै कौनऊ असर नई परो। रामकली तौ ऊकी आदतन सैं नँकुअन सें अफर गईती। एक दिना वौ आउतनइ बोलौ कै हरामजादी तैं बायरैं काय ठाँढ़ीती। तै बायरैं ठाँढ़ी होकें किये सैनें कर रइती। रामकली बोली के हमतौ कभँऊ बायरै कढ़तइ नइयां झारा बटोरी करकैं बायरैं कूरा डारबें कढ़ेते। उयै तौ मारबे पीटबे कौ कौनऊ ना कौनऊ बहानौं चानें तो। जबाब सुनतनई तुरतई बिगर परों उर बोलो कैं हरामजादी, चोरी उर सीना जोरी उर इत्ती कैं कैं डंडा उठाकैं दस बीस फटकार दयें। रामकली ससत होकें धरती पै गिर परी। मताई बाप ललकारत रये। अकेलैं ऊनें काउकी नईं सुनी। रामकली के दोई मौड़ा चिल्लयात रये। उर डरे डरे भूके प्यासें सो गये। स्यामलाल मांय गिरत उठत खटिया पै जा डरो। रामकली कौ हाँत टूट गओ। पूरौ आँग सूज गओ। अब ऊकी सास उठी उर लरका खौं गारी देत हरदी चूना लगाउत रई उर फिर दुखी होत अपनें कोठा में जा डरी। बारा बजे रात नौ तौ रामकली कूलत कलारत रई। दोई मौंड़न खौं देख देख कैं असुआ बुआउत रई। फिर सोसन लगी कै ई संसार में रैबो बेकार है। अब भुंसरा ऊ दुष्ट खौं हमाव मौ देखबे नईं मिलै। उर हमाये इन दोई मौड़न कीको देख रेख करहै? ऐई धुनाबीदी में दो तीन घंटा कढ़ गये। ऊनें सोसी कै ना रहे बाँस

न बजे बाँसुरी। ईसैं इनन खौं अपनई सगै लुआँय जाँय। ऊके भीतर भारी उथल पुथल सी होंन लगी। गेरँऊ सनाकौ परोतो। सास-ससुर गैरी नींद में सो रयेते। ऊकी बुद्धि भ्रष्ट सी हो रईती। हर हर बेरँऊ भीतर उर बायरै हो रईती। उयैना ठाढ़े चैन उर ना बैठें राई आ रईती। उयै अचानक नागिन की खबर आ गई जो अपने बच्चन खौं होतनई खात जात। बताव हम अपनें लाड़लें बच्चन खौं अपनें हौंतन कैसें मारैं। इत्तौं तौ कोंनऊ डायन तक नई करत। बड़ी देर नों टेर दैकैं रोऊत रई हर बेरँऊ मौड़न के मूँड़ पै हौंत फेरत रई उर उनसैं चिबक चिबक कैं पुचकारत रई। फिर कर्रो जिऊ करकैं उठी उर कुठिया पै धरीं सल्फास की गोली उठा ल्याई। दोई बच्चा गैरी नींद में सो रयेते। पैलाँतौ एक एक गोली दोइयँन के मौ में जबरई ठूँस दई। गोली भीतर जातनई वै दोई हौंत गोड़े पटकत पटकत फड़फड़ात उतई सो गये। जौ देख कैं रामकली छाती पीटन लगी उर अपनैं भाग खौं कोसन लगी उर तनकई देर में एक गोली गुटक कैं लोटा भर पानी पीं लओ। ऊकौं असर होतनई हौंत गोड़े पटकत पटकत धरती बकडूरत बकडूरत प्रान छोड़ दये। स्यामलाल खौं कछू पतों नई चलो। रातभर नसा में धुत्त डरो रओ भुंसारे पारैं नसा के उतरतनई उठो उर रामकली उर मौंड़न खौं खोजन लगों। उयै कमरा में तीनई लासें डरीं दिखानी। उनें देखतनई किकया परो। मताई बाप जग उठे। मुहल्ला के लोग लुगाई घरन सैं कड़कड़ कैं बायरैं आ गये। ऊकी मताई उर बाप बेहोंस हो गये। मुहल्ला भरके लोग-लुगाई हाय हाय करन लगे। कछू जनी कन लगीं कैं रामकली नें जौ भौत बुरओ करो। अपने हौंतन अपने बच्चन की हत्या कर डारी। अरे इत्तो तौ कोनँऊ डायन तक नई करत। पूरे गाँव में मुर्दानी छा गई। लोगन के घरैं उदनां चूले तक नई परचो। स्यामलाल की सबरी हेंकड़ी उतर गई। मौंगेचाले गुम्मसुम्म एक कौने में डरेते।

खबर मिलतनई पुलिस आ धमकी। उनन के मुअन सै सल्फास की गंध आ रई ती। मताई बाप सैं पूँछ ताँछ भई उन्नें कै दई कै हमें कछू पतों नइयाँ बेऊ लरका जानें। पुलिस स्यामलाल खौं पकर कैं लै गई उर पूँछताँछ कर कैं उनें जेल में डार दओ। अब पछताये होतका चिड़ियाँ चुग गई खेत।

ऐसे सैकरन स्यामलाल ई समाज में भरे धरे हैं। ई दारू नें सैंकरन घर वीरान कर दये। कजन आदमी अपनौ भलो चाय तौ ईसैं हमेंसा दूर बनो रये। तबई आदमी कौ जीवन सुख-शांति सैं वितीत हो सकत।

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)



श्रद्धेय परमलाल गुप्त को श्रद्धांजलि

- नन्दकिशोर पटेल

बुन्देली धरा छतरपुर में ७ फरवरी १९३३ को जन्मे डॉ. परमलाल गुप्त ऐसे प्राध्यापक, साहित्यकार रहे जिन्होंने अपना पूरा जीवन साहित्य को समर्पित कर दिया। उनकी शिक्षा पी-एच.डी., डी.लिट्, डिप्लोमा इन रूसी भाषा रही। आप का दुखद निधन १ सितम्बर २०११ को सतना में हो गया। आपके कृतित्व को प्रणाम करते हुए बुन्देली बसन्त परिवार श्रद्धांजलि अर्पित करता है। आपके द्वारा निम्न रचनाएँ लिखी गयी हैं।

१. **आलोचना** - रामचरित मानस और साकेत, गीतावली का काव्योत्कर्ष, हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, बिहारी और घनानन्द, सियाराम शरण गुप्त का साहित्य : एक मूल्यांकन, यशपाल और उनकी दिव्या, हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नवगीत - प्रकृति और युगबोध, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के प्रमुख स्तंभ, हिन्दी कहानी का इतिहास, आज का हिन्दी नाटक और रंगमंच, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यास, हिन्दी के प्रमुख निबंधकार, साहित्य का मर्म।

२. **निबन्ध संग्रह** - रचनाधर्मिता और समकालीन साहित्य, बेर-केर कौ संग, रामकाव्य बोध के विविध रूप, फागुन रंग उड़ावै।

३. **कहानी संग्रह** - अंधेरे, मन का आकाश, चार के चौदह, एक बुद्धजीवी का विषाद, सरकार बनाम लोकतंत्र, नाटक, मंत्री जी की भैंस, इक्कीसवीं सदी और कटे हुए हाथ, आखिर कब तक, बन्दरों के बीच (कई विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य, मराठी अनुवाद)

४. **उपन्यास** - धुन्ध के पार, असलियत, दाम्पत्य के चरण।

५. **संस्मरण** - अतीत के अनमोल क्षण।

६. **नाटक** - एक ऋण, केशवदास का प्रेत, अप्रत्याशित।

७. **कविता संग्रह** - राह, मंजिल, धरती की बेटी, दमयंती, सूखे हैं बसंत के प्राण, गति ही जीवन की पहचान, मुझे नहीं हंसना आता है, कुहरे से आछन्न दिशाएं।

८. **व्यंग्य संग्रह** - हमारे आदर्श मुख्यमंत्री जी

९. **यात्रा वृत्त** - भारत-दर्शन।

१०. **भाषा शास्त्र** - हिन्दी का व्यावहारिक व्याकरण, हिन्दी भाषा भाग १, २, ३, हिन्दी भाषा संस्कृति और साहित्य, सामान्य निबन्ध, काव्यांग विवेचन।

११. **सम्पादन** - हमारी कला दृष्टि और रचना-कर्म, गहोई साहित्यकार और उनका रचनाकर्म, बुन्देली के प्रमुख कवि और उनका काव्य, स्वामी पूर्णानन्द : व्यक्तित्व एवं दर्शन, अनंक स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित।

आपके कृतित्व को देखते हुए विभिन्न संस्थाओं ने आपको राष्ट्रभाषा रत्न, साहित्य महोपाध्याय, साहित्य शिरोमणि जैसी उपाधियों से विभूषित किया। आपके निर्देशन में २३ छात्रों ने शोध उपाधि प्राप्त की है।

- कमला कॉलोनी, छतरपुर

लाला परमानंद प्रधान की आसाधारण काव्य प्रतिभा

- डॉ. देवी प्रसाद खरे 'प्रसाद'

असाधारण काव्य प्रतिभा के धनी लाला परमानंद प्रधान ओरछा राज्य के महाराजा प्रतापसिंह जू देव के आश्रित श्रेष्ठ कवियों में अग्रणी थे। उन्होंने ३२ काव्य ग्रंथों की रचना की। उनकी इन कृतियों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया है -

(अ) भक्ति विषयक ग्रंथ/कृतियाँ - इसमें प्रबन्ध काव्यान्तर्गत, प्रमोद रामायण (महाकाव्य) के अतिरिक्त जानकी मंगल, मंजुरामायण, रामायण मानस दर्पण, रामायण मानस चंद्रिका रामायण मानस तरंगिणी हैं। लघु काव्य में हनुमत विरुदावली शतक तथा स्फुटकाव्य में रामचंद पचासा, जानकी श्रृंगाराष्टक, गणेशाष्टक, विश्वंभर सुमिरिनी, अपराध भंजन (रामचंद्र चालीसी) वर्ण चौंतीसी तथा हनुमत पैंतीसा जैसी सात कृतियाँ हैं।

(ब) नीति विषयक ग्रंथान्तर्गत नीति सुधा मंदाकिनी, हित मुक्तावली, प्रतापनीति चंद्रोदय (रत्न परीक्षा), प्रताप-नीति दर्पण तथा नीति सारावली कुल पाँच कृतियों को समाविष्ट किया गया है।

(स) श्रृंगार विषयक ग्रंथान्तर्गत मात्र रम्भा-शुक संवाद एक अपूर्ण किन्तु उत्कृष्ट कृति है।

(द) विविध ग्रंथान्तर्गत भर्तहर सार, महेन्द्र मृगयादर्श, महेन्द्र मृगया चरित्र, महेन्द्र धर्मप्रकाश (व्यवहारखण्ड), सामंत रत्न, स्फुट पद, ब्रह्म कायस्थ कौमुदी, राज भृत्य प्रकाश, गंभीर छंदोंदय पिंगल, रस अलंकार बोधिनी, अष्टगण प्रस्ताराष्टक तथा रसभेद वर्णन जैसे बारह ग्रंथ हैं।

श्री प्रधान की उपर्युक्त काव्य कृतियाँ न केवल श्रेष्ठ रचनाओं का भंडार है, अपितु अप्रतिम व दुर्लभ ऐतिहासिक, पौराणिक, ज्योतिषीय एवं शोध परक ज्ञान की अमूल्य धरोहर को संजोये हुए हैं। स्थानाभाव के कारण सम्पूर्ण पर प्रकाश डालना तो संभव नहीं, किन्तु कुछेक दुर्लभ व हिन्दी साहित्य के लिए सर्वथा नवीन एवं अप्रतिम पर संक्षिप्त में प्रकाश डालकर उनके विमुल ज्ञान को रेखांकित करने का प्रयास किया जा रहा है।

'अष्टगण प्रस्ताराष्टक' में श्री प्रधान ने आठों गणों की १६-१६ विशेषताओं के अंतर्गत प्रत्येक गण के देवता, फल, तिथि, नक्षत्र, वार, वर्ण, रंग, देश, स्थल, जन्म, गोत्र आयुध, दृग, कलायें, रस, वाहन, वेष, दिशाभिमुख व लक्ष्मण देकर अभूतपूर्व सामग्री उपलब्ध कराई है।

'प्रमोद रामायण' महाकाव्य में तो भगवान श्रीराम की वंशावली के साथ-साथ मातृपक्ष, सीता सहित माण्डवी जी, उर्मिला जी व श्रुतिकीर्ति जी की वंशावली देते हुए रसिक शिरोमणि का स्वरूप अंकित किया गया है।

श्रीराम की बुआ देवकला सर्वथा एक नवीन पात्र हैं जिनका विवाह संधिराज के साथ वेद रीति से सम्पन्न हेने का वर्णन निम्नानुसार है -

श्री नृप दशरथ की भगिनी दिव्य रूपनी पर्म।
देवकला नामा................धर्म।
संधिराज नरनाथ, सालनीक सुत तास वर।
विवाह तिहि साथ, वेद विहित सम्मान कर।।

कौसल देश के राजा ब्रह्मानीर्य के वंश में कौशल्य हुए कौशल्य की पत्नी 'सौजन्या' से चार पुत्र हुए, जिनके नाम प्रभ, अवरज, रविप्रभ तथा दिवाकर हैं। ये चारों श्री रामचंद्र जी के मामा हैं। प्रमोद रामायण के आधार पर इन पंक्तियों के लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध में (अज्ञात कवि लाला परमानंद प्रधान जीवन और साहित्य) श्रीरामचंद्र जी के पितृपक्ष व मातृपक्ष की वंशावली तैयार की थी जो इस प्रकार है -

श्री राम के पितृ पक्ष की वंशावली

अज (सानंदा)
- दशरथ
  - १.कौशिल्या — राम-सीता — लव, कुश
  - २.कैकेयी — भरत-माण्डवी — पुष्कल, तक्ष
  - ३.सुमित्रा
    - लक्ष्मण-उर्मिला — दक्ष, अंगद
    - रिपुसूदन-श्रुतिकीर्ति — चित्रकेतु, शत्रुघाती
- विक्रमरथ — भानुप्रभ, गुनप्रभ
- यशोरथ — भद्रकान्ति, चित्रविक्रम
- देवकला-संधिराज — नामदेव

श्रीराम की मातृ पक्ष की वंशावली

कौशल्य (सौजन्या)
- कौशिल्या-दशरथ — राम
- प्रभ-गुना — सीलभानु
- अवरज-सील — सुजान
- रविप्रभ-स्वरूपा — देवदाल
- दिवाकर-गुनभाजा — देवप्रभ

सुमित्र-(सुभावती) (सुमित्रा) - दशरथ — लक्ष्मण, शत्रुघ्न

कैकय राज
- (कैकेयी) - दशरथ — भरत
- देवक - (सुदेवी) — देवमान

इसी प्रकार नीति विषयक ग्रंथों में भी श्री प्रधान ने अप्रतिम काव्य प्रतिभा के साथ चाणक्य, विदुर शुक आदि भारतीय नीतियों की उदात्त नीति का प्रतिपादन करते हुए अन्यतम ज्ञान का परिचय देकर श्रेष्ठ काव्य रचना प्रस्तुत की है।

प्रताप नीति चन्द्रोदय (रतन परीक्षा) जो शुक्र नीति पर आधारित है, में नौ रत्नों के नाम करण है - हीरा, जलज, प्रवाल, गोमेद, इन्द्रनील, वैडूर्य्य, पुष्पराग, पन्ना तथा माणिक्य को चार वर्गों में निरूपित करते हुए श्रेष्ठतर रत्न में हीरा, श्रेष्ठ रत्नों में पन्ना, माणिक्य व मुक्ता (जलज), मध्यम रत्नों में इन्द्रनील, वैडर्य व पुष्पराग तथा निम्न वर्ग में विद्रूम एवं गोमेद को स्थान दिया है।

इतना ही नहीं श्रेष्ठतर रत्न हीरा को पुत्र की कामना करने वाली महिलाओं को धारण न करने का परामर्श दिया है।

"होय पुत्र की कामना जिहि कामिनि के चित्त।
सो न कभऊँ धारन करे हीरा गुन हित चित्त।

रत्नों का मूल्य निर्धारण करने हेतु वे एक रत्न पारखी की तरह शिक्षा देते हुए कहते हैं कि यद्यपि रत्न छोटा हो, किन्तु विस्तार में बड़ा दिखे तो वह मूल्यवान होता है। रत्नभारी हो, किन्तु विस्तार न हो तो वह कम मूल्य का होता है। इसी प्रकार सर्करा आभार का हीन, चिपिट (चपटा) मध्यम तथा दल से आभा बिखेरने वाला रत्न श्रेष्ठतर होता है। गोलाकृति रत्न का मूल्य उसकी दीप्ति पर निर्भर करता है। छन्द दृष्टव्य है-

"रत्न होय लघु जदपि, पै विस्तार महान।
कहत आधिका मौल्य की तामधि सुमति निधान।
होय रत्न गुरुता अधिक पै विस्तार न होय।
कहत हीन करि मौल्य तिहिं रत्न पारखी जोय।
सर्कराय जो रत्न है हीन मौल्य तिहिं जान।
मध्यम चिपिट सु श्रेष्ठतर दल आभा अति मान।
रत्न वर्तुलाकृत विदित दीपति दंत विसाल।
यथा काम कइ मौल्य तिहिं कोविद सुमति रसाल।

उन्होंने अग्रिम छंदों में कृत्रिम मोतियों के लक्षण बतलाये हैं। उनके अनुसार सिंहल दीपवासी मानव बड़े चतुर होते हैं। वे कृत्रिम मोती बनाते हैं जिसे सारा संसार जानता है। संदेह दूर करने हेतु गर्म तेल अथवा जल में नमक डाल कर घोल बनावें, उसमें मोती डाल दें। रात्रि बीतने उपरान्त उसे ब्रीह से रगड़े। यदि वह सौंदर्य हीन (मलिन) हो तो उसे कृत्रिम समझें।

नवरत्नों का सम्बन्ध नवग्रहों से जोड़ते हुए वे कहते हैं -

"स्याम सघन घन सी रुचिर आभा जिहिं दरसंत।
इन्द्रनील नामक रतन सो सनि कौं हितवंत।।"

इसी प्रकार उन्होंने पृथक-पृथक छंदों में प्रवाल को (इसे विद्रूम भी कहते हैं) पीले, लाल तथा भगवा रंगों का मिश्रित रंग वाला रत्न यद्यपि अमंद निरूपित किया गया है, किन्तु कृष्ण को प्रिय होने पर यह अति आनंददायक माना गया है। गोमेद रत्न राहु को, वैडूर्य्य रत्न केतु ग्रह हेतु शुभ बताया गया है। पन्ना रत्न को चाषे तथा शिखि (मयूर) पक्षी के पंखों की तरह आभा दर्शाने वाला हरे रंग का रत्न बुध को सुखदायी वर्णित किया गया है। मानिक्य रत्न सूर्य को प्रिय लगने वाला निरूपित किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में प्रधान जी को श्रेष्ठ रत्न पारखी व ज्योतिष ज्ञान का परिचायक है।

अतः यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण न होगा कि लाला परमानंद प्रधान बहुमुखी प्रतिभा के धनी बुन्देलखण्ड के ही नहीं देश के प्रख्यात कवि हुए हैं। उन्हें यथा समय प्रकाश में लाया गया होता तो वे किसी भी कवि से उन्नीस नहीं बैठते।

उनके ३२ ग्रंथों का प्रकाशन परमानंद प्रधान ग्रंथावली के रूप में तीन खण्डों में पूर्ण हो चुका है। डॉ. शिव प्रकाश वर्मा उनके प्रपौत्र, जो अमेरिकावासी बन चुके हैं शीघ्र ही सम्पूर्ण ग्रंथावली को हिन्दी जगत को भेंट करेंगे, ऐसी प्रतीक्षा है।

- प्रसाद कॉलोनी, शहीद स्टेडियम के पास, टीकमगढ़

गीत

- उमाशंकर खरे 'उमेश'

चलें हम उन खेतन की ओर, जहाँ पर हलधर सहित किशोर।
गूँज रइ, अलगोजन की तान,...
डार-डार पै चहकें चिड़ियाँ, करें पपीहा शोर...। चले हम...।।

मेंढ़न-मेंढ़न रंग बिरंगे, कीने फूल सजाये।
हरे भरे खेतन में कीनें जे मोती बगराये।।
बाल रवि लेतइ उन्हें बटोर, होत जब अलसाई सी भोर।
कोकिला गावे स्वागत गान,
झूम रही खेतन में बालें, नृत्य करत है मोर...। चले हम...।।

भीनीं-भीनीं महक रही है, गदराई अमराई।
मधुरस भरे छलक रय महुआ, उर सरसों पियराई।
बाग सुनकर मुरगा की भोर, दई है उनने चकिया ओर
छेड़ती कैसी मीठी तान,
खनन-खनन बाजे चुरियाँ, मन में उठत हिलोर...। चले हम...।।

पैरें फटो पोलका तन पै, उगरो आंग सवारें।
चली जात जे धना लाड़ली लामें घूंघट डारें।।
हाथ में लयें गिरैया डोर, हवा में उड़वे अचला छोर
है अधरन मुस्कान,
तिरछै नयन चितउत सजन खों जैसे चंद्र चकोर...। चले हम...।।

सनें हाथ माटी से इनके माथें चुअत पसीना।
बने खेत विन्द्रावन जिनके मथुरा और मदीना।
झूल रय झूला नन्द किशोर, कितउ किलकारी को है शोर
पवन बसंती विजन डुलावे, जिया रही झकझोर...। चले हम...।।

-साकेत नगर, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली कहानी -

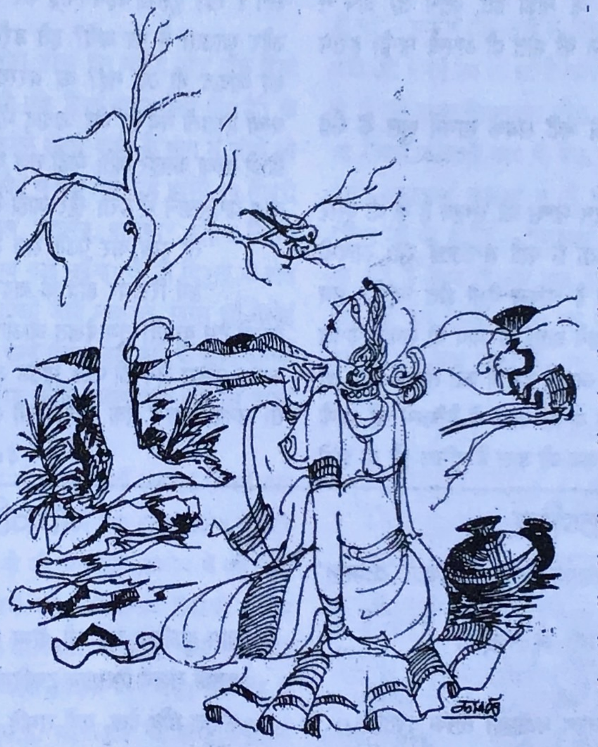
खुली किताब से कक्का

- दिनेश चन्द्र दुबे

राम तीरथ कक्का हमाये पड़ौसी हैं। उमर हुऐ स्यात् एककम अस्सी। उनकी जौन बात, हमें सबसे अलग लगत वौ जौ है कें भीतरै बाहरै वे एक जैसे हैं। आज काँ है ऐसे आदमी?

आजई सवेरे घूँमवे में मिल गये। कछुअई कदम संगै चल पाये हुऐ हम कै, उनकौ मोबाइल बजौ तौ। धोती, कमीज, हाथ में डंडा भलेई उन्हें निपट देहाती दिखावे, लेकिन वे सब शौकन से भरे पूरे हते। नौकरीयई में जई कालौनी में 'मकान बना लऔ तो। मोटरकार, ए.सी., गीजर, मोटर साईकिल का नइयाँ उनके घरै। जौ अलग बात है कै वे आसपास कऊँ जात तौ जात है साइकिलई सें। तई सै स्याद आजऊँ हट्टे-कट्टे धरे। और लोग कऊत दूसरी लुगाई तो जग जाहिर है, कैऊ कैऊ मोड़ी तक उनपे मरी जात।

'हां तो फोन घनघनाओ और वे, औरन घाई अलग हटकै सुनवे के बदले सीधे बतियान् लगे ते - को देवेन्द्र। आज जल्दी उठ गये का भैय्या। अरे यार इतक दिनन से जासैं हम सुन्नाटो खैचें लग रये कै जब सै जे मरी, उतै कौ काम और मूँढ़ पै आगऔ। तुमई नै तो कई ती कै बीस साल पैले जौन जुम्मेदारी तुमने छोड़ दई ती अब पूरी करौ। हमे बात जच गई ती सो...। मौड़ा? काये के मौंड़ा यार। बड़ी शराब पी कै रात भर इतै उतै लुगाईयन खौ फौन करत रै और सबेरे ग्यारा बजे उठ है। वकील है लेकिन कचहरी काये खौ जै, जब मताई छोड़ गई लाखन जाकी ब्याजई जिन्दगी काटवे भौत है। खेती, मकान हैई। छोटे खौ अपने लुगाई, लरका सै फुरसत मिलै तौ बाप खौ देखै। बैनन की खबर लेंय। इतै एक और आफत बढ़ गई। बीच वारी मोड़ी पागल हो गई। बाके आदमी ने छोड़ छुट्टी का दावा कर दऔ सो अलग। कारन बाकी मताई बाके नाव सोई छोड़ गई कई लाख। दावा कर दऔ फिर जब जौ खबर परी तो आदमी उल्टौ पलटइयां खा रऔ। हम तौ राखहैं। इतै दावा उतै राखवे की चालबाजी। मुकदमा हमैई लड़ने पर रऔ आदमी की नियत देख कै। उनई सब वातन में आजकल विदे हैं। मौड़ी काँ है तुमै नई मालूम? पागल खाने में। सात मईना हो गये। पागलखानौ येई दस कदम पै है सो उतैई से निकरौ तो याद आ जात यार। जौन मोड़िये गोदी में झुलाओ होय वौ उतै डरी होय तो कौन से बाप खौ नींद आय, सातऊ सुखन में। तुम तौ चिरगाँव के हौ, लिखौ जापै। तुम कततौ हो कै अपुन के पास कौनऊ विषयई नई रात लिखवे खौ। यार जौन लोग लिखकै अमर भये वे आग पी कैई लिख पाये। कऊ अगर हम लिखवौ जानते तौ.... अरे यार हम कायके लिखइयां हैं। हम तौ सौकिया कभऊँ कभऊँ कछू... और...अच्छा।



'अब समझ में आई कै आप कछू मइनन से काये इतै रत और काये ससुरारे भगत फिरत।'

'का करै यार गुप्ता जी, कैवे कौ का नइयाँ? मोड़ा, मोड़ी, नाती, नातेदार, जमीन जादाद, रुपैया, पईसा। लेकिन आज कौ जमानौ तौ जौ आगऔ लगत कै बाप मताई केवल जा नई औलादन खौ सब जोड़कै मर जावे खौ हैं। हमाये बड़े सपूत तौ चाउत कै बाप उनके लानै लुगाई और फँसा फँसा कै पेश करै। सुनी ती तुमाई दूसरी भौजाई सें, कै हमसै कऔ कै अब छोड़ो, जो घर, शैर। जमीन जायदाद देखौ गाँव जाकैं। हमें जिअन दो अब। खूब ऐश तौ कर लऔ। जईसैं भगाने परो इतै सें।'

अब समझ में आई कै काये आपकौ मकान कभऊँ कभऊँ इत्तौ भर जात और कभऊँ कभऊँ काये भूता खानौं बन जात। लेकिन अबकी बेर मैन जी भी नई आई करवा चौथ पै?

"जब तक गाल पै बोटी, तब तक यार की रोटी" वे कभी खुद हमसे कतती 'काये तुम छोड़ तौ न दैहौ बुढ़ापे में पर अब उल्टौ हो रऔ। वे बुढ़या गई तौ अब उनै हमसे ज्यादा चिंता अपने परिवार की और नौकरी की हो गई। आज कौ प्रेम भी ऐसोई हो गऔ भैय्या। जौई हम जा पगलिया खौ समझान चाउत। पागलखाने में डरी है पर कै रई कै हम जै है वई आदमी पै। बोई जौन पागल करकै मताई के पास छोड़ गऔ तो गांव में। जई सै तो मारी गई । जौन दिना दौनो भाई जाय ग्वालियर लियाये, वई दिनां डाकुअन ने अकेली जान कै माँड़ डारौ। मर गई और छोड़ गई हर बच्चा के नाव, लाखन, डाकखाने में। उतै वो मरी, इतै 'पागल है' मोड़ी जा के आधार पै, तलाक को दावा कर दऔ सारे ने। लेकिन जैसई खबर लगी कै मताई पइसा छोड़ गई है, उल्टे

अस्पताल में मोड़ी सैं सम्पर्क करन चारऔ। डाक्टर तक भरमया गये कै कऊँ, हम तौ मौड़ी कौ पइसा व्याव दुरवा कै नई खान चाऊत। जबकि हम ब्राह्मन बनीयां, मोड़ी के घर कौ पानी तक नई पियत। मोड़ी डरा रई। बाप है बूढ़ौ। बैने अपने-अपने घरन में है। भईया अपने अपने धंधन में लगे। कोऊ बाल बच्चा है नईयां जासैं, पिटत, कुटत रओ लेकिन खसम कौ संग जिन छोड़ो। पतिव्रत धर्म और बदले भये जमाने की सच्चाई से गाफिल मोड़ी समझ नई पा रई सई रस्ता। वईके कारण डरी पागल खाने में और हम लड़ रये जा उमर में, मुकमा दमाद सैं। जग हँसाई करा रये। लेकिन हार हैं नईं हम गुप्ता जी। धरम निवा कैई मान हैं बाप कौ। सच्ची कयै हमने तो इनकी मताई भी नई छोड़ी ती। वई ने हमैं छोड़ो तो अपनी मताई के भड़कावे पै। कैवे खाँ पईसा ऐसी चीज है कै अच्छे अच्छे पांवन में गिरे रत। पर वे जौ भूल गई ती कै पण्डित राम तीरथ, आज के दमाद नई हते। वे एक मास्टर के मौड़ा हते, जौन खौ बाप ने सिकाओ तो कै जौन अपनी मेनत कौ होत वौ अपनौ मानौ। हराम कौ अपनौ और लै जात।

"कक्का जू तुमै घर की बातैं सबके सामने खुल कै कैवे सुनवे में डर नई लगत?"

"नई बिल्कुल नई। कारन मान्स को सुभाव है कै वौ दूसरे की कमजोरियन खौ कऊँ न कऊ से पतौ लगांउतई रत। आदमी जानत कै वाकी बात ढकी मुदी है लेकिन ऐसो होत नईयाँ। अब आपई बताओ कै आपने कभऊ हमै बताई कै आप भी कभऊ पागल रये। लेकिन हमें मालूम है। और आपसे हम न कते तौ का आप खौ मालूम नहीं हती कै हमाई मोड़ी पागल खाने में है?कानें खौं कानौ कोऊ नई कन पाउत। जासै... जब जौ हाल है दुनिया कौ तो झूठी सच्ची, दस वेर वोलवे की जगा एक वेर सच्ची कहो तौ वेर वेर कौ झँझटई नई रात। फिर एक बात औरऊ उमर ने सिकाई के मान लो हमे तुमै एक दूसरे की घरू बातें पतई हती तौ हमने कौन कौ का उखाल लऔ? आदमी आज खुदई की खाजें तो खुजा लेय तब दूसरे की खुजाय।

"अब एक बात काये रै जाय पूछवे सो। वरसन से सोच रये ते कै...

"पूछौ! डराव नई।

"तुमाई दूसरीयई लुगाई इतेक दिनन से कैसे जुड़ी। पेली काये...

"जाकौ कारन दोऊअन की एक सी रुचियां है। वौ गाऊत हम गाऊत। वौ लिखत नईयां पर पढ़वे में वाय भी भारी सुख मिलत। दोऊ अपने अपने पावन पै ठाड़े। वौ नौकरी करत। हम भी करत। पैली में जौ बात नई हती। वैसे आज की उमर को अनुभव तब होतौ तौ वाय भी नई खोउते। पर गई उमर कँऊ लौटी का? फिर एक ऊपर न्याय। हमने अज्ञानी लुगाई छोड़ी तौ का आज दूसरी हमाये संगै रै रई? दूसरी बेईमनयाई कर रई वादा करकै तौ रोज कमाउत और खाउत। है का बापै? इतै डरौ डरौ फिर रऔ तो, तापे पैली की जादाद भी आ गई? का बरसा जब कृषि सुखानी.... तुलसी बब्बा लिखती गये हैं। जेई जादाद मौड़ी मौड़न की उमर के टैम होती तौ जे बच्चा कलट्टर होते। मौड़ी राज कर रई होती अपने अपने घरन में, जौन पागलखाने में डरी। खैर जाही विद राखै राम ताहि विधि...।"

"तौ अब कर पैऔ सब ठीक ठाक?

"हमें रिटायर होवे के बाद कामई का है? भगवान ने काम देदओ टैम काटवे। तुम देखत जाओ। सब ठीक करकैई मान हैं और कक्का पुलिस लैन की परेड ग्राउंड आ जावे से पी.टी. सी करन लगे ते। उनका चेहरा एक अजीव सी आभा से दमकन लगो तो।

- ६८, विनय नगर-१, ग्वालियर

लोकगीत

- कमल सिंह सोलंकी 'कमल'

वृक्ष बहुत ही लगइयो, तनक धरती को सजइयो।
धरती को श्रृंगार वृक्ष हैं,
जल संग्रह में बहुत दक्ष हैं पर्यावरण बचइयो। तनक धरती...।।

राहगीर को छाया मिलत है
छाया से धरती कम ही तपत है
सड़क किनारे लगइयो। तनक धरती...।।

पर्वत पर तपते पथरा रचे हैं
जंगल में केवल खकरा बचे हैं
हरयाली थोड़ी बचइयो। तनक धरती...।।

वृक्षों से धरती की शोभा बढ़त है,
शुद्ध हवा, जल, औषधि मिलत है,
अंगना में तुलसी लगइयो। तनक धरती...।।

- जासलपुर, होशंगाबाद (म.प्र.)

चौकड़ियाँ

- डॉ. हरिमोहन गुप्ता

घाम दुफरिया सह रये, सिय के पाँव फफोला पर गये।
कहहिं लखन विलमाव टुफरिया, का दुख सबको दे रये।
शीतल छाँव देख, कयें रामहि, का तुम भ्रम में पर गये।
आँखन अँसुआँ निकर न पावें, बेई फफोलन भर गये।

जेठ दुफरिया, चले लँगूटा, उमर अबे लरकइयाँ।
पानूँ ल्यायें, प्यास बुझा लो, धो डारो जा भुइयाँ।
ऐसो लगत, संग दोऊ भइया, श्याम तुमारे सैयाँ।
हिलमिल बैठ, दुफरिया काटो, बन जाँयें हम गुइयाँ।

- ४१०, गांधीनगर, कौंच
जिला जालौन (उ.प्र.)

आत्मकथात्मक संस्मरण -

मैंट सकै को बिधि के अंका

- डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल'

मान्स बारे सैं बढ़ौ भलई हो जाए, पै अपने जीवन की खास घटनायें कभूँ नईं भूलत। जब बौ अकेले में फुरसतौ बैठो होय तव वे घटनाएँ कोंनऊँ बात के प्रसंग में ऊके दिमाँक में सनीमा की रील की घांई चलत जात और ऊसें जुरीं घटनन के चित्र उकेरत जात। कछू देर खों मान्स उनमें ऐसें रम जात कै दीन दुनियाँ कौ होस सुन्दा बिसर जात, अपने तन बदन की सुध खो देत। बुढ़ापे में जब आदमी की हाथ पाँव थक जात, तब ऊसे गिरस्ती के काम दंद नईं बनत। तब बाय अपनी जीवन-नैया मौड़ा, मौड़िन और बउअँन के भरोसें छोड़बे की मजबूरी आन परत। अब जा उनके ऊपर रऊत कै बे अपने बाप मताई के संगे बुढ़ापे में का कैसी बेभार करत। उनै कैसीं राखत, सुख देत कै दुख?

अपनी चाकरी के चालीस बरस दस मइँना और पाँच दिनाँ गुजार कें जैसई फुरसते भये कै एक दिनां हमाय हेती पूँछ बैठे कै तुमाई नोंकरी कैसें लगी? तब हमने ऊत्तर दऔ कै भाग में जीके जो लिखौ होत वौई होत - हम तालवैट में पैदा भये, पढ़े झांसी रय हँसारी और नौकरी के चक्कर में भोपाल, रायसेन, ग्वालियर, दतिया जिलन में घूमत फिरे। मान्स के हातै सब कछू नइँया। वौ तौ विधना के हात कौ एक खिलौना भर है - वौ जीखों जैसौ नचाउत, मान्स खौं बैसोई नचनें परत। जो बाय कराउँनें, कन्ने परत। हम कयँ कै हमने दुनियाँ की दौलत जोर लई, बड़ौ पद पा लऔ, महल बना लये जा हमाई भूल है, झूठौ अहंकार है।

अब तुम हमई खों देख लो कै हम पैदाँ तालवैट में भये तऊ उतै हाई स्कूल तकई पढ़ पाए जब कै मर्दन सिंह इंटर कालेज में इंटर तक पढ़ सकत ते। फिर झांसी के जी.आई.सी. कालेज में पढ़े और रैवे पाँच मील दूर हंसारी में रनें परी जितै हमाय पिताश्री केन्द्रीय प्रधानाध्यापक हते फिर झाँसी के बी.के.डी. से बी.ए. पास करी और आगे की एम.ए. की पढ़ाई के काजैं भोपाल जानें परी। बिते देर सें पौंचे सो (काय कैं झाँसी में एम.ए. की पढ़ाई नई हती) हमीदिया कालेज में भर्ती नईं हो पाए। भलईं हम ऊ बेराँ शिक्षा मंत्री शंकर लाल शर्मा तक सें मिले, पै विलम्ब की सजा भुगतनें परी।

भोपाल रेलवे स्टेशन के करकें रेलवे क्वार्टर हैं और उनई की हद्द से सटे कछू निजी (प्रायवेट) मकान हैं, जिनमें से एक बड़ौ घर हमाय बब्बा जू कौ हतौ जो रेलवे में चाकर हते। जब हम भोपाल पौंचे, तब बब्बा जू गुजर चुके थे, गिरस्ती को भार बोझ बउआ जू के ऊपर हतो। जैसई हम भोपाल स्टेशन पै पौंचे रेलगाड़ी सें उतरकें सूदे बउआ जू नों पौंच कें उनके चरन छुये फिर कक्का काकियन के पांव छुए। सबसे जांदाँ खुशी बउआ जू खों भई - वे फूली नई समानी। दूसरे दिनाँ सबेरे उठ के नहा धोके कलेऊ करके हम हमीदिया कालेज के प्रिंसपल से मिले औ भर्ती होवे के काजै प्रार्थना करी - उनने सुन्तनई टोराँ नाईं कर दई - कै तुमने भौत देर कर दई, अब हम तुमैं भर्ती नईं कर सकत। सुनतनई हमाऔ मौ उतर गव। दूसरे दिनां हम अपने गाँव तालबेहट के राम भरोसे दीक्षित की चिट्ठी लै कें शंकर दयाल शर्मा शिक्षा मंत्री म.प्र. नों पौंचे। उनने कई 'बेटा हम हमीदिया कालेज के प्रिंसपल सें बात करत तुम दो घंटा बाद आओ।' दो घंटा बाद जब हम मिले तौ उनने जुआप दऔ कै - मल्होत्रा नें कई कै यूनीवर्सिटी के नियम सें अब कैसऊँ भर्ती संभव नइयाँ। मजबूरी है।

जा सुनकें मौ लटकाय हम घरै लौट आए। दुक्खन के मारें हमसें रोटी नईं खाई गई - बऊआ उदास हो गई। हम चितभंग से हो गए - मन में तरा-तरा के बिचार आउत जात रये, जैसे तैसें रात कटी औ भोरई उठ कें झांसी वापिसी कौ विचार करत आँगन में बैठे ते, कै उतै हमाए शिवदयाल पुरैत मम्मा आ टपके जिनै हमाई बऊआ जा रज्जन कऊतती काय कै जेऊ नाँव हमाए बब्बा जू कौ हतौ। पुरेत मम्मा आउतनई बऊआ जू से बोले कै - "बाई तमाखू खबाओ, दफ्तर खों देर हो रई - "बऊजा जू खों चुप्प देख फिर बोले - बाई का बात है आज तौ तुम कछू उदास सी दिखा रई। बऊआ बोलीं कछू नईं, हम नईयाँ उदास। तब पुरेत मम्मा बोले - हम नईं मान्त, कछू न कछू बात जरूर है, तुम हमसैं छिपा रईं।



पुरेत मम्मा खों हठ पै अड़ी देख बऊआ बोलीं - रज्जन बाबू, जौ हमाव नाती झांसी से एम.ए. पढ़वे आओ तौ वे - कालेज में भर्ती नई हो पाव सो ईखों वापिस जाने परऔ। तीसें हम दोऊ दुखी और उदास हैं। सुनकें रज्जन बाबू बोले - बस इतनी सी बात - फिकर छोड़ो - ईकौ इलाज तौ हमनों है - दुखी नई हो। फिर हमसें बोले - तुम झांसी वापिस जिन जाओ, इतई नोंकरी कर लेओ। हमने कई कैं हमाय नन्ना (पिता) नाराज हैं - काए कै बिन्नें तौ हमें पढ़वे पौंचाव तौ नौकरी करवे नईं। सुनके वे फिर बोले - "देखौ तुमाई एक साल तौ बर्बाद होई गई, न घर के रय न घाट के, ईसे नौकरी कर लेओ। मन नईं भरै तौ बाद में छोड़ दइओ।" उनकी बात हमें नौनी लगी, हमाय गरैं उत्तर गई सो हमने हामी भर दई कै ठीक है।

तब उननें दुर्गा कक्का सें एक कोरौ कागद मँगाऔ, दरखास लिखकें हमाए दसकत कराये और अपने दफ्तर लै गये। संजा के लोटकें हमसें बोले तुमाओ सोमवार खों इन्टरव्यू है। ऊमें सी.एल. खेड़ा बैठे, जो तुमाय गांव के के.एन. शर्मा एस.एस. भोपाल स्टेशन के परौसी हैं। सो उनकी चिट्ठी लै कैं खेंड़ा साहब से मिल लिऔ। सो हम केदार नाथ कक्का जू की चिट्ठी लैकै इतवार खों खेड़ा साहब से मिले। उनने हमाई योग्यता पूँछी। हमनें कइ कै हम बी.ए. पास हैं, तब बिनो कइ कै इतै तौ हाई स्कूल पास तक नई मिल रये उनकौ टोटो है तुमतौ बी.ए. पास हो - सो सोमवार खों दफ्तर आ जइयो। सोमवार खों हमाये सार्टीफिटकन की जाँच भई फिर हुकुम भऔ कै 'हमीदिया हास्पीटल भोपाल मेडिकल जांच करा के आओ।" जांचे कराके हमने रिपोर्ट दई नईं के नौंकरी कौ नियुक्ति पत्र मिल गऔ कै तत्काल बताई जगह पर हाजिर हो।

हमाई तैनाती पूर्व भोपाल (रायसेन जिला) की बरेली तैसील के कामतौन मिडिल स्कूल में भई ती जो भोपाल से अठत्तर मील दूर हतौ। सो दूसरे दिनाँ हम तड़के उठे और झाड़े फड़ाकत से निबट हाथ मौं धोकें पैली मोटर पकर कें बरेली खों चल दये। भोपाल सें बरेली नोंकी गैल पक्की कम, कच्ची जाँदाँ हती ऊपर सें सर्पीली इत्ती की जिन्दगी में पैली बेर देखी ती। सोऊ घुमावदार गैल में मोटर में चक्कर ऑन लगे, उबकाई आईं, उल्टियाँ-पल्टियाँ भई, जैसें तैसें राम रटत गैल कटी दुफर नों बरेली पौंचकें हालऊँ कामतौन स्कूल पैदल चलकें हाजिर हो गए जो ढिंगईं मील भर की दूरी पै हतौ। जी दिना हम हाजिर भये ते ऊ दिनाँ २७ सितम्बर, हतौ और पैली तारीक सें दसहरे दिवारी की २७ दिनाँ की छुट्टी हो गई ती, सो हम उतै सें बापिस झांसी लौट हंसारी आ गए।

नन्ना (पिताश्री) नें पूँछी-काय भर्ती हो आए हमनें नाईं कर दई - सुन्तनई उनकौ पारौ चढ़ गव। बोले - "हम तौ पैलई सें जानतते कै आलस कौ नतीजा भुगतने परहै, इत्ते दिनाँ सें कै रयेते कै अबेर नईं करौ, जल्दी जाओ - सो गये नई और साल बर्बाद कर लई।" डरन के मारें हम चुप्प रये कछुअई, नईं कई। वे बेरुखे हो गये और उदास दिखान लगे। वे नेम-टेम के पक्के हते। रोज भुन्सारें उठकें लोटा बाल्टी लै कें शंकर जी के मंदिर पौंच कें उन्ना कपड़ा लोटा बाल्टी धरकें खुले मैदान में डौलडाल करवे चले जातते। लौट कें हांत मौं धोकें उन्ना कपड़ा धोउतते फिर सपर (स्नान) के कुआँ कौ शुद्ध जल खेंच बाल्टी में भरकें घरै लौटतते। ओई टैंम पै गाँव के जमींदार नारॉन सींग माते जातते - सो दोऊ जनन में रोजऊँ इतै उतै की बातन कौ बतकाव होततीं हमाये लौटवे की दूसरे दिनां शंकर जी के मंदिर पै माते सें नन्ना नें अपने मन की पीरा उगल दई कै उन कुंअर खों एम.ए. की पढ़ाई के काजै भोपाल पौंचाव तौ सो खाली हाथ लौट आए, भर्ती नई हो पाये।

शंकर ज़ी के मंदिर सैं लौटकें नन्ना भजन पूजन में लग जातते और हम बाल्टी कौ पानी मटकिया में उड़ेल कें लोटा बाल्टी उन्ना कपड़ा लैकें सपर खोरवे शंकर जी के मंदिर खों चल देतते। ऊ बखत नन्ना माते की कचहरी के पिछवारे बारे घरई में रतते। सो कऊँ जाओ उनई के दोर के सामूं से कड़ने परतती और माते की का कय वे सपरखोर के आदे दुपर नों अपनी कचहरी के आंगे डरे तखत पैई डटे। उतै की पंचाटें निपटाउत राततै। सो दूसरे दिनाँ जैसई सपर खोर कें एक हाथ में हम धुबे उन्ना कपड़ा लयं और दूसरे हात में बाल्टी लयं उनके सामने से कड़े उननें टोक दओ - काय रे गौरी शंकर तू भोपाल गऔ तौ पढ़वे भर्ती काय नईं हो पाव। हमने जुआव दऔ - "हमें जावे में अबेर हो गई ती सो भर्ती होवे की मियांद निकर गई। सुनकें वे फिर बोले - जब तुम भर्ती नई हो पाए तो नौकरी कर लेते। सुनकें हमने कई - नन्ना नें हमें आंगे की पढ़ाई करवे एम. ए. की भर्ती होवे पौंचाव तौ - नौकरी करवे के काजै नई पौंचाव तौ - अगर हम नौंकरी कर लेते तौ वे नाराज (गुस्सा) हो जाते।

दूसरे भोर शंकर जी के मंदिर पै नन्ना और माते की फिर भेंट भई। माते बोले 'पण्डित जी मौड़ा ने तौ तुमाय डरन के मारें नौकरी की कौसिस नईं करी कै तुम गुस्सा होत।' तब नन्ना नें उनें जुआब दऔ - "अरे! जब भर्ती नईं हो पाएते, तौ कर लेते नौंकरी, हम काय खों गुस्सा होते। ओई दिनां जब हम उनके द्वारे के आँगू से कड़े उननें हमें फिर टोक दओ - काय रे पंडित जी खों काय दोस देत - तुम नोंकरी कर लेते वे नईं होते गुस्सां। तब हमने कई जा वे कै रये ते - वे बोले, हाँ वेई कै रयेते जो हम कै रये। तब हमने कई तौ हम नौंकरी कर आये। इतनी सुनकें माते ताव खा कें बोले - नालायक - तू नौकरी कर आव तौ इतै कैसे ठाड़ौ नौकरी बारौ तौ नोंकरी पै होतौ - झूँठा कऊँ कौ। हमने कइ कै हम साँची कै रये हम नौकरी कर आये तब बे औरऊ ताव खा कें बोले - झूठा कऊँ कौ बात कौ अबै लो दोंदत जा रऔ - फिर हमने उनै समझाई कै सत्ताईस तारीख खौं हम हाजिर भये ते और पैली सें सत्ताईस दिनों की छुट्टी हो गई सो हम आपके सामूँ ठाड़े तब सब बातें सुनके फूले नईं समाने - बोले अब तौ पंडित जी से मिठाई खाये बिना न मानहैं।

- ६७/१७ए, सिविल लाइन्स,
झाँसी (उ.प्र.)

चुनाव

– प्रेमप्रकाश चौबे 'प्रेम'

"काय काकी का हो रओ? कहते हुए रघुनाथ सिंह ने वृद्धा रामवती के घर में प्रवेश किया।
"आओ भैया, कछू नैं हो रओ, बैठे हते और का करें"। रामवती ने रघुनाथ सिंह के बैठने के लिए चटाई सरका दी।
"आज कैसें भूल परे"?
"भूल काय परे? तुमरेई लिंघा आए ते, चुनाव आ गए हैं, तुमरी बहू सोई लड़ रई है? अपन खों जिताने हैं अपनो आदमी नईतर नैंचे वारन के नैचे रैने पर है, जे सैं तुम सें कैबे आए हैं" रघुनाथ सिंह ने अपने आने का प्रयोजन स्पष्ट किया।

"चुनाव तौ ठीक-ठाक है, मनौ जा लड़बे मरबे की बात कैसी कई तुमने? रामवती ने बात की तह में जाने के इरादे से पूछा। वे एक अशिक्षित वृद्धा हैं, सो बात समझने में जरा समय लगता है, समझा कर न कही गई बात तो समझ ही नहीं पाती। जब उनके पति रामदयाल सिंह जिंदा थे, तब बात और ही थी, युवा होता पुत्र और समझदार पति के साथ उनकी जिंदगी सुखपूर्वक बसर हो रही थी। पर समय को यह सब कहाँ भाता है? सीधे को उल्टा और उल्टे को सीधा करना हो तो समय का शौक या कर्तव्य जो चाहे मानें, है और वह इसे बिना आलस किये निभाता भी है।
"मरवे लड़वे की बात अबै हमनें कां करी? काकी, हम तौ चुनाव की कै रए" रघुनाथ सिंह ने कहा।
'और तुम कै तो रए थे, लड़ रई है तुमरी बहू। कौन सैं लड़ रई और कांय खों लड़ रई, चुनाव की बेरां लड़बो झगड़बौ अपनेई पांव पै कुल्हाड़ी मारबे कैसों होत, तुमे का मालूम नइयां। समझाओ बाए कै चुनाव हो जाए, लड़वो मरवौ फिर देखहैं।'
'अच्छा', जोर से हंसे रघुनाथ सिंह, अरे काकी चुनाव लड़बे की बात कर रए ते हम तौ, वैसी लड़ाई भिड़ाई की बात नई है।
'आग लगै' मैंने जानो कोई से लड़ाई हो परी है, वाकी कै रए। मनों भैया, जा चुनाव में घर की बहू बेटियन को का काम? मेरी मानो तौ तुमई हो जाओ ठांड़े चुनाव में, बहू खों रैन दो।"
"काकी, सरकार ने अपनी पंचायत सामान्य महिला खों आरक्षित कर दई जासैं उनेई भरनें पड़ैगो पर्चा" - रघुनाथ सिंह ने बताया।
दूसरी तरप सें को हो रओ ठांड़ो? रामवती ने पूछा। ठाकुर रामदयाल सिंह रामपुर पंचायत के कई वर्षों तक सरपंच चुने जाते रहे थे, सो सरपंची के बारे में इतनी जानकारी तो वे रखती थीं।
"बा मुनुआ बसोर मोड़ा की घरवारी भर रई फारम।
"जौ का?" जब सामान्य महिला खों लड़ने तौ बा कैसे भर सकत?
"जै तो बात है काकी, सामान्य पै तो सबरे भर सकत औ हरिजन आदिवासी में बेई भर सकत अपन नई। मुश्कल सै तौ जो मौका आओ है जब सें काका के हाथ से सरपंची गई है तब से हरिजनई तो है सरपंच अपनी पंचायत को। तुम देख तौ रई हो हालत। बिरोबरी सें बैठकें बातें करन लगो है ससुरौ। मंदर में जानें, स्कूल में जाने, पंगत में बैठनें, कां कां गिनाबें, हर जगां बिरोबरी से ठाड़े। छोड़ो भगवान ने मौका दओ है, राम ने चाहो तो सरपंची अपनेई लिंघा आहै। मनौ जा खों पक्को निश्चय होय कै अपने वोट अपन खोंई मिलें तौ तो काम बन सकत नईतर बोई हाल हौने।

काकी का मन बहुत पीछे ले गया उन्हें। ठाकुर रामदयाल युवा ही थे और शादी के पूर्व ही सरपंच पद पर आसीन हो गए थे। शादी के समय वे अपनी सरपंची का एक कार्यकाल पूरा कर चुके थे। रामवटी से उनके विवाह की चर्चा में प्रधान कारण उनकी सरपंची ही थी।

रामवती के पिता अपने गांव के जागीरदार थे और रामदयाल सिंह का परिवार उनसे हर मामले में उन्नीस ही था। सो संबंध होने की संभावना ही न थी, किन्तु लड़का अपनी पंचायत का सरपंच है इसी विशेषता ने सौंदर्य की साक्षातमूर्ति षोड़षी रामवती को रामदयाल सिंह की अर्धांगिनी बनाया था। जब विवाह की तिथि घोषित हुई साथ ही चुनाव की तिथि भी घोषित हो गई थी। राजनीति का नशा ही कुछ ऐसा होता है कि आदमी सब कुछ भूलकर उसी में मन लगाता है, सो रामदयाल सिंह अपने विवाह से इतने उत्साहित न थे जितने चुनाव से। जैसे-तैसे विवाह के रस्मोरिवाज निभाकर या कहें कि निपटाकर बारात वापिस आ रही थी। घोड़े पर रामदयाल सिंह आगे-आगे, पीछे डोली में रामवती बेचारी चाहकर भी अपने पति को एक झलक तक न पा सकी थी, पर विश्वास था कि जब बारात का पड़ाव होगा, तब कलेवा करने पास ही बैठेंगे, तब जी भरकर देखूंगी।

यह क्या? बारात रुकते ही सबको कलेवा परोस दिया गया। रामवती डोली से निकलकर डोली की ही आड़ में बैठी थी एक बालिका 'लो भाभी कलेवा कर लो' कहते हुए एक पत्तल पर कुछ मिठाई, थोड़ा सा नमकीन, चार पूड़ी, अचार और आधा टुकड़ा प्याज रखकर 'भैया खो सोई भेजत' कहकर चली गई। रामवती आश्वस्त हुई कि उनके आने पर ही उनके खाने के बाद कुछ खाऊँगी। पर वे कहां मानेंगे, साथ ही खाने की जिद करेंगे। तब क्या करूँगी। कह दूंगी आप खालें पीछे मैं भी खा लूँगी।

'न माने तो?' मन को प्रतिप्रश्न किया।

तो उनका मन रखने के लिए एक टुकड़ा मिठाई खा लूँगी। उसने मन को संतुष्ट किया। फिर पीछे उनका छोड़ा हुआ कलेवा और पानी पी लूँगी, यही तो कहा था माँ नें।

बहुत देर से देख रही है, रामदयाल सिंह किसी से बात करने में इतने व्यस्त हैं कि उसकी तरफ उनका ध्यान ही नहीं है।
'बेटा कलेऊ करलें तो चलें' पिताजी ने कहा रामदयाल सिंह से।
'तुम लोग करौ हम पीछे कर लैहें' कह दिया रामदयाल सिंह ने।

"दाऊ भौजी भूंकी बैठी हैं' उनकौ तौ ख्याल करौ" उसी छोटी बालिका ने कहा जो कलेवा लेकर आई थी।

'भौजी से कौ वे कर लेवें, हमें तो भूंक नई थी, घरेई कर हैं हम तौ।' कलेजा छन्न से हो गया रामवती का 'ऐसा निर्मोही पति'। उसने भी कुछ न खाया। बारात चलने लगी तो पत्तल वैसी एक गाय को देकर डोली में सवार हो गई।
'ऐसी का जरूरी बातें हो रई कै सबै भूल गए' सोच रही थी रामवती।

पाठकों को बता दूं कि गांव से एक व्यक्ति ने आकर समाचार दिया था कि उनके चचेरे भाई ने भी चुनाव का पर्चा भर दिया है, और वह पर्चा वापिस लेने की आखिरी तारीख है, वे उसी से बातें कर रहे थे। उनकी चिन्ता बढ़ गई थी। घर आते ही उल्टे सीधे रस्मो रिवाज निपटाकर फिर निकल गए थे रामदयाल सिंह। लौटे तो रात काफी बीत चुकी थी। रामवती को झपकी लग गई थी। आहट पाकर चौक कर उठी पति के पैर पड़े। 'का चले गए थे?' पूछा 'अरे वा हमरे एक भैया ने सोई परचा भर दओ सरपंची को, हमरी तौ जानै निकर गई, जौ का भओ? ऐसो तो कभऊं नै भओ।'

'फिर का भओ?' पूछा रामवती ने। रामदयाल सिंह ने नई नवेली दुल्हन को बाहों में जकड़ लिया "जौ भओ" कहत हुए हँस पड़े। फिर बोले, हमने पूछौ भैया से 'जौ का?' सो कैन लगो हम ने तो वैसें भर दओ तो फारम। मुलुवा ने सोई भरो है, कऊं तुमरो फारम निरस्त हो जातो तौ? मुलुवा तो निरविरोध जीत जातो। काल हम फारम वापस लै लेहें।

"तौ तुमें हमसें जादा सरपंची की फिकर है? हम तौ ऐसेई हैं।" - बनावटी गुस्सा किया रामवती ने- "दोई में से एक को चुनाव कर लो जो जादा पसंद होय।"

रामदयाल सिंह के उसके सुरर्त गालों पर चुंबा अंगित कर दिया था।

"का सोचन लगीं काकी" कहा रघुनाथ सिंह ने।

रामवती का तन्द्रा टूटी। कछू तौ नई, का सोच है। जई सोच रए चुनाव बड़ो मुश्कल है। बड़ी सोच समझ कै फैसला करवो चइये। चूके कै नुकसान।

'रघुनाथ सिंह रामदयाल हित के भतीजे हैं, तब वे वालिग भी न थे जब रामदयाल सिंह सरपंच रहा करते थे। रामवती फिर अपने विचारों में खो गई।

चुनाव हुए। रामदयाल सिंह के चचेरे भाई ने अपना पर्चा पहले ही वापिस ले लिया था, रामदयाल सिंह भारी बहुमत से विजयी हुए, विजयी तो होना ही था। हाथी से चूहे का युद्ध। कौन विजयी होगा यह तो संसार जानता है। जैसा कि रामदयाल सिंह को आशंका थी कि परिवार के सदस्य का पर्चा यूंही नहीं भरा गया था, यह आने वाले समय में घटने वाली घटनाओं की पूर्व सूचना थी। वह तो समय से पता चल पाने के कारण फारम वापिस किया गया है।

समय अपनी मति से बढ़ता रहा, रामवती की गोद भरी। नन्हे से बालक ने जैसे उनके सुखी जीवन में चार चांद लगा दिए थे, अब उन्हें रामदयाल सिंह का घर से ज्यादा बाहर रहना खलता न था। उनका मन बालक में रमा रहता। बालक भी ऐसा सुन्दर जो भी देखता वह देखता रह जाता। रामदयाल सिंह की तो आंखों का तारा ही था। रामदयाल सिंह की ही क्यों वह तो माता और पिता दोनों की ही आंखों का तारा था। रामवती और राम दयाल सिंह दोनों कभी-कभी इसी बात पर बनावटी लड़ाई लड़ते कि अब उनका ध्यान उनसे ज्यादा बच्चे में लगता है। बालक की बालसुलभ क्रीड़ायें दोनों का मन प्रसन्न कर देती थी। समय बीतता गया।

रामपुर गांव में दो ही मोहल्ले थे, और एक ही गांव की पंचायत, एक मोहल्ला ठाकुरों का और दूसरा बसारों का, पंडित, नाई और मेहतर काम पड़ने पर दूसरे गांव से बुलाने पड़ते थे।

रामदयाल सिंह के दादा छहः भाई थे। छह भाइयों में सबके छः छः बेटे और कुछ बेटियां। सो बेटियाँ तो पराए घर गईं और अब ३६ परिवर ठाकुरों के और यही हाल बसोरों का, मगर ठाकुर उन्नीसे तो बसोर बीसे। इनके छः भाइयों के छः छः तो उनके नौ भाइयों के आठ-आठ, नौ-नौ इस तरह बसोरों की आबादी ठाकुरों की तुलना में बढ़ती जा रही थी, पहले तो बसोर पढ़े लिखे न थे सो रामदयाल सिंह ही पढ़े लिखे और बड़े बूढ़े होने के नाते सरपंच रहे। मगर अब पहले सी बात नहीं रही थी, ठाकुरों के हारों में कुछ खटपट चल रही थी, घर के ही किसी व्यक्ति ने मुदुआ का नाम प्रस्तावित कर दिया था, ठाकुर साहब के खिलाफ और फिर ठाकुर रामदयाल सिंह को पराजय का मुंह देखना पड़ा था। एक बार सरपंची हाथ से गई तो गई। सरकारी नियमों के कारण रामपुर पंचायत हरिजन हेतु आरक्षित हो गई, और मुदुआ ही सरपंच के पद पर निरंतर बना रहा।

रामवती को लगा जैसे किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी है, लेकिन यह उनका भ्रम था, वे सावधान होकर बैठ गई और मन पुनः विचारों में मगन हो गया।

एक बार फिर मौका आया था, पंचायत सामान्य हेतु आरक्षित थी, चुनाव के लिए रामदयाल सिंह कमर कस चुके थे, विजयश्री के वरण की पूरी तैयारियां कर ली गई थी। चुनाव के समय ही कुंवर लाखन सिंह को मलेरिया ने घेर लिया था, गांव में कोई अच्छा डाक्टर या वैद्य नहीं था, जो उसका इलाज करता। शहर ले जाने का अवकाश न था, क्योंकि पंचायत का चुनाव निकट था, सरपंची दांव पर लगी थी, ठाकुर रामदयाल सिंह की प्रतिष्ठा का प्रश्न था, वे एक दिन के लिए भी गांव छोड़ने को तैयार न थे। रामवती से कुंवर की दशा देखी न जाती थी। ठाकुर साहब से कहती "सरपंची, गई भाड़ में। अपनी औलाद पर ध्यान दो। पर ठाकुर साहब ने एक न सुनी और कुंवर की हालत बद से बदतर होती चली गई, मगर ठाकुर का कलेजा सरपंची का मोह छोड़ने को तैयार न हुआ।

रामवती - तुम कैसे बाप हो? इकलौतो बेटा मरबे धरो और तुमें सरपंची की परी है?

रामदयाल सिंह - ....बात बा नई है? बात ऊँच औ नीच की सोई है, काल खों वो सरपंच बन गओ तौ जीवौ मुश्कल कर देहै।

रामवती - तो चुनाव तौ होत रैहै, तुम तो जा कओ, तुमें अपने बेटा और सरपंची में से का चुनने? एक चुनलो चुनाव आजई हुइये औ अबई।

रामदयाल सिंह - "सरपंची" और घर से निकल गए थे, रामदयाल सिंह। रामवती ने पूरे खानदान से अनुनय विनय की थी, लेकिन एक का भी हृदय न पसीजा और ऐन मतदान वाले दिन कुंअर ने दम तोड़ दिया।

गांव में सन्नाटा पसर गया। फिर भी सरकारी काम कहां रुकते हैं। मतदान हुआ और शत प्रतिशत। ठाकुर रामदयाल सिंह ने ही पहला मतदान किया। उनका मतदान और पुत्र का इस नश्वर संसार से पलायन संभवतः एक ही क्षण की घटना थे।

पुत्र की अन्त्येटि के समय भी ठाकुर साहब का मन सरपंची में ही लगा रहा। लेकिन भाग्य की रेखाएं कौन पढ़ पाया है? शाम को मतदान दल के पीठासीन अधिकारी ने परिणाम घोषित किया,

मुलुआ विजयी हुआ था।

इस दोहरे सदमे को ठाकुर साहब बर्दाश्त न कर सके और फिर बिस्तर पर ऐसे गिरे कि फिर न उठ सके। उनकी मृत देह ही उठी। रामबती पर तो जैसे मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। बेटे की मौत ने वैसे ही उसे निचोड़ कर रख दिया था फिर पति की मौत न तो जैसे उन्हें संसार से विरक्त ही कर दिया था।

आँखों से आँसू लुढ़क पड़े, उन्हें पता ही नहीं चला। ''तौ अब हम चल रए, ध्यान राखियो'' रघुनाथ सिंह ने कहा और चलने के लिए उठ खड़े हुए।

'अरे अबै आए और चले' रामवती जैसे नींद से जागी पान सुपारी कछू तो लवो नईयां, और चले। मनौ ध्यान तुमई राखियो। चुनाव सही होय, गलत चुनाव भौतई सालत।

– ब्राह्मण मुहल्ला कुरकई, जिला विदिशा

बुन्देली मे मार्मिक शब्दों का प्रयोग

– डॉ. डी.आर. वर्मा

बुन्देलखण्ड का क्षेत्र बहुत विस्तृत भूभाग में फैला हुआ है। भाषा सिद्धान्ततः ''कोस कोस पै बदलै पानी, चार कोस पै बानी।'' के अनुसार बानी में आंशिक परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक भूभागीय क्षेत्र की कोई न कोई लोक भाषा अवश्य होती है। लोक भाषा ही लोक जीवन की विचार धारा की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। बुन्देली के क्षेत्रीय रूपों में आंशिक परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इसलिये समग्र बुन्देलखण्ड में बुन्देली भाषा में एकरूपता नहीं है। आंशिक विभिन्नता के रहते समस्त बुन्देलखण्ड की भाषा बुन्देली मानी गई है। बुन्देलखण्ड के उत्तर में व्रजभाषा का क्षेत्र, पूर्व में कनौजी, दक्षिण में मराठी तथा पूर्व में बैसवाड़ी, बघेली है। दक्षिण पूर्व में छत्तीसगढ़ी आदि मिश्रित रूपों में बुन्देली फैली हुई है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की झांसी, जालौन, ललितपुर, टीकमगढ़, छतरपुर आदि को हृदय स्थली के रूप में विद्वानों ने मान्यता दी है।

बुन्देलखण्डी भाषा में पर्याप्त रसात्मकता है। यह रसात्मकता बुन्देली भाषा के प्रभावशाली व मार्मिक छन्दों के कारण ही है। बुन्देलखण्डी भू भाग भले ही पथरीला, ऊँचा-नीचा हो, परन्तु बुन्देलखण्ड वासियों का हृदय अत्यंत सरस है। इस बुन्देली क्षेत्र की भाषा में गाली भी 'जू' लगाकर दी जाती है। जैसे – सारे जू, ससुर जू, आदि। डॉ. भगवानदास माहौर ने बुन्देली के विषय में कहा था ''बुन्देली भाषा में कम लालित्य नहीं है।'' कहीं, कहीं तो बुन्देली के समक्ष ब्रजभाषा भी फीकी लगने लगती है।'' यह भाषा सरस और लालित्य मय होने का कारण है इसमें निहित मार्मिक शब्द हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि विद्वानों ने पर्याप्त ध्यान दिया है। ''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल'' भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद की उक्ति को बुन्देली विद्वानों ने भी आत्मसात किया है। बुन्देली भाषा भी अन्य भाषाओं के समान नियमबद्ध है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया संधियां आदि में नियमबद्धता दिखाई देती है।

बुन्देली भाषा के कुछ मार्मिक शब्दों का प्रयोग वानगी स्वरूप अग्रांकित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। उदाहरण वाक्यों में प्रयोग देखिये।

हम *दुमगइ* में पर गये औ तुम *गुड़सरे* में बिद गये। ऊखां *ढुचंग* लग गई। वे परे परे गोंव *गुलक* रये। लरका खां *गोचा* लग गओ। सांस मांस में बौ तौ भौत *अठेटौ* है। *ऐरा गैरा* उतै का करें। हमाये घरै *पई पांवने* सुंदा नेवते हैं। जौ लरका *भुवरिया* दयें फिर ऊ *बूंट भरो* धरो है। बड़ी बऊ ने *कन्न* करो पत्ता पै गुर धरो। काउ *चौंटिया* लेव ना *बकटौ* भराव। चुनचुंटया आदमी सजौ नईं होत। *टुचनया* की ना लेय चाय हगनगा की लै लेय। *सपाटे* में चलो। *अत्तू बत्तू* ना करौ। अबै तुमाईं आंखें *चेंथरी* पै चड़ीतीं सो *कनबुजरे* पै घल गईं सो सूदे हो गये। बछिया *कलुरिया* हो गई और *उसरिया* हिरा गई। बचकें जइयो, रवैला बरयाने फिर रये। जांदा *अत्त* साजौ नई होत। तुमें तौ *आंदू* लगे जई सें तुमायें *सेंटा* उर *लगुवा बगुवा* लगे। अकेलें हम सब *तिड़ी विथार* कर दें। ऊकें संगै *लगेंठा* लगो रात सो बन्ता नई बनत। जांदा *कुलकुटे* ना करो। हमाये *फ़ामलें* परी तौ *भेंमला* चटा दें। देखत कौ *टड़ांगिया* धरो भौत *ऊट पटांग* चलौ तौ कौनउ *दंद* में विद जैव। बुखार तौ *चिम्मस* नई खा रओ। बादर भौत *मसूसौ* हतो। हमें गालन पै मसूसा हो गये। हम *छिनमिनैंयन* चले गये उर अछंगन लै गये। *बुकलयाव* ना गर्राट उतर जै। *खुपड़याव* ना करो उर जादो ना *नखरयाव*। ऊने खेत *पवेदां* बओ तो सो *खिरबिरों* हो गओ। *हुरका* घलै सो *मुरका* बगर जै। हमाये *बग्गा* में बिदी जब बतांय। तुमें तौ हमाये *आबड़* में चाय जब *बिदनें* लरका जांदा *उचम* करत। ई नाया पै ना गरबौ, *उरिया* की *छांयरी* है। *कचरेंटुवा* का करै, *दन्नोसै* हांक दें। *अड़ी पड़ी* की बात हती सो *तिड़ी* फांस दई। हम *बुकियां* ऐंच लें। *टेंटुवा* से लग जें उर तुमाय *टेंटें* लगे। चोर नें भींत *कुलया* डारी। *ऊलजलूल* बकें सें का होनें। काय खों *खुरखुन खूंदें* हमें *ऊजाबूजा* तौ लै लेंन दो सो अब तौ *लुखा लुखौ* हो गओ। *लुक्क लुक्क* काय मचांय, *भुका भुकें* में उठवौ साजौ होत। वौ घर अब तौ *तीन तेरिया* हो गओ। फोरा *कुंठकी जांगा* में हतो। ऊमें दूद *निठुअई* नैयां। *गुट्ट वीद गई* सो आ गये। ऊनें *कुन्नस* करी सो मंसा पूरी भई। खुद *बिलौरा* ना करो। *बट्ठठरी* हो गई जई सें *विगूचन* में पर गये। हमई खा तौ *ओले जोले* पर गये, हमाई *भांयें* जमाये। *ममयावरें* गये ते हम। लट्ठ दें सो *टिंगरे* टूटजें। हमें पैलऊँ *जसाई* दै दई ती। *राण कौ रौआ* साजौ नई होत। वौ लरका भौत *मुराटौ* है। लुगाई लात की *लतैया* नोई। *दमदम* ना मचाव। *सन्नाटौ* छा गओ *भ्यांयदे* ना वोलौ।

इस प्रकार से बुन्देली के उपरोक्त कुछ शब्दों के गद्य मे प्रयोग करने पर ज्ञात होता है कि बुन्देली के शब्दों में तथा मार्मिक शब्दों में पर्याप्त अर्थक्षमता तथा सामर्थ बोध है। इन शब्दों का प्रयोग मर्म में सीधा प्रभाव करता है और व्यक्ति को समझने में परेशानी नहीं पड़ती। बुन्देली मर्मज्ञ इसे भली भांति जानते हैं कि बुन्देली भाषा में कितना लालित्य तथा भाव और विचारों की सम्पन्नता है।

– ग्रा.पो. स्यावरी, मऊ, जिला झांसी

बुन्देलखण्ड का धार्मिक लोकचिंतन

- डॉ. विवेक निधि घोष

बुन्देलखण्ड का लोकचिंतन धर्म से प्रभावित ही नहीं अपितु प्रेरित भी है। यहाँ का धार्मिक इतिहास धर्म की विभिन्नताओं से भरा हुआ है। यहाँ लोगों की धर्म भावना भूतवाद, बहुदेववाद, एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद तक सीमित हुई। एक ओर तो लोक-जीवन में धर्म की दार्शनिकता को अपनाकर जीवन के साथ अविच्छिन्न संबंध स्थापित किया, दूसरी ओर आध्यात्मिकता की भावना का उदय हुआ। धर्म की धारणा के अन्तर्गत लोक उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को ले आता है, जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाए रखती है। हमारे पृथक-पृथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएँ होती हैं और विरोधी आवश्यकताएँ होती हैं, जो बढ़ती और बढ़ने की दिशा में परिवर्तित भी हो जाती हैं। उन सबको घेरकर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना धर्म का प्रयोजन है। धर्म का सिद्धान्त हमें आध्यात्मिक वास्तविकताओं को मान्यता देने के प्रति सजग करता है। लोकधर्म का मूल सिद्धान्त है मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना जो ईश्वर का निवास स्थान है। यह हमारे सम्मुख नियमों का एक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है और यह अनुमति देता है कि उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। यहाँ संकट के समय कर्तव्य के नियमों में अपावाद की भी अनुमति है।

बुन्देली-लोक में प्रचलित लोककथाओं का प्रारंभिक रूप भी हमें धर्म-गाथा के रूप में दिखाई देता है। धर्म ही लोकजीवन है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सर्वोच्च स्वर है, जो लोक-वातावरण में ध्वनित हो रहा है। धर्म की प्रेरणा से ही लोकसाहित्य की रचना हुई। धर्म के कारण ही लोकसाहित्य को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई। उदाहरण स्वरूप कार्तिक के गीत, देवी के भजन, बाबा के गीत और अन्य उत्सव त्यौहारों के गीतों में धर्म ही धर्म दिखाई देता है। व्रतों और पर्वों के अवसर पर लोकगीतों के गायन और तत्संबंधी लोक-कथाओं के कहने का प्रचलन है, जिनमें धर्म का स्वर सुनाई देता है। भले ही लोकगीतों में कर्म पर विशेष बल दिया गया हो किन्तु लोककथाएँ भाग्यवाद को ही अधिक महत्व देती हैं, जो ईश्वरीय कृपा पर आधारित है।

बुंदेलखण्ड का जनजीवन प्राचीन काल में लोकधर्म से प्रेरित हुआ। सागर जिले में प्राप्त गुहा चित्रों में अंकित कल्पवृक्ष, सूर्य-चंद्र, स्वस्तिक आदि से इसकी पुष्टि होती है कि विशिष्ट धर्म का उदय यहाँ बाद में हुआ। शनैः-शनैः धार्मिक चिंतन में प्रौढ़ता आती गई और रामायण-महाभारत काल तक आत्मा-परमात्मा संबंधी आस्थाएँ दृढ़ हो गईं। पुराणकाल में बुन्देलखण्ड के जनजीवन में व्रत, उपवास, धार्मिक अनुष्ठान और देवी-देवताओं पर विश्वास अत्यंत दृढ़ हो चुका है। इसके साथ ही विधि-विधानों में आडम्बरों ने ऐसा आवरण डाला कि आस्थाएँ रूढ़ बन गईं और मध्ययुग तक सम्प्रदायों ने अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया।

अध्ययन करने पर मालूम होता है कि रामायण काल तक बुन्देलखण्ड पुलिंदों, निषादों, शबरों, रामठों, दांगियों आदि आदिवासियों का निवास स्थान रहा। इस कारण यहाँ के लोकधर्म में इन वन्य जातियों की धार्मिक मान्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। गुफायुग में धर्म सामुदायिक या उनके देवता आध्यात्मिक न होकर जागितिक थे। उनकी अर्चना का उद्देश्य बाधाओं और विपत्तियों से रक्षा एवं सांसारिक सुखों की प्राप्ति था। उपयोगिता ही देवत्व की कसौटी थी। इस कारण फल, मांस, जल, शरण, रोशनी देने वाले, वृक्ष, पशु, नदी, सरोवर, गिरि, अग्नि आदि का अर्चन शुरू हुआ। सभी लोकदेवों की पूजा मानसिक थी। अधिकतर उन्हें फल और मांस की भेंट दी जाती थी, जो बाद में बलि की रूढ़ि में परिवर्तित हो गई। गुफाओं में अपने मन का कोई चित्र या आकृति बनाकर उसे रक्षा का प्रतीक मान लेना एवं उस पर विश्वास होना अंचल के देवता की पहली कल्पना थी।

ऋषि युग के आरंभ के साथ ही लोक में उत्पादन एवं पशुपालन की व्यवस्था आई। पशुओं की रक्षा और अधिक लाभ प्राप्ति की लोकभावना ने पशुपति और पशुओं की पूजा को जन्म दिया। फसलों की विपत्तियों से बचाने के लिए जल, नदी, वर्षा इत्यादि को देवत्व मिला। भू-देवी की पूजा भी इसी काल की देन है, जो आज तक भियारानी या भुंइयाँरानी के रूप में वर्तमान है।

रामायणकाल में उत्तरांचलों से ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के दलों नें यहाँ धीरे-धीरे बसना शुरू कर दिया था। इस प्रक्रिया से वैदिक देवता और वैदिक मान्यताएँ, जो लोकधर्म के लिए उपयोगी सिद्ध हुई इस जनपद में घुल मिल गई। आर्यों के श्रेष्ठ देवता इंद्र आंधी-तूफान, बिजली, वर्षा के देव होने के कारण लोकदेवता बन गए, जिन्हें महाभारत काल में श्रीकृष्ण ने अपदस्थ कर गिरि की पूजा को लोकमान्य बनाया।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने यक्ष पूजा को यहाँ के लोकधर्म का महत्वपूर्ण अंग माना है। महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष वाली प्रश्नोत्तर शैली भी बुंदेली लोकगीतों में सुरक्षित है। वर्तमान काल में वरमदेव की पूजा के रूप में यक्ष की ही प्रतिष्ठा है। यक्षकाल नागों और वाकाटकों के राज्य की स्थापना तक अर्थात् पहली शती ईसापूर्व तक प्रसारित रहा। कनिष्क के समय भी यक्ष पूजा प्रचलित थी। यक्ष उपासना में सभी धर्म यानि कि वैदिक, ब्राह्मण, जैन, बौद्ध आदि के अनुयायियों का मिलन बिना किसी भेदभाव के होता था। यक्ष, गंधर्व, किरात जातियों की देन तंत्रवाह है जिसने बौद्ध धर्म के वज्रयान संप्रदाय को प्रभावित किया था।

मौर्य काल में सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार सांची, जबलपुर और होशंगाबाद के जिलों तक किया था जिससे लोकधर्म के लोकतत्वों को और भी मजबूती मिली थी। इसके बावजूद यक्ष पूजा यहाँ तब तक सर्वोपरि रही जब तक शिव का वर्चस्व स्थापित न हुआ।'

ईशा की पहली शती से लेकर तेरहवीं शती तक यहाँ नागों एवं वाकाटकों के काल में शिव, नाग, चंद्र एवं नदी की पूजा का महत्व बढ़ा। शिव की निषाद परंपरा को ही नागों ने अपना लिया और

वाकाटकों ने भी शिव को ही मान्यता दी।"[२]

हर्ष के पिता सूर्य की उपासना करते थे। किंतु हर्ष के समय बौद्ध धर्म प्रभावी हुआ। हर्ष के बाद लगभग ५०० वर्षों तक चंदेलों के आधिपत्य में रहकर यहाँ का जनजीवन धार्मिक आस्थाओं से पूरी तरह प्रभावित रहा। इस काल में शासकों की आस्थाएँ शैव-शक्ति की उपासना से जुड़ी थी, किंतु विविध देवों की आराधना और अन्य धर्मों को भी सम्मान प्राप्त था। खजुराहो में चौसठ योगिनी, जगदम्बिका, विश्वनाथ, ब्रह्म वामन और दूल्हादेव के साथ ही, घंटाई, आदिनाथ और पार्श्वनाथ के जैन मंदिर भी धार्मिक जीवन में विविधता की गवाही देते हैं। इसके अतिरिक्त अचट्ट में भगवान विष्णु, गणेश, यक्ष-यक्षिणी, अम्बिकादेवी, हजारिया महादेव एवं महावीर और तीर्थंकर की मूर्तियाँ भी इस विविधता की पुष्टि करती है। तत्कालीन जन-सामान्य की धार्मिक आस्थाएँ आल्हखंड के वर्णन से भी स्पष्ट होती है। जीवन के सभी कृत्य धर्म की जंजीरों से बंधे हैं। लोक परंपरागत रूढ़ियों पर विश्वास करते थे, योगियों का सम्मान था। दैवीय चमत्कारों में आस्था थी और विभिन्न देवी-देवताओं से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग की आकांक्षा धार्मिक आचरण से जुड़ी थी। वत्सराज के रूपकों से भी संकेत मिलते हैं कि उस युग के प्रमुख उपास्य देव शिव थे। चंदेल शासक शैव थे किंतु शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के बीच एकता का सूत्र बांधने का उनका प्रयास रहा। तांत्रिक चमत्कारों का भी लोगों में प्रभाव था। इस काल में शिव के साथ विष्णु, गणेश, सूर्य, मुरारिकृष्ण और अनेक छोटे देवों की पूजा भी होती थी।"[३] देवियों में भवानी, पार्वती या गौरी, लक्ष्मी आदि का अधिक महत्व था।"[४]

चंदेल काल में यहाँ के लोकधर्म पर तंत्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था। भूत-प्रेत, मंत्रों के बल से सिद्धियों की प्राप्ति, रोगादि व्याधियाँ दूर करने एवं अनेकों मंत्रोपचार जैसे विश्वास इस युग में लोकप्रिय होने लगे। महोबा के मनियादेव मणिभद्र यक्ष हैं, जो इतिहासकार स्मिथ द्वारा भ्रम वश गोण देवता मान लिए गए।"[५] इस काल में भी यक्षों को स्वास्थ्य एवं अमरत्व का प्रतीक माना जाता था। लोक ने ही मणिभद्र यक्ष को मनियां देव बना दिया जो सहज एवं स्वाभाविक है।"[६]

मध्ययुग में बुन्देलखण्ड का धार्मिक जीवन बुन्देलों के संघर्षपूर्ण उत्थान से प्रभावित हुआ। इस संक्रान्ति के समय धार्मिक स्थलों के पुजारी भी सुरक्षा के लिए सजग रहते थे और सैनिक सामर्थ्य भी रखते थे, ताकि आवश्यकता के समय राजा की सहायता की जा सके। डॉ. कामिनी ने इस संबंध में अपनी विवेचना प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि कलचुरि, परमार और बुंदेलों के काल में वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। धार के पंवार शैव होने के बाद भी वैष्णव धर्म के प्रति उदार रहे। इस भू-भाग में वैष्णव धर्म की भांति शैव धर्म भी खूब पनपा।"[७] डॉ. कामिनी की मान्यता संपूर्ण भारत के जन-जीवन की तत्कालीन धार्मिक आस्था के समग्र को समेट लेती है।

मध्ययुग में लोग बहुदेववाद में विश्वास करते थे। देवियों और देवों, लक्ष्मी से खेरमाता तक महादेव से मंगलदेव तक विविध रूप हैं और वे सब लोक की आस्था के प्रतीक हैं। कुछ व्यक्ति अपने विशिष्ट गुणों के कारण देव-कोटि में स्थापित हो गये हैं जैसे हरदौल, मंगतदेव, अजैपाल, कारसदेव आदि। गौड़देव की पूजा उच्च वर्ण के लोग भी करते हैं।

इसी काल में तुलसी की रामचरित मानस ने लोकचिंतन पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाला। राम की उपासना ने समाज को नया आदर्श दिया जिसमें आदर्श व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य के लिए मर्यादा, त्याग, संयम, शील, कर्मनिष्ठा, शक्ति और धर्म परायणता का उचित समन्वय था। बुंदेलखण्ड में मध्ययुगीन जीवन का लोकआदर्श १२वीं शती के आल्हखंड से भी प्रभावित होता है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की मान्यता है कि मध्यकाल में विजातीय धर्म और संस्कृति के आक्रमक रूप के कारण यही लोक विश्वास क्षात्रधर्म के प्रतीक रूप में आस्था का संदेश देता रहा है। चंदेलकालीन नारी में सतीत्व के प्रति अनन्य विश्वास वाला आदर्श पूरे मध्ययुग में प्रतिष्ठित रहा।"[८]

पुनरुत्थानकाल में समाकलीन विचारकों के विचारों का प्रभाव लोकधर्म पर भी पड़ता हुआ प्रतीत होता है। इस काल में धर्म में आ चुकी कुरीतियों को दूर करने का प्रयास हुआ है। इस प्रयास में स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय और स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों का विशेष योगदान है। लोक ने इसे स्वीकार किया, इसी कारण से तत्कालीन लोककवियों के विचार लोकचिंतन में धर्म के तत्व का संकेत करते हैं -

दीपक दिया धरम को जारौ, सदा रात उजियारौ।
धरम करें बिन करम खुलै ना, बिना कुची ज्यों तारो।।
समझा चुके करें न रइयो, दिया तरें अंधियारो।
कात ईसुरी सुन लो प्यारी, लग जै पार निवारौ।

इस युग में लोक की व्यक्तिधर्मी दृष्टि में परिवर्तन दिखाई देता है। अब मानवीय संवेदनाओं को महत्व मिलने लगा था। लोक चेतना में व्यापकता आई थी। इसे डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्वीकार करते हुए लिखते हैं - "इसयुग में लोकधर्म का मानवतावादी पक्ष उभरा था। उसका कर्मकाण्डी रूप दब गया था....करुणापरक लोकधर्म जनमा था।"[९]

बुंदेलखण्ड में प्रकृति सम्बंधी लोक-विश्वासों को भी बराबर महत्व दिया जाता रहा। पीपल के वृक्ष पर वरमदेव का पूजन, महुआ के वृक्ष की पूजा, आंवले के पेड़ का पूजन एवं परिक्रमा आदि प्रकृति सम्बंधी धार्मिक विश्वासों के परिचायक हैं। यहां तुलसी का पूजन नित्य आवश्यक माना जाता है, और सोमवती अमावस्या के दिन महिलाएं तुलसी का पूजन और १०८ परिक्रमा आदि अवश्य करती हैं। इसी प्रकार महालक्ष्मी वृक्ष में हाथी का पूजन, नागपंचमी के दिन नाग का पूजन और गाय का नित्य पूजन मंगलकारी होने की मान्यता आज भी लोकमानस में सुरक्षित है।

आस्था और विश्वास धार्मिक जीवन के आधार हैं। बुंदेलखण्ड का जनमन परमसत्ता में अडिग विश्वास करता है। आराधना के तरीके अलग-अलग हैं। आराधना के स्थल भिन्न हैं किंतु नित्य की आराधना नियमित हैं। धार्मिक पर्वों की परंपरा नहीं टूटी, लोकपर्व भी हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं इनमें अधिकतर महिलाओं के पर्व हैं। गनगौर पूजन, आसमाई, प्यास माई, अकती, बरा-बरसात, असाड़ी पूजन, शक्तिपूजा, सावन तीज, संतान सातें, करवा चौथ, हरछठ, कंजरियाँ, महालक्ष्मी पूजन और ऋषिपंचमी आदि लोकपर्व अपना पूर्ण अस्तित्व बनाए हुए हैं। जवारों का पूजन शक्तिपूजा के

रूप में अभी भी विद्यमान है। कन्याओं द्वारा मामुलिया का पूजन एक आस्था से जुड़ा है और नौरता माँ गौरी के पूजन के साथ ही कुछ दंत कथाओं के लिए हुए हैं।

बुंदेलखण्ड में धार्मिक-जीवन जहाँ युग के साथ आगे चला है वहाँ सभी धर्मों के आस्था-विश्वासों का समन्वय भी होता गया और लोकधर्म प्रभावी बन गया। जैसे-जैसे लोक विश्वासों में जड़ता आई वे रूढ़ियाँ बन गईं। छत्तीस करोड़ देवी-देवताओं की कल्पना किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव बनाए हुए है। इसके साथ ही लोक-देवताओं का प्रभाव भी बराबर देखने को मिलता है। विवाह में लाला हरदौल का पूजन और मनौती अत्यंत आवश्यक मानी जाती है। कुल देवता और ग्राम्य देवता कुछ विशेष जातियों और कुछ स्थानों से सम्बद्ध हैं। परन्तु यह निश्चित है कि उनके पूजन के बिना कोई मांगलिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। कारसदेव, दूल्हादेव, सिद्धबाबा, ग्वालबाबा और ठाकुर बाबा के चबूतरों पर आज भी जात्राएँ लगती हैं। लोग एकत्र होते हैं और मनौती मांगते हैं। जवारों का रखा जाना, भाव खेलना और संबंधित मान्यताएं अभी भी परंपरागत चल रही हैं। जादू का विश्वास भले ही कम हो गया हो किन्तु झाड़फूंक और तंत्र-मंत्र से आज भी जनमानस अलग नहीं है। धार्मिक विविधताएँ कितनी भी हों अथवा संप्रदाय कैसे भी हों मानव मन लोक से जुड़ा रहता है और लोकधर्म मानवता से। बुंदेलखण्ड का जन मानस इसी लोकधर्म से प्रभावित है।

संदर्भ -

१. बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, १९९५, पृ. ११६
२. अंधकारयुगीन भारत, काशी प्रसाद जायसवाल, १९९५, पृ. १०४
३. चंदेल और उनका राजत्वकाल - केशवचन्द्र मिश्र, संस्करण २०११, पृ. २०८
४. दि अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो - डॉ. एस.के. मिश्र, १९७७, ई.पू. २३७, कालिंजर प्रस्तर अभिलेख पृ. ५९
५. इंडियन एटिक्वेरी, १९०८, भाग ३७, पृ. १३६-१३७
६. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, ११/६४
७. बुंदेली भाषी क्षेत्र के स्थान अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. कामिनी १९८५, पृ. २६
८. मामुलिया अंक १५'-१६, वर्ष चार बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. ४८
९. बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त १९९५, पृ. १२४

- घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

जो सूरन की खांन

- रामरूप स्वर्णकार 'पंकज'

जा बुन्देली धरती की जोधा झाँसी की रानीं
अँगरेजन ने जाकें आँगे, रन में माँगो पानीं
बड़े-बड़े गोरन के छक्का, रन के बीच छुड़ा दये
गिरी काल सी टूट समर में झाँसी की महरानीं

अगर भेदिया भेद न देते, अँगरेजी मिट जाती
सुतंत्रता की विजय पताका, भारत में फेराती
खुदई चिता में जिन्दा जर गई कभऊ न हारी मानीं
जुगन जुगन को अमर हो गई लक्ष्मीबाई रानीं

जई धरती पे जनमी ती, योधा सारन्धा रानीं
कटे मूँढ़ रन में बगरेते, रानी थी मरदानीं
छोड़ छोड़ रन दुश्मन भागे, बड़े बड़े संग्रामी
रानी की तलवार समर में नागिन सीं लहरानीं।

जो सूरन की खान सदा से रई बुन्देली माटी
चम्पतराय हरदौल सिंह उर क्षत्रसाल की थाती
कोऊ का वरनीं कर पेहे जिनकी नइयाँ सानी
जिनकी विजय पताका पूरे जग भर में फेरानीं

कोट कँगूरा गुर्ज अभऊ, वीरन की बनी निसानीं
धरीं किलिन तोपें अबलो दो सो वर्ष पुरानीं
बुन्देली वीरन ने पंकज हार कभऊ न मानीं
नदियाँ खार पहार तेज बुन्देलखण्ड का पानीं

- भगत सिंह नगर, कौंच, जिला जालौन (उ.प्र.)

बुन्देली गीत -

बुन्देली बोली

- नवल किशोर सोनी 'मायूस'

रजवाड़न की पली बुँदेली ईसें बड़कें को धनी।
अपनी जा बुन्देली बोली हीरा कैसी है कनी।।

कैन धसान बेतवा चंबल नें नित इयै निखारो।
जमना टौंस नरवदा नें फिर ईखाँ ऐंन समारो।
सौन और कालिन्दी के पावन जल की जा चासनी।।१।।
कवी ईसुरी नें ईखाँ पौंचा दओ घरन घरन में।
एइ समानी रइ रत्नाकर पदमाकर के मन में।
कृष्णानन्द वियोगी हरि की छाया रइ इपै घनी।।२।।
बुन्देली बोली की गारी विलवारी है प्यारी।
गोट दादरे लेद राछरे बन्ना की बलिहारी।
किलकन लगत जिया सवरन को सुन चौकड़िया लावनी।।३।।
दिन्नाँ रात बोल हैं ईखाँ सो जा ऐंन किलक है।
ईको मोल रैय सौने सो चाँदी घाँइ चिलक है।
नैंनूँ घाँइ ऊजरी है जा माखन मिसरी में सनी।।४।।
जा अपने जेठन की बोली प्रैम राखनें ईसें।
अब जा जग जाहर हो जावै बुन्देली धरती सें।
ध्यान राखनें सबइ जनन खाँ रावै नाँ जा अनमनी।।५।।
जितने जने दूर हैं ईसें वे ऐंगर आ जावैं।
अपनी मातृभूमि की ई बोली खाँ गरे लगावैं।
निकरत है ईके बोलन सें तानसैन सी रागनी।।६।।
हमैं लगत प्रानन सें प्यारी जा बुन्देली बानी।
सबरे हार इयै फैलावी अपने मन में ठानी।
तनी रैय "मायूस" मूँड़ पै बुन्देली की चाँदनी।।७।।

- कोतवाली के पीछे, छतरपुर

डॉ. नारायणदास गुप्त 'कमलेश'-एक अनूठा व्यक्तित्व

- डॉ. राम सिया सिंह चौहान

बहुत कोशिश की कि उन्हें भूल जायें पर नहीं भूल पाया वह सदा मेरी, चेतना पर दस्तक देते रहे डॉ. नारायणदास गुप्त 'कमलेश' या डॉ. कमलेश आलमपुरी।

प्रकृति और ग्रांमीण संस्कृति में पले-बढ़े डॉ. 'कमलेश' की साहित्य सर्जना में राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तरों तक की सहजता समृद्धता और काव्य कौशल का भाव भरा पड़ा है। उनके काव्य में गांव,शहर, बंदनीय,देवगण, भारत-भू और राष्ट्र है, तो सामाजिक, आर्थिक,नैतिक और चरित्र पतन की विसंगतियों के साथ ही प्रकृति और पर्यावरण के सरोकार भी हैं। उनका प्रेम समग्र मानव समुदाय के प्रति परमूपावनता से ओत प्रोत है उनका साहित्य उन्हें मानवतावादी कवि होने का सम्मान प्रदान करता है,क्योंकि सम्पूर्ण मानवों के उत्थान एवं उत्कर्ष की उनकी सोच, उनकी कविता में बखूबी प्रस्फुटित हुई है।

डॉ. कमलेश जी का जन्म ११ सितम्बर १९३३ को तत्कालीन इन्दौर रियासत का भू-भाग रहा ग्राम आलमपुर जिसे होल्कर रियासत की तहसील का दर्जा प्राप्त था, (वर्तमान में भिण्ड जिले की उप तहसील) में एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ था। पिता स्वर्गीय श्री हुब्ब लाल बृजपुरिया के मझले पुत्र थे, घर में वणिक वृति का व्यवसाय था साथ ही नब्ज देखकर चूरन-चटनी के माध्यम से चिकित्सा भी किया करते थे। कुशाग्र बुद्धि के बालक नारायणदास पर घर परिवार के संस्कारों के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक सोच का भी प्रभाव पड़ा। अपनी प्रतिभा और मेधा की बदौलत उन्होंने आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेदवाचस्पति, साहित्यरत्न और एम.ए. हिन्दी की परीक्षायें उत्तीर्ण कर एक कुशल चिकित्सक, कवि,लेखक,पत्रकार व समाज सेवा का दर्जा हासिल किया। पी. -एच.डी. मानद् उपाधि भी आपको प्रदान की गई, देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनायें प्रकाशित होती रही। कवि सम्मेलनों के राष्ट्रीय मंचों से भी आपने कविताओं को प्रस्तुत किया, विभिन्न कवि सम्मेलनों का सफल संचालन भी आपने किया।

विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के आप पदाधिकारी व सदस्य रहे। बुंदेली लोक साहित्य परिषद के आप लगभग १५ वर्षो तक सेक्रेटरी रहे, चम्बल हिन्दी साहित्य परिषद के उपाध्यक्ष, मध्य प्रदेश लेखक संघ इकाई के भी आप उपाध्यक्ष रहे। उनके साहित्य में सामाजिक,राजनैतिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक जीवन के विविध सरोकारों के साथ क्षेत्र और विशेष कर इस अंचल की माटी की सुगंधि को, इसकी ऐतिहासिक चेतना को हृदयंगम कर शिद्दत के साथ उठाया गया है। उनकी प्रकाशित कृति, 'कवितायन' काव्य संग्रह और 'गुलगुच' बुन्देली कविता संग्रह में संग्रहीत कविताओं में एक छोटे से गांव -कस्बे को एक बडे जन समाज ने उन्हें लोक कवि और आशु कवि के पद से नवाजा। बाल कविताऐं, मुक्त छंद, हाइकू इत्यादि छंदों में रचीं डॉ. कमलेश की ऐसी सहज, सरल, भावपूर्ण, रोचक और सरल भाषायी कवितायें हैं जिन्हें पढ़कर, सुनकर पाठक और श्रोता प्रफुल्लित व प्रभावित हो जाता है। कवितायन की कविताओं में भाषायी शील सर्वत्र मुखर हुआ है, उनकी गजलों, कविताओं और क्षणिकाओं में जिस ढंग से हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी के महीन शब्दों की बुनाबट को बुन्देली की आंचलिकता में संगुफित किया गया है मानों कबीर की भाषायी मुक्तता साक्षात् प्रदर्शित हो रही हो।

डॉ.'कमलेश' ११ मार्च २०११ को इस भावों से भरी साहित्यक और सामाजिक दुनिया को छोड़कर उस लोक में चले गये जहां से कोई वापस नहीं आता। फिर भी वे अपनी मौलिक कविताओं और सामाजिक कार्यों से हमेशा स्मृति में बने रहेंगे। डॉ.सुखदेव सिंह सेंगर के शब्दों में - ' डॉ. कमलेश की कविताओं का जिन्दा जादू मुझ जैसे पाठक को भी झिझोंल देता है, मस्तिष्क में जादू का ज्वार उठता है और एक आवेग आगे को धकेलता है। अतः परम श्रद्धेय स्वर्गीय डॉ. कमलेश के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि।'

काव्य कंमल के प्रखर भ्रमर, विनयशील गतिमान।
ज्ञानवान गुणवान थे, प्रतिभावान सुजान।
लिखते-लिखते तुम गये, होकर के बे पीर।
एक शून्यता भर गए, तुम साहित्यिक बीर।
कर गए महाप्रयाण तुम, देकर व्यथा अनंत।
आज आपके बिना, फीका लगे बसंत।
हुई अपूर्णीय क्षति,स्मृति रहे विशेष।
नाम अमर तुम कर गए, कविवर श्री 'कमलेश'

- प्राचार्य, श्रीमंत विजयाराजे सिंधिया महाविद्यालय अड़ोखर जिला भिण्ड (म.प्र.)

दो चौकड़ियाँ

- डॉ. राज गोस्वामी

उनने ब्याव सुहानों कर लव, अपने घर खों भर लव।।
जीवन सुधा मसक कें पी लइ जा जीवन सें तर लव।
वे तौ लद गए फल फूलन से हमने पग पग झर लव।
अब तौ चिता परे कौ दुख है 'राज' उनइ संग पर लव।।

पैलें पैलें बा दिन बोले, तन मन हमरे खोले
हम तौ मौन रए सिजरी पै, तुम तन मन सें डोले।
हमनें नैन मूंद लए अपने तुमने खूब खकोले।
'राज' आज का कर हौ बोलो बा दिन ऐन टटोले।।

- सिविल लाइन्स, दतिया (म.प्र.)

बुन्देली कलम का साहित्यिक अवदान : बरास्ता स्वाधीनता आन्दोलन

– प्रो. सन्तोष भदौरिया

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान विभिन्न क्षेत्रों से प्रकाशित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने एक ओर सामाजिक जीवन को सुधार, परिष्कार और चेतना की राह दिखाई एवं संस्कृति का ज्ञान कराया, वहीं दूसरी ओर विभिन्न शिल्पगत प्रयोग करके पत्रकारिता के विकास की राह आसान की। यह गौरतलब है कि बुन्देलखण्ड की इन पत्र-पत्रिकाओं ने सामान्य जन में प्रचलित बोलचाल की भाषा को परिष्कृत जनभाषा का रूप प्रदान किया। घटना बाहुल स्वाधीनता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में नवीन शब्दों का निर्माण एवं प्रयोग, बोलचाल के शब्दों का निरंतर प्रयोग तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की भाषा की अनूठी विशेषताएँ हैं। दरअसल सवाल प्रथमतः और अंततः अस्मिता का सवाल होता है। उससे किसी भी देश की पहचान जुड़ी होती है। भाषा के सवाल पर आचार्य शिवपूजन सहाय की स्पष्ट मान्यता है कि "प्रचार के नाम पर संस्कार का संहार" असह्य नवाचार जान पड़ता है। यह भाषा संस्कार के बदले भाषा संहार का युग है। पत्रकारों का न इधर ध्यान है, न इसमें अनुराग ही।"[1] इसी चिन्ता को आगे वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं - "दोषी वास्तव में हम संपादक ही हैं, जो अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भाषा के पवित्र क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैलाते हैं।"[2] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान भाषा प्रीति और भाषा संस्कार चिंता के केन्द्र में थे। हिन्दी पत्रकारिता में भाषा की अशुद्धता अक्षम्य अपराध था।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन से संपृक्त हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से इस बात की पुष्टि होती है कि उनमें हिन्दी भाषा के प्रति कैसा ममत्व, दायित्व और टीस थी। स्वतंत्र भारत के इस दौर में यह बात अचंभित करने वाली हो सकती है, क्योंकि भारत के आधुनिक समाज ने जिस अंग्रेजी मोह की पट्टी बाँध रखी है, उसे देश का भविष्य और उसकी समृद्धि अंग्रेजी की राह चलकर ही दिखाई देती है। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यह प्रश्न लगातार संपादकों तथा पत्रकारों के जेहन में रह है कि क्या अंग्रेजी को नकारने से देश में एकता, वैज्ञानिक विकास और आर्थिक समृद्धि संभव नहीं है? तत्कालीन संपादकों एवं पत्रकारों की निश्चित धारणा थी कि देश की उन्नति सिर्फ हिन्दी भाषा से ही संभव है। स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता निभा रहे पत्रकारों को अपनी शब्द शक्ति और उसकी कलात्मकता का पूरा भान था। वे सभी पत्रकार होने के साथ क्रांतिकारी और साहित्यकार भी थे, उनमें अद्भुत भाषा सामर्थ्य था। आधुनिक साहित्यिक विधाओं के पोषण एवं पल्लवन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। बुन्देलखण्ड की पत्र-पत्रिकाओं में अटपटी-सी लगने वाली भाषा सशक्त, जीवंत शिल्प और साहित्यिक चेतना से लैस है। तत्कालीन समय सबसे सचेत था, पत्र-पत्रिकाओं की धरती के अभागे लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई देशी भाषा के शब्दों के सहारे लड़ी। माध्यम बहु सीमित थे, लेकिन शब्द की गरिमा जाग्रत थी, इसीलिए जनसंपर्क अद्वितीय था। हिन्दी शब्द प्राणवान था, वह अर्थ देने में समर्थ था, बस इतना मालूम था कि इस शब्द का अर्थ है - क्रांति, स्वतंत्रता, प्राणदान।"[3]

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया, जिसे सामान्य पाठक पढ़कर उसका सही अर्थ निकाल सके। उन्होंने युगीन जनजागरण को ध्यान में रखते हुए मानक हिन्दी ऐसी भाषा का उपयोग किया, जिसमें सभी भाषाओं के आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया। अच्छे लोगों का काम है कि बाहरी भाषाओं के शब्दों को अपना-सा कर डालना, जिससे भाषा दिन-प्रतिदिन अमीर होती जाए।"[4] पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से यह तथ्य सामने आया है कि भाषा की सरलता को बनाये रखने के लिये दीर्घ वाक्यों की जगह छोटे और संक्षिप्त वाक्यों के माध्यम से अपनी बात रखी गयी है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी भाषा शैली अपनाने पर जोर दिया है जो पाठक को बाँधती है। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ के संपादकों में स्वभाषा उन्नति का प्रखर बोध था, उन्होंने भाषा के सवाल को समाज से जोड़ा और गंभीरता से उसका पालन किया।

बुन्देलखण्ड की पत्र-पत्रिकाओं ने विषय को सही ढंग से प्रस्तुत करने के साथ ही भाषा की शुद्धता और सरलता पर विशेष ध्यान दिया। पत्र-पत्रिकाओं की भाषा व्यावहारिक होने के साथ साहित्यिक भी होती थी। संपादकीय सूझबूझ उसका प्रमुख गुण था। संपादक अपने गुण को समझता था, उसे इस बात का बोध था कि सार्थक शब्दों का प्रयोग भाषा की मारक क्षमता को बढ़ाता है। भाषा के विकास के लिये नये शब्दों का आगमन आवश्यक है, इससे तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की भाषा में रोचकता और सरलता के साथ ज्ञान की वृद्धि और भाषा का विकास होता है।

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित अनियतकालीन हस्तलिखित पत्र 'बुन्देलखण्ड केसरी' के संपादकीय लेखकों ने हिन्दी भाषी जनता को संस्कृत साहित्य से परिचित कराने के लिये कुछ लेख प्रकाशित किये। इन लेखों से हिन्दी भाषी जनता का परिचय कराने का मुख्य ध्येय भारत की प्राचीन साहित्यिक व सांस्कृतिक विरासत से उनका परिचय कराना तो है ही, साथ ही उनकी वर्तमान काल में सार्थकता को रेखांकित कराना भी है। साहित्य के स्तर पर यह दौर सीधी, सरल और साहित्यिक दृष्टि से साधारण किन्तु सामाजिक जागरण और सांस्कृतिक उत्थान की आकांक्षा से परिपूर्ण काव्य सृजन का काल था। 'बुन्देलखण्ड केसरी' में पौराणिक, आख्यानाश्रित और प्रत्यक्ष राजनीतिक काव्य रचनाओं की जगह राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों को चित्रित करने वाली छोटी-छोटी कविताएँ प्रकाश में आई।

सता ले हम गरीबों को अरे बदकार थोड़े दिन।
कहा ले हम गरीबों से, अजी सरकार थोड़े दिन।।
नशा सारी हुकूमत का उतर जाएगा जल्दी से।

अगर भरते रहे ऐसे ही कारागार थोड़े दिन।"[५]

इस राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास आगे चलकर अधिक सांस्कृतिक संपन्नता के साथ हुआ। जातीय स्वाभिमान, आत्मगौरव और विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने के लिये भारतीय जनता के मन में उत्कृष्ट लालसा और आकांक्षा जगाने के जितने भी साहित्यिक उपकरण थे, उनका उपयोग इस पत्र के संपादकों ने किया।

टीकमगढ़ के श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद द्वारा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के कुशल संपादन में प्रकाशित हिन्दी पाक्षिक पत्र 'मधुकर' की भाषा पर्याप्त साहित्यिक और परिमार्जित है। इस पत्र ने साहित्य और संस्कृति के संवर्धन में उल्लेखनीय योगदान किया, उसकी भाषा का एक नमूना इस प्रकार है - "यद्यपि 'मधुकर' का क्षेत्र जानबूझकर परिमित रखा गया है, क्योंकि परिमित क्षेत्र में ठोस काम करने की अधिक सुविधा तथा संभावना है तथापि इसका दृष्टिकोण व्यापक होगा। 'मधुकर' देश-विदेश के सांस्कृतिक उपवनों से जीवनप्रद रस ग्रहण करके जनता के सम्मुख रखेगा। उसका किसी सम्प्रदाय या वाद विशेष से सम्बन्ध न होगा और क्षुद्र प्रांतीयता, विनाशकारी साम्प्रदायिकता तथा जातीय विद्वेष का वह घोर विरोधी होगा।"[६] 'मधुकर' की यह भाषा स्पष्ट करती है कि बुन्देलखण्ड की जनता साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न थी। 'मधुकर' में महत्वपूर्ण कवियों की कविताएँ भी प्रकाशित होती थीं, जिसके विषय राष्ट्रीय होते थे, उनमें स्वाधीनता आन्दोलन में भागीदारी का आवाहन होता था। सोहनलाल द्विवेदी की 'हमको ऐसे युवक चाहिए' शीर्षक कविता जो 'मधुकर' में छपी थी, की अंतिम पंक्तियाँ तत्कालीन काव्य बोध को दर्शाती है -

स्वतंत्रता की रटन अधर में, आजादी जिनका आराधन
सिर को सुमन समझ कर जो, अर्पण कर सकते माँ पर
हमको ऐसे युवक चाहिये, सकें देश का जो संकट हर।"[७]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों ने विदेशी भाषाओं के शब्द ग्रहण से कोई परहेज नहीं किया। अन्तर्राष्ट्रीय खबरों को प्रकाशित करने के क्रम में उन्होंने अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का प्रयोग भी किया है। सागर से प्रकाशित होने वाले "दैनिक प्रकाश में प्रकाशित 'अखबार' की कापियाँ जप्त कर लीं, शीर्षक खबर की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं - लंदन, जून २३, लंदन के 'डेली हेराल्ड' नाम के अखबार के दफ्तर पर सिटी पुलिस ने चढ़ाई की, क्योंकि इस अखबार वालों ने पानी के भीतर चलने वाली जहाज सबमेराइन नंबर ११ की तस्वीर खिंचवा कर अपने यहाँ रखी थी। यह जहाज गुप्त रूप से १५ जून को प्राइवेटली केपम बंदरगाह से छोड़ा गया था। पुलिस वाले फोटो और फोटो से निकले हुए अखबार की कापियाँ जब्त कर ले गए।"[८] प्रस्तुत वक्तव्य में आये तस्वीर, फोटो, प्राइवेटली, सबमेराइन आदि शब्द भाषा की निःसंकोच प्रकृति को दर्शाते हैं।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का विशेष ध्यान विशुद्ध हिन्दी भाषा के प्रति न होकर भाषाओं के लोकप्रिय देशज शब्दों की ओर था, जिससे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में बढ़ोतरी होती है, इसका एक उदाहरण देख सकते हैं - "पराधीनता राष्ट्र के अपमान का चिन्ह है, जो इस अपमान को महसूस करता है, वह जीवित है, जिसमें मानापमान के पहचानने की शक्ति नहीं है या होती वह मुर्दे के समान है। यह बातें बार-बार दोहराई जा चुकी हैं। नाना प्रकार की टीका-टिप्पणियों से तरह-तरह की आलोचनाओं और प्रत्यालोचनाओं से उनका उज्ज्वल और कलुषित चित्र खींचा जा चुका है। मगर सदियों से अपने कंधों पर पराधीनता का जुआ रखे हुये भारत इसकी परवाह नहीं करता।"[९] भाषा की विशिष्ट भूमिका से परिचित इन पत्र-पत्रिकाओं ने भाषा के स्वरूप का नियमन किया। प्रयुक्त भाषा की साधुता और शुद्धता दोनों का ख्याल कर उसे परिनिष्ठित रूप प्रदान किया। वस्तुतः उनकी चिंता का मुख्य विषय भी यही था। हिन्दी भाषा की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं को यह बोध था कि भाषा का संस्कार उनका मुख्य ध्येय होता है।

बुन्देलखण्ड की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अग्रलेख और टिप्पणियों के शीर्षक प्रभावकारी होते थे। यद्यपि इन दोनों की शैली पृथक होती थी। उनके अग्रलेखों में भावात्मक सौन्दर्य था, किन्तु टिप्पणियों में यथार्थपरकता होती थी। छोटे समाचार व्यंग्य की धार लिये होते थे। मथुरा प्रसाद मिश्र के संपादन में झांसी से निकलने वाले समाचार पत्र 'प्रजामित्र' की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है कि "विवेकशील व्यक्तियों के हृदय में उस दुपल्ली पेपर की क्या बखत हो सकती है जिसकी इनीगिनी प्रतियाँ ही प्रकाशित होती हैं और जो प्रकाशित होते ही यह घोषित कर देता हो कि 'कर्मधर्म' दैनिक रूप में प्रकाशित हुआ करेगा। इसके टाइटल पर लिखा रहता है साप्ताहिक पर निकलता है जब कभी जहाँ फाके कसी होना शुरू हुई, वहाँ लोगों ने ये पेशा ही बना लिया है कि अखबार निकालो।"[१०] तत्कालीन एक अन्य समाचार-पत्र 'हिन्द राजस्थान' जिसके संपादक बेनी प्रसाद श्रीवास्तव थे, ने भाषागत् व्यंग्यात्मकता का अनूठा उदाहरण पेश किया है। अपने संपादकीय 'खान पार्टी के गुर्गों को मुँह तोड़ उत्तर' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है "हिन्द राजस्थान में ग्वालियर की खान पार्टी के कारनामे जब से प्रकाशित होना आरम्भ हुये हैं, तब से खान पार्टी के कैम्प में खलबली मच गई है। झाँसी के सहयोगी 'समय' ने तारीख ७ अगस्त में मेजर साहब और खान पार्टी के भाटों और भाड़ों की तरह खूब तारीख के गीत गाए हैं। इन भाटों और भाड़ों की बातों का हम कुछ भी जवाब न देते पर 'समय' और 'प्रिंसलीइण्डिया' ने लोगों को भ्रम में डालकर मेजर साहब और खान पार्टी को दूध का धुला साबित करने की चेष्टा की है। यह चापलूस अखबार मेजर साहब के लिये तो हक की दुहाई देते है, पर साठे साहब के लिये हक की बात क्यों भूल जाते हैं।"[११] उपर्युक्त टिप्पणी से ये प्रमाणित होता है कि अंग्रेजी शासन और सामंतों की तरफदारी करने वाले अखबारों की भी खबर ली जाती थी।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में कदाचित ही ऐसा पत्र मिलेगा, जिसने भाषा की श्रीवृद्धि में साथ न दिया हो। समस्त पत्र-पत्रिकाओं ने अपने तरीके से भाषा को विकसित किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का प्रधान लक्ष्य भले ही स्वतंत्रता की प्राप्ति रहा हो, किन्तु उन्होंने भाषा परिष्कार का कार्य अनवरत जारी रखा। "यह कहना अनुचित न होगा कि गद्य के निर्माण का अधिकांश श्रेय हिन्दी पत्रकारों को है,

जिन्होंने पत्रों के माध्यम से हिन्दी भाषा को एक व्यवस्था, समृद्ध और परिनिष्ठित रूप दिया।''[१२] इन पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख एवं प्रेरक सामग्री होती थी, विशेषकर साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों ने उन लेखकों को पूरा अवसर दिया, जो किसी कारणवश स्वतंत्र रूप से अपनी रचनायें प्रकाशित नहीं कर पतो थे। टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'मधुकर' ने बुन्देलखण्ड के जनमानस को परिवर्तित किया, उन्हें किसी न किसी रूप में साहित्य से जोड़े रखा, साथ ही साहित्यिक अभिरुचि का विकास कर साहित्य सृजन और पठन-पाठन के लिये प्रेरित किया। 'मधुकर' ने अपने प्रथम अंक में अपना उद्देश्य घोषित करते हुए लिखा है कि 'मधुकर' का यह दृढ़ विश्वास है कि प्राचीन काल की भाँति भविष्य में भी इस भूमि खण्ड ओरछा और बुन्देलखण्ड की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भेंट गौरवपूर्ण होंगी।''[१३]

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित होने वाली अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनमें सपाट एव सरल भाषा का उपयोग किया जाता था। सम्प्रेषण उसका सर्वोत्कृष्ट गुण है। भाषा सहज होने की वजह से पूर्णतः ग्राह्य है। सहजता में ही उसकी रचनात्मकता है। विचार की पुष्टि के लिये भाषा की तथ्यात्मकता पर जोर दिया गया है। लोक भाषाओं और अंचल विशेष के शब्दों का प्रयोग भी सावधानीपूर्वक किया गया है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की स्थिति का अंदाजा उनकी लोकप्रियता और आम जनता में उसके प्रभाव को देखकर लगाया जा सकता है। तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने इनकी लोकप्रियता को देखकर जेल, जब्ती और जुर्माना की कार्यवाही की। स्वाधीनता आन्दोलन के समय पत्र-पत्रिकाओं के संपादक एवं पत्रकारों ने अपनी बात को लोगों तक पहुँचाने के लिये उन्हीं की भाषा और साहित्य विधाओं को आधार बनाया। विदेशियों द्वारा अपने हितसंवर्धन के लिये लाये गये मुद्रण और प्रेस का उपयोग भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये रामबाण साबित हुआ। बुन्देलखण्ड में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही मुद्रणालयों की स्थापना कार्य शीघ्रता के साथ हुआ, जिसने बहुत जल्दी बुन्देलखण्ड के शहर और कस्बों में अपने पैर फैलाये। आरंभिक अवस्था में सागर, झाँसी, टीकमगढ़, उरई, ललितपुर, बाँदा आदि शहरों में इनकी स्थापना का कार्य हुआ। तदुपरांत बुन्देलखण्ड के लगभग प्रत्येक कस्बे में प्रेस स्थापित हुए। इसके अलावा दूरदराज के क्षेत्रों में जहाँ अंग्रेज सरकार की शक्ति और आर्थिक कठिनाइयों के चलते प्रेस की स्थापना नहीं हो पाई, वहाँ स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने हस्तलिखित साइक्लोस्टाइल पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। विचारोत्तेजक 'बुन्देलखण्ड केशरी' इसी तरह का हस्तलिखित पत्र था, जिसने सन् १९३५ तक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को जागृत और प्रोत्साहित किया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की स्थिति संतोषजनक नहीं थी, उसका मुख्य कारण प्रेस का विलंब से आना और राजनीतिक चेतना में पत्र-पत्रिकाओं से भूमिका में अनभिज्ञ होना था, इसके बावजूद कलकत्ता, गोरखपुर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और आगरा से प्रकाशित होने वाले अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों की पहुँच बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में थी, जिनसे प्रभावित होकर इस क्षेत्र के जागरूक पत्रकारों ने प्रेस की स्थापना हेतु सार्थक प्रयास किये। पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार में अंग्रेज शासन के प्रेस सम्बंधी नियम मुख्य बाधा थे। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'प्रकाश' की सूचना गौरतलब है, उसने लिखा है - ''इस वक्त प्रकाश के ऊपर अनिवार्य कठिनाइयों के अपने व उस पर मानहानि का मुकदमा चलने से पत्र की व्यवस्था में अड़चन हो रही है, लिहाजा मानहानि का मुकदमा निपटने और उचित व्यवस्था होने तक कुछ समय के लिये पत्र का प्रकाशन स्थगित किया जाता है। उचित व्यवस्था हो जाने पर पाठकगणों को पुनः सूचना दी जावेगी। कुछ दिन के लिये 'प्रकाश' आपकी सेवा से वंचित रहेगा, उसके लिये हम क्षमा के प्रार्थी हैं।''[१४] बुन्देलखण्ड केसरी पूर्णतः हस्तलिखित एवं साइक्लोस्टाइल पत्र था, इसका पूरा स्वरूप भूमिगत था। खण्डहरों में बैठकर लेख लिखना और प्राचीन मंदिरों में छिपकर इसकी प्रतियाँ निकालनी पड़ती थीं। रातों-रात सम्पूर्ण क्षेत्र में इसका वितरण एक साहस भरा कार्य था। इसके प्रसार की स्थिति के बारे में यह कथन उल्लेखनीय है - ''जराखर निवासी सुखलाल भाई तथा रामदयाल कोरी 'बुन्देलखण्ड केसरी' की प्रतियाँ समूचे क्षेत्र में वितरित करते थे। ये दोनों बहादुर सैनिक एक दिन में पचास मील तक चलते थे। पूरे क्षेत्र का चक्कर लगाकर यथास्थान पहुँचते थे। इन दोनों युवा प्रसार योद्धाओं को कोई पहचानता नहीं था। ये गुप्त मार्गों से सब स्थानों पर 'बुन्देलकेसरी' की प्रतियाँ पहुँचाते थे। जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक एवं तहसीलदार जैसे अन्य सरकारी कार्योलयों में भी यह साप्ताहिक पत्र पहुँचता था।''[१५] इसी के आगे उल्लेख मिलता है कि 'बुन्देलकेसरी' के निर्भीक लेख, कवितायें, कार्टून एवं आंग्ल विरोधी टिप्पणियों से भरे इस पत्र के प्रति जनता में रुचि बढ़ी और इस पत्र की हजारों प्रतियाँ प्रकाशित होने लगीं।''[१६] इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ज्यों-त्यों राजनीतिक चेतना का विकास हुआ, उसी के अनुरूप हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रचार-प्रसार की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन की तीव्रगामी राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की गति तेज हुई। संख्या बढ़ी तथा उनके प्रचार-प्रसार के नये तरीके ईजाद किए गए। इस सबके बावजूद अंग्रेज सरकार बेहद चौकन्नी थी। नये प्रेस अधिनियम की आड़ में उसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लगातार बाधित किया। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार-पत्र 'दैनिक प्रकाश' द्वारा 'प्रताप की मनाई' शीर्षक समाचार इस बात की पुष्टि करता है कि बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों में अखबार के आगमन पर प्रतिबन्ध लगाया गया। 'दैनिक प्रकाश' में लिखा है - 'देशी रियासतों को 'प्रताप' का अपनी रियासतों में आना रोक दिया था, परन्तु आज आठवाँ नंबर उदेपुर रियासत का हुआ। उदेपुर रियासत में प्रताप का जाना एकदम बंद कर दिया गया है।''[१७] उपर्युक्त परिस्थितियों में इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की हर कोशिश को अंग्रेज सरकार ने बाधित किया,

फिर भी इनकी प्रचार संख्या में लगातार वृद्धि जनजीवन में राजनीतिक जागरण की प्रक्रिया में पत्रकारिता की प्रभावशाली भूमिका का संकेत करती है। बुन्देलखण्ड से प्रसारित अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने सन् १६२० ईस्वी के असहयोग आन्दोलन प्रस्ताव के निश्चय का जोरदार स्वागत किया, साथ ही भारतीय जनमानस को प्रेरित कर असहयोग आन्दोलन में प्रभावी भूमिका के लिये आधार तैयार किया। यही कारण है कि सन् १६२० के दौरान बुंदेलखण्ड से बड़ी संख्या में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार का कार्य नये जोश के साथ प्रारम्भ हुआ। इसके पीछे एक और कारण था अंग्रेज सरकार ने १६२२ में कठोर प्रेस अधिनियम (सन् १६१०) की समाप्ति की घोषणा की थी। अंग्रेज सरकार ने इस प्रेस अधिनियम के तहत विभिन्न मुद्रणालयों से ली गई जमानतें वापस कर दीं, जिससे पत्रकारिता जगत ने राहत की साँस ली। इसमें स्वाधीनता आन्दोलन में गति आई, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ और पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन के आरंभिक दौर में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया, जिसके मूल में हिन्दी के प्रति तथाकथित साक्षरों की उदासीनता तथा पाठकों द्वारा पत्र का मूल्य न चुकाना है। इस संदर्भ में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है - "हमारे प्रांत की भाषा ही है, परन्तु स्वदेश और स्वभाषा के शत्रु उसे अस्पृश्य और अपाठ्य समझते हैं। इसी से उर्दू पत्रों की अपेक्षा हिन्दी के पत्रों की संख्या आधे से भी कम रही मातृभाषा के इन द्रोहियों की बुद्धि भगवान ठिकाने लाएँ। इसमें से पाँच फीसदी अंग्रेजी के धुरंधर पंडित होंगे। उन्हें रोज 'पायोनियर' और 'इंग्लिशमैन' पढ़े बिना कल नहीं पड़ती। इनकी शिकायत है कि हिन्दी में कोई अच्छा पत्र ही नहीं। पढ़े क्यों? परन्तु इनको यह नहीं सूझता कि अच्छे हिन्दी पत्र निकालने वाले क्या किसी और लोक से आएँगे? या तो तुम खुद निकालो या औरों के पत्र लेकर उन्हें उत्साहित करो या पत्र निकालने वालों की मदद करो।"[१८] आगे वे लिखते हैं कि "यहाँ से मासिक पुस्तक प्रकाशक सदा घाटे का दुखड़ा रोया करते हैं। बेचारों को घर के धान को प्यार से मिलाना पड़ता है। बहुतेरे को तो यहाँ तक घाटा होता है कि एक बार पत्र निकालकर फिर निकालने का कोई साहस भी नहीं होता।"[१६]

स्वाधीनता के क्रान्तिकारी दौर में हिन्दी भाषा क्षेत्रों में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में तेजी आई। भारतीय नौजवानों को उद्वेलित करने वाले अनेक प्रकाशन इसी दौर में सामने आये, जिन्हें अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'लोकवार्ता' पत्र में अपनी पीड़ा इस प्रकार व्यक्त की है - "प्रेस और कागज आदि की असुविधाओं के कारण छपाई का ठीक प्रबन्ध नहीं हो पा रहा है। इस अंक के प्रकाशन में अवांछनीय विलंब हो गया। नवीन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि पर लगे हुये सरकारी प्रतिबन्ध जब तक दूर नहीं हो जाते तब तक आशा है, इस प्रकार की त्रुटियों के लिए पाठक हमें क्षमा करेंगे।"[२०] तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य स्पष्ट रहता था, वे अपने अंकों में अपने निहितार्थ आम जनता को प्रेषित करते थे। अगस्त १८६४ में सागर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'बाल विलास' उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करती है - 'समाचार-पत्र संसार का वर्तमान बतलाकर विद्या की उन्नति करती है, इसलिए बालकों को विद्या सीखने में सहायता देने के लिये वे मासिक पत्र शामिल किया गया है। इसमें किसी विख्यात पुरुष का जीवन वृत्तांत, शास्त्र व उपदेश की बातें और समाचार कहा करेगा।'[२१]

बुन्देलखण्ड से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं से संबंधित फाइलों एवं अभिलेखागारों में सुरक्षित दस्तावेजों से यह स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता आन्दोलन से क्रमशः विकसित होती राजनीतिक चेतना के अनुरूप ही इस क्षेत्र में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार में वृद्धि हुई। इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार का गहरा सम्बंध बुन्देलखण्ड के जनमानस की राजनीतिक चेतना से था।

हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव काल से ही पाठक की केन्द्रीय भूमिका रही है। किसी भी साहित्यिक रचना की सफलता-असफलता का निर्धारण एक खास पाठक वर्ग ही करता है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पत्र-पत्रिकाओं ने यह समझ भरा पाठक वर्ग तैयार किया, जो समाचार पढ़ने के अलावा सुनने पर भी विश्वास करता था। यह सत्य है कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक की सम्प्रेषण यात्रा ही अधिकांश समाचार-पत्रों की लोकप्रियता का जरिया बनती है। हम जानते हैं कि बुन्देलखण्ड की आम जनता अधिकांशतः अशिक्षित थी। अतः मुख से मुख वाली अन्तःक्रिया ही समाचार सम्प्रेषण का मुख्य साधन था। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के पास एक निश्चित पाठक वर्ग के न होने के पीछे मुख्य कारण पत्र-पत्रिकाओं के प्रति उदासीनता का भाव था और यही कारण है कि कुछेक उत्साही और समर्पित संपादकों और पत्रकारों के आगे आने के बावजूद पाठकों की कमी पत्रकारिता के विकास में बाधा बनकर आई। "आजकल समाचार-पत्रों को जन्म लेते ही राजयक्ष्मा की बीमारी घेरती है। यद्यपि इस रोग के होने के कई कारण हैं। तथापि अधिक व्यय होना ही अधिक व्यवसाय है, अधिक खर्च होने में एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि पत्रों के अधिक ग्राहक नहीं होने से निकल पाते हैं।"[२२] इससे सिद्ध होता है कि पत्रकारिता अपने उद्भव काल से ही ग्राहक और पाठक की समस्या से जूझ रही थी।

बुन्देलखण्ड में राजनीतिक चेतना के प्रसार के साथ ही गाँव का एकाकीपन खत्म हुआ। यातायात की सुविधाओं ने शहर की राह दिखाई। प्राकृतिक तौर पर अभेद्य, इस भूखण्ड में प्रकाशन आदि के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये, ज्ञान की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड की जनता का सम्पर्क हुआ। पत्रकारों ने जनता की सामाजिक और राजनीतिक चेतना को विकसित किया। हम कह सकते हैं कि बुन्देली जनता का राजनीतिक समाजीकरण हुआ। श्रीरामपुर से अपनी यात्रा शुरू करने वाले मुद्रणालय ने अपने पाँव बुंदेलखण्ड के कोने-कोने में फैलाये, जिसके परिणामस्वरूप अनेक शहर और कस्बों से पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई और एक निश्चित पाठक वर्ग तैयार हुआ। पाठक तक अपनी पहुँच के लिये किये गये

प्रयास के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि "बुन्देलखण्ड केसरी" के संपादक पत्र की प्रतियाँ गाँव के कांग्रेस कार्यकर्ता या मुखिया के यहाँ पहुँचाते थे। रात्रि के समय सभी गाँव वाले एक जगह एकत्र होते थे, तदुपरांत शिक्षित व्यक्ति ऊँची आवाज में पत्र के लेख, समाचार एवं कविताएँ पढ़कर सुनाता था। पत्र की वजह से जिन पाठकों या कार्यकर्ताओं को कठिनाइयाँ होती थीं, उनके प्रति संपादक अगले अंक में धन्यवाद प्रकाशित करते थे "हम अंत में उन उत्साही नवयुवकों को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने परिश्रम करके अदम्य उत्साह के साथ 'बुन्देलखण्ड केसरी' की रक्षा की है। हम विशेषांक के काम में मदद देने वाले नवयुवकों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने रातों को जागकर काम किया और केसरी को एक रूप प्रदान किया।" हम कह सकते हैं कि 'बुन्देलखण्ड केसरी' की लोकप्रियता एक खास अशिक्षित जनसमुदाय के साथ ही बुद्धिजीवी एवं मध्यम वर्ग में भी रही। इसका स्वरूप राष्ट्रीय न होकर क्षेत्रीय ही रहा। वस्तुतः पाठकों की संख्या का कम होना प्रत्येक समाचार-पत्र की चिंता का विषय था, जिसके सम्बन्ध में यथास्थान महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की गई हैं। तत्कालीन प्रत्येक पत्र-पत्रिका का यह प्रयास होता था कि पाठकों की बौद्धिक क्षुधा को शांत करें। पाठकों की समस्या से जुड़ा एक और उद्धरण उनकी चिंता को शायद सही ढंग से व्याख्यायित करता है - "गत सोलह वर्षों से प्रकाशित होने पर भी हमारी संख्या हजारों में नहीं पहुँची, जबकि हमारी जनसंख्या लाखों से अधिक है। इस शिथिलता का कारण अनुमानतः यही है कि पत्रिका जिनके नाम जाती है वही पढ़कर फाइल कर लेते हैं या गृह के कूड़े के साथ गनौरे पर जाती है। प्रार्थना है हमारे सहृदय पाठक पढ़ें और अपने मित्रों को पढ़ायें।"[२३]

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रण कला के सम्यक् विकास न होने के कारण पत्रों के प्रकाशन की स्थिति, उनका प्रचार-प्रसार और पाठक वर्ग सीमित रहा। पर यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक से ही बदलती है। उद्भव काल से ही पत्रकारिता का समुचित प्रचार-प्रसार न हो पाने के पीछे पाठकों की उदासीनता ही मूल कारण रही है। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि "एक बार पत्र निकालकर फिर निकालने का उन्हें साहस भी नहीं होता। इसके कई कारण हैं, एक तो यहाँ शिक्षितों की संख्या कम है, दूसरे सामर्थ्यवान और पढ़े-लिखे लोग मासिक पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। तीसरे, जो पढ़ते हैं वे गाँव के पैसे खर्च नहीं करके पढ़ना चाहते, माँग-माँग कर या प्रकाशक को धोखा देकर काम निकालते हैं, इसमें वे अपना अपमान नहीं समझते। कम मूल्य देकर माँगने वालों की भी कमी नहीं है।"[२४] द्विवेदी जी का यह कथन तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के लिए पर्याप्त है।

संदर्भ -

१. हिमालय, ७ अगस्त १९४६
२. हिमालय, ४ मई, १९४६
३. वेद प्रताप वैदिक-हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, पृ.४३५
४. हिन्दी प्रदीप, जून १९८५, पृ. ७
५. बुन्देलखण्ड केसरी, दिसम्बर १९३३, पृ. २६
६. मधुकर, वर्ष-१, अंक-१, १ अक्टूबर १९४०
७. मधुकर, वर्ष-१, अंक-११, १ मार्च १९४१
८. दैनिक प्रकाश, २७ जून १९२३
९. बुन्देलखण्ड केसरी, दिसम्बर १९३३, पृ. २६
१०. प्रजामित्र, भाग-६, अंक-१०, ५ जुलाई १९३७
११. हिन्द राजस्थान, भाग-३, अंक-७, १७ अगस्त १९३१
१२. कृष्णबिहारी मिश्र - हिन्दी पत्रकारिता, पृ. ४
१३. मधुकर, वर्ष-१, अंक-१, १ अक्टूबर १९४०
१४. दैनिक प्रकाश, २० अक्टूबर १९२३
१५. डॉ. भवानीदीन, समरगाथा, पृ. १०६
१६. डॉ. भवानीदीन, समरगाथा, पृ. १०६
१७. दैनिक प्रकाश, १० जुलाई १९२३
१८. सरस्वती, मई १९०८
१९. सरस्वती, दिसम्बर १९०८
२०. लोकवार्ता, वर्ष १, मार्च १९४५
२१. बालविकास, वर्ष-१, अंक १, अगस्त १८९४
२२. विधाधर्म दीपिका, अंक ६-८, संयुक्त १८८९
२३. क्षत्रिय, भाग-१६, अंक १-२

- प्रोफेसर, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र)

सयानें की सीख

- दीनदयाल तिवारी 'बेताल'

ऐसी बानी कभउ न बोलो, जो काउए नइ भावै।
नौनी लग रइ वा अपन खौं, कौउए दुख पोंचावै।।

माते कजन दुके प्याँर में, देख कें चुप रै जानै।
ऊँट बिलैया लै गइ तौ, हाँजू हाँजू कानै।।
करव घूँट नौने सें पीकें, सोस सोस रै जाबै।
ऐसी बानी...।।

आम खों इमली क्वावै कोउ, झट्ट सें कै दइयौ।
नीख नबेरा कछु नइ करियौ, कोउ की बुराइ न लइयौ।
सब खों बोउ लगत सत्तुर सौ, साँसी साँसी कावै।
ऐसी बानी...।।

चोरी चुगली भूल न करियौ, आड़तयाइ न करियौ।
इनसें बच कें कजन चले गए, सुख की नींद सो जइयौ।।
सुरा सुन्दरी जुआ खेल सें, सब खों राम बचावै।
ऐसी बानी...।।

चुपरी देख नइ ललचैऔ, रूखी खा सो जइयौ।
गैल घाट सब देख कें चलियौ, उपटा नइ लै लइयौ।।
जो न मानें 'बेताल' बात खों, पाछे वौ पछताबै।
ऐसी बानी...।।

- सिद्धबाबा कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

आल्हखंड और सैरा

- डॉ. वीरेन्द्र निर्झर

बुन्देलखण्ड के बनाफरी, लोधान्ती आदि उपबुंदेली क्षेत्र में 'आल्हा' महाकाव्य के लिए 'सैरा' नाम विशेष प्रचलित है। उक्त क्षेत्रों में आल्हा के लिए सैरा नाम कैसे व कहाँ से आया और इसकी व्युत्पत्ति तथा अर्थ क्या है, यह विद्वानों के बीच हमेशा से एक खोज का विषय रहा है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने शब्दकोश में उल्लिखित सैर के लाक्षणिक अर्थ - "मनोरंजन के लिए किसी पुस्तक को पढ़ना" - के आधार पर परिकल्पना की है कि शायद पढ़ने और फिर गाने के अर्थ में सैर सैरा हो गया है।[१] डॉ. लक्ष्मीगणेश तिवारी ने सैरा सायरा की रायसा शब्द के विपर्यय से व्युत्पत्ति सुझाई है।[२] डॉ. पवन अग्रवाल ने भी आल्हा के अर्थ में प्रयुक्त सैरा शब्द का उत्स सेर, शेर आदि अन्यान्य शब्दों में खोजने का प्रयत्न किया है।[३]

'मानक हिन्दी कोश' में बुन्देलखण्डी बोली के अनुसार सैर शब्द का अर्थ - 'असाढ़ सावन में गाये जाने वाले एक प्रकार के लोकगीत" दिया है। सैरा शब्द का अर्थ भी इसमें - "असाढ़ में गाये जाने वाले एक प्रकार के लोकगीत" हैं।[४] सैर और सैरा के समान अर्थ से स्पष्ट है कि 'मानक हिन्दी कोश' के अनुसार दोनों ही शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। परन्तु बुन्देलखण्ड में सैर और सैरा दो अलग-अलग शब्द हैं और उनकी अर्थ-छवियाँ भी एक दूसरे से समानता नहीं रखतीं।

'सैर' बुन्देलखण्ड में प्रचलित एक पुराना लौकिक छन्द विशेष है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में बारह मात्राओं के बाद यति के साथ कुल बाईस मात्रायें (१२, १० = २२) होती है।[५] आचार्य गंगाधर व्यास ने सैर को चार चरणों के स्थान पर तीन चरणों का बनाकर और टेक का आधार देकर उसके कलेवर को ही बदल दिया था। उन्होंने तीन-तीन चरणों के चार छन्द मिलाकर एक झुमका बनाने की नई प्रणाली चलाई थी। बुन्देलखण्ड की लोकरागिनी पर आधारित इस शैली-साहित्य के वे जन्मदाता माने जाते थे।"[६] बुन्देलखण्ड में सैर गाने और उनके फड़ों की परम्परा गंगाधर व्यास से मिलती है। सैर जहां 'शोभिधर' छन्द का अपभ्रंश है वहीं सैरा ३१ मात्रा के वीर छन्द में निबद्ध एक काव्य रूप या प्रबंधा विशेष है। बुन्देलखण्ड में सैर और सैरा दोनों के ही फड़ जब जमते हैं तो रात-रात भर उखड़ने का नाम नहीं लेते। सैर के फड़ तो पाँच-छै दशक पूर्व तक दस-दस, पंद्रह-पंद्रह दिन तक अनवरत जमे रहते थे। सैर के फड़ों में ढोलक, मजीरा और घेरा (डफ) की गत पर सामूहिक रूप से यह रागिनी गाई जाती है। यह एक मुक्तक साहित्य परम्परा है। सैर किसी कथा विशेष या रस विशेष से सम्बद्ध नहीं है, जबकि सैरा ढोलक की थाप पर या स्वतंत्र रूप से गाया जाता है। सैरा एक प्रबंधकाव्य है जिसका गायन उत्साह और उत्तेजना से समायोजित वीरत्व की भावना को साकार करता है। यह आल्हा-ऊदल के शौर्य और पराक्रम की गाथाओं से सम्बद्ध एक विशेष लोक प्रबंध है और सभी दृष्टियों-रस, छन्द, गायकी, प्रबंधात्मकता आदि से सैर से भिन्न प्रकार की साहित्य विधा है। यह विशेषकर बारिस के दिनों में गाया जाता है।[८] काले काले बादलों से आच्छादित आकाश जब कई-कई दिनों तक खुलने का नाम नहीं लेता, वर्षा की झड़ी लग जाती है, खेती किसानी का काम रुक जाता है, तब गाँव की चौपालें ढोलक की थापों और मंजीरों की टंकारों से गूँज उठती है और सैरा के स्वरों में लरज उठता है वीरत्व का नाद अपने पूरे आवेग के साथ। वर्षा की झड़ी और आल्हा का गायन दोनों का अभिवेग एकाकार हो जनजीवन में जिस शक्ति और उत्साह को अभिमंत्रित करता है वह अद्वितीय है। वायु के प्रवेग से जैसे राख की परत को झिंझोड़कर चिनगी प्रदीप्त हो जाती है, ऐसे ही मानव मन की सुसुप्त भावनायें आल्हा की हुंकार के साथ स्फूर्त हो उठती हैं और एक नई ऊर्जा एक नये सम्वेग का विश्वास जाग उठता है। बरसात के दिनों में आल्हा गाने की परम्परा को लेकर बुन्देलखण्ड में कहावत है "आल्हा पँवारा वा दिन गइये, जा दिन झड़ी लगै दिन रात।" कहीं कहीं इस पंक्ति को "सैरा पँवारा..." के साथ भी पढ़ा जाता है।

वर्षा और आल्हा के निकट के संबंधों से यदि सैरा शब्द पर विचार करें तो सैरा शब्द और जल या वर्षा का निकट का सम्बंध ज्ञात होता है। संस्कृत में जल के लिए स्वरः या सवमू[९] तथा हिन्दी में सवर और सव[१०] शब्द प्राप्त होते हैं। मालवी में फुन-फुन कर जल बरसने के लिए सेवरा[११] तथा निमाड़ी में झड़ी लगाकर जल वृष्टि के लिए सेरो व्यवहृति है।[१२] लोक में सरोड़े शब्द भी लगातार वर्षा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बुन्देली में सब्जी आदि में रस बढ़ाने के लिए सैल, सयल या सैली करना तथा जल विसर्जन के लिए सिराना शब्द का प्रयोग मिलता है। भले ही ये शब्द पानी से सीधा सम्बंध न रखते हों पर शीतल - सिअर, सींड़ या शीतलन - सीलन, सींड़न आदि में नमी को अभिव्यक्त करते पानी से जुड़े हैं जल या वर्षा से संबंधित सवरः, सेवरा, सेरो, सैल या सैर शब्दों से सैरा शब्द की समीपता उसकी व्युत्पत्ति और वर्षा गीत होने की सम्भावना को इंगित करते हैं। परन्तु आल्हा के साथ वर्षा का सम्बंध मेरी दृष्टि से इतना ही है कि झड़ी लगाकर होने वाली खेती में जहाँ खेती किसानी का काम रुक जाता है, काम में फुरसत, घर में रहने और मनोरंजन के क्षणों में किस्सा-कहानियों के सुनने-सुनाने और लोक नायकों के चरित्र चर्चा के विशेष विषय उभरते हैं। आल्हा का लोकनायक रूप भी जनजीवन को आप्यायित करता है। आल्हा इन सुस्ती और फुरसत के क्षणों को ऊर्जावित करता है, लोक संस्कृति और निष्ठा का आदर्श प्रस्तुत करता है तथा संघर्षों से जूझने की शक्ति देता है। इसीलिए और शायद इसीलिए वर्षा और आल्हा का अन्योन्याश्रय संबंध लोक में समादरित है। कहा जाता है कि "आल्हा के गायन से वर्षा होने लगती है, इन्द्र देवता प्रसन्न हो जाते हैं या वर्षा ऋतु में आल्हा गा गायन करना चाहिए।" लोक की इन मान्यताओं पर ईश्वर भी कभी-कभी अपनी मोहर लगा देता है और कहावतें सार्थक लगने लगती हैं।

सैरा की अन्य विशेषताएँ उसका वीरकाव्य होना और प्रबंधात्मकता है। बुन्देलखण्ड में युद्धपरक प्रबंध काव्यों की लम्बी परम्परा है। उन्हें कटक, दरेरो, समय, तथा समय जैसे नामों से अभिहित किया गया है। जैसे - परीक्षत को कटक, झाँसी को कटक, भिलासाय को कटक, प्रथीराज दरेरो, महोबा समय, सिरसा समर, माड़ों की लड़ाई आदि। किन्तु सैरा शब्द का प्रयोग आल्हा काव्य छोड़कर किसी अन्य युद्धपरक प्रबंध काव्य के लिए कहीं देखने में नहीं आया। बल्कि यों कहें कि सैरा शब्द आल्हा का पर्याय है। गौड़वाने में सैला शब्द अवश्य वीरत्वपूर्ण गाथाओं के लिए समादरित है।[१३] सम्भव है भाषा की प्रकृति के अनुरूप सेरा सैला के रूप में परिवर्तित हुआ हो और शब्द के अर्थ का विस्तार दूसरे युद्धपरक गीतों से जुड़ गया हो।

आल्हा खण्ड के प्रमुख सम्पादक ठाकुरदास रचित आल्हखण्ड में गिरधरदास की कुंडलिया में एक शब्द मिलता है 'सायर' जो पराक्रमी और वीर पुरुष के लिये प्रयुक्त हुआ है -

कायर सौ नीके नहीं, सायर नीके पाँच।
यक भजैं रण छोड़िकै, एक सहै रण आँच।
एक सहैं रण आँच भाजि मुरचन ते आमैं।
आप होयँ बदनाम, नाम निरपति को लजामैं।
कहै गिरधर कविराय, बात चारौ जुग जाहिर।
सूर भले रण पाँच, भले सौ होहिं न कायर।।[१४]

एक प्राचीन कहावत में भी सायर शब्द का प्रयोग हुआ है - "लीक लीक गाड़ी चले, लीकहिं चले कपूत, लीक छोड़ तीनौं चलैं सायर सिंह सपूत।" सामान्यतः सायर का अर्थ शायर लेने का चलन लोक में विद्यमान है, किन्तु यहाँ भी सायर का अर्थ वीर पुरुष करना ही उचित जान पड़ता हैं वीरता की इसी भावना का विकास अवधी में सयराठ/सैराठ शब्द में झंझट के अर्थ में हुआ है।[१५] बुन्देली में भी झंझट या उपद्रव के रूप में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। बाद में उसका अथदिश विस्तार के रूप में हो गया है। कहावत है - "कायखें आय सैराट पसारत।"

बुन्देली लोककवि किशोर की एक फाग में भी झंझट, मारकाट, उपद्रव के अर्थ मे संभवतः सायर (सायर, सयर, सहर) का अपभ्रष्ट रूप सहर पद प्रयुक्त हुआ है। प्रयोग दृष्टव्य है -

तेरे नैनों ने मुझको मारा सनम, तेई पै तुमने किया जुलम।
अगर मगर जे बोली बोलें, जिगर मिगर जे करें कलम।
इसका सहर किसी कामिल से पूछो, जिसने उसका खाया जखम।
कहत किशोर जियें वे कैसे, दरस दवाई लगें सनम।"[१६]

नैनों की इस अनूठी मारकाट और जिगर के अंदर तक भेद देने वाली गहरी चोट को कोई भुक्तभोगी जानकार (कामिल) ही बता सकता है। आल्हा की वीरता भी कुछ ऐसी ही स्पृहणीय है। सम्भवतः आल्हा की इसी युद्धपरक वीरता और प्रशस्ति की अभिव्यक्ति के लिए सायर, सयर, सइर, या सहर या प्रतिरूप सैरा शब्द लोक में व्यवहृत हुआ है। चंद्रबरदायी के पृथ्वीराज रासों में एक अन्य शब्द सहीर का प्रयोग लगभग कुछ इसी अर्थ में प्राप्त होता है।

सोधिग पुरान बलि वंश वीर ,भुव बोल लिषित दिष्षे सहीर।
छिति छत्र बंध राजन समान जित्तिया सकल हय बल प्रमान।।"[१७]

अरबी में 'शहीर' शब्द प्रसिद्ध, ख्याति प्राप्त और मशहूर का अर्थ वाचक है।"[१८] हो सकता है चन्द्रबरदायी ने अरबी के 'शहीर' शब्द से 'सहीर' शब्द को ग्रहण किया हो। मराठी मे शाहिरी वाङ्मय का उल्लेख है। इस शब्द का प्रयोग राजयश या वीर प्रशस्ति के अर्थ में प्रचलित है। श्री सरबटे के अनुसार शाहीर का संबंध लोकनाट्य तमाशा से अधिक है।[१९] मराठी में तमाशा के गीतकारों को 'शाहिर' कहा गया है। यह मूलतः अरबी का शायर जिसका अर्थ कवि है को मराठी पहनावा पहनाकर उपलब्ध किया गया है।[२०] मराठा सेनाओं के साथ गायिकाओं के दल भी चलते थे। एक ओर तलवार की तेजी थी और दूसरी ओर ऐहिक श्रृंगार में डूबी लावनी। शाहिरी वाङ्मय में लावनी के साथ पवाड़ा छन्द का भी प्रचार हुआ।[२१] महाराष्ट्र की यही लावनी कर्नाटक में भी गई। वहाँ इसे वीरगीत और श्रृंगार दोनों के लिए उपयुक्त समझा गया।"[२२] प्रो. वि.रा. गर्गे शाहीर शब्द को शाइरी से जोड़कर देखते हैं परन्तु यह शब्द 'शाइरी' से निष्पन्न न होकर 'शहीर' शब्द से निःसृत जान पड़ता है। परीक्षत को कटक काव्य में किशोर द्विज ने काव्य या राजयश के अर्थ में सिहिर शब्द का प्रयोग किया है, जो सम्भवतः सहीर का ही विचलित रूप है। काव्य पंक्ति है -

पढ़ते किशोर सिहिर, ढोलक बाजे गत की। (मामुलिया अंक ६, पृ. ४१)

राजस्थान में प्रशंसात्मक कविता को सर कहते हैं।[२३] अन्य और भी शब्द 'सार' (सर्वोत्तम, श्रेष्ठ, बलवान, शस्त्र आदि), 'शीर्ष' (सिर, मस्तक, उन्नत सिरा), 'शौर्य' (पराक्रम, वीरता, ताकत) आदि से भी सैरा की व्युत्पत्ति का अनुमान हो सकता है। जो भी हो, उक्त विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड में आल्हा के लिए प्रयुक्त सैरा शब्द का उद्भव सायर, साइर, सयर या सिहिर शब्द के अधिक निकट है।

प्रयागपुर (जिला बहराइच) निवासी श्रीपति कवि (सं. १७००) ने अपने एक छन्द में चन्द्रबरदायी की प्रशंसा करते हुए उनके रासो काव्य को शैल शब्द से अभिहित किया है। वे लिखते हैं -

तेल नीको तिल को, अजमेर को फुलेल नीको
साबह दलेल नीको, शैल नीको चन्द को।।

यह शैल शब्द रलयोर्भेदः के अनुसार सैर सैरा का ही अभेद रूप है और काव्य के अर्थ में विस्तारित है। ठाकुर भुजबलसिंह (बुंदेलखण्डी) की रचना में सायरा शब्द का कुछ ऐसा ही विस्तार देखने को मिलता है।

कुपढ़ लोग जाने कहा, उनकों को समझावै
जाने पंडित सायरा, तिने अटक न रावै।।[२४]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड में सैर या सायरा शब्द का प्रयोग काव्य रचनाओं तथा विशेषकर पराक्रम और वीरों की यशोगाथाओं के लिए प्रयुक्त होता रहा है। किन्तु परवर्तीकाल में यह शब्द सेरा के रूप में अपनी व्यापक अर्थछवि को समेटकर विशेषीकृत हो गया है और मात्र वीरकाव्य आल्हा के लिये शताब्दियों से प्रयुक्त होता आ रहा है।

बुन्देलखण्ड में उत्साह और ओज का यह वीर काव्य केवल सुपाठ्य ही नहीं रहा बल्कि उल्लास के क्षणों में कहीं-कहीं वीरनृत्य

से भी जुड़ गया है। जब लोग सैरा की पंक्ति के साथ उत्साह के आवेग में ताल गति पर संवेत होकर थिरकने लगे होंगे। नृत्य का एक अनुपम दृश्य अवतरित हुआ होगा। उस समय इसे देखने की आतुरता में उमड़ता जनप्रवाह लोक में एक आनंदमय उत्कंठा को जगा गया होगा। एक साखी में सैरा देखने की इसी उत्कंठा और आतुरता का वर्णन प्रस्तुत हुआ है -

भैंसें लगाकें अरे सींके धरी हाँ, परछा के मों बाँद
सैरो देखन अरे लोंदर चली, पने खसम गिरैयाँ बाँद।[२६]

घर का सब काम काज शीघ्रता से निपटाकर नवोढ़ाओं द्वारा अपने पतियों को जबरन अनुनय-विनय की रस्सी से बाँधकर सैरा स्थल तक ले जाने में जिस हार्दिक उल्लास, कौतुहल और अनुराग का उच्छलन अभिव्यक्त हुआ है वह अनूठा है। उक्त साखी में सैरा के लिये देखना क्रिया का प्रयोग श्रावणिकता के साथ-साथ दृष्टविधान की आयोजना को भी परिलक्षित करता है। नृत्य और गायन के इस सम्मिलित स्वरूप ने सैरा काव्य के प्रति लोकाकर्षक को और चमत्कृत किया होगा। इस संदर्भ में एक और साखी दृष्टव्य है -

डड़ला से डड़ला अरे मिल चलो, मिल गई ताल से ताल
सबरे सैरुआ ऐस मिले हाँ, जैसे बन में नाच रई मोर।[२७]

पंक्ति से पंक्ति और ताल से ताल मिलाते हुए सभी सैरवार इस प्रकार तन्मयता से नाच रहे हैं मानों बन में मोर नाच रही हो। उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि ने नर्तकों के भाव संप्रेषण और तालबद्धता का एक सुन्दर और लोकसमादरित रूप प्रस्तुत किया है। लोकरुचि और लोकभावना से समृद्ध नृत्य और गायन की इस परंपरा ने भी लोक में सैरा के प्रति गहरे अनुराग को जगाया होगा, तभी तो ठाकुर कवि ने ज्योतिषी की बात को तन्मयता से सुनने के अर्थ में सैरा सुनने का प्रतिमान उपस्थित किया है। पंक्तियाँ देखें-

बैठ पटा पर विप्र बखानै, लगी पलका सों सुनै सियरा सों।
जोतिष देखले ऐसी कहै, गठियायले आँचल में दियरा सों।[२८]

संभवतः यह पूर्ववर्ती काल में नृत्य और गायन दोनों ही परंपराओं से जुड़ा रहा है। सागर में डॉ. बलभद्र तिवारी जी के यहाँ उनके द्वारा लिखित एवं निर्देशित एक नाटक का वीडियो देखा था। उसमें आल्हा को नृत्य गायन के रूप में ही प्रस्तुत किया गया था। डॉ. श्याम परमार ने अपनी पुस्तक लोक साहित्य विमर्श में उत्तर प्रदेश के आल्हा गायकों का एक चित्र दिया है, जिसमें लाठी लिये हुए वीरवेष में आल्हा गायन की मुद्रा अंकित की गई है। बुन्देलखण्ड में सैरा गाने की ऐसी ही परंपरा का उल्लेख शिवसहाय चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक बुन्देलखण्डी लोक-गीत में उपस्थित किया है। उन्होंने इसे सैरा नृत्य-गीत कहा है। वे लिखते हैं - वर्षा ऋतु में विशेषतः श्रावण तथा कजली के अवसर पर चाँदनी रात में सैरा गाया जाता है। सैरा गाने वालों की टोली अपने दोनों हाथ में दो छोटे-छोटे लकड़ी के डंडे जो इसी काम के लिये पहले से बनवा कर रखे जाते हैं लेकर गोलाकार खड़ी हो जाती है। गाना और नृत्य साथ-साथ प्रारंभ होता है। हर व्यक्ति अपने दायें बायें दोनों ओर से बढ़ने वाले डंडों पर अपने डंडे मारता चलता है। टोली के सभी आदमी एक साथ गाते, दोनों तरफ के डंडों पर चोट लगाते और गोलाकार घूमते जाते हैं। नृत्य के समय वे कभी जमीन पर झुकते कभी निहुरते और कभी बैठकर आड़े तिरछे पड़ जाते हैं। परन्तु सभी स्थितियों में उनके डंडों की चोटें एक साथ समान रूप से पड़ती रहती है।[२९] गीतों की जो पंक्तियाँ चतुर्वेदी जी ने अपने संकलन में दी हैं उनमें गीत क्रमांक-३ को छोड़कर सभी सैरा गीत है। सैरा नामक लोकगीत के साथ नाचें जाने के कारण इसका नाम सैरा पड़ा है।[३०] इन गीतों को शैला या डंडा के साथ गाये जाने के कारण भी हो सकता है शैला या सैरा गीत कहा गया हो। परंतु डंडों के साथ गाये जाने वाले गीतों में सैरा के अलावा दूसरे गीत भी गाये जाते हैं। जैसे चतुर्वेदी जी ने अपने संकलन में सैरा गीत-३ - "तोरे गुन जान गई अरे बालमा रे"... दिया है।[३१]

सैरा के छाँदसिक स्वरूप पर यदि विचार करें तो यह अष्टमात्रिक ताल गणों से विकसित दोहे का पूर्व रूप है। इसका प्रत्येक चरण - जो दोहे के दो चरणों से मिलकर बना है - पूर्व भाग में दो समाष्टक और उत्तर भाग में एक समाष्टक और गुरु लघु मूलक एक त्रिकल का योग है। डॉ. शिवनंदन सहाय इसे दोहा का पूर्व रूप कहते हैं।[३२] एक उदाहरण देखें -

असढ़ा तो लागे रे, असढ़ा तो लागे ओ मोरे प्यारे, दूब गई हरयाय।
। । S S S S S । । S S S S S । । S S, S । । S । । S ।
बीरन लुबौआ आये नहीं, घर चुनरी धरी रंगाय।[३३]
S ।। । S S S S । S, । । । । S । S । S ।

अष्टमात्रिक तालगणों से विकसित इस लोक छंद में नृत्य-गायन में प्रयुक्त होने के कारण छंद में कम या ज्यादा मात्राओं के होने पर तालमात्रा की पूर्ति प्लुत, विराम, या त्वरित आदि उच्चारणों के कारने के साथ साथ लोकगायक अरे... ओ... रे... आदि टेकों का सहारा भी लेता है, तो कभी कुछ संदर्भित शब्दों को भी गायन में पिरो लेता है। जैसे उक्त सैरा के प्रथम चरण में रे... को मात्रापूर्ति तक आरोहित करते या बढ़ाते हैं और पंक्ति या पदबंध को दुहराने में भी लागे के... गे... को प्लुत उच्चरित करते हैं साथ ही ओ मोरे प्यारे में जहाँ पूरी पंक्ति बढ़त की है वहीं इसमें भी ताल मात्रा की पूर्ति ओ तथा रे के प्लुत उच्चार तथा मोरे के त्वरित उच्चार मुरे के द्वारा तालमात्रा की पूर्ति कर ली जाती है। तीसरे चरण में सोलह मात्राएँ ही हैं। सम चरणों में दूसरे में ग्यारह मात्राएँ हैं तो चौथे चरण में तेरह मात्रायें हैं। यहाँ भी गायक कलाकार तालमात्रा की पूर्ति कर लेता है। तालमात्राओं की पूर्ति की वजह से ही इनमें १६-११ से लेकर १६-१५ या उससे भी अधिक मात्राओं की पंक्तियाँ देखने को मिलती है। कभी कम तो कभी अधिक मात्रायें होने के बाद भी इन छंदों की मात्राएँ तालबद्धता में की दृष्टि से समुचित होती है।

सैरा की कुछ पंक्तियाँ नीचे प्रस्तुत है -

अस्सी हजारे अब नौ लाख से हाँ, दै कै छत्र चढ़ो चौहान।
बाउन समदी अरे संगै लयें, सौंरा लयें सगे दमाद।।६६
बोलै चौंड़ा अरे बिनती करे हाँ, सुनलो सामरी बार

आला मरइया अरे हैं नइयाँ, तीनऊँ भुवन संसार।।७०
जौनै सपर लव अरे कीतर में हाँ, जोनऊँ उपजो फ्रौज बिड़ार।
जाँ-जाँ चढ़नई अरे उननें करीं, ताँ-ताँ बयें जमो न घास।।७१
डिरिया मरो अब दिल्ली गढ़ हाँ, सियला मरो गुजरात।
आला बिराठा अब मर गओ है, मर गये हैं कुँवर उदराज।।७२
बोले राजा अब ज्वापै करै हाँ, सुनलो चौंडिया बात।
पाँचई राँड़ें है महुबे में, लागें तौलत राजा जय चंद।।७३
सूनो महोबा अरे बन बन के हाँ। छिन छिन की होरई अबेर।
चढ़नई करदो अरे गड़िया खों, अबना करो देर के काम।।७४
हुमसन बिंदुलिया की देखी नई हो, ऊदल कुँवर की हाँक।
जाँ जाँ हाँके उनने दई, जाँ जाँ जिमी रुपै न पाँव।।७५

बघेलखंड के शैला गीत में भी यही छंद अर्थात् दोहे का पूर्व रूप प्रयुक्त हुआ है। दुर्गावती के शैला गीत से कुछ पंक्तियाँ देखें -

राजा दलपत के रानी हो, रणचंडी कहाय।
डगर डगर माँ डोलों हो, गढ़ मंडला बचाय।
हाथन माँ सोहे तरवार, भाला चकमत जाय।
सरपट सरपट घोड़ा भागें, दुर्गे भईं असवार।।[३५]

उक्त छंदों में से यदि बढ़ोत्तरी की मात्रायें निकाल दी जायें तो ये छंद दोहा रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं। एक उदाहरण देखें -

सदा न फूलै रंग तोरई हाँ, सदा न साउन होय
सदा न राजा रन पै चढ़ै, सदा न जीवन होय

दोहा रूप -

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय
सदा न राजा रन चढ़ै, सदा न जीवै कोय।।

यही कारण है कि दोहा रूप को भी सैरवार सैरा के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं। और साखी या सैरा के रूप में उसे गाते हैं। वास्तव में सैर छंद जो नृत्यगायन परंपरा से जुड़कर बाद में एक विशेष गाथा का पर्याय बन गया है वह दोहे का पूर्व रूप है और यथार्थ में यही आल्हा का प्रमुख छंद है जिसमें कभी जनकवि जगनिक ने आल्हा के चरित्र को लोकगायन और लोकमुख तक पहुँचाकर अमर किया था। आल्हा की बनाफरी वर्णना में यह छंद इसी अनगढ़ रूप में कहीं १६-१३, १६-१६, १७-११, १७-१२, १४-१६ आदि अंतरयतियों के साथ प्राप्त होता है।[३६] वर्तमान बुन्देली आल्हा गायकी में आज भी यह छंद ताल मात्रिक तथा अनगढ़ रूप में विद्यमान है। लोक में आज जो आल्हा छंद या वीर छंद प्रचलित है वह इसी छंद का परिनिष्ठित रूप है और विद्वानों द्वारा तालमात्रिक रूप से मात्रिक वृत्त में १६-१५ की अंतर्यति पर सुगठित हुआ है। इस प्रकार सैरा 'आल्हा' का प्रमुख छंद ही नहीं आल्हा के कथावृत्त का पर्याय भी है।

संदर्भ -

१. आल्हखंड शोध और समीक्षा : आल्हा की विविध वर्णनायें, डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. १७२
२. आल्हखण्ड की परम्परा - डॉ. लक्ष्मीगणेश तिवारी, पृ. ५
३. डॉ. पवन अग्रवाल का लेखक के नाम पत्र
४. मानक हिन्दी कोश, खंड ५, सं. रामचंद्र वर्मा, पृ. ४५२
५. गंगाधर गरिमा : सं. श्रीनिवास शुक्ल, पृ. ११
६. विंध्यालोक : सं. डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंयाँ, पृ. ७३ (लेख कवि गंगाधर और उनका साहित्य - डॉ. राधावल्लभ शर्मा)
७. मामुलिया, अंक ६, सं. २०३९, पृ. ४० (सैर काव्य की नई शैली के प्रवर्तक आचार्य द्विज रामलाल पाण्डे - डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त)
८. वही, पृ. ४०
९. संस्कृत हिन्दी कोश : आप्टे वामन शिवराम, पृ. १०८९
१०. मानक हिन्दी कोश : भाग ५, पृ. ३१२
११. पिछाड़ी भिगाऊ सेवरा (सेवरा - झिमिर झिमिर पानी बरसना) मालवी शब्द है डॉ. श्रीराम परिहार से वार्ता
१२. निमाड़ी शब्द कोश सं. रामनारायण उपाध्याय, पृ. ५६
नवभारत, इन्दौर, गुरुवार ३० जुलाई १९९८, (सपेरों की बीन पर बरसी बदरिया लेख - बूँदाबाँदी और सावन सैरों के जारी रहने की संभावना...)
१३. गौड़वाना की गौरव गाथा - डॉ. रामसिया सिंह, पृ. ११८
१४. आल्हाखण्ड - ठाकुरदास पृ. ६३
१५. अवधी कोश - रामाज्ञा द्विवेदी समीर, पृ. २१०
१६. फाग संकलन (हस्तलिखित प्रति) फाग संख्या २१३
१७. पृथ्वीराज रासो सं. डॉ. बी.पी. शर्मा, छं. २, पृ. ७५
१८. उर्दू हिन्दी शब्द कोश : मुहम्मद मुश्तफा खाँ मद्दाह, पृ. ६३४
१९. लोक साहित्य विमर्श : श्याम परमार, पृ. ३०
२०. वही, पृ. ३१
२१. वही, पृ. ३१
२२. वही, पृ. ३५
२३. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ. मोतीलाल मेनारिया, (पाद टिप्पणी), पृ. ६७
२४. शिवसिंह सरोज, पृ. २८३
२५. बुंदेलखंडी फड़ साहित्य : डॉ. गणेशीलाल बुधौलिया, पृ. २१६
२६. सैरा संकलन (हस्तलिखित प्रति) छंद ४१
२७. वही, छं. २७
२८. ठाकुर : स्व. चंद्रशेखर मिश्र शास्त्री, पृ. ७
२९. बुंदेलखण्डी लोक गीत : सं. शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. १७५
३०. मामुलिया अंक २२-२४ सं. २०४६, पृ. १२५ (बुंदेली के लोकनृत्य - डॉ. वंदना जैन)
३१. बुन्देलखंडी लोक गीत : सं. शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. १७६
३२. मात्रिक छन्दों का विकास : डॉ. शिवनंदन सहाय,
३३. बुन्देलखण्डी लोक गीत : सं. शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. १७६
३४. सैरा संकलन (हस्तलिखित प्रति)
३५. गौड़वाना की गौरव गाथा : डॉ. रामसिया सिंह, पृ. ११८
३६. भारत का भाषा सर्वेक्षण : सं. सर जार्ज अ. ग्रियर्सन, अनु. डॉ. निर्मला सक्सेना, पृ. २६२-२७६

- एम.बी./१२०, न्यू इंदिरा कॉलोनी,
पार्ट-बी, बुरहानुपर (म.प्र.)

मदन मुस्करायौ है

- ग्यासीराम गुप्त

शीतल, मंद, सुगंध समीर बहै दसों दिशान,
आमन में बागन भँवर गुनगुनायौ है।
कोयलिया कूक कूक कहत कछु संदेशौ सौ,
प्रकृति कौ रूप कछु दूसरौ ही पायौ है।
चटक उठे चौबन्द गोरी की चोली के,
ईंगुर से बदन से मदन मुस्कुरायौ है।
मोहक मृदु कली खिली, आन बैठौ आशिक अली,
मधुमय मकरंद आनन्द लेत, ऐसौ बौरायौ है।
रितुराज राज में आज आली हमहूँ नें,
नैनन-शराषन पै काम-शर चढ़ायौ है।

- आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

बुन्देली आशु कवि 'प्रमोद'

- डॉ. देवदत्त द्विवेदी

सांसउं भाग सराहती - माँ बाणी की गोद।
बिन्ध्य भूम के लाड़ले - कविवर सन्त प्रमोद।।

कलीदार कुरता औ फक्क सपेत पंडतयाऊ परदनी पैरें, कंदन पै पीरो गमछा, माँथे पै ठांड़ो रामानंदी तिलक औ गरे में तुलसी की माला जाइ बारामासी पोशाक हती सन्त कवि प्रमोद जू की। भक्ती भाव में डूबी सी ऊँची इकारी कद काठी, खिलो भव चेहरा औ मुस्क्याकें राम राम करवे वारे प्रमोद जू कौ बड़ो मिलनियाँ सुभाव हतौ। जेसइ पैराव ऊसइ सुभाव, जैसे भीतर ऊसइ बांयरें की ई क्षेत्र में जियत मिशाल बनें रय। वे सब सें नियारे सरलता की मूरत से दिखानें, येइ सें उनकी तरफै अवढ़ाव ध्यान खिचो चलो जात तौ। बात बतकाय कौ तौ येसों बढ़िया ढंग हतौ कै सुनवे वारे पै जादू सौ हो गव। गाँव-गाँव की चला फिरी सें उनकी जान-पैंचान पूरी असपैर भरे में फैली हती, पंडित पुजारी होंय चाय बन्ज बैपारी, किसान मंजूर होंय चाय हाकम अफसर सबइ जनें कवराज खौं अच्छे जानत मानत हते। वे बरदम कवता के रंग में रंगे दिखाने, चौकड़ियाँ औ सवइया तौ उनके मौं पै धरे रय। हाट बाजार, गैल घाट कंउ मिलें शौंकिया मान्स कवता सुनवे खौ। उतइं बैठार लेत ते। नाँइ करवी तौ जैसें उनकी जुवान पै हतौइ ना, तुरतइं मौका की कवता बनाकें सुनावे खौं तौ वे पूरी रियासत में बजे हते। सूदे साँसे सन्तोषी भाव बारे प्रमोद जू दूसरन खौं बड़प्पन औ आदर देवे में हर बखत आंगे रय।

साहित्य औ कला सें भरी पूरी बीर भूम बुन्देलखण्ड के जिला छतरपुर की तैसील बड़ेमलेरा में हल्कौ सौ गाँव है 'बमनी' येइ बमनी के बसइया श्री चतुर्भज शर्मा जू के घरै श्रीमति राधिकारानी की ओली में संवत् १९७४ (सन् १९१७) फागुन सुकल पाँचें खौं ब्रह्म भट्ट कुल में अपनो जनम भव हतो। इनके कुल गुरु ने इनको नाँव धरो 'बहादुर' पै जौ लौ नाँव चलवे की घरी आई अपुन हो गय प्रमोद जू। दस बारा बरस की बारी उमर में कवता करवे वारे प्रमोद जू के, पैलउ पैल कवित्त औ सवइया सुनकें, "पूत के पाँव पलना में परखवे बारे" बिजावर राजकवि आचार्य बिहारी जू ने इनें अपनो चेला (शिष्य) बनाकें उपनाँव धरो प्रमोद। ऊ बखत अपनी पढ़ाई लिखाई थोरी सी चारइ पाटी लौ हो पाइती, जबै शिक्षा के साधन कम हते। जीने पोथी-पत्रा बाँचबो औ चिठिया पाती लिखवौ सीख लव जान लौ खूब पढ़ लव। काय कै जब तौ ये सो मानवे बारे जादाँ हते कै "जादाँ पड़ो सो घर सें गय - थोरी पड़ौ सो हर सें गय।"

पन्ना राज के राजकवि कविवर कृष्णदास जू अपने चचेरे भइया हते, औ येइ बन्स के बिजावर राजकवि बिहारी जू अपने गुरु। दोई जनन के आशीरवाद औ सत्संग सें सरसुती मइया ने ऐसी कृपा करी कै प्रमोद जू चार पांच साल में हिन्दी और बुन्देली के सिद्ध आशु कवि बनें। बुन्देली गीत, चौकड़ियाँ और खड़ी बोली के कवित्त सवइया सुनावे खौं इने बड़ी बड़ी जांगां के बुलउवा आउन लगे ते। जब पूरे बुन्देलखण्ड में हिन्दी उरदू की कवता कौ डन्का पिट रव तौ, ऊ बखत अपुन ने बुन्देली सुना सुना कै खूब बड़वारी लूटी। विषय भाव के हिसाब सें नपे तुले उमदा बोलन वारी अपनी कवता ने बुन्देली मिठास की खूबइ गुरयाट बड़ाई। अपनी भाषा सरल औ मीठी तौ हेइ, बुन्देली अहाँनन के पिरयोग सें बाँकी बनक ठनक वारी बनी है। दूसरें अपुन ने खड़ी बोली मिलोंनी बुन्देली जैसी गाँवन में सहजू बोली बानी चलत है कौ अच्छौ सफल प्रयोग करो है।

प्रमोद जू जैसे सन्त कवि के बारे में जितनों लिखो जाय उतनों थोरौ है। जिनने जियत भर कविता पैरी ओढ़ी और खाई होवै, उनकी गैराई आँकवो सब के बस की बात नइयाँ। कवता कौ अहार करबे वारी एक साँसी चरचा भीमकुण्ड के पुजारी पं. श्री रामदास जू ने बताइ हती। जीखौं सुनकें उनके कवि धरम कौ साँसौ पतौ चलत है। एक बेर श्री वैष्णव स्वामी प्रपन्नाचार्य जू सें सत्संग कौ धरम लाभ लेवे खौ। जब प्रमोद जू भीमकुन्ड पै पौंचेते, कुंवार की नौ दुर्गा लगं रइंती। प्रमोद जू स्वामी जू सें मिलकें, पूजा रचा में शामल होवे औ कथाबारता के सतसंग खौ कुन्ड पै जा ठैरे। कुन्ड पै रुपे सबइ बाबा-बैरागी औ सतसंगी नौ दिन के पुवास (उपवास) करत ते, औ सब जनें संगे बैठकें एक बेर फलाहार करत ते। पै प्रमोद जू अपने गुरु बिहारी जू के अन्नपूर्ना माता बारे छन्द खौ गियारा बेर पड़कें, गियारा चुरू पानी पीकें डकार जात ते। उनने एकउ दिना फरार नइं करो, विरोवर सब के संगे भगवान की सेवा पूजा औ सन्तन की टाल-गुसाल में जुटे रय। येसो उत्तम भाव औ लगन देख कैं स्वामी जू ने उनें कछू औ ठेरबे कौ इसारौ करौ, बा कैसी कइ है कै - "जैसी जजमान के मन में - ऊसई पंडित जू के पन्ना में।" सो प्रमोद जू चार मइना बंदकें उते रुपे रय औ अन्त में स्वामी जू खौं अपनौ धरमगुरु बनाकें लौटे।

साँसी पूंछौ तौ प्रमोद जू खौं कवता के अलावाँ औ कछू पुसानौ नइयाँ। घर गिरस्ती की हैरानी खौं हंस के झेलत भये - जिन्दगी भर अपने कवि करम की पूजा में लगे रय। बुन्देलखण्ड के सबइ तीरथ और पवित्र स्थाँनन की पदयात्रा करकें उनने आदी से जादाँ जिन्दगी गुजारी। येइ सें सबइ तीरथन औ बुन्देली के बीरन कवियन के बारे में उनने अच्छी अच्छी कवतायें रची औ सुनाईं।

प्रमोद जू अपने चार भइंयन में बड़े हते, इनको पूरो परिवार एकइ बखरी में रव। इनके पिता स्व. चतुर्भुज शर्मा जू बैराग धारन करकें हनुमान गढ़ी अयोध्या खों चले गये ते। गिरस्ती के नय सीखा प्रमोद जू ने धीरज धरकें घर की जुम्मेवारी समारी औ खेती किसानी की हिल्लो चलाव बड़ाव। इनखौं भगवान पै बड़ो भरोसौ हतौ भलाई बुराई औ नफा-नुकसान सें दूर अपनी मैनत औ किस्मत के बल पै आंगे बड़े। इनके तीन बेटा औ दो बेटियाँ हैं, जिनें पड़ा लिखाकें अच्छी गैल धरा गय। बड़े- राधाचरन शर्मा (पुलिस), जगदीश शर्मा (शिक्षा) और पुरुषोत्तम बिजली विभाग में काम कर रय हैं। राधाचरन शर्मा जू में प्रमोद जू के गुन कूटकूट कैं भरे हैं, वे बुन्देली के नय

गीत औ बुन्देली व्यंग लिखवे में बड़े हुसयार हैं ई तराँ सें प्रमोद जू की विरासत खौं आँगें बड़ावे वारे उनके लरका बिटिया सुखी औ सम्पन्न हैं।

प्रमोद जू ने गाँव के जीवन औ गाँवदारी की परम्परन खौ खूब देख परख कैं बारीकी सें लिखवे को काम करो। बुन्देली संस्कृति की सेवा पूजा करवे वारे प्रमोद जू के लानें लिखो गव जो दोहा देखवे लाक है -

बेल बोइ कवि ईसुरी, व्यास करो दो पात।
सींची सुकवि प्रमोद सब-जब देखी कुमलियात।।

इनके लिखे लोकगीत औ चौकड़ियाँ, फागें लोक साहित्य बनकें ई क्षेत्र के गवइंयन के मौं पै धरे रत। होरी दिवारी पै इनकी फागें अटक कें गाई बजाइ जातीं। पढ़े लिखे होय चाय अपढ़ा सबइ जनें इनके बुन्देली साहित्य की कदर करवे वारे हैं। प्रमोद जू ने सोरा पोथी लिखी, अवे उनकीं रचीं अलवारी भर कांपी कितावें छपबे की बाट हेरें धरीं धरीं धूरा खा रइं कहांइं। कछू पोथी तौ पूरी तइयार धरी हैं, जिनमें गीता ग्रन्थावली, मानस मंजरी, चित्त-चैतावनी, सामयिक चरित्रावली, बुन्देली विहार खास हैं। ई सबइ पोथियन खों छपवाकें उनकी आत्मा खों सन्तोषी देवौ जरूरी है।

प्रमोद जू खौं बुन्देली धरती सें खूबइ पिरेम और आदर सम्मान मिलौ। हल्की बड़ी सबइ मंचन सें अपुन सम्मानित करे गय, जिनमें सिद्ध क्षेत्र द्रोण गिरी सेंधपा, नव जागरण साहित्य सम्मान बड़ामलहरा, बिहारी जू सम्मान बिजावर, बुन्देली उत्सव बसारी, रामराजा साहित्य परिषद ओरछा, बुन्देली सम्मान बड़ागाँव, पन्ना, अजयगढ़ आदि कौ पतौ चलो है। अपुन ने स्वतंत्रता संग्राम में सोउ बड़ चड़कें काम करो, और बसन्त लाल शर्मा के संगे अपन गिरफदार होके जेल गय ते। कवता के बहाने अपुन ने आजादी लेवे वारे केउ सवइया कवित्त सुनाकें मान्सन खौ प्रेरना देवे को काम करो।

प्रमोद जू की हिन्दी औ बुन्देली की तीन पोथी उनके जियत में छपी है। जिनमें पैली पोथी 'प्रमोद पुष्पांजलि' के नाँव से संवत् २०२५ में छपी। ई पोथी में शारदा अष्टक, श्री हनुमान अष्टक, औ चित्त चेतावनी खण्ड में भक्ति भाव की गंगा बहा रइ, तौ देश जागृति औ भारत हुंकार में साँसी देश भक्ती के भाव हिलोरें मारत हैं। अपुन खों आजादी की कितनी खुसी है -

बेड़ीं देश पाँयन बड़ी थी परतंत्रता की।
काट डाली गाँधी वीर एकता की छेनी में।।
लाल, हरे, स्वेत, रंग नीर सो परवार दियो।
पन्द्रह अगस्त ने तिरंगा की त्रिवेनी में।।

प्रमोद जू खों सुराज से जौन आसा हती जब वा डगमगान लगी तौ वे लिखत है। -

देश की विचित्र कछू कहत बनै न दशा।
देखो आश्चर्य मुन्श मूंशा भो बिलारी कों।।
भइयो ए मेरे दो सुझाव जाब मंत्रियों को।
चरैं लेत चाकर किसान हरियाली कों।।

अपुन ने चित्त चेतावनी में बड़े अनोखे ढंग से चेताव है -

मैंल भरी निखरी नहि कन्चुकी, पांवने आये लिवावने री।
देर नही श्रृंगार करो अब, वेग बुलाय दो नाँवने री।।
प्रीतम मानत न पलकी, पलकी को 'प्रमोद' सजावने री।
भेंट लौ आज सहेली हरौ, फिर जाने कबै मिल पावने री।।

प्रमोद जू ने अपनी जिन्दगी जौन मान मरयादा सें गुजारी, बेई शिक्षा दीक्षा दैवे की भावना से लिखो है -

पाया कर मोद तूँ प्रमोद मन भाया ऐंन
खाया कर गम्य औ गुविन्द गुण गाया कर।।

दूसरी पोथी 'बुन्देलखण्ड गरिमा' सन् १९८६ में छपी, ई में पूरे बुंदेलखण्ड के तीरथन, बुन्देलीवीरन औ बुन्देली चाल चलन कौ भौतइ बाँको बरनन करो गव है। ई पोथी कौ हर गीत अपने ढंग कौ अनौखौ है। ई में खड़ी बोली के गीत औ बुन्देली गीत और छन्द मुक्त रचनायें भी लिखी गई है। विषय भाव के हिसाब सें हिन्दी औ बुन्देली कौ येसौ मधुर मिलाव भव है कै गीतन में लोकवानी की सहजता औ सुन्दरता अवढाइ दे निकरी है। "सौ दण्डी एक बुन्देलखण्डी" वारी बुन्देली धरती के गाँवन की झाँकी देखबें -

ठौर ठौर छवि धाम प्रकृति का ऐसा सुन्दर घर है।
तपो भूमि हर ग्राम जहाँ जीवन की सहज डगर है।
ये महान वीरों की धरती उज्ज्वल धाम निराला।
इस बुन्देलखण्ड पर है इतिहास स्वयं मतवाला।।

प्रमोद जू बुन्देली मिजाज औ बुन्देली रबाज वारे कवि हते, येइ सें उनके गीतन में बुन्देली की आत्मा बसी दिखा रइ -

इतै की श्रम मय सन्जा भोर।
ना मानो तौ चलो देख लो गमइं गाँव की ओर।।
जहाँ से दइ मुरगा ने बांग- भुन्सराँ उठे उगारे आँग।
कलेवा लव भीतर से माँग - कंधा पै भरो पोतला टाँग।
लइयाँ पइयाँ करी ग्वासली - चले ढील कें ढोर।।

अपुन ने हीरा उगलवे वारी बुन्देली धरती पै पजवे वारे बन्न-बन्न के अन्न गिनाकें ई माटी की महिमा गाई है -

होत है कोदौ कुटकी धान,
जुनइ उरदा की उपज महान
चना गेंहूं औ जौ की खान
बनावें मन मन के पकवान
घीउ डालडा की झकमारे इतै कौ गुलिया तेल।
हमारौ धन धन खण्ड बुन्देल।।

तीसरी पोथी - "चौकड़िया शतक" संवत् २०५५ में छपवाई गइ ती, काय कै हजारन चौकड़ियां लिखवे वारे प्रमोद जू अपनी लिखी चौकड़िया छपवाबे खौं तइयार न हते। जब उने वरिष्ठ कवि गुप्तेश जू, स्वतंत्रता सैनानी कृष्णदत्त द्विवेदी जू ने समजाव गसाव, सो वे बरयाकें चौकड़िया शतक दैवे खौं राजी भयते। जो मजा सिंगार रस के गीत औ गजलें देती हैं, ओइ मजा और रस बुन्देली चौकड़ियां देत आँइ हैं। येइ सें इनके गवइया औ सुनइया पूरे बुन्देलखण्ड में भरे परे हैं।

प्रमोद जू ने चौकड़िया शतक में ओइ बुन्देली रीत (परम्परा) खों निभाउत मय सिंगार रस की थोरी बानगी देकें, अपनी कलम मान्स के आचरन में फैल रय येब कुटैब खों झारबे पै चलाई है। हालकी हैरानीं बनी दहेज पिरथा, लाँच घौंच, मैंगाई और भरेंसाई जैसीं बिकट समस्यन पै लिखी गईं चौकड़ियां कउँ पुचकारती कउँ

बुन्देली बीरता खौ ललकारतीं सीं दिखा रईं हैं।

देखौ जे भारत की नारीं, कितनी हिम्मत वारीं।
अपने तन की दै कुरवानी, रखो देश कौ पानी।

अपुन ने हँसा के चोट मारवे की कला खौं अपनाव येइ सें करइ सें करइ बात कै डारी -

पौरुष बैठो घूंघट घालें - देख समय की चालें।
करवालें कौने में धर दई - ओंदीं कर दई ढालें।
सिघांसन स्यारन कों सौंपे - शेर बैठ गये खालें।
साँची बात 'प्रमोद' कहे तौ आँखें फाड़त लालें।

पद औ पइसा के पछरूं मची गदबद सें, प्रमोद जू को भीतर वारो रोउत है। वे जमाने के भ्रष्टाचारी मान्स की आँखें खोलवे की कोशिश में लगे दिखात -

जाने कौन जमानो भैया - हो रअ हा हा दैइया।
अपने आप न जाने कैसें - गओ जौ बदल रवैया।
खेतै वारी खान लगी है - गय है चिमा रखैया।
लाँच 'प्रमोद' लक्ष्मी हो गइ - हो गय राम रुपइया।

भर्रेसाइ विवस्था को वरनन करवे सें उनको मतलब है, कै ई कायली कमजोर नीत खों जल्दी सुदारौ, जबई सुराज कौ मजा मिले -

हो रव काम सबइ को करों - सबइ जगाँ भव भरों।
महापुरुष पत्ता से झर गय - रै गब गाँव निखर्रो।
मेंड़ें मरयादा की फोरीं - भाँग कुवन में घोरी।
जो जो पिये नसा में झूमें - बाते करवे कोरी।

प्रमोद जूकी चौकरियन में बुन्देली पटतरे (उपमायें) येसीं चिपकी चली आँईं जैसें ढरमा से ढारी गइं होवें। इंनइं पटतरन ने उनकी हर कवता में प्रान डारवे को काम करो है।

"मैं दिन रात लुकांय फिरत हों लोभी कैसो सोंनौं"
जानें तो प्रमोद थैली की चोट बानियाँ जानें।" आदि

दहेज पिरथा पै लिखी अपनी चौकड़िया हर दहेज विरोधी मंच पै गाई जा रइ है -

बिटियन वारन पै बरयानी जौ दहेज की दाँनौ।
हाड़ै हरदी लगन न देवै धन ले बै मनमानौ।
ऐसे में गरीब गुरवन कौ कैसें परत ठिकानौ।

प्रमोद जू ने मान्सन खौं फजूल-खर्ची सें बचकें रैबे की राय सलाय दैवे में सोउ कसर नइं लगाई। अपुन नें सबइ खौं अपनी हैसियत के हिसाब सें सहजू जिन्दगी जीवे की कला बताई है -

हम तौ पैर पसारें उतने-जितनी अपनी चादर।
हम प्रमोद धरती की धूरा - तुम ऊपर के बादर।

येइ बात खौं हँस कें हँसाकें दूसरे ढंग से कै रय -

ले रई लरका ने फटफटिया, गानें धर दई पटिया।
दौ दौ तीन तीन बैठारत, रोज चड़ाबे घटिया।

बुन्देली लोक जीवन जीवे वारे प्रमोद जू ने, गाँव की गिरानी देखी औ भोगी है। बे जानत हैं कै गाँवन में गरीबी के कारन किसान के लरका बिटियाँ सोउ अपने बाप मताई के संगे खेती किसानी कौ काम करत हैं। अपनी फसल (जुनइ के खेत) के हरिया हाँकवे (उड़ावे) वारी बिटिया की दिनचरिया बताबे वारी जा चौकड़िया कै रइ -

मोंड़ी उठी ओड़कें फरिया, तरा देख भुन्सरिया।
भुंजी तिली के लटा बांध लये, लई पानी की घरिया।
दर भजिया रोटी पै धर लई, मिर्च नोंन की डरिया।
गुथना ले 'प्रमोद' मड़वा पै, चढ़ी हाँकवे हरिया।।

बुन्देलखण्ड के जन-मन में बसी प्रमोद जू की चौकड़ियन की गैराइ औ गुरयाट आँकवे खों, कवता के पारखी स्वः बाबूलाल 'गुप्तेश' जू की जा चौकड़िया सबइ कछू तौ कै गई -

रच दई सरस फाग चौकड़िया, एक एक से बढ़िया।
नव रस पूर्ण 'प्रमोद' बैठकें, माँ शारद की मढ़िया।
हाव भाव, बतकाव, चावमय, रस डूबी फुलझड़िया।
बुन्देली बोली वानी की, चिन्ताहरन रुखड़िया।

मन सें, बानी सें औ कलम सें बुन्देली की सेवा पूजा करवे वारे प्रमोद जू १२ जून २००६ खौ जा दुनियां छोड़ कें सुरगवासी हो गये ते। वे तौ चले गय, अब हमाव अपनो काम है, उनकी जुरी धरी कलम की कमाई खों उजागर करवे कौ (छपवावे कौ) पढ़वे कौ, आदमी के हाँथ में देवे कौ (बाँटवे कौ) जबइ उने सन्तोषी हूहै, औ हम उनके वारिस कहावे के हक्कदार बनें। प्रमोद जू तौ बुन्देलखण्ड के सुजस की पताका फैराकें ई धरती पै अमर हैं।

कविवर मरकें नहिं मरते हैं, नाम अमर करते हैं।
देश कलेश हरें शब्दों से, नेक नहीं डरते हैं।
इतिहासों के पेज पेज पै, युगवाणी भरते हैं।
कवि 'प्रमोद' हरि के गुण गाकर, भव सागर तरते हैं।

- उत्कृष्ट विद्यालय के सामने, बड़ामलहरा,

होली की फाग

- सौजन्य - भगवानदास कुशवाहा' सभापति'

टेक. बिरजी जे होरी के लानें, हमें खेलबे जानें,
कत्थई कारौ सुरमई प्याजी लाल हरौ रंग चानें,
पीलौ, नीलौ और बैंगनी नंनदी के चित्त समानै,
दो. धोये धये दृगन सै कढ़ गओ वीर अबीर।
जतन बतादे अरी अली, निकसत नहीं अहीर।।
टेक. कै रई और खेलनै होरी, पकड़ै राधा गोरी
नैनन में काजर लगवालो मांग में भर दई रोरी
लांगा सारी पहनो जेबर कसी बदन में चोरी
गरदन भर दीनों गहने से बैंदा भाल दओ री
कहै राम राजा मोहन को, नर सें नार करोरी
प्यारे आज खेललो होरी, ललक मिटी ना मोरी
घुरो धरो रंग कई बरन कौ भरौ गुलालन में झोरी
केशर और अबीर कुमकुम, मलौ कपोलन में रोरी
गंगाधर कहैं दंगल भीतर, वरनी है मोरी तोरी
होरी हमें खेलबे जानें, जाने आज बरसाने
सानें सने हमारे मोहन, रंग डारै मन माने
मानें कौन तराँ सें जियरा, जौ तक नईं दिखानें
खानै जबही कहत गंगाधर, मुक्त मोक्ष रस चानें।।

- सरानी दरबाजा बाहर, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली लोकगीतों की परम्परा और बन्नी गीत

- डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर

भारतीय हिन्दू पद्धति में विवाह संस्कार अपनी पावनता के कारण महत्ता प्राप्त किये है। विवाह की स्वीकार्यता और लोकमानस का हर्ष, उल्लास में चहकना खुशी का और बढ़ाता है। संस्कारों के अवसर पर खुशी के प्रदर्शन हेतु हाथ स्वतः ही किसी ध्वनि का प्रस्फोट करने लगते हैं; पैर स्वतः ही थिरकना शुरू कर देते हैं और मुख से स्वाभाविक रूप से गीतों की उत्पत्ति होने लगती है। स्वाभाविक रूप से प्रकट यही गीत जनमानस के मध्य लोकगीतों के रूप में प्रचलित रहते हैं। लोकगीतों में अद्भुत प्रकार की जीवन्तता होती है। जीवन की रागात्मक प्रवृत्ति का सांगोपांग चित्रण लोकगीतों में होता है।

लोकगीत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होते हैं, ये पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतः ही जनमानस के मध्य अपनी उपस्थिति बनाये रखते हैं। 'लोक' की पावनता को अक्षुण्य रूप से ये गीत अपने में समाहित कर जीवन्त रखते हैं। वर्तमान में समाज में 'लोक' को अंग्रेजी के 'फोक' का पर्याय स्वीकार कर इसका गलत अर्थ निकाला जाता है, जबकि सत्यता यह नहीं है। 'लोक' का ग्रामीण स्वरूप इसी विभ्रम के कारण उत्पन्न हुआ है। 'लोक' की पावनता को त्रिलोक-पृथ्वी लोक, आकाश लोक, पाताल लोक-के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। इसी पावनता के कारण लोकगीतों में सत्यं, शिवं, सुन्दरं का भाव समाहित माना जाता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र सदैव से संस्कृति-समृद्ध रहा है। शौर्य, रक्षा, क्षमा, दान, वीरता, उत्साह जैसे आन्तरिक गुणों के अतिरिक्त यहाँ पर्वो, त्यौहारों, व्रतों, मेलों, उत्सवों आदि का आयोजन समय-समय पर होता रहता है। इसी कारण से इस क्षेत्र के जनमानस में हरपल उत्साह का संचार होता रहता है और पर्वों, त्यौहारों, समारोहों के अतिरिक्त श्रम के समय भी मजदूरों, किसानों आदि के द्वारा पूर्ण उत्साह के साथ लोकगीतों का गायन होता रहता है। मंगलाचार, कृषिकार्यों, तीर्थयात्राओं आदि पर गाये जाने वाले लोकगीतों का अपना अलग स्वरूप है। इसी तरह के लोकगीतों के विविध रूप विवाह अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में भी दिखाई देते हैं। विवाह संस्कार की वैविध्य रस्मों पर घर-परिवार की स्त्रियों द्वारा लोकगीत गाये जाने का चलन आज भी है। वैवाहिकी सम्बन्धी छोटे-बड़े सभी प्रकार के आयोजनों में महिलाओं द्वारा उत्साहजनक उपस्थिति लोकगीतों के माध्यम से दिखती रहती है।

विवाह संस्कार की विविध रस्मों का प्रारम्भ वर-वधू पक्ष के आपसी समन्वय के बाद से हो जाता है। तदुपरान्त सगाई की रस्म से लेकर वधू के गृह-आगमन तक और उसके पश्चात तक भी लोकगीतों का गायन होता रहता है। लगुन, माटी-मिथौरी, तिलकोत्सव, मण्डप, तेल-चढ़ावा, चीकट उतराई, भात पहनाना, द्वारचार, भांवरें, चढ़ावा, कुंवर कलेवा, मुंह दिखाई, देवपूजन, रोटी छुवाई आदि-आदि अनेक प्रकार की रस्मों में घर-परिवार की, पास-पड़ोस की महिलायें लोकगीतों के साथ अपनी सहभागिता करती हुई इन रस्मों का निर्वाह करती हैं। विवाह संस्कारों में लड़के को इंगित करके गाये जाने वाले गीतों को बन्ना गीत और लड़की को इंगित करके गाये जाने वाले गीतों को बन्नी गीत कहते हैं। बन्ना, बन्नी से तात्पर्य यहां उस लड़के और लडकी से होता है जो विवाह-बंधनों में बंधने जा रहे होते हैं। इस कारण से वर-कन्या के घरों में लोकगीतों के माध्यम से बन्ना-बन्नी गीत गाकर अपनी खुशी प्रकट की जाती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बन्नी गीत का आरम्भ लड़की की लगुन लिखे जाने के अवसर से होता है। इस अवसर पर दैवीय अनुष्ठान आदि के द्वारा वैवाहिक कार्यक्रमों के शुभ मुहूर्त निर्धारित करके मंगल-पत्री को लड़के वालों को सौंपा जाता है। कन्या-पक्ष की महिलायें इस अवसर पर बन्नी गीत गाकर शुभ कार्यक्रमों का आरम्भ करती हैं।

"जनक राजा के अंगना में खुशियां छाईं रे,
मंगल घड़ी आई रे, सियाजू के मंगल गाइये।
गिरिजा पूजन सीता गईं, रामलला के दर्शन पाये,
नैनन बसाई सांवरी मूरत, सियाजू के मंगल गाइये।
राजा राम ने तोड़ो धनुष है, राजा जनक को मान धरो है,
सिया-राम की जोड़ी सजेगी, सियाजू के मंगल गाइये।"

विवाह के अवसर पर वर-कन्या में सीता-राम का आरोपण करके इन मंगल लोकगीतों की रचना महिलाओं द्वारा कर ली जाती है। इस अवसर पर सम्पन्न होने वाले अनुष्ठान में महिलायें हर्षोल्लास से लोकगीतों का गायन करती हुई कार्यक्रमों को दिव्यता प्रदान करती हैं। देवअनुष्ठान के साथ पुरोहित जी शुभलग्न का विचार कर रहे होते हैं और महिलायें समूहबद्ध रूप से लोकगीतों का गायन करती हुईं वातावरण को रसमय बनाती हैं-

"दशरथ सुत ने तोड़ो धनुष, मंगलाचार गवत है,
रचो रे पत्री, मंगल-पत्री, मिथिला में रस बरसत है।
कौन मंगाय कोरे कागज, कौन भरी सियाही शीशी,
बाबुल मंगाये कोरे कागज, भैया भरी सियाही शीशी।
कोरे कागज पै शुभ मिती भेजो, मिथिला में रस बरसत है।"

इसी तरह से लोकगीतों में सभी रिश्तेदारों को सम्बोधित करते हुए उसका गायन होता रहता है। विवाह के अवसर पर लगभग समस्त कार्यक्रमों का संचालन महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। इस विविध कार्यक्रमों में महिलाओं की सहभागिता उन कार्यक्रमों को लोकगीतों के द्वारा उल्लासपूर्ण बना देती है। सगुन कार्यक्रम के बाद माटी-मिथौरी, देवताओं का आवहान आदि संस्कारों/रस्मों का निर्वहन किया जाता है और इन अवसरों पर महिलाओं द्वारा देवी गीतों, धार्मिक गीतों का गायन होता रहता है। बन्नी गीतों को अधिकांशतः ऐसे अवसरों पर गाया जाता है जिन कार्यक्रमों में लड़की की उपस्थिति अथवा सहभागिता सीधे-सीधे जुड़ी होती है। घर की स्त्रियां, लड़की की चाची, मामी, मौसी, बुआ, भाभी, बहिनें आदि मजाक करती हुईं बन्नी गीतों को गाती रहती हैं और रस्मों को सम्पन्न करवाती रहती हैं।

इन रस्मों और कार्यक्रमों के मध्य कन्या के रूप-सौन्दर्य को निखारने, संवारने का कार्य भी चलता रहता है। हल्दी-तेल चढ़ाने की रस्म का प्रतिपादन इसी के लिए किया गया होगा। हल्दी-तेल चढ़ाने की रस्म कहीं-कहीं मण्डपाच्छादन के पूर्व और कहीं-कहीं मण्डप के बाद सम्पन्न होती है। पांच, सात, नौ आदि की विशम संख्या में इस रस्म

का समापन होता है। इस रस्म का निर्वाह महिलाओं द्वारा होता है जिसमें कन्या के पैर, हाथ, कंधे, माथे आदि पर तेल-हल्दी लगाई जाती है। इस अवसर पर भी महिलायें लोकगीतों का गायन करती हुई हंसी-मजाक आदि के द्वारा वातावरण को तरंगित करती जाती हैं-

"आज मोरी बन्नी को तेल चढ़त है,
तेल चढ़त है, फुलेल चढ़त है। आज मोरी बन्नी....
सोने की बिलियन में तेल भराओ,
हल्दी मिला के उबटन चढ़ाओ,
बन्नी को रूप कैसो दमकत है। आज मोरी बन्नी....
तेल के संगे छुटकी पांखुरियां,
भौजी तेल चढ़ाओ बन्नी बांहुरियां,
चन्दा सौ रूप कैसो छलकत है। आज मोरी बन्नी...."

हल्दी-तेल चढ़ाने की रस्म का एक और गीत कुछ-कुछ इसी तरह का ही है, चूंकि लोकगीतों में रस्मों के निर्वहन का रूप छिपा होता है और इसी कारण से अधिकांश लोकगीतों की आत्मा एक जैसी ही होती है। एक अन्य लोकगीत का उदाहरण-

"आज मोरी बन्नी के तेल चढ़त है,
तेल चढ़त है, फुलेल चढ़त है। आज मोरी बन्नी....
चढ़ गयो तेल, छुटकी पांखुरियां,
कौन ल्याओ तेल, कौन पांखुरियां,
तेलिन लाई तेल, मालिन पांखुरियां। आज मोरी बन्नी....
कौन चढ़ाओ तेल, कौनो पांखुरियां,
भौजी चढ़ाई तेल, बन्नी की बाहुंलियां। आज मोरी बन्नी...."

विविध कार्यक्रमों के मध्य रस्मों का निर्वहन हंसते गाते होता रहता है। घर के आंगन में मण्डप की रस्म सम्पन्न की जाती है। इस रस्म का निर्वहन घर के पुरुषों विशेष रूप से भाइयों द्वारा किया जाता है। मण्डपाच्छादन की इस प्रक्रिया में भूमि खोदना, लीपना, मण्डप लगाना, कलश रखना, जल भरना आदि क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है। सारी क्रियाओं का वर्णन इस अवसर पर बन्नी गीत के माध्यम से प्रकट होता रहता है। मण्डप के अवसर पर गाये जाने वाले बन्नी गीत की एक बानगी-

"सुगर बढ़ैया, चंदन मड़वा को रुच-रुच के ल्याओ रे।
चारउ कौनन पै खम्बा लगाओ रे,
बीच में चन्दन मड़वा गड़वाओ रे।
गैया को गोबर मंगाओ, ढिंग दै आंगन लिपाओ रे।
सुगर बढ़ैया, चंदन मड़वा को रुच-रुच के ल्याओ रे।।
भैया ने रोपे चंदन मड़वा, फूफा ने छाये जामुन पत्ता।
सोने की थारी बुआ भर ल्याई, छप्पन भोग लगाओ रे।
सुगर बढ़ैया, चंदन मड़वा को रुच-रुच के ल्याओ रे।।"

मण्डप के बाद भी तेल-हल्दी की रस्म होती रहती है और ऐसे अवसर पर महिलायें अपनी कन्या की शोभा का बखान करने से पीछे नहीं रहती हैं। कार्यक्रमों, रस्मों के अतिरिक्त भी घर के अन्य दूसरे कार्यों को सम्पन्न करते समय भी लोकगीतों के माध्यम से बन्नी के गुणगान होते रहते हैं-

"बन्नी की शोभा सजीली है, बन्नी छबी नीकी लागी रे।
हल्दी उबटन से रूप संवारो, चन्दा सा सुन्दर मुख है वारो।
चारउं दिशा जाकै रूप से दमकें, बन्नी छबी नीकी लागी रे।
माथे पै बेंदी दमदम दमकै, कानन में कुण्डल चमचम चमकै।
मुतियन को सुन्दर हार गले में, बन्नी छबी नीकी लागी रे।"

इसके अतिरिक्त बन्नी की शोभा का वर्णन घर की बड़ी-बुजुर्ग महिलायें करते हुए बन्नी गीत को कुछ इस तरह से प्रस्तुत करती हैं-

"मैया की कोख से जनम लओ है, रूप सांचे में ढार दओ है
हमाई बन्नी रुनक-झुनक करी जाये।
बाल हैं कारे, अँखियां हैं कारी, सोने की काया पै जाउं बलिहारी,
हमाई बन्नी रुनक-झुनक करी जाये।"

कार्यक्रमों, रस्मों का परम्परागत रूप से निर्वहन होते-होते पाणिग्रहण संस्कार का समय आ जाता है। कन्या को वरमाला कार्यक्रम हेतु सोलह शृंगार के द्वारा तैयार किया जाता है। बारात वर को लेकर कन्या के द्वार पर आ जाती है। वर यहां भगवान का रूप समझा जाता है। वर और कन्या पर राम और सीता का आरोपण कर सभी उन्हें पर्याप्त आदर प्रदान करते हैं। द्वारचार के अवसर पर वर घोड़े पर चढ़कर आता है और कन्या पक्ष की स्त्रियां बन्नी गीत के द्वारा अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करती हैं-

"आज बन्नी को ब्याहन राजा रामजू आये,
घोड़ी पै चढ़कै द्वारे पै आये।
बन्नी ने रूप रुच-रुच के संवारो,
माथे पै बिंदिया, गले में मुतियन हार डारो।
आज बन्नी को ब्याहन राजा रामजू आये।
हाथन में मेंहदी, आंखन में कजरा लगाओ,
नाक में नथिनी, कानन में कुण्डल सजाओ।
आज बन्नी को ब्याहन राजा रामजू आये।।"

इस प्रकार के गीत बन्नी का शृंगार करने के अवसर पर भी गाये जाते हैं। हंसी-खुशी से चहकती स्त्रियाँ किसी भी रूप में अपनी बन्नी को कम नहीं समझती हैं। वे द्वार पर आये वर की शोभा और बन्नी की शोभा का बखान करती हैं पर अपनी बन्नी को वर से कम नहीं स्वीकारती हैं। इस प्रकार के हंसी-मजाक के वातावरण में ये लोकगीत माहौल को और भी खुशनुमा बना देते हैं-

"बन्ना जी आये बन्नी का ब्याहने,
सजे दोनो बराबर हैं, शान बन्नी की न्यारी है।
बन्ना के सिर पै सेहरा सोहै, बन्नी के सिर माथे बेंदी सोहै,
चमकें दोनो बराबर हैं, शान बन्नी की न्यारी है।
सजीलो रूप बन्ना को दमकै, सोलह शृंगार में बन्नी दमकै,
रूप दोनो सुहावन हैं, शान बन्नी की न्यारी है।"

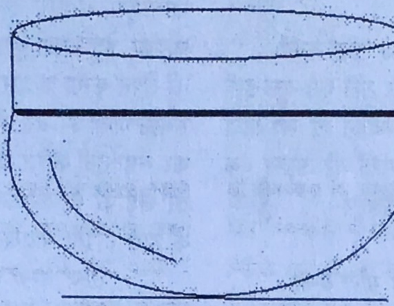
इस प्रकार से बन्नी गीतों के साथ विवाह-संस्कार सम्पन्नता की ओर बढ़ते जाते हैं। अपनी खुशियों को प्रदर्शित करती महिलायें द्वारचार के बाद भी सम्पन्न होने वाली विविध रस्मों में लोकगीतों का गायन करती हैं किन्तु बन्नी गीतों का गायन बन्द हो जाता है। भांवरों के समय, चढ़ावे के समय, मांग भराई, सप्तपदी, बाती मिलाई आदि के अवसर पर भी लोकगीतों के माध्यम से वातावरण को पावन और सरस बनाये रखा जाता है।

- प्रवक्ता-हिन्दी विभाग गांधी महाविद्यालय,
उरई-जालौन

कुरैया : अन्नदेव के प्रति सम्मान और सामाजिकता का प्रतीक

- डॉ. (सुश्री) शरद सिंह

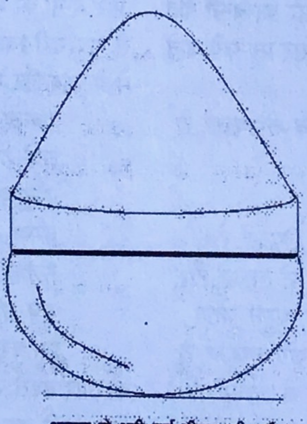
वस्तुतः मानव जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखने वाले गुणों को मानव मूल्य कहा जाता है। आज मूल्य शब्द का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक आदि सभी क्षेत्रों में समान रूप से व्यवहार के लिए होने लगा है। मूल्य शाश्वत व्यवहार है। इसका निर्माण मानव के साथ-साथ हुआ है। यदि इसका अंत होगा तो फिर सभ्यता के साथ मानवता भी समाप्त हो जायेगी। 'मूल्य' उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है जिनमें मानव जीवन का हित समाविष्ट हो, जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य मानता है। मूल्य परम्परा का प्राण तत्त्व है। ये जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मत सिद्धान्त होते हैं। मूल्यों को अपनाकर जाति, धर्म और समाज को, मानव जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास किया जाता है।



पीतल की कुरैया

मूल्य सामाजिक मान्यताओं के साथ बदलते भी रहते हैं, किन्तु उनमें अन्तर्निहित मंगल कामना और सार्वजनिक हित की भावना कभी तिरोहित नहीं होती। नए परिवेश में जब पुरानी मान्यताएं कालातीत हो जाती हैं तो समाज नयी मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है और वे ही मान्यताएं 'मूल्य' बन जाती हैं। पुरातन काल में जीवन मूल्यों के रूप में श्रद्धा, आस्था, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को स्वीकार किया गया है। वहीं नवीन मूल्यों में सत्य, अहिंसा, सहअस्तित्व, सहानुभूति, करुणा, दया आदि आते हैं।

लोक परम्पराएं मानव मूल्यों पर ही आधारित होती हैं और उनमें मानव-जीवन के साथ ही उन सभी तत्वों का विमर्श मौजूद रहता है जो इस सृष्टि के आधारभूत तत्व हैं और जो मानव-जीवन की उपस्थिति को निर्धारित करते हैं। जैसे- जल, थल, वायु, समस्त प्रकार की वनस्पति, समस्त प्रकार के जीव-जन्तु आदि।



अनाज से भरी हुई पीतल की कुरैया

किसी भी लोकसंस्कृति में प्रकृति का सबसे उच्च स्थान होता है। लोक की आस्था और लोकविचार प्रकृति के स्मरण से आरम्भ होते हैं और प्रकृति के साथ-साथ संचालित होते हैं। सूर्य, चंद्रमा, तारे, दिन, रात, नदी, पर्वत, रेत, मिट्टी, पत्थर, पेड़, पौधे आदि जो भी प्रकृति के रूप हैं वे लोकमानस के लिए स्तुत्य हैं। लोक संस्कृतियां आज भी अपनी मौलिक मान्यताओं, रीति-रिवाज़ों एवं लोकसंस्कारों के साथ जीवनयापन कर रही है। किन्तु समय और समाज में परिवर्तन के क्रम में ये संस्कृतियां भी अपनी परम्पराओं को खोने लगी हैं। सम्पूर्ण जीवन शहरी और ग्रामीण दो भाग में विभक्त हो गया है। पारम्परिक मान्यताएं, विश्वास और चलन ग्राम्य अंचल में आज भी विद्यमान हैं। विशेष बात यह है कि लोक मान्यताओं, परम्पराओं और संस्कारों में परस्पर प्रेम, सौहादर्य और सामाजिकता के पाठ निहित रहते हैं जो मनुष्य को मनुष्यता सिखाते हैं। पहला पाठ प्रकृति को सम्मान देने से आरम्भ होता है। इन प्रकृति-तत्वों में अन्न का मानव जीवन में सबसे मुख्य स्थान होता है। इसीलिए अन्न के प्रति सम्मान का भाव रखने की शिक्षा एक पीढ़ी अपने आगे की दूसरी पीढ़ी को देती है और यह क्रम सतत चलता रहता है। अन्न को सम्मान देने के भाव से जुड़ा है कुरैया का उपयोग।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित कुरैया, कहने को तो महज एक बरतन होता है। यह पीतल की बनाई जाती है जो कि पारम्परिक बरतन विक्रेताओं की दुकानों पर उपलब्ध रहती है। कुरैया से छोटा भी एक माप होता है जिसे चौथिया कहते हैं जो एक किलो माप का होता है। यह पीतल के अलावा लकड़ी का भी बनाया जाता है। किन्तु कुरैया सिर्फ पीतल का ही बनाया जाता है। कुरैया का आकार-प्रकार विशिष्ट होता है। अर्द्धगोलाकार आकृति के ऊपरी भाग में चौड़ा पाट बिठा कर इसे आकार दिया जाता है। यह चौड़ा पाट दोहरे पट्टे का होता है जिससे पकड़ते समय असुविधा न हो। यह एक ऐसा बरतन है जो प्रत्येक किसान के जीवन से जुड़ा रहता है। किसान अपने बच्चों को पक कर तैयार फसल के प्रति आदर भाव सिखाने का कार्य कुरैया के उपयोग के साथ-साथ करता जाता है। कुरैया अनाज मापने का एक बरतन होता है जिसके द्वारा अनाज को माप कर यह पता लगाया जाता है कि खेत में कुल कितनी फसल हुई। कुरैया से मापे जाने के बाद ही अनाज के बोरों को तराजू पर तौला जाता है। इस तरह माप का पहला विश्वास भी कुरैया ही होता है।

कुरैया को प्रयोग में लाने के भी कुछ नियम होते हैं। आमतौर पर खेत पर पुरुष ही इसका उपयोग करते हैं। यह अथक श्रम से जुड़ा हुआ बरतन है। कुरैया को कभी भी जूता या चप्पल पहन कर उपयोग में नहीं लाया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि जिस स्थान पर इसे काम में लाते हैं वहां अनाज का ढेर अर्थात् अन्नदेव उपस्थित रहते हैं। जूते और चप्पल को उस स्थान से दूर उतार दिया जाता है। कुरैया से माप करने वाला व्यक्ति कभी नंगे सिर इससे माप नहीं करता है। सिर पर गमछा, साफ़ा या किसी भी प्रकार का कपड़ा बांध कर ही कुरैया को उपयोग में लाया जाता है। इसके पीछे यह विचार निहित रहता है कि कुरैया पवित्र बरतन है जो अन्नदेव की सेवा में

संलग्न है। कुरैया को अनाज मापने के अतिरिक्त किसी अन्य काम में नहीं लाया जाता है।

कुरैया की मापक क्षमता पांच किलो अर्थात् एक पसेरी रहती है। अन्न का माप करते समय कुरैया को ऊपर तक पूरी तरह भरा जाता है। अन्न की यह ऊपर तक भरी हुई मात्रा पांच किलो मानी जाती है। कुरैया द्वारा मापा हुआ अन्न तराजू द्वारा तौल करने पर पांच किलो ही निकलता है। बीस कुरैया का एक बोरा होता है अर्थात् सौ किलो माप का।

अनाज को कुरैया से मापते समय अन्न के खेप की गिनती भी विशेष प्रकार से की जाती है। पहली माप को 'एक' न कह कर 'राम' कहा जाता है। दूसरी माप करते समय, जब तक कुरैया ऊपर तक भर नहीं जाती तब तक 'राम-राम-राम' का ही उच्चारण किया जाता है। कुरैया ऊपर तक भरने के पश्चात दूसरी माप से 'दो-दो-दो' का उच्चारण किया जाता है। इसके बाद इसी क्रम में तीन-तीन-तीन, चार-चार-चार, पांच-पांच-पांच आदि सामान्यतौर पर माप की जाने वाली गिनती बोली जाती है। इस प्रकार अनाज की पहली माप 'राम' नाम से आरम्भ होती है जो शुभ-लाभ का पर्याय है।

कुरैया के प्रति जुड़ा हुआ यह सम्मान भाव उस लोक विश्वास का परिचायक है जो अन्न की महत्ता को स्थापित करता है। अन्न से मनुष्य का पेट भरता है, जीवन चलता है और अन्न संतति के लिए स्फूर्ति एवं ऊर्जा प्रदान करके जीवन को पीढ़ियों के रूप में सतत प्रवाहित करता है। अन्न की कमी अथवा अन्न का अभाव अकाल के रूप में अकाल-मृत्यु का कारण बन सकता है अतः अन्न को समुचित सम्मान दिया जाना चाहिए। अन्न वह देवता है जो अथक श्रम से प्रसन्न होता है। अन्नदेव के प्रसन्न होने पर ही मनुष्य को भोजन मिलता है और कृषक को धन-सम्पदा मिलती है। यह लोकाचारी विचार अनाज का सम्मान करना सिखता है। इस सम्मान की भावना को बलवती बनाने के लिए उन सभी वस्तुओं को सम्मान दिया जाता है जो अन्नदेव से जुड़ी होती हैं। कुरैया भी उनमें प्रमुख वस्तु है।

कुरैया का एक दूसरा पक्ष भी है जो पारस्परिक सौहार्द्र को सुदृढ़ता प्रदान करता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक फसल उत्पादक के पास अपना कुरैया हो। यदि उसके पास कुरैया नहीं है तो वह दूसरे व्यक्ति से कुरैया मांग लेता है। एक कुरैया को एक से अधिक किसान उपयोग में लाते हैं। कई बार एक गांव के लोग दूसरे गांव से कुरैया मांग कर लाते हैं। माप का क्रम हो जाने के बाद पूरी ईमानदारी के साथ कुरैया उसके वास्तविक स्वामी के पास पहुंचा दिया जाता है।

कई बार कुरैया को लौटाए जाने में देर होने पर उसके स्वामी के घर की महिलाएं इस प्रकार उसका स्मरण करती हैं जैसे उनकी छोटी बहन या बेटी ससुराल गई हो और बहुत अरसे से मायके न आई हो। इसी भाव को व्यक्ति करता यह लोकगीत कुरैया के प्रति आत्मीयता को दर्शाता है-

मोरी बिन्ना सी कुरैया अबे लों ने आई
कोऊ जाओ तो ले आओ, लेवउआ बन के
मोरी बिन्ना सी कुरैया अबे लों ने आई....
गेहूं के लाने गई थी, चना के लाने गई थी
कोऊ जाओ तो ले आओ, लेवउआ बन के
मोरी बिन्ना सी कुरैया अबे लों ने आई....

कुरैया मानो परिवार का सदस्य हो, कुरैया मानो सखा-सहेली हो, कुरैया मानो अन्नदेव तक संदेश पहुंचाने वाला देवदूत हो। किसान कुरैया से अनुनय-विनय करता है कि उसका संदेश अन्नदेव तक पहुंचा दे-

कहियो, कहियो कुरैया! जा के नाजदेव से
अगले बरस सोई भर-भर आइयो
हमरी खबर मालिक ना बिसराइयो
कुइयां न सूकें, सूकें न नदियां
कहियो, कहियो कुरैया! जा के नाजदेव से.....

इस तरह धातु से बना मूक बरतन किसी सजीव व्यक्ति की भांति संदेशवाहक बन जाता है। यही तो जीवन्त विश्वास और मान्यता है जो प्रत्येक जड़-चेतन के महत्व को स्थापित करती है। कुरैया आपसी सौहार्य एवं भाईचारे का माध्यम बनता ही है किन्तु इससे से भी बढ़ कर महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रायः ग्राम्य अंचलों में जातीय भेद-भाव प्रभावी रहता है किन्तु कुरैया का उपयोग इसका अपवाद है। यह प्रत्येक जाति-धर्म के लोगों के बीच परस्पर आदान-प्रदान के रूप में काम में लाया जाता है। कुरैया मानव विश्वास और सामाजिकता का प्रतीक है।

- एम-१११, शांतिविहार, रजाखेड़ी, सागर

बुन्देली सूक्तियाँ

- चिन्तामणि वर्मा

- चन्दन, चाँवर, तृण, तिया, सिंह, लंक, सनसूत।
  जे दस पतरे चाहिए, तुला, राग रजपूत।।
- पय, पानी, रस, पानहीं, पान, दान, सम्मान।
  जे दस मोटे चाहिए, साव, राज, दीवान।।
- इश्क, मुश्क, खाँसी, खुशी, खूबी, मदिरा, पान।
  जे दस दाबे न दबैं, पाप पुण्य औ स्यान।।
- कस्तूरी, कदली, तुरी, कपड़ा, कनक, कमान।
  जे सब नूतन चाहिए, काम, धाम औ बाम।।
- बस्ती, बैद, तपेश्वरी, पुरोहित, तन्दुल, पान।
  जे नौ नए न चाहिए, तेल, दिवान कृपान।।
- भीख, दायजी, नाठ धन, चोरी, जुआ, अभात।
  इतने धन खाँ परहरौ, जे नाहीं ठहरात।।
- अधिक सिधाई परहरौ, सूदे टका बिकाँय।
  टेढ़े लागैं पालकी, बे पच्चीसौं जाँय।।
- अगहन बदी आठैं घटा, बिजु समैती जोय।
  तौ सावन बरसै भलौ, साख सवाई होय।।
- आगे रवि पीछैं चलै, मंगल जो आषाढ़।
  तौ बरसै अनमोल हौ, धरती उमड़ै बाढ़।।

- चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

मधुर स्मृति का बुंदेली काव्य "भैया अपने गाँव में"

- डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी

'भइया अपने गाँव में' बुंदेली बोली में इसी अंचल के बारे में रचित मुक्तकों का संग्रह है। इन मुक्तकों में बुन्देलखण्ड की विलुप्त होती लोकरीति का सुन्दर संगुम्फन हुआ है। ऐसे समय में जहां आधुनिकता और उसकी उत्तरोत्तरता में परंपरा और संस्कृति के अवशेष मात्र बचे हैं, बुन्देली के इन पदों को पढ़कर हम पाते हैं कि हम इस दौर से कितना आगे निकल आए हैं। किसी संस्कृति के मूल स्वरूप का दर्शन आधुनिक समाज में दुष्कर हो गया है। समय परिवर्तनशील है, किन्तु समाज उससे भी अधिक वेग से प्रतिपल बदलता जा रहा है। पल भर को भरपूर जी लेने की आकांक्षा मनुष्य में बलवती हो गई है। मनुष्य पुरातन से विच्छिन्न हो रहा है, आधुनिक पीढ़ी का एक वर्ग अपनी धरोहर को संजोने को अवांछित-सा मानने लगा है। ऐसे में इन पदों से गुजरते हुए पाठक को बरबस अपने जिए हुए समय का स्मरण हो आता है।

यह पद बुंदेलखण्ड के गाँवों की संस्कृति को कुछ चुने हुए रूपों के साथ तो प्रस्तुत करते ही है, बुंदेली बोली के माधुर्य और अप्रचलित शब्दों का सुमधुर पाठ भी हमारे सम्मुख रखते हैं। भारत प्रमुखतः गांवों का देश है, अतः यहां के गांवों की समृद्धि होने पर ही देश की खुशहाली संभव है। बोली का मूल प्रयोग गांवों में हुआ है। भाषा के स्तर पर जो बोली जितनी अधिक सम्पन्न है और उसमें जितना अधिक साहित्य-सृजन हुआ हो, उससे हमारी राष्ट्रीय भाषाएँ उतनी ही समुन्नत होती है। यह विदित है कि आधुनिकता के बढ़ते दबाव के बीच बोलियां समाप्त हो रही हैं। जिस बोली में व्यक्ति लिखना-पढ़ना बंद कर देते हैं, बोलने के स्तर पर वह बहुत अधिक समय तक जिंदा नहीं रह सकती। बोली का वाचिक रूप उसके लिखित रूप से संरक्षित और सुरक्षित रहता है, अन्यथा वह बोली अनेक दबावों के चलते अप्रचलित हो जाती है। आदिवासियों की भाषाओं के विलुप्तीकरण का यह प्रमुख कारण है। वर्तमान में पठनशीलता का पतन हो गया है। पुस्तक और पत्रिकाओं का मात्रात्मक प्रकाशन तो बढ़ा है, किन्तु वह सर्वमान्य है कि गंभीर पाठक अब बहुत थोड़े ही रह गए हैं। आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में जो आंखों के सामने से क्षणिक रूप से गुजरा, उसी पर दृष्टिपात कर पाठक संतृप्त हो रहा है। पढ़ने के तौर-तरीके बदल रहे हैं, अब फेसबुक, ट्विटर और अन्य सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट भी पढ़ने के प्रभावी और उपलब्ध माध्यम बन गए हैं। इनसे जुड़ा पाठक तकनीकी की सीमाओं और सुविधाओं तथा सूचनाओं के अंबार के चलते थोड़े समय में ही अधिक पा लेने की चाह में है। इसलिए लिखना और अपनी प्रतिक्रिया देना भी अब त्वरित हो गया है, क्योंकि इन माध्यमों पर उसका भी अवसर सुलभ है। क्षण-प्रतिक्षण आ रही सूचनाओं के बीच मूल्यों और संवेदनाओं का ठहराव नहीं हो पा रहा है। कुछ लोगों का मानना है कि यह ठीक ही है, जो अच्छा होगा, वही टिकेगा; किंतु वास्तव में कुछ जम नहीं रहा है तो क्या इसका अर्थ है कि कुछ अच्छा नहीं लिखा जा रहा है। बात वास्तव में ऐसी नहीं है, अच्छे को देखने की हमारी आदतें छीन ली गई हैं। हमें उपभोक्ता बना दिया गया है। यह विज्ञापन का युग है और विज्ञापन का लक्ष्य है कि उपभोक्ता की जेब से पैसे निकालना, चाहे विधि कोई हो। इसीलिए जब विज्ञापन मोहक अंदाज में किसी उत्पाद की ऐसी विशेषता बताता है जो उसमें है ही नहीं तो भी उपभोक्ता उसके झांसे में आ जाता है। कोई क्रीम किस तरह काले को गोरा कर सकती है, इसे विज्ञापन ही संभव बनाता है। इस तरह के विज्ञापन और विज्ञापनवाद से पार जाने की चुनौती संवेदनशील मनुष्य के लिए बनी हुई है। मनुष्य को संवेदनशील बनाने में साहित्य का महती योगदान होता है।

साहित्य का प्रभाव तब पड़े जब उसमें लेखन और पठन होता रहे, किन्तु पठनीयता का बढ़ता अभाव इस दौर का एक अलग संकट है और यह ऐसा संकट है जो कई तरह की समस्याओं को जन्म देता है। पाठक अब महाकाव्यों और उपन्यासों को भारी भरकम मानता है, रिमोट संस्कृति जो चल पड़ी है। रिमोट के बटन को दबाने के क्रम में जो दर्शक को मिल जाता है, उसी में संतुष्ट होने की विवशता हो गई है। तुर्रा यह कि टेलीविजन के नियंता और प्रसारक दुहाई देते हैं कि जो दर्शक को पसंद है, वही दिखाया जा रहा है। यह वैसे ही है, जैसे सरकारें कहती हैं कि हमें पांच साल के लिए जनता ने चुन के भेजा है। अतः हम जो करेंगे वही जनता के लिए आवश्यक और उत्तम है, जिसके परिणाम में मंहगाई और भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है, किन्तु इन सबसे अलग, इस संग्रह के मुक्तक पाठक को रमाते हैं लेकिन रिमोट की तरह इसका आनंद क्षणिक नहीं होता। यह मुक्तक पढ़कर पाठक सोचने को अभिमुख होता है कि हमारी संस्कृति में बहुत कुछ था, जो पूरी तरह संजोने योग्य है। संग्रह सबके लिए बोधगम्य बने, इसके लिए कुछ अपरिचित-से सात सौ चालीस शब्दों का प्रसंगानुसार अर्थ दे दिया गया है, प्रयास यह किया गया है कि इस त्वरा-युग में पाठक को शब्दकोश का सहारा न लेना पड़े।

इस संग्रह के पदों को उनमें वर्णित सामान्य प्रवृत्तियों के आध ार पर वर्गीकृत किया गया है, फिर भी पाठक किसी भी मुक्तक को पढ़कर उसके साथ जुड़ा हुआ पाता है। इससे बुन्देलीतर पाठक के मन में बुन्देली बोली और साहित्य के प्रति ही लगाव उत्पन्न नहीं होगा, अपितु उसे अपने अंचल और आंचलिकता के प्रति भी आकर्षण और गरिमा बोध उत्पन्न होगा। इन पदों में बुन्देली लोकगाथाओं, इतिहास, टहूका, लोकदेवता, कहावतों और लोकोक्तियों, दर्शन-रहस्य, अहाने-अटका, किस्सा-कहानियों का वर्णन-स्मरण हुआ है, जिनके सहारे बुंदेली बर्तन, कृषि संपदा, वाद्य यंत्र, खाद्य पदार्थ, आभूषण इत्यादि की अप्रचलित शब्दावली का लालित्य-दर्शन हो गया है। मनुष्यों की भाँति शब्दों का भी अपना जन्म-स्थान तथा

इतिहास होता है। शब्दों की यात्रा देश-विदेश में परस्पर होती रहती है। इस यात्रा में उनका स्वरूप परिवर्तित होना स्वाभाविक है। हिन्दी में कितने ही विदेशी शब्दों की स्वीकृति हो गई है, इसी तरह अंग्रेजी में भी हिन्दी सहित अन्य भाषाओं के अनेक शब्द मान्य हो चुके हैं। शासन और शासक अपना प्रभाव किसी भाषा पर छोड़ते ही हैं। ऐसे में, कदाचित् जो भाषा की समझ कम रखते हैं, उनकी तरफ से यह कहा जा सकता है कि बुन्देली या किसी बोली के अप्रचलित शब्दों को आज के पाठक के सामने लाने का क्या तुक है? किन्तु अधिकांश विद्वानों की भाँति मेरा मानना है कि हिन्दी के पाठकों और श्रोताओं के बीच अपनी बोलियों के शब्दों, उनके बदलते अर्थ, रस, गुण और उसके मूल आशय से संबंधित जितनी जानकारी बढ़ेगी, उतना ही वे जीवन और कला के रस को खीचेंगे। साथ ही हमारी राष्ट्रभाषाएं सम्पन्नतर होती चलेंगी। आज की अनर्गल, अटपटी हिंगलिश या किताबी हिंदी के व्यवहार से दैनंदिन कामकाज भले चल जाए, किंतु ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनने के लिए किसी भाषा को परिचित और विपुल शब्द भण्डार जुटाना होगा।

हम जानते हैं कि भारतीय भाषाएं अपनी-अपनी उपभाषाओं अर्थात् बोलियों के अपरिमित भण्डार और संप्रेषणीयता के कारण रसपूर्ण एवं क्षमता संपन्न हैं, किन्तु हमारी त्वरा और आलस्य ने उसे अभी तक पाठकों के सम्मुख पूरी तरह प्रस्तुत करने का काम नहीं किया है। प्राचीन भाषा-शास्त्री शाकटायन जब कहते हैं कि 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' अर्थात् हर शब्द के भीतर उसके जन्म की कहानी छिपी होती है। शब्द का मर्म और इतिहास खोजने के लिए उसका क्रियारूप जानना आवश्यक होता है। अर्थ के सभी स्तरों को समझे बिना क्रियारूप नहीं समझा जा सकता है। शब्दों का क्रियारूप जानने की दृष्टि से बोलियां और उनका साहित्य सर्वाधिक स्रोतपूर्ण माध्यम है। एक उदाहरण से बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी। रोटी चाहे बेलकर खाएं या हाथ से थपकाकर, मानक हिंदी में दोनों के लिए 'रोटी बनाना' कहा जाता है, किन्तु बुन्देली में हाथ से रोटी बनाने की क्रिया को अलग से 'पै/पइ' कहा जाता है। इस संग्रह के एक पद की पंक्ति है -

'जितै परोसन की बउएं मिल कैं रोटीं पै रइं।'

समझने में मुश्किल तब और बढ़ जाती है, जब इस प्रकार के शब्द हिन्दी और बुन्देली शब्दकोशों में उपलब्ध नहीं होते। यह शब्द संस्कृत चर्पटी (हाथों से थपकाकर आकार पाने वाली) शब्द का ही विकसित रूप है।

स्वाभाविक तौर पर किसी रचना में रचनाकार का आत्मवृत्त झाँकता है। इस संग्रह में भी कवि ने अपने बारे में यत्र-तत्र संकेत किए हैं। पारदर्शी ईमानदारी के साथ अपनी सीमाओं, अपने संदेहों, अपनी व्यथा और अपनी निष्ठा को कवि ने ध्वनित किया है - "नौनी-बुरइ मांग, मांगबे में जौ मन मैलो भओ' और 'पैलउं पुरखन नै कै दइं फिर 'मधुप' बेइ पछयावं में।'

कवि के वाग्वैदग्ध्य ने वर्णनों की भावुकता और कविताई के बोझ को रचना में फटकने नहीं दिया है-

'चैते चुका दियी उदार को नुंगरी हमें उठा दो।
मुंस की छाती एक बार जे कै रइं बेउ पटा दो।'

संग्रह में हास-परिहास तो है, लेकिन कलात्मक गंभीरता एवं उद्देश्यपरकता के कारण उसने फूहड़ता और अश्लीलता का स्पर्श भी नहीं किया है, जो बोलियों पर एक आम-प्रचलित आरोप है। एकाध जगह चट्टू, दारी, छिनरा, छाकड़ जैसी गालियों का प्रसंगानुकूल प्रयोग है। दहेज समस्या, पर्यावरण प्रदूषण आदि की समस्या का रोचक प्रस्तुतीकरण हुआ है। मनुष्य के संघर्षशील जीवन में कैसी-कैसी क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं संघटित होती हैं, उनका चित्रण इस संग्रह में पढ़ते ही बनता है। एक बानगी देखिए -

'एक ब्याव में न्यौतें गए देखो दोउ समदी लर रए।
मों माँगे कल्दार गिना लए कोंठा तोउ न भर रए।।
मड़वा तरें बाप बिटिया कौ दो-दो अँसुवन रो रओ।
जित्ती हती हैसियत उत्तौ काड़ दायजौ धर दओ।।
लरका वारौ आँखें काड़ें उचकत नाक फुलाव में।।'

इन पदों को पढ़कर हम यह भी कह सकते हैं कि रचयिता ने सजग प्रहरी की भाँति मनुष्य के हृदय को मानवता के प्रति आस्थावान बनाए रखने में अपना योगदान किया है। रचना की प्रतिध्वनि है कि उदारीकरण के इस दौर में गाँव और शहर का भेद समाप्त हो रहा है, शहर में शामिल होने या शहरी जैसा होने में गांव और गांव वाले धन्यता समझने लगे हैं, लेकिन शहरों की भयावहता को देखकर गाँव में ही देश का भविष्य सुरक्षित नजर आता है। इसे कुछ आलोचक नॉस्टेल्जिया मान सकते हैं, पर आखिर इसके सिवा कोई चारा भी तो नहीं दिखता।

'भइया अपने गाँव में' में गाँव की विशेषताएँ अपने यथार्थ स्वरूप में बिना लाग-लपेट के रखी गई है। गांव में ऐसा भी होता है -

'ऊपर सें मौ मीठी बातें मन में राखें मैल खों।
अगल-बगल में पाछें जोतें पैलउं जोतें गैल खों।''

ग्रामीण अपनी बात को ठेठ अंदाज में कहने के आदी होते हैं। इसीलिए गांव की बोली और उसके मुहावरे की अपनी पहचान हुआ करती है, बाद के दिनों में गांवों में आधुनिकता का संक्रमण जिस तरह हुआ, उसका चित्रण भी इस संग्रह में दृष्टव्य है। यही नहीं दबे-कुचले वर्ग द्वारा विद्रोह के स्वर भी स्पष्ट रूप से इन मुक्तकों में दिखे हैं, जो रचयिता के युग-बोध का परिचायक है।

गांव में लोक बसता है। लोकमानस चीजों को समग्रता से देखता है। वह किसी की परवाह नहीं करता, उसमें बड़े से बड़े सम्राटों को सिखाने की क्षमता होती है। लोक प्रकृति और जीवन से निरंतर जुड़ा रहता है, वह अनुभव से सीखता है। लोक द्वारा रचित साहित्य ज्ञान की वाचिक परंपरा है। लोक में श्रद्धाभाव का साक्षात्कार होता है। जो विद्वान लोक को अनगढ़, अशिष्ट, असभ्य, अर्द्धसभ्य, जंगली, आदिवासी, मूढ़, अपढ़, गंवार या अज्ञानी मानते हैं, वे वास्तविकता से दूर हैं। यह स्थापित है कि सभ्यता का मूल स्रोत लोक

ही है, शास्त्र ने उसका विकास किया है। शास्त्र ने अपना विकसित रूप फिर लोक को दिया तथा लोक में वह फिर आगे बढ़ा। गाँव में जो लोक बसता है, वह व्यक्ति के मन को बाँधता है, संस्कारित करता है और उसे सामाजिक बनाता है। इस संग्रह में आई लोक की उक्तियां व्यक्ति के मन को दुलारती हैं, डाँटती हैं, फटकारती हैं, व्यंग्य-वाणों का प्रहार भी करती हैं तो समझाती भी हैं। व्यक्ति का मार्गदर्शन करने वाले, उचित और अनुचित, पाप और पुण्य, शुभ और अशुभ, सही और गलत के विवेक की प्रतिष्ठा इस संग्रह के पदों के केन्द्र में आए 'लोक' द्वारा संभव हुई है। इसीलिए इन पदों को पढ़कर पाठक भावित होता है, क्योंकि लोक उसके भीतर भी बैठा है। उल्लेखनीय है कि लोग शब्द की उत्पत्ति 'लोक' से ही हुई है। आधुनिक और उत्तर आधुनिक व्यक्ति में भी अपने परिवेश और परंपरा के योग से युगों के संस्कार बसे होते हैं और जैसे धरती में छिपे हुए बीज अनुकूल ऋतु आने पर अंकुरित हो जाते हैं, वैसे ही आधुनिक मानस में भी वे मूल संस्कार ऐसी रचनाओं को पढ़कर जाग जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति अपनी परंपरा से कट ही नहीं सकता, वरना वह 'लोग' कैसे रहेगा।

व्यक्ति का मूल और आदिगृह गांव ही है, शेष बाहरी और बाद के हैं। शेष तो वैसा ही है, जैसे किसी शरीर पर पहने हुए वस्त्र। गांव संस्कृत 'ग्राम' का तद्भव शब्द है। ग्राम का वैयुत्पत्तिक अर्थ 'समूह' होता है। घरों के समूह को गांव कहा गया। गांव सभ्यता की प्रारंभिक इकाई है। सर्वप्रथम गांव अकृत्रिम रूप से अस्तित्व में आए, किंतु अब 'राही' ग्वालियरी के शब्दों में यदि कहें 'गांव गुम शहर की जमीनों में, आदमी खो गए मशीनों में' हर तरफ आग की आग लगी क्यों, है, देश के सावनी महीनों में। आपका ये सफर ना तै होगा, बैठकर गागजी सफीनों में। आज पत्थर तलाशता हूँ, कल ये गिने जाएंगे नगीनों में।"

फिर भी, गांव में आज भी अपनापन है, सौजन्य है, सौम्यता है, सरलता और सादगी है, सहयोग है, सहकार है, संवेदनशीलता है, संस्कार है। दुरभिसंधियां भी हैं, किन्तु गाँव से जुड़कर व्यक्ति बाहरी विशिष्टताओं के आवरण को उतार देता है, और अपने को धरातल से संलग्न महसूस करता है। गांव से मृत्यु-पर्यन्त जुड़े रहे बाबा नागार्जुन को अपनी छोटी सी कविता 'सिंदूर तिलकित भाल' में जब अपने तरउनी गांव के एक-एक उपादान की याद आती है तो पाठक भी अपने 'तरउनी' से जुड़े बिना नहीं रह पाता, क्योंकि नागार्जुन की पीड़ा है कि अन्यत्र जीवन भर रह लेने के बाद भी लोग प्रवासी ही कहेंगे। 'गांव' और 'लोक' शब्द दो हैं, किन्तु इनकी अंतध्वनि एक ही है। लोक जहां अपने मूल में बसता है, वह गांव ही है। किसी राष्ट्र को चलाने और दिशा निर्धारण के लिए लोक-स्वीकृति अनिवार्य है। इसीलिए अपने देश में लोकसभा और लोकतंत्र जैसे शब्द और व्यवस्था स्वीकृत है। भाषाशास्त्री पतंजलि ने भाषा सम्बंधी विवेचन में लोक को अंतिम प्रमाण माना है। धर्मशास्त्र में लोकविरुद्ध कार्य को अस्वीकार्य कहा गया - "यद्धपि सिद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयम् नाचरणीयम्।" प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि जो शास्त्र को जानता है, लोक को नहीं जानता, वह मूर्खतुल्य है "शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो भवेन्मूर्खतुल्यः"

लोक में अनेकता और वैविध्य है, फिर भी उसकी अंतर्धारा एकता और समानता की है। विजित और विजेता दोनों का ज्ञान और संस्कृति लोक की व्यापकता में अंतर्भुक्त हो जाती है। यहाँ तक कि अभिजात चेतना जिसको कहा जाता है, वह भी लोक में मिलकर धन्यता का अनुभव करती है।

प्रस्तुत संग्रह में आए अनसुने-से शब्दों के दिए गए क्रियापरक अर्थ यथासंभव उनकी व्युत्पत्ति से जोड़ते हुए किए गए हैं, जिससे पाठक रचनाकार की भावभूमि से ही काव्य का आस्वाद ग्रहण कर सके। वर्तमान में हिन्दी में यों भी सृजनशीलता घट गई है, हिंदी की बोलियों के सामने तो उनके अस्तित्व का संकट मंडरा रहा है। बोलियों के साहित्य में सामान्य पाठक तक सहजता से पहुँच सकने वाली ऐसी बोधगम्य भावपूर्ण किताबों की कमी है, जो अपने समय और समाज का यथार्थ एवं वास्तविक चित्रण करते हुए साहित्य की श्रीवृद्धि करें। एक संग्रह हिन्दी साहितय में इस अभाव की पूर्ति में किया जाने वाला एक सत्प्रयास सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। सब मिलाकर यह एक पठनीय बुंदेली काव्य है, जिसके बारे में श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद के अध्यक्ष पं. हरिविष्णु अवस्थी ने कहा है - 'लंबी कविताएं लिखने का एक इतिहास रहा है, कुछ समय से लंबी कविताओं के स्थान पर छोटी-छोटी कविताएं लिखने का चलन चल पड़ा था। 'भइया अपने गाँव में' शीर्षक रचना इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बुंदेली बोली में रची प्रथम लंबी रचना है। वस्तुतः कवि की इस लंबी काव्य रचना का उद्देश्य दूरस्थ अंचल में स्थित ग्राम जीवन की सजीव एवं नयनाभिराम झांकी उनकी ही बोली-वानी (ग्रामीण बुन्देली) में प्रस्तुत करना प्रतीत होता है। कवि को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।' साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त बंगला हिंदी अनुवादक वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामशंकर द्विवेदी का कहना है - "किसी भी साहित्यिक भाषा में जीवंतता के अनुपात का माप उसमें प्रयुक्त होने वाली शब्दावली है। इस प्रकार देखा जाए तो बुंदेली की ठेठ शब्दावली की रक्षा की इधर बहुत बड़ी जरूरत हो गई है। इस शब्दावली को बचाने का एकमात्र उपाय उसे रचना की भाषा बनाना है। इस दृष्टि से 'पं. बाबूललाल द्विवेदी 'मधुप' जी का यह प्रयास स्तुत्य और सराहनीय है।' वहीं बुंदेली शब्दकोशकार एवं लोक साहित्यकार डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी के अनुसार 'पूर्वावस्था से तुलना के कारण कवि के भावुक मन में यह प्रश्न बार-बार उठता है कि 'कितै हिरा गए बे नोंने दिन....।' कहीं-कहीं इस भाव-यात्रा में कुछ इतिहास आदि की बातें भी आ जाती हैं, जो विषय की दृष्टि से अप्रासंगिक और बेमेल सी लगती हैं, परंतु उन्हें परिस्थितियों से खिन्न एवं उदास मन के उच्छ्वास मानना चाहिए।' हिन्दी और बुंदेली के साहित्यकार डॉ. दुर्गेश दीक्षित का आंकलन है 'ई हैरानगती में जो थोरी-भौत लिखत-पड़त है सो भौत बड़ी बात है।' कछू दिना से

बुंदेली में भौत काम होत दिखा रओ। पद्य तो आल्हखंड, ईसुरी सें लेकें आजनों खूब लिखो गओ। और तो और इतै के विश्वविद्यालय में बुंदेली पड़ाई जान लगी है। आकासवानी उर दूरदरसन के केन्द्रन सें ईकौ प्रसारन होन लगो है। निबंध, नाटक, कहानी उर उपन्यास नों बुंदेली में लिखे जान लगे। कैउ पत्रिकां सुद्ध बुंदेली में छपी जान लगीं। अब बताओ ऐसे में हमाए पं. बाबूलाल जू द्विवेदी कैसें पाछें रै सकत ते। संस्कृत के भौत बड़े, पंडित होबे के संगै बुंदेली साहित्य उर संस्कृति में जे खूब रचे बसे हैं। माँ बुंदेली की तो उनके ऊपर पूरी किरपा हैइ। भासा, छंद उर ब्यंजना की उनें पकड़ है। छिल्ला जैसे हलके से गांव में रैकें इत्ती अच्छौ ग्रंथ लिखबौ कछू हंसी खेल नइयां। सांसी कइ जाय तो जौ उनकी एकांत साधना कौ सुफल है।' उपन्यासकार सुरेन्द्र नायक ने कहा है 'इसमें कवि का यह स्वप्निल स्मृति लोक समाहित है, जिसको कवि ने स्वयं जिया है। कविताएं अतीतजीवी होते हुए भी यदा-कदा वर्तमान में संक्रमण करती हैं, जहाँ कवि प्रकारांतर से वर्तमान के तनावपूर्ण एवं जटिल परिवेश के प्रति अपना आक्रोश, प्रतिरोध एवं क्षोभ व्यक्त करता है।' भास्कर सिंह 'माणिक्य' 'युगकवि' कहते हैं 'यह संग्रह विविधता से परिपूर्ण है। इन कविताओं में हर स्थान पर बुंदेली लोक जीवन प्रतिध्वनित हो रहा है। 'बुंदेली कवि रामरूप स्वर्णकार 'पंकज' कहते हैं 'आपकी एक-एक लाइन अपुन कों बुंदेलखंड की धरती की जानकारी करा रई जैसें इतै के रीति-रिवाजन, परंपराओं, तीज-त्योहरन, चाल-चलन की बात बता रई।'

भइया अपने गाँव में (बुंदेली काव्य)

रचनाकार - पं. बाबूलाल द्विवेदी 'मानस मधुप' 'साहित्यायुर्वेद रत्न'

- गांधी महाविद्यालय, उरई (जालौन)

बगदर की बदमासी

- गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

देस-पिरदेश में बगदर की भरमार है। बगदर मुतके तरा के होत। पुरानों जमानों हतो सो ऊ बखत पै बगदर के मारबे काजें सिरकार की कुदांई सें गांव सैरन में डीडीटी कौ छिड़काव होत हतो। इस्कूलन में खून की जाँच होत ती। कुनैन की गोली खाबे की जाँच होत ती। कुनैन की गोली खाबे काजें गाँव देहातन में बँटत हतीं। सो उत्ते मनख बगदर के डंक मारबे से नईं मर पाउत हते। पै अब तौ बगदर ने हद्दई कर दई। पतो नई कित्ती रूप धरकें ऊ मानसन पै टूट परत। ऊ जान गओ है कै जोई मनख नाम वारौ प्रानी हमाई जातबिरादरी को दुश्मन आय, सो कजन्त जौ हमाओ नामोनिसां मिटाऔ चाउत है। जौ का इक कमसल हैं। मनख खों ओंदे मों पटकनी है दै कें उमैं दाई कौ मायकौ नें दिखाओ तो हमई जात बगदर की नईं। बगदर सें बचवे के लानें मच्छरदानी से उम्दा दूजौ उपाव कौनउं नइयां। कइयक जनें ओडोमास लगाउत, कइयक कछुआ छाप बत्ती जराउत, कइयक आलआउट को पिरयोग करकें बगदर से बचवें की फिली ढूड़त फिरत। गांव खेरन में पैलउं कंडा जरा कैं ऊमें नीम की पत्ती कौ धुआं दिन बूड़त कर लओ जात हतो सो बगदर नरदन उर दबरन मे नईं उठ पाउत हतो। उर मनख गोड़े पसार कें सोउत हतो। पै अब तौ धुआं इत्ती बुरओ हो रओ है कै मनख की आँखन सें अंसुआ टपकन लगत उए मिरचा सें लगत सो अलग। आंखें लाल गुलाल हो जातीं। आंखन की जोत चली जात। सो अब कोऊ खों धुआं देखबी नईं पुसात। ईसें बगदर की बढ़ोतरी दिन-दिन होन लगी। भांत भांत के बगदर पैदा हो गए। मलेरिया कौ बगदर, डेंगू कौ बगदर। पैलउँ बगदर के डंक लगतईं ददौरा पर जात फिन खुजास बढ़त उर फिन ऊ खून में मिलकें अपनो असर दिखाउत। बगदर को मिनमिनाबौ एक अलग किसम कौ राग आय कहाउत। पूरी दुनियां में बगदर राग के झाँईं कौनउं राग नैयां। जोई अकेलो जीव है जीनें मनख कौ मौत की नींद में सुआवे की जुगत जान लई है। कओ जात है कै जौ बगदरई आय हतो जीनें सिकंदर उर चंगेज खां की फौज फराका कौ पटरा बैठार दओ तो। उनन ने विश्व विजेता बनवे के सपने धरे के धरई रै गए ते। विश्व जुद्ध के बाद डीडीटी आई जीके छिड़कवे सें लगो कै सबरे बगदर स्वाहा हो गए कै जौ भरम आय हतो। बगदर डी.डी.टी. से औरउ और ढीट होकें दूसरी दूसरी जगहन में फैल पसर गए उर उन्नें अपनों कुनबा बढ़ा लओ। सो आज बे सिगरे सिंसार में मनखन की नाक में दम करत भए अपनो राग गुंजाउत भए गाउत मंडरा रए हैं, उर बीमारियन खों अपने ढंग से पसार रए हैं। ईसै अब नें सिरकार कौ बस चल रओ आय उर नें कौनऊं मानुस जात बारन कौ। बगदर कौ रुतबा अब तौ भिष्टाचार सें उर घोटालन सें बढ़ चढ़ कें असर दिखा रओ है। नेतन की मिली भगत सें जित्ते घोटाला हो रए हैं जे सबइ रोग राई के पिरचार आयें जियै बगदर नें डंक मार मार कें मनख के खून में मिला दओ। ईसे मनखन की सोच बदल गई, जौन मर नईं पाये सो अब देस में मनमाने करम-काण्ड करके ऊके असर को जलजला दिखा रए हैं। अब मलेरिया, डेंगू, उर, कालाजार में मनख लड़बे में दमखम बारौ नईं रओ आय ऊ खुदई बगदर कौ चोला ओढ़ के किसम-किसम की परियोजनाओं बारी रकम चूसबे कौ काम करन लगो है।

बगदरन की तादाद रोजई बढ़त जा रई है। ऊकी चतुराई कौ लोहा बड़्डे बड़्डे डाक्डर लौ मान रये हैं। बगदर के ऐसे कारनामें देखकें अच्छन अच्छन के बक नईं फूट रये। आम आदमी आँखें फार के टकटकी लगाय तक्त भर है ऊकी घिघ्घी बंध गई जा बखत पै। भिष्टाचार के संगीत बारी स्वरलिपी बगदर नें ऐसी पढ़ा दई जीकी मोहनी में फंस के देवतन लौ खों कछू सूजत नैयां। बे अब कलजुग में औतार लेबे सें डरात हैं कै कऊँ ईकी लपेट में हमाई सोई दुरगत नें हो जाय। बिचितर संस्कृति देस में अपनों पांव पसारत जा रई है।

- पी-३२, डी-१०, कचनार सिटी, विजयनगर, जबलपुर

शब्द दुहराव से अर्थ बदलाव

- सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

किसी शब्द का अर्थ, उसके एक साथ दो बार प्रयोग से बहुब्रीहि समास की भाँति भिन्न अर्थ देता है। ऐसे कुछ शब्दों की बानगी प्रस्तुत है -

◆ कर = हाथ
करकर = कोई क्रिया बारंबार करने पर
◆ कल = दूसरा दिन, सुंदर
कलकल = नदी प्रवाह का स्वर
◆ का = क्या
काका = चाचा
◆ कस = प्रयास, कला प्रयोग
कसकस = किस तरह, कंकड़युक्त आटा
◆ खन = खोदना
खनखन = चूड़ियों का स्वर
◆ खट्ट = सूखी हुई छाल या चमड़ी
खट्टखट्ट = लाठी-छड़ी की आवाज
◆ खस = इत्र, सुगंधित जड़ें
खसखस = मुलायम, भुसभुसी
◆ खरी = तेल निकलने पर शेष पदार्थ
खरी खरी = बिना लाग लपेट
◆ खर = गधा
खरखर = बिना लाग लपेट
◆ गैल = गली
गैलगैल = सर्वत्र
◆ गेर = घेर
गेरगेर = चारों ओर
◆ गल = पकना, गुच्चू में डालना
गलगल = एक चिड़िया
◆ गस = मूर्छा
गसगस = समीप जा जाकर
◆ गप = गप्प
गपगप = शीघ्रता से खाना
◆ गिर = पर्वत
गिरगिर = बार बार गिरना
◆ घट = घड़ा, कम
घटघट = सर्वत्र
◆ घूर = घूरा
घूरघूर = एक टक देखना
◆ घन = बादल
घनघन = घंटी का स्वर
◆ चीन = देश का नाम
चीनचीन = पहिचान कर
◆ चिक = परदा
चिकचिक = लड़ाई झगड़ा
◆ चर = चलायमान
चरचर = पशुओं द्वारा चरना
◆ चूर = धुत्त
चूरचूर = नष्ट होना
◆ छल = धोखा
छलछल = आँसू निकलना

◆ छप = मुद्रण
छपछप = तैरना
◆ जर = धन, जलना
जरजर = जर्जर/कमजोर, ईर्षा करना
◆ झेल = विलम्ब
झेल झेल = सह-सहकर
◆ झिर = कई दिन तक बरसात होना
झिरझिर = रिसाव होना
◆ टक = आदत
टकटक = लगातार देखना
◆ टर = स्थान बदलना
टरटर = मेंढ़कों का स्वर
◆ टन = तौल
टनटन = घंटी का स्वर
◆ डाट = निगरानी, क्रोध का कथन
डाट-डाट = गुस्सा कर-कर के
◆ डरी = भयभीत
डरी-डरी = पड़ी-पड़ी
◆ ढप = वाद्य
ढप-ढप = ढपले की आवाज
◆ तन = शरीर
तन-तन = थोड़ी-थोड़ी
◆ तिली = खाद्यान्न
तिली-तिली से = छोटे-छोटे से
◆ थर = स्थिर
थर-थर = कंपन
◆ दर = कीमत, इज्जत
दर-दर = हर जगह
◆ दल = समूह
दल-दल = कीचड़युक्त, धँसाव वाली जगह
◆ धुक = धुकयावौ, धोखा होना
धुक-धुक = तेज हृदयगति
◆ धूर = धूल
धूर-धूर = मिट्टी में मिलाना
◆ धरी = तौल सम करने का बाँट
धरी-धरी = रखी-रखी
◆ ना = मना करना
नाना = माँ के पिता
◆ नट = जाति का नाम
नट-नट = मना कर करके
◆ पट = वस्त्र, किवाड़
पट-पट = ओले गिरने का स्वर
◆ पर = लेटके, पराया, ऊपर, पंख
पर-पर = अवश्य करके
◆ पानी = जल
पानी-पानी = लज्जित

◆ फट = शीघ्र
फट-फट = मोटर-साइकिल
◆ फिर = पुनः
फिर-फिर = यहाँ वहाँ जाकर
◆ फर = पंख
फरफर = उड़ना
◆ फद्द = उल्टा लेटना
फद्द-फद्द = जोर से पाँव पटककर चलना
◆ बेर = फल
बेर-बेर = बारंबार
◆ बीन = वाद्य
बीन-बीन = छाँट-छाँटकर, चुन-चुन कर
◆ बड़ = अधिक, बरगद
बड़-बड़ = प्रलाप, व्यर्थ बकना
◆ बक = बगुला
बक-बक = लगातार बोलना
◆ बर = वरदान, दूल्हा
बर-बर = जल-मर के
◆ बन = जंगल
बन-बन = भेष धारण करना, सँवरना, बनावटी आचरन
◆ भर = तौल
भरभर = जल्दबाजी
◆ भद्द = गोपनीय बात, दोष
भद्द-भद्द = जोर से पैर पटककर चलना
◆ मेर = दोस्ती
मेर-मेर के = भिन्न प्रकार के
◆ मुरा = उपद्रवी
मुरा-मुरा = चबा-चबा कर
◆ मल = गंदगी, टट्टी
मलमल = कपड़ा
◆ राम = दशरथ नंदन राम
राम-राम = अभिवादन, आश्चर्यद्योतक
◆ रिस = क्रोध
रिसरिस = रिसाव होने से
◆ रत = संलग्न, क्रिया में लगा होना
रत-रत = निवास करते हुए, रहते-रहते
◆ लर = लड़ी
लर-लर = लड़-लड़ करके
◆ सड़ = प्रयास की सफलता, अनापेक्षित सफलता
सड़-सड़ = सड़ाव के पश्चात
◆ सर = वाण, सिर
सर-सर = हवा का बहना
◆ हल = खेती का साधन
हल-हल = हिल हिल के

- आदर्श मार्ग, शुक्लाना

बुंदेली की एक महत्वपूर्ण व्यंग्य कृति : मंगा

- डॉ. लखन लाल खरे

बुँदेली में हास्य-व्यंग्य का अभाव नहीं है। बुँदेली गद्य, पद्य, कहावतें, अहाने आदि में इस तत्व को सहज ही खोजा जा सकता है। परन्तु बुन्देली बोली में हास्य प्रधान खण्डकाव्य का सृजन स्वयं में महत्वपूर्ण है। 'मंगा' एक ऐसी ही कृति है, जो हास्य प्रधान तो है ही, व्यंग्य की तीखी धार भी इसमें समाहित है।

मंगा के कृतिकार स्व. प्रो. बाबूलाल खरे आज की साहित्यिक बिरादरी के लिए अपरिचित हो सकते हैं, परन्तु अपने समय में वे विख्यात कवि रहे हैं। सागर जिले के गौरझामर के पास चरगुँवा ग्राम में ११ नवम्बर १६१७ को बाबूलाल जी का जन्म हुआ था। इनके पिता और माता का नाम क्रमशः भगवानदास व लक्ष्मीबाई था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गौरझामर में हुई। सन् १६३३ ई. में नार्मल स्कूल बिलासपुर की प्रवेश परीक्षा में सागर जिले से मात्र दो छात्र चयनित हुए, जिनमें एक बाबूलाल जी थे। पूरे मध्यप्रान्त और बरार में प्रायमरी टीचर्स ट्रेनिंग में श्री खरे ने प्रथम स्थान प्राप्त कर 'स्पेन्स मैडल' प्राप्त किया। सन् १६४८ तक ये तखतपुर (बिलासपुर) और सागर के विभिन्न विद्यालयों में शिक्षण कार्य करते रहे। स्वाध्यायी रूप से इन्होंने मैट्रिक, इण्टर, बी.ए. और एम.ए. किया। सन् १६५७ में लोक सेवा आयोग से चयनित होकर ये महाविद्यालयीन सेवा में आये और सहायक प्राध्यापक पद से सेवानिवृत्त हुए। १६ अक्टूबर सन् १६७७ को ६० वर्ष की अवस्था में बाबूलाल जी का देहान्त हो गया।

श्री बाबूलाल खरे जी की प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रज और खड़ी बोली में है। सन् १६४० से उन्होंने बुँदेली में लिखकर बुँदेली भाषा की सेवा करने का लक्ष्य बना लिया। 'मंगा' के 'समर्पण' में उनके द्वारा व्यक्त उद्‌गारों से यह तथ्य पुष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं - "......एक बात तो पैल बता चुके कै आपकी दई तकाबी चुकायनें ती; दूसरें हमने सोची कै कम पड़े लोगों खों उनकी बोली में उनकी बातें पड़बे सुनबे मिलें तो तनक दंत कड़ौवल होत रहै अर उनखों पड़बे की चाट सी लगै। साहित्यिक हिन्दी की किताब देखकें तौ बे कैन लगत हैं कै भैया, ऐ में तौ ऐंसी तुड़की झाड़ी है कै समझइ नइं परै।"

"एक बात और, बुँदेलखण्ड के बाहर के पड़े लिखे लोगों खों ऐ के पड़े सें ए बोली की चिन्हार और मिठास मिल जैहे...।" बुँदेली और बुँदेलखण्ड के प्रति बाबूलाल जी की अनन्य निष्ठा और समर्पण भाव 'मंगा' के इन छन्दों में स्पष्ट रूप से ध्वनित होता है-

साहस और वीरता की मूरतों सरीखे बुँदेले।
भारत माँ के ऐई हिरदे के बासी, रन में खेले।
सोई वीर बुँदेलखण्ड, जे में बिफरे आला ऊदल,
जिनकौ नाँव सुनत बैरी दल-बीच मच उठत ती खलबल।
प्रियासखी, इन्द्रामति एँसइ मधुर अली औ प्रेम सखी,
तीन तरंग, प्रवीण, सुभद्रा, जुगलप्रिया कवयित्रि लखी।
ऐंसे रतन जतन सें जे ने, सौंपे भारत माता खों,
सोई जा बुँदेलभूमि है, जे पै गरब विधाता खों।
आहा कितनी मीठी बोली है बुँदेलखण्डी प्यारी,
सुनकें होत करोजौ ठंडौ, फूले मन की फुलवारी।

बाबूलाल जी ने बुँदेली में तो रचनाएँ की ही हैं, पारंपरिक बुँदेली लोकगीतों के आधार पर लोकगीत भी सृजित किये हैं। मंचीय कवि सम्मेलनों में बुँदेली कविता ने इन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि दिलाई। 'कुलच्छी', 'कचैरी कौ ब्याव', 'दद्दा मैंने सहरै जैहों' आदि इनकी अत्यन्त चर्चित बुँदेली रचनाएँ रही हैं। इन्होंने बुँदेली के अपने छन्दों - 'सैरों', 'फाग' और 'भगतों' में खड़ी बोली की कविता भी लिखी। इससे बुँदेली के उन छन्दों की लोकप्रियता खड़ी बोली में भी बढ़ी। 'सैरों' वर्षा ऋतु, विशेष रूप से आषाढ़ मास में गाया जाने वाला छन्द है। बापू की स्मृति इस छन्द में खरे जी ने किस मार्मिक ढंग से निबद्ध की है -

घुमड़े मेघ इन नैंनन में रे फिर घाव उठो हरयाय।
घाव उठो हरयाय सुरत भई गाँधी बाबा की, जिनने बंधन दय कटवाय।

स्व. श्री बाबूलाल खरे की कृति 'मंगा' अत्यन्त लोक-प्रिय हुई है। कृति और कृति के रचनाकाल के सम्बन्ध में श्री बाबूलाल जी लिखते हैं - 'मूल भाग सन् १६३६ से ३७ तक के बीच ऐसे बखत में लिखौ तौ, जब बुँदेली की तौ बात छोड़ौ, जबै तै अँग्रेजी पड़े लो साहित्यिक हिन्दी तक पै नाक-भौ सिकोड़त ते। एई सें बत्तीसक बरस लौ उपेक्षित पड़ी रही 'मंगा' बारी कापी सन् १६६८ में हमने फिर उठाई औ सन् १६७३ तक ओ में आजकल की बातें नये रँग-ढँग नये विचार बीच-बीच में और जोड़े। पेलउँ के मूल मंगा में एकमात्र हास्य रस हतौ, अब ओ में सबइ रस और देस और समाज की उन्नति में सहायक अनेक नये विचार समा गये हैं। पैल मंगा कोरो मनोरंजक हतौ, अब थोड़ो विचार उत्तेजक सोइ हो गओ है।"

वस्तुतः 'मंगा' अबसे लगभग ७५ वर्ष पूर्व के समाज का जीवंत दस्तावेज है। इसमें हास्य है, जीवन की विद्रूपताओं पर कठोर प्रहार है और सामाजिक (कु) व्यवस्थाओं पर तीखे व्यंग्य हैं। 'मंगा' एक ऐसा पात्र है जो अत्यन्त भोला है और आलसी है। एक दिन मंगा दाउ कपड़ों की बंजी करने जाता है और एक व्यक्ति उसे चुटकी बजाता हुआ मिलता है। मंगा इस अद्‌भुद और अदृश्य बाजे को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है और बाजा (चुटकी) बजाने वाले से बंजी के कपड़ों के बदले चुटकी बजाना सीखता है। नहाते समय वह चुटकी बजाना भूल जाता है और सोचता है कि इतना मँहगा बाजा नदी में कहीं गिर गया। परेशान होकर वह नदी में चुटकी को बार-बार ढूँढ़ता है। तभी अचानक एक घुड़सवार आता है और वह मंगा से उसकी परेशानी का कारण जानकर उसका महँगा बाजा ढूँढ़ने के लिए नदी में कूद पड़ता है। सहसा मंगा को चुटकी बजाना आ जाता है और 'बाजा मिल गया' की सूचना घुड़सवार को देता है। घुड़सवार उसे मारने दौड़ता है। मंगा भय से भागता है और एक हाट में जा पहुँचता है, जहाँ हाथी बिक्री के लिए खड़ा था। मंगा ने हाथी

देखा और सोचने लगा - यह दो पूँछों वाली कैसी भैंस है जो खंभों जैसे पैरों पर खड़ी है और जिसके मुँह भी नहीं है। हाथी के चारों ओर घूम-घूमकर मंगा उसे अचंभे से देखने लगा। हाथी के विक्रेता ने सोचा - यह हाथियों का कोई बड़ा जानकार है, हाथी में कोई कमी न निकाल दे, अतः उसने मंगा को पाँच रुपये दिये और घर जाने को कहा। थोड़ी देर में आकर वह पुनः हाथी को चारों ओर से देखने लगा। महावत ने उसे अबकी सौ रुपये दिये। पर मंगा पैसे लेता ओर बार-बार हाथी को चारों ओर से देखता। महावत ने तंग आकर पूछा - इतनी देर से तू हाथी की परख कर रहा है, तूने इसमें क्या कमी पाई? मंगा बोला - इस भैंस के मुँह नहीं है। महावत समझ गया कि वह मूर्ख है। उसने मंगा से सारे पैसे छीन लिए और उसे पीटकर भगा दिया।

कृति में मंगा के ऐसे ही और एक दो मूर्खतापूर्ण कार्यों का वर्णन है। मंगा आलसी है, घर में पड़ा रहता है। इसी बात को लेकर पति-पत्नी में ठन जाती है और मंगा घर छोड़कर एक विधवा गंगा के साथ रहने लगता है। परन्तु आलसी होने के कारण गंगा से भी नहीं बनती और पुनः अपनी पहली पत्नी मुलिया के पास आ जाता है। मंगा ऐसा क्रम बना लेता है। पहले दोनों स्त्रियों में सौतिया युद्ध होता है, फिर दोनों यह समझ लेती हैं कि झगड़े का मूल कारण मंगा है तो मंगा को मार-पीटकर भगा देती है और दोनों एक साथ रहने लगती है।

इधर, मंगा एक साधु का शिष्य बनकर स्वयं एक दिन साधु बन जाता है और बरमान घाट के मेले में आसन जमा लेता है। मेला देखने मुलिया अपने बेटे और गंगा के साथ आती है। दोनों मंगा को पहचान लेती हैं, मंगा उन्हें पहचान जाता है। दोनों स्त्रियाँ जनता के सहयोग से मंगा को पकड़ कर उसके जटा-जूट कटवाकर घर लाती हैं। मंगा भटकते हुए वापस घर आता है और बेटे तथा दोनों पत्नियों के साथ रहने लगता है।

'मंगा' के कृतिकार बाबूलाल जी श्रेष्ठ चित्रकार रहे हैं। यही कारण है कि इस खण्ड काव्य में विविध काव्य-दृश्यों को दर्शाते हुए २५ रंगीन चित्रों का आकर्षक चित्रांकन है। 'मंगा' में स्वस्थ हास्य है। बुँदेलखण्ड के ग्रामों में विदा के समय लड़की का रोना अनिवार्य माना जाता है। अब यह रोना कैसा होता है एक दृश्य -

गंगा की घरबारी-'मुलिया'
बोली - 'सुन भैया' 'टुण्डा'
भेजौ तो मैं रोऊँ
नातर जाऊँ बीनबे खों कण्डा।

परन्तु, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, 'मंगा' में केवल हास्य ही नहीं है, और भी कुछ है। अपने अकर्मण्य पति के प्रति एक स्त्री का विवशता भरा आक्रोश, जिसमें तत्समय की 'अबला' जीवन की करुण गाथा सन्निहित है -

मरी जात हौं तूपत-तूपत, जरत करेजौ है छन-छन।
मोरे लानें तुमइँ बदे ते, बरें तुमारे जे लच्छन!
मैंई करौं कबार, कमाऊँ, मैं नित की थोपूँ रोटी।
आग लगे पक गइ मोरी तौ, अच्छे कें बोटी-बोटी।।
दिन भर डरे रैत हो घर में, डेड़ पसेरी कौ लीलौ
काँटे उठत काम की दारै, जब देखौ जाँगर ढीलौ।

बुँदेलखण्ड के रीति-रिवाज, परम्पराएँ और नेगचार 'मंगा' में साकार हो उठे हैं। विवाह, बारात, गुना में से मुँह दिखाई, गर्भवती स्त्री का आगन्नो, चरुवा, सोहर-गीत, मेले की चहलपहल, सबका सटीक और हृदयगाही चित्रण कृति में हुआ है।

सन् ६०-७० के दशक में देश में एक नईं संस्कृति पानी के बुलबुले की भाँति उदित हुई - 'हिप्पी संस्कृति' इस संस्कृति का सजीव चित्रण भी कवि ने मनोयोग से किया है। इस चित्रण की विशेषता यह है कि अँग्रेजी शब्दों के लहजे में बुँदेली शब्द एकाकार हो गये हैं -

एक लुँदरिया आकें हँसकें, मंगा सें लिपट गई, बोली -
प्यारे टुम हो कौन, टुमारी लवली शक्ल बड़ी भोली।
मंगा की बण्डी उतार ओने सबके सामूँ पैरी,
बोली - फैशन नया टुमारा, रुचटा है व्हैरी-व्हैरी।
धोती खींच कहै - टुम अपना बैड शीट यह देओजी।
टुम हमरा कपरा पैनों, हम टुमको बोलेगा रोजी।

प्रायः हास्य कृतियों में प्रकृति-चित्रण का अभाव होता है, चित्र प्रस्तुत है, जिसमें गाँव के रँग साकार हो उठे हैं -

जकड़न लगो अँधेरौ उजयारे खों करिया पंजा में।
दिन भर तपत-तपत सूरज तौ लाल डुबैयाँ संजा में,
उड़त पाँत में सुपत कनकैयों से लौट रहे बगला।
पूँछ उठाएँ रँभा, दौड़ कें लौट रहीं भैंसे गौएँ,
खेप लेंय लै घुँगटा काड़ें, पानी खों निकरी बौएँ।
दिया लालटेनें भर घर-घर, भई गौसली तैयारी,
खपरों में सें धुआँ उठौ, चूले सिलगे बनबे ब्यारी।

बुँदेली के अनेक ऐसे शब्द हैं जो आज प्रयोग में न होने के कारण अपरिचित से हो गये हैं। इन शब्दों का कोश है - 'मंगा।' पारम्परिक मुहावरों के सहज प्रयोग के साथ-साथ नये तराशे हुए मुहावरे कृति की भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

'मंगा' के एक और मौलिकता परिलक्षित होती है - इसे अध्यायों में विभक्त तो किया गया है, परन्तु न ही उनका शीर्षकीकरण किया गया है और न ही उन्हें अंकों का आधार दिया गया है। इसके स्थान पर कृति को क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द - नामकरण कर विभक्त किया गया है। हास्य प्रधान कृति की हास्यास्पद बात यह है कि समूची कृति में पृष्ठ संख्या अंकित नहीं है। यह कृति की विशेषता भी है और न्यूनता भी। न्यूनता इस अर्थ में कि यदि कोई पृष्ठ निकल जाए तो उसे यथा स्थान लगाना कठिन होगा।

स्क्राईब पब्लिकेशन्स, ३०३, कुबेर हाउस, १६२, कंचन बाग इन्दौर से चिकने कागज पर वर्ष २००६ में प्रथम प्रकाशन के रूप में प्रकाशित 'मंगा' पठनीय और संग्रहणीय है।

- विभागाध्यक्ष हिन्दी,
शास. श्रीमंत महाराज माधवराव सिंधिया महाविद्यालय,
कोलारस (शिवपुरी)

दिवारी उजयारौ कौ परब

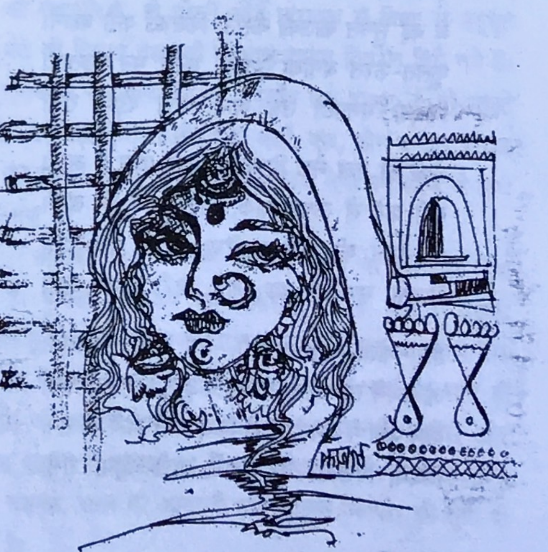
- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

कोनऊ भी अंचल के लोक परब, तीज त्योहार ऊ अंचल की लोक चेतना, लोक चितन उर संस्कृति कौ ज्ञान कराउत हैं। भारतवरस कें बींचा बीच बसौ बुन्देलखण्ड इनई त्यौहारन के कारन बजौ भऔ हैं। जादातर परवन पे जनी मान्स पुआस रखती हैं और कछु परवन पे आदमी सौउ पुआसे रत। जनी मान्स उठत भुनसरा दौरे के सामें गऊ के गोबर से उरैन लीप के डार देती। जिते पूजा विस्तारी जात उते आटे से चौक पूरो जात। एक संगे बेठ के मोहल्ला परोस की बडी बूढी कथा उर कानियां कत हैं। कछु ऐसे पुआस हैं जिनकी कथा पण्डित जू से सुनबे को चलन हैं।

दिवारी कौ त्यौहार सबरे बुन्देलखण्ड में धन तेरस से लगाके भईया दोज नौ पांच दिनन भर मनाऔ जात हैं। धन तेरस के दिना नय-नय वरतन और चांदी, सोनो के संगे पीतर, कांसो और गिलट खरीद के सगुन पूरो करो जात हैं। चाय कोउ धनी होय उर चाय गरीब गुरबा ई दिना तो अपनी हैसियत के अनुसार कछु हलकी पतरी चीज खरीद लेत। संजा की बैरा आटे के तेरा दिया बनाके दौरे पे उजयारे जात हैं। जिनमें कछु भीतरे कछु दोरे पे उर तुलसीघरा पे रख देत। ईके दूसरे दिना नरक चौदस मनाई जात हैं ई दिना सोउ सरसुआं के तेल से चौदा दिया जलाके घर में रखे जावे कौ चलन हैं। ई खौ छोटी दिवारी सोउ कहा जात हैं। कार्तिक वदी अमाउस खौ दिवारी को सच्चो परव होत हैं। सवई घरन में भीतर बने माय मेर के पूजा वाले कोठा में सुरैता ओर सुरेती वनाके पूजन करौ जात हैं। चौक पूरकर सारोंट पे लक्ष्मी और गणेशजू की माटी की बनी मूरते विठार देत है। ऊके सामू चांदी के सिक्का गाने-गुरिया उर फल धान के खीला (फूला) रखे जात है। कउ-कउ तौ घर के मुखिया पूजा करके घर के लोगन कौ टीका लगाके पईसा देत हैं।

बुन्देलखण्ड के सुरैता को सबई दुख हरवे वारो पराकरमी मानौ जात हैं जो लक्ष्मी को पावें में मदद करत और संगे संगे उकी रक्षा सोउ करत रत। दिवारी के दूसरे दिना अन्न कूट करो जात हैं जीमे जौ मानौ जात के भगत अपने भगवान कौ साल में एक वेर छेउ रस ओर छप्पन प्रकार के विंजन को पहार लगा देत। गउ माता के गोबर से गोवरधन बनाके उये पूजे जात हैं। दिवारी कौ आकरी दिना भईया दोज के रूप में मनाओं जात हैं। घर के दोरे के दोउ कोरे पे गोबर से गोल गोल दोजे बनाई जात हैं। घर गिरस्ती में काम आवे बारे चूले चकिया जैसे सामान बनावे कौ नौ नौ चलन हैं। इने दोज कहो जात है इनकी पूजा करवे के बाद बेने अपने भईयन कौ माथे पे टीका लगा के अशीष देत हैं। भईया सोउ अपनी बेनन कौ पईसा टका देवे से नई चूकत।

परम्परा से चले आ रहे बुन्देलखण्ड के तीज त्योहार मनावे के ढंग में कोनउ खास अन्तर नई आत हैं पर जा बात सोला आना साची है कि इको जोन मनावे को मतलब हतो बोतो सबरे कौ सबरो बदलत जा रओ। जा स्थिति हम सब जनन के लाने जरूरई चिंता की बात हैं। जा बात बडे-बूढे कन लगत ते के पूराने के बीच से उत्पत्ति के नय पीका फूटत हैं पर जा बात आज के जमाने में कछु कछु झूटी सी लगन लगी है। आज के मानसन के मन में जौन बदलाव आओ वो रचनात्मक न होके आत्मघाती सुभाव को है जी की चिंता की लकीरे सबई के माते पे दिखान लगी। दुख की बात जा आय के इन पावन त्यौहारन में और बारीक बदलाव के दौर में हमें सावधान रेवे की कोशिश करो चईये। नई तर हम न तो घाट के रय और न घर के। हमायी लोक संस्कृति में नव उपभोगतावाद के रोग को कीरा लगत जा रओ जी से इन परवन में वसी भई ताकत दिन पर दिना घटत जा रई इन परवन से लोग खौ जीवन देवे वारों अटूट रस मिलत रत तौ अब देखवो में जो आ रओ के वो अमृत का कलसा हिरा सौ गओ। विज्ञान और सभ्यता के बढवे से हमायी भौतिक सुखन के साधन बड गय हैं इमें कोनउ प्रकार की सक नईये पर जा सोउ मानने परे के हम श्रीहीन सोउ होत जा रये। गर कउ हम समय रेते नई चेत पाये तो हाते पसतावों भर रे जे। दिया पंजार के दौरे पर धरत जुग बीत गय पर दिल में जौन अंधियारों डेरा डारे है उकौ कछु नई बिगर पाव है। जातो वेई भई समय चूक पूनका पछतानें भई बरषा जब कृषि सुखाने। एक मोबाइल कंपनी के विज्ञापन में कओं जात हैं कि कर ला दुनिया मुट्‌टी में जो सुनखे लगत के दुनिया में प्रेम और सद्‌भाव कौ दिन दूनौ विस्तार हो गऔ। पर साची कये तो दुनिया मुट्‌टी में करवे वारन की घर वारिन से तलाक लेवे कौ मुकदमा केउ सालन से चल रओ और सगे भईयन से जिनके संगे सुख और दुख बांटो जात उनसे बोलचाल नईये। ऐंसी बिडम्वना ई समय ने बना दई हैं।



दिवारी के दिना संजा के किसान मान्स खेतन से सेमर के पत्ता लिया के ढोरन की सार की दोरे ढार देत ते और भुंसरा भय गईया और भेसन कौ मुडघरे बांध के लाल गेरू से रंगवे से नई चूकत ते। मोऔ अपने बाला पन की कछु-कछु मीठी यादें दिल में वसी हैं। जब मैने अपनी आजी से जा पूछी के जो सब करवे से का होत हैं तो उनने हमें जा बताई ती के इसे अपने गउ धन की बढोत्तरी होत और किसान को धन तो सांची कय तो गो धन आय। आज जब हमे अपने गांव में दोरे - दोरे पे भटकती गउएं दिखाई देती है तो उनकी कई बात मन में भारी पीरा देत हैं। आज किसान अपने खेत में मांगे खाद डारवे खौ तो तैयार बैठे हैं पर गउ धन खौ बढावे से बचन चाउत। कछु-कछु क्षेत्रन से जा खबर आउत के किसान आत्म हत्या कर रये तो उको एक कारन जो सोउ आय के आज कौ किसान लगगत बाई किसानी करन लगो। एकई बेर कोनउ कुजोग जुर जाय तो फिर उये मरवे की परत। आज किसान की दुर्दशा कौ एक कारन गाय खौ भरपूर सम्मान न देवो सौउ हैं।

पैला जमाने में दिवारी परव मनावे के लाने घर घर में भाई उत्साय और उमंग होत हती। संयुक्त परिवार में रेवे वाय घर की साफ सफाई करत ते और मिल जुल के त्यौहार मनाउते। इके लाने मईना भरे से तैयारी होन लगत ती। अब न तौ घरन में परवन पे वो त्यौहार जैसो होत है और न उतनी परव के लाने उत्सुकता देखवे मिलत। गांव के कुमार के घर से आवे वाय दिया अब धीरे-धीरे अपनो सरूप होत जा रये। अब घरन में न तो तिली को तेल होत और न घर की औरते घर लीपवे पोतवे पोतनी लेवे खौ गांव के वायरे जावे खौ मजबूर हैं। अब तौ सवई त्यौहार के प्रबंध में बाजार ने अपनो असर डाल दओ। दिवारी के दिना खौ जलवे वायो दिया और मोमवत्ती सब बाजार से आन लगी। घरन में जौन पई पकवान बनत ते उनकी जगा सब बाजार की मिठाईयन ने ले लई। बाजार की ई घुसपेट ने परिवारन में सोउ अपनी असर दिखा दओ। कछु जादई हुसियारन ने जा गलत बात फैला दई के दिवारी के दिना जुआ खेलवे से लक्ष्मी जूं प्रसन्न हो जाती सो वे पूरे रात साल भर में जौन कमाउत हैं उवे लुटावे से नई चूकत हैं। ऐसे मूरखन कौ तौ भगवानई सुधार सकत। दिवारी अकेलो धार्मिक परव नौई जौ तौ सामाजिक और पूरो वैज्ञानिक अरथ कौ समेटो भऔ परवाय जीमें सफाई धन संचय और विचार सुध्धी करवे की त्रिवेनी बउत हैं। ई प्रकार से जा केवे में कोनउ संकोच नईयां के दिवारी उजियारों को परव आये और इके मनावे के बाद फिर मन में कम से अंधियारों तो नई रऔ चईये। हिन्दी के नामी कवि सोहन लाल द्विवेदी ने अपनी कविता में कऔ हैं कि जलाओं दिये पर रहे ध्यान इतना अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाय।

- प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय राघौगढ़
जिला गुना (म.प्र.)

मनपंछी

- शंकर दयाल खरे

जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।
गरब न करिऔ ई काया कौ, कौंनउँ काम न आनें।
जियत-जियत के नाते-रिस्ते, मरें बिसर सब जानें।।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

ऊपर सें जब आय बुलौआ, तुरतइँ परहै जानें।
बे नइँ सुनत काउकी कैसउ, कितनउँ करी बहानें।
फूलत-फरत बगीचा अपनों, छूटत मन पछतानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

नेकी कौ फल नेक मिलत है, ओइ काम में आनें।
बदी करे सें ऊपर जाकें, मार जमन की खानें।
पाप-पुन्न की गरइ गठरिया, अपनें संगै जानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

हीरा-मोतीं-महल-अटारीं, डरे इतइँ रै जानें।
जो करनें सो करलो-धरलो, कछू न फिर कर पानें।
कौन जोंन में जनम मिलत फिर, खबर कियै का रानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

रो-धो काढ़ बायरें देहैं, हमें चेटका ल्याहें।
धर जा देह नकरिअन ऊपर, आगी तुरत लगाहें।
ऐसे निरमोइन सें भैया, मोय न मोह लगानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

जिनें हते प्रानन सें प्यारे, लेंय लुगरिया ठाँड़े।
बरत खपरिया ऐसें फोरें, जैसें माँटी-भाड़े।
ऊपर सें जौ देख-देख कें, होस न रात ठिकानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

दिन-तेरइँ कर हराँ-हराँ सब, दुख अँसुअन बै जानें।
कछू दिनन लौ चरचा चलहै, ऐसे हते फलाँनें।
खेलन हँसन सबइ फिर लगहें, हुयें नाच औ गानें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

कितनउँ मसकउँ पाप करौ तुम, लुके-छिपे नइँ रानें।
चित्तगुप्त जू के खाता में, बींन-बींन लिख जानें।
भज लो भैया चित्तगुप्त खाँ, जिनखाँ कामें आनें।
जिदना मनपंछी उड़ जानें, डरी देइया रानें।

- दूल्हाबाबा मार्ग, नौगाँव, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड का विस्तृत व सर्वांगीण इतिहास है यह

- डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

बुन्देलखण्ड की किताबी दुनिया में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जब दीवान प्रतिपाल सिंह ने लगभग १४००० पृष्ठों तथा बारह खण्डों में बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखा है। जिसके प्रथम खण्ड का प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ था। ८२ वर्ष पूर्व घटित हुयी इस ऐतिहासिक घटना की पुनरावृत्ति सन् २०१० में हुयी जब दीवान प्रतिपाल सिंह के सुपुत्र श्री पृथ्वी सिंह ने इसके बारह खण्डों का पहली बार प्रकाशन कराया। इस अवसर पर जहाँ हम पूरी श्रद्धा से स्वर्गीय दीवान प्रतिपाल सिंह का स्मरण करते हैं वहीं उनके सुपुत्र श्री पृथ्वीसिंह जी को भी बधाई देते हैं कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण धरोहर को ८२ वर्ष तक अमूल्य संपदा की तरह सुरक्षित रखा और अर्थ प्रधान युग में जब सारा संसार अर्थ के पीछे पागल हो रहा है तब उन्होंने बड़ी उदारता से एक बड़ी राशि खर्च करके उस ऐतिहासिक धरोहर को समाज को सौंपने का संकल्प पूरा किया। जिसके सम्पादन में भरपूर सहयोग करने के लिए डॉ. बहादुर सिंह परमार भी प्रशंसा और बधाई के पात्र हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियों को जितना कठिन सुरक्षित रखना है, उतना ही कठिन उसका प्रकाशन और सम्पादन भी है। अब पहली बार दीवान प्रतिपाल सिंह लिखित बुन्देलखण्ड का इतिहास समाज के हाथों में पहुँच गया है। ऐसा बृहद् इतिहास इसके पूर्व लिखा गया और न बाद में। यद्यपि इसे ८२ वर्ष पूर्व लिखा गया था, इस ८-९ दशक में अनेक परिवर्तन हुए किन्तु इसकी ऐतिहासिक महत्ता तथा प्रामाणिकता निर्विवाद है।

इतिहास की सामग्री के संकलन, शोध, परीक्षण तथा अध यन आदि में अथक् परिश्रम और संघर्ष दीवान जी को करना पड़ा था। उन्होंने वेद, पुराण उपनिषद तथा तब तक उपलब्ध संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के ग्रंथों को बड़ी गहराई से छानबीन कर खंगाला। जिसका अनुमान उनके द्वारा दिये गये तथ्यों से स्वतः हो जाता है। आर्यों के इतिहास से लेकर उस समय तक की शासन परम्परा के साथ ही तत्कालीन भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, प्राकृतिक आदि से सम्बन्धि त सामग्री को सप्रमाण आँकड़ों सहित प्रस्तुत किया है। उनका यह बृहद कार्य सभी प्रकार से स्तुत्य और अविस्मरणीय है। यहाँ 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' के बारह भागों का अत्यंत संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है -

पहला भाग - इसमें बुन्देलखण्ड के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, प्राकृतिक, प्रशासनिक आदि तथ्यों को आँकड़ों सहित प्रस्तुत किया गया है। कितनी जातियाँ, उनकी जनसंख्या, राजस्व, स्कूल आदि शिक्षित-अशिक्षितों की संख्या, सिंचाई के साधन, कृषि के सामान, पर्व, त्यौहार, देवी-देवता, साहित्यकारों आदि के आँकड़े राज्यवार तथा जिलेवार प्रस्तुत किये गये हैं।

दूसरा भाग - इसमें मुख्यतः आर्यकुल के इतिहास का विस्तृत वर्णन तथा वितरण है। आर्यों का प्राचीन इतिहास, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, प्रद्योत, विश्रवा तथा ईसापूर्व के नागवंश, बौद्धधर्म, जैनधर्म, नंदवंश, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र व विदेशियों के इतिहास का वर्णन दिया गया है, साथ ही उनकी वंशावलियाँ तथा कार्यकाल आदि के दिये गये आँकड़ें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

तीसरा भाग - इसमें विभिन्न क्षत्रीय शासक कुलों का अलग-अलग इतिहास दिया गया है। तमाम विलुप्त सूत्रों के तथ्यों को शोधकर विवरण दिये गये हैं, क्षत्रियों, राजपूत ठाकुरों के अलग-अलग विवरण आँकड़े एवं इतिहास संकलित हैं।

चौथा भाग - इसमें चंदेल शासकों का इतिहास दिया गया है। ईसा की नौवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक बुन्देलखण्ड में चंदेलों का साम्राज्य रहा है, जिसमें अनेक प्रतापी राजा हुये, उनके अनेक निर्माण कार्य आज भी साक्षी हैं। जिनका विस्तृत विवरण इस खण्ड में है।

पाँचवाँ भाग - इसमें बुन्देलखण्ड के रघुवंशी राजाओं का विवरण दिया गया है। जिसमें राठौर, कछवाहा, सेन, सेंगर, सोलंकी, चालुक्य, सुरकी, बघेल, शनि, खंगार, चौहान, गौंड़, तोमर, दाँगी आदि शामिल हैं।

छठवाँ भाग - इसमें बुन्देलखण्ड में मुसलमान शासकों का इतिहास प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। कब कौन, कहाँ शासक रहा, उनकी क्या उपलब्धियाँ रहीं। एक एक क्षेत्र का विवरण बड़े विस्तार से दिया गया है।

सातवाँ भाग - इसमें बुन्देला वंश के उद्‌भव और विकास की कहानी प्रस्तुत की गयी है। एक ओर प्रथम मनु से लेकर बाद तक की वंशावलि है, तो दूसरी ओर नारायण से विष्णु से उद्‌भूत सूर्य वंश की विस्तृत वंशावली के साथ तमाम विवरण दिये गये हैं। वे बुन्देलखण्ड में बुन्देला वंश का प्रादुर्भाव सन् १२७५ ई. से मानते हैं और उसे काशीराज से जोड़ते हैं। कहाँ, कब, कौन बुन्देला शासक रहे, उन सबका अद्यतन विवरण वंशावलियाँ तथा वर्गीकरण के साथ दिया गया है।

आठवाँ भाग - इसमें ओरछा राज्य का इतिहास दिया गया है। बुन्देलों का मुख्य राज्य ओरछा रहा है, वहीं से उसका विस्तार हुआ। इसमें महाराज रुद्रप्रताप से लेकर महाराज प्रताप सिंह तक का विवरण तथा मुगलों के प्रवेश तक की चर्चा है। साथ ही ओरछा की जागीरों, चंदेरी के शासकों तथा उनकी जागीरों और दतिया शासक के शासकों का विवरण दिया गया है। सभी के राज्य क्षेत्र, वंशवृक्ष, राज्य की आमदनी तथा शासक परम्परा की सूची दी गयी है।

नौवाँ भाग – इसमें चंपतराय और छत्रसाल का क्रमबद्ध इतिहास विस्तार से आँकड़ों, घटनाओं के प्रामाणिक विवरणों सहित प्रस्तुत है। एक-एक घटना की तिथिवार चर्चा है। छत्रसाल की पूरी जीवनी प्रामाणिक तथ्यों के साथ इसमें देखी जा सकती है। तमाम युद्ध आदि का विस्तार से वर्णन है।

दसवाँ भाग – इसमें पन्ना राज्य का इतिहास विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, उसकी जागीरें कौन सी थी। कब, कौन, कहाँ शासक रहा। विशेषकर पन्ना, शाहगढ़ जसौं, लुगासी, जैतपुर अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, जिगनी, गरौंली, के विवरण के साथ, सन १८४२-४३ के बुन्देला विद्रोह की भी चर्चा है।

ग्यारहवाँ भाग – इसमें पँवार क्षत्रियों की उत्पत्ति व वंशावली के साथ उनके विस्तृत विवरण दिये गये हैं, इसके साथ ही धंधेरे, मरहठा तथा चौबे जागीरों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बारहवाँ भाग – इसमें योगी, गूजर, लोधी, कायस्थ, गुसाईं, जाट, यादव राजाओं के विवरण तथा बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के प्रवेश का विवरण दिया गया है।

इन विवरणों के साथ ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि दीवान प्रतिपाल सिंह ने पहली बार बुन्देलखण्ड का इतना विस्तृत तथा सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत किया है। इसमें इतिहास के जो तमाम सूत्र, वंशावलियाँ, विभिन्न आँकड़े तथा तथ्य प्रमाण देखकर चमत्कृत रह जाना पड़ता है। एक-एक गाँव, जाति, क्षेत्र की आँकड़ों के साथ पूरी जानकारी प्रस्तुत की गयी है। कल्पना की जा सकती है कि उन्होंने उन्हें संकलित करने तथा खोजने में कितना श्रम किया होगा। वेद पुराणों, तथा प्राचीन ग्रंथों के साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, फारसी, उर्दू आदि के देशी विदेशी विद्वानों के ग्रंथों, इतिहासों, गजेटियरों, राज्यों के संग्रहालयों तथा लोकजीवन में व्याप्त किंवदन्तियों को खोजना, समेटना और उनके सूत्रों को जोड़ना कितना श्रमसाध्य कार्य है। इस इतिहास ग्रंथ के साथ उन्होंने आर्य कुल का इतिहास, वीरवाला (इतिहास), खेल पच्चीसी, आदि ग्रंथ भी लिखे थे। जिनमें कुछ प्रकाशित तथा कुछ अभी भी अप्रकाशित तथा अप्राप्य हैं।

आशा की जानी चाहिए कि उनकी समस्त कृतियों का प्रकाशन होगा, और उनके महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रदेय का सही-सही मूल्यांकन भी किया जा सकेगा जो अभी तक उपेक्षित और लगभग अज्ञात स्थिति में रहा है।

पुस्तक - **बुन्देलखण्ड का इतिहास (बारह भाग)**

लेखक - दीवान प्रतिपाल सिंह

प्रकाशक - श्री पृथ्वी सिंह बुन्देला, छतरपुर

- १२, एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली उत्सव 2011 में इन विशिष्टों को सम्मानित किया गया

लोकविद डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देली शिल्पकला हेतु)

◆ **बालचन्द्र प्रजापति** – छतरपुर जिले की राजनगर तहसील के ग्राम धमना में २ अगस्त १९४४ को बालचन्द्र प्रजापति का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती सुनिया बाई तथा पिता श्री तनसैया प्रजापति है। इनका विवाह श्रीमती मत्थीबाई के साथ हुआ। इन्होंने केवल कक्षा सातवीं तक शिक्षा पाई है। मिट्टी को अपने हाथों से विभिन्न आकारों की मूर्तियों में ढालने में सिद्धहस्त श्री बालचंद्र प्रजापति ने अपने पिता से प्रेरित होकर के बुन्देली मृण्कला को नई ऊचाइयां प्रदान की हैं। इनको प्रोत्साहित करने में श्री मुश्ताक एवं लोकविद डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का बड़ा योगदान है।

श्री बालचन्द्र ने शिल्प संग्रहालय प्रगति मैदान नई दिल्ली, शिल्पग्राम खजुराहो, जनजातीय लोककला संग्रहालय खजुराहो, राष्ट्रीय मानव संग्रहालय भोपाल, भारत भवन भोपाल, उत्तर मध्यक्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद, तथा पं. दीनदयाल शोध संस्थान चित्रकूट में आयोजित विभिन्न शिविरों में भागीदारी की है। इनकी कलाकृतियों की प्रदर्शनी अभी तक भोपाल, इन्दौर, खजुराहो, रायपुर, पंचमढ़ी, ओरछा तथा काठमांडू में लगायी जा चुकी हैं। श्रीं प्रजापति को प्रगतिशील लेखक संघ छतरपुर तथा म.प्र. शासन द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। वे अपने गृह ग्राम धमना तहसील राजनगर में रहकर अपनी कलाकृतियों को गढ़ते हैं।

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देली आलोचना हेतु)

◆ **श्याम सुन्दर दुबे** – श्याम सुन्दर दुबे का जन्म १२ दिसंबर १९४४ को बर्तलाई (हटा) ग्राम में हुआ। उन्होंने एम.ए., पी-एच. डी. तक शिक्षा प्राप्त की। अब तक उनकी पच्चीस से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी प्रमुख पुस्तकों में 'दाखिल खारिज', 'मरे न माहुर खाये' (उपन्यास) 'काल मृगया' 'विषाद बांसुरी की टेर', 'कोई खिड़की इसी दीवार से', 'नेह के नेग' (ललित निबंध संकलन), 'रीते खेत में बिजूका', 'ऋतुएें जो आदमी के भीतर हैं, (नवगीत संकलन) धरती के अनंत चक्करों में (कविता संकलन), बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन, संस्कृति समाज और संवेदना, लोक की कथा-संवेदना (समीक्षा) लोकः पहचान, परंपरा एवं प्रवाह, लोक चित्रकलाः परंपरा और रचना-दृष्टि, भारत की नदियां, 'लोकः मानव मूल्य और मीडिया' (लोक) हैं। डॉ. दुबे को विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से विभूषित किया गया है। म.प्र. साहित्य अकादमी के बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी-पुरस्कारों के साथ डॉ. शंभूनाथ सिंह रिसर्च फाउन्डेशन वाराणसी का नवगीत पुरस्कार; अखिल भारतीय बुंदेलखण्ड साहित्य एवं संस्कृति का चतुरेश सम्मान, छत्तीसगढ़ शासन का सृजन-सम्मान आदि कुछ प्रमुख सम्मान हैं। डॉ. दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य पद के सेवा निवृत्त होकर वर्तमान में निदेशक, मुक्तिबोध सृजन पीठ, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर में कार्यरत हैं।

बुन्देली उत्सव 2011 में इन विशिष्टों को सम्मानित किया गया

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देली संस्कृति हेतु)

◆ **श्री राधाकृष्ण बुन्देली बाँदा** सेठ रामगोपाल विशारद के घर बाँदा में बावन द्वादशी सं. १९९९ विक्रमी को जन्मे राधाकृष्ण जी की प्राथमिक व स्कूली शिक्षा में बाँदा में हुई। आपने १९६० ई. में रीवा से स्नातक उपाधि अर्जित की। १९६१ से १९७२ तक 'बाँदा समाचार पत्र' का संपादन किया। बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन तथा बुन्देलखण्ड के विभिन्न काल खण्डों पर ऐतिहासिक ग्रंथ आपने लिखे हैं। आपकी प्रकाशित कृतियों में मस्तानी का वंश, बाँदा के नवाब, दो पहिए, वेश्या, सीताखण्ड काव्य आदि हैं। आपकी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड का आलोचनात्मक इतिहास' विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं। आपने 'कालिंजर दर्शन' नामक फिल्म का निर्माण किया है।

आपको उ.प्र. के राज्यपाल द्वारा १९८९ में अलंकृत किया जा चुका है। इसके साथ राष्ट्रीय एकीकरण परिषद, संस्कार भारती, संस्कृति विभाग उ.प्र. सरकार तथा मंगल पाण्डे समिति आपको सम्मानित कर चुकी है। आप अपनी सेवाओं से बुन्देली संस्कृति व साहित्य को विस्तार दे रहे हैं।

राजा प्रताप सिंह गौरिहार नरेश स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देली कलासाधना हेतु)

◆ **हिमालय यादव (हेमचन्द्र यादव)** – इनका जन्म २८ जुलाई १९८३ को बसारी के श्री महादेव यादव के घर में हुआ। इनकी शिक्षा कक्षा बारहवीं तक हुयी है। यह एक अच्छे अभिनेता के तौर पर उभरे हैं। इन्होंने राजा बुन्देला द्वारा निर्देशित फिल्म 'दा सन ऑफ फ्लावर' में अभिनय किया है। इसके साथ ओमपुरी एवं यशपाल शर्मा के साथ भी अभिनय किया है। एन.एस.डी. द्वारा नरसिंहपुर में आयोजित वर्क शॉप में भाग लिया है। बुन्देली उत्सव में प्रतिवर्ष अपनी अभिनय क्षमता से लोगों को प्रभावित किया है। हिमालय यादव के द्वारा निम्न बुन्देली फिल्में एवं एल्बम तैयार किये गये हैं – जीजा आओ रे, जीजा बिदे जाल में, ऐ सुनो तो, लाड़लो गोपाला, मतंगेश्वर की देख छटा, डॉ. खटपटिया, विवाह को बिलोरा, मिर्चा लगाओ जू, रामधई मर जैबी, लोकेन्दास बहुरूपिया, होने है पतो नइयां। इन्हें बुन्देली उत्सव २०११ में गौरिहार नरेश राजा प्रताप सिंह सम्मान से सम्मानित किया गया। हिमालय यादव वर्तमान में पर्यटक ग्राम बसारी में रहकर सक्रिय हैं।

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देली साहित्य हेतु)

◆ **श्री नवलकिशोर सोनी 'मायूस'** – छतरपुर के श्री ठाकुरदास सोनी करइया जी की धर्मपत्नी श्रीमती मुन्नीदेवी की कोख से ५ जुलाई १९४१ को जन्में कवि श्री नवल किशोर सोनी मायूस ने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की है। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती जानकीदेवी है। ये बुन्देली, हिन्दी, उर्दू में गीत, गजल, मर्सिया तथा नात शरीफ आदि लिखने में सिद्धहस्त हैं। इनकी प्रकाशित कृतियों में 'रैबे इतै देवता तरसें', 'चौकड़िया शतक', 'एहसास की गहराइयाँ' एवं 'बहत्तर के सामने' हैं। आपको नगर पालिका परिषद छतरपुर द्वारा १९९५ में बुन्देली कवि के रूप में तथा संतोष सिंह बुन्देला साहित्य परिषद द्वारा २००२ में सम्मानित किया जा चुका है। बिहारी साहित्य एवं सांस्कृतिक मंच बिजावर, म.प्र. विद्युत मंडल दुर्गा उत्सव समिति छतरपुर, स्टेट बैंक छतरपुर, साहित्यकार कल्याण संस्थान महोबा द्वारा आपको विभिन्न सम्मानों से सम्मानित किया गया है। २००६ में आपके कृतित्व पर एक लघुशोध प्रबंध महाराजा महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रस्तुत किया गया। १९७६ से आकाशवाणी तथा २०१० से दूरदर्शन पर आपकी रचनाओं का सतत प्रसारण हो रहा है। १९७८ से कवि सम्मेलन मंचों पर आपके द्वारा काव्यपाठ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्री मायूस के लिखे गीत टी-सीरीज, कन्हैया कैसेट, शिवशक्ति कैसेट, अनुराग कैसेट तथा आरती कैसेट्स में देशराज पटैरिया, उर्मिला पाण्डेय, चन्द्रभूषण पाठक व लक्ष्मी त्रिपाठी जैसे गायकों द्वारा गाये गये हैं। आप पंचायत विभाग म.प्र. से उप अंकेक्षक पद से सेवानिवृत्त हो वर्तमान में कोतवाली के पीछे छतरपुर में निवासरत हैं।

पं. हरिराम मिश्र स्मृति सम्मान २०११

(बुन्देलखण्ड में पत्रकारिता हेतु)

◆ **श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल** – बुन्देलकेशरी महाराजा छत्रसाल द्वारा बसाये गए नगर छतरपुर में २२ जून १९५६ को स्वर्गीय श्री अच्छे लाल अग्रवाल के घर जन्मे श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल का जीवन संघर्षों से आपूरित रहा है। आपका हौंसला सदैव ऊँचा रहा, इसलिए सारी विपदाओं और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर आज पत्रकारिता के क्षेत्र में विशिष्ट मुकाम हासिल किया है। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती मुन्नीदेवी अग्रवाल है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में 'प्रचंड ज्वाला' से आप १९७२ में जुड़े। इसके बाद राष्ट्रभ्रमण, न्यू राष्ट्रभ्रमण के संपादक के रूप में ख्याति अर्जित की। आप दैनिक देशबंधु सतना, दैनिक भास्कर भोपाल, दैनिक जागरण भोपाल के लम्बे समय तक जिला प्रतिनिधि रहे। आप निष्पक्ष तथा स्वस्थ पत्रकारिता में विश्वास रखते हैं। श्री अग्रवाल पत्रकारों की जवाबदेही समाज के प्रति मानते हैं। आपको अनेक पुरस्कारों तथा सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। आपको २०११ में बुन्देली विकास संस्थान बसारी द्वारा पं. हरिराम मिश्र सम्मान से सम्मानित किया गया है।

पन्द्रहवें बुन्देली उत्सव का प्रतिवेदन

- प्रस्तुतकर्ता : डॉ. कुंजीलाल पटेल

बुन्देली लोककला और संस्कृति के संरक्षण के लिए प्रख्यात बुन्देली उत्सव २०११ का उद्घाटन १७ फरवरी को महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में खजुराहो सांसद जीतेन्द्र सिंह बुन्देला के मुख्य आतिथ्य में तथा टीकमगढ़ विधायक श्री यादवेन्द्र सिंह के अध्यक्षता में किया गया। इस अवसर पर कृषि उपज मंडी अध्यक्ष, डीलमणि सिंह बब्बू राजा तथा दक्षिण मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक कला केन्द्र नागपुर के निदेशक श्री रवीन्द्र सिंघल (आई.ए.एस.) विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। प्रारंभ में बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्ना राजा ने अतिथियों का स्वागत बुंदेली परंपरा अनुसार किया। मुन्ना राजा ने कहा कि सभी के सहयोग से यह १५वां बुन्देली उत्सव भी सफलतापूर्वक सम्पन्न होगा ऐसी उन्हें आशा है। समारोह के मुख्य अतिथि सांसद जितेन्द्र सिंह बुन्देला ने कहा कि बुंदेलखंड का साहित्य, वीरता और कला बेजोड़ है। यहां की संस्कृति सरस और सम्मानजनक है। महाराजा छत्रसाल, रानी लक्ष्मीबाई और आल्हा-ऊदल बुंदेलखण्ड के पराक्रम और शौर्य का उदाहरण है। बात जब कला की हो तो बुंदेलखण्ड की छवि अद्वितीय है। इस उत्सव से ग्रामों में छुपी प्रतिभाओं को अपनी प्रतिभा का दर्शन करने एक नया मंच मिला है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे विधायक यादवेन्द्र सिंह ने कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुंदेलखण्ड की कला और संस्कृति की विरासत को सहेजा और संवारा जा रहा है। आधुनिकता के कारण लोग अपनी संस्कृति को जब भूल रहे हैं तब ऐसे में बुंदेली उत्सव अपनी संस्कृति का संरक्षण करने लगा है। अच्छी बात यह है कि ऐसे आयोजनों को सफल बनाने के लिए हर दल के स्थानीय जनप्रतिनिधि सहयोग कर रहे हैं। ऐसे आयोजन में सभी को सहयोग प्रदान करना भी चाहिए। अतिथियों ने बुन्देलखण्ड के इतिहास के क्षेत्र में दिए जाने वाले दीवान प्रतिपाल सिंह सम्मान झांसी के ओमशंकर खरे 'असर' को प्रदान किया। हरिराम मिश्र पुरस्कार सुरेन्द्र अग्रवाल को प्रदान किया गया। पर्यटक ग्राम बसारी में चल रहे १५ वे बुन्देली उत्सव के दूसरे दिन शुक्रवार को पालतू जानवरों की कलाओं का प्रदर्शन विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। इसके साथ ही यहां पर कबड्डी, बॉलीबॉल, चौपड़ की भी रोचक प्रतियोगिताएँ हुईं। बुन्देली उत्सव में शुक्रवार को बकरों की और भेड़ों की लड़ाई ने लोगों में खूब रोमांच भरा। गाइड के इशारे पर यह जानवर ऐसे भिड़े के इनकी जीत-हार का फैसला करने में निर्णायकों को मशक्कत करना पड़ी। इसे देखने के लिए छतरपुर, पन्ना जिले के लोग भी बड़ी संख्या में पहुंचे। तीतर की लड़ाई प्रतियोगिता में छतरपुर के तीतर ने दतिया के तीतर को पराजित किया। १६वीं शताब्दी तक बुन्देलखण्ड के गांव-गांव में खेला जाने वाला चौपड़ खेल अब लुप्त होने की स्थिति में है। इस सहेजने और पुनः लोकप्रिय बनाने के लिए बुंदेली उत्सव में चौपड़ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। चौपड़ के फड़ के आस-पास उमड़ी भीड़ को देखकर खिलाड़ियों में भी अच्छा जोश बना रहा।

बॉलीबॉल प्रतियोगिता में शानदार मैच खेले गए। यहां दो मैच खेले गए। पहला मैच पड़वार और छतरपुर के बीच हुआ। बेहद रोचक मुकाबले में छतरपुर ने पड़वार की टीम को शिकस्त दी। इसी प्रकार दूसरा मैच छतरपुर और बसारी की टीमों के बीच खेला गया। छतरपुर के खिलाड़ियों ने शानदार खेल का प्रदर्शन करते हुए बसारी को पराजित कर दिया। वहीं कबड्डी में बसारी और खुड़न गांव की टीमों के बीच मुकाबला हुआ। जिसमें बसारी ने खुड़न को पराजित कर दिया।

बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन शनिवार को बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता का शुभारंभ निवाड़ी विधायक श्री बृजेन्द्र सिंह राठौर और उद्योगपति श्री अजय पाल सिंह ने किया। इस प्रतियोगिता में विभिन्न स्थानों से आए प्रतियोगियों ने ४६४ प्रकार के व्यंजनों को प्रदर्शित किया। इनमें इंदरसे, खीचला, ठडूला, अदरेनू, कोदई, महेरी, डुबरी, रसखीर, मुरका, लटा, बिरचुन, सतू, भंगरी सहित तमाम ऐसे व्यंजनों को बनाया गया जिनके या तो नाम ही नहीं सुने गए या फिर नाम सुने भी हैं तो लोगों ने स्वाद ही नहीं चखा था। व्यंजनों का स्वाद लेने दर्शकों में होड़ मची रही। इसी दिन कबड्डी, बॉलीबाल की प्रतियोगिताएं हुईं। इन प्रतियोगिताओं का शुभारम्भ राजनगर जनपद अध्यक्ष सिद्धार्थ शंकर और पार्षद अदित सिंह राहुल ने किया। कबड्डी ने तिलौंहा और रसुइया ठाकुरन में मुकाबला हुआ। इसमें रसुईया ठाकुरन की टीम विजयी रही। दूसरी मैच बंधियन और नयाखेरा के बीच हुई, जिसमें बंधियन की टीम विजयी रही। बॉलीबॉल में बसारी और बकस्वाहा के बीच मुकाबला हुआ। इसमें बकस्वाहा ने बसारी को हराकर जीत हासिल की।

बुंदेली विकास संस्थान द्वारा आयोजित १५वें बुंदेली उत्सव की चौथी शाम के मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश शासन के राज्यमंत्री बृजेन्द्र प्रताप सिंह रहे। विशिष्ट अतिथि उत्तर प्रदेश शासन के श्रम मंत्री बादशाह सिंह रहे तथा अध्यक्षता श्रीमती सरोज कुमारी गौरिहार ने की। अतिथियों ने दीप प्रज्ज्वलित कर उत्सव का शुभारंभ किया। बसारी रंग मंच पर समूह नृत्य की प्रस्तुतियां हुईं। जिसमें संतोष एवं जानकी रैकवार ग्रुप ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। बच्चों की बुन्देली नाटक प्रतियोगिता हुई। इसमें माध्यमिक शाला बसारी प्रथम और शंकर बाल मंडल ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। बुंदेलखंड का प्रमुख लोकनृत्य दिवारी भी प्रस्तुत किया गया। जिसमें मल्हार दल रीवन ने पहला एवं महेन्द्र यादव कुरेला की पार्टी ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। बहुरूपिया में बजरंग मंडल बसारी पहले स्थान पर रहा। निर्णायक मंडल में शिवपूजन अवस्थी, प्रवीण गुप्ता एवं उपासना तोमर शामिल रहे। बसारी के कलाकार हिमालय यादव को महाराजा प्रताप सिंह गौरिहार की स्मृति सम्मान प्रदान किया गया। उन्हें सम्मान स्वरूप २१०० रुपये की नकद राशि एवं सम्मान पत्र भेंट किया गया। इसके साथ ही हिमालय यादव के पुत्र के इलाज के लिए बुंदेली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्ना राजा ने ५१०० रुपये की

सहायता राशि दी। राज्यमंत्री बृजेन्द्र प्रताप सिंह ने अपनी स्वेच्छा अनुदान निधि से हिमालय को पुत्र के इलाज हेतु १५००० रुपये की सहायता राशि प्रदान की। बुन्देली विकास संस्थान द्वारा प्रकाशित वार्षिकांक बुंदेली बसंत-२०११ का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। बुन्देली उत्सव की चौथी शाम में राव बहादुर सिंह बुंदेली स्मृति सम्मान हटा के डॉ. श्याम सुंदर दुबे को दिया गया। उन्हें २१०० रुपये की सम्मान राशि, शॉल, श्रीफल एवं प्रतीक चिन्ह देकर सम्मान से नवाजा गया।

पर्यटक ग्राम बसारी में चल रहे बुन्देली उत्सव की पांचवीं शाम के कार्यक्रमों का शुभारंभ कृषि उपज मंडी छतरपुर के अध्यक्ष डीलमणि सिंह बब्बूराजा तथा जिला पंचायत सदस्य सरमन पटेल ने दीप प्रज्ज्वलन कर किया। इस मौके पर मुख्य अतिथि श्री सिंह ने कहा कि यह सफल आयोजन आज मुकाम जा पहुंचा है, जहां पर उसकी प्रतिष्ठा व सम्मान का अपना गौरवशाली इतिहास आम जनमानस के मन मस्तिष्क में समाहित हो गया है। इस मौके पर दिन में अश्व नृत्य प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न स्थानों से आए घोड़ों ने मनोहारी नृत्य किया। इस प्रतियोगिता में कल्याण सिंह सैला प्रथम, अर्जुन पाल गंज द्वितीय तथा जीतेन्द्र राठौर पृथ्वीपुर तीसरे स्थान पर रहे। अश्व सज्जा व घुड़सवार सज्जा के लिए अर्जुन पाल, कल्याण सिंह तथा मुरली पाल को पुरस्कृत किया गया। इस कार्यक्रम का संचालन लोकपाल सिंह परमार व जगदीश गंगेले ने किया। निर्णायक के रूप में अजीमुल्ला खान, महेन्द्र सिंह परिहार तथा हसमत छतरपुरी रहे। संध्याकालीन कार्यक्रमों में उरई, झांसी, दमोह, टीकमगढ़, महोबा, पन्ना, सागर तथा छतरपुर जिले के कलाकारों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। ख्याल गायन प्रतियोगिता में दिनेश सोनी पार्टी झांसी प्रथम, धनीराम वर्मा छतरपुर दूसरे स्थान पर रहे। रावला में रावला पार्टी गुंजनया प्रथम, रावला पार्टी बम्होरी द्वितीय रही। दादरा में दमरूलाल आदिवासी पार्टी बसारी प्रथम तथा पहाड़ीहीराजू पार्टी दूसरे स्थान पर रही। कार्तिक गायन में बेटीबाई व सखियां प्रथम तथा छत्रसाल चौराहा बसारी ने दूसरा स्थान हासिल किया। लमटेरा में संध्या सरगम जालौन पहले स्थान पर तथा आजाद सिंह जबेरा दमोह दूसरे स्थान पर रहे। पोशाक प्रतियोगिता में जूनियर वर्ग में धर्मेन्द्र खरे ने परदनिया व अल्फा पहनकर पहला तथा एकता सोनी दमोह ने ग्वालिन बनकर दूसरा स्थान पाया। सीनियर वर्ग में ब्रिजिश पहनकर मुरली पाल ने पहला तथा अर्जुन पाल ने दूसरा स्थान पाया। निर्णायक के रूप में आकाशवाणी के कार्यक्रम अधिकारी दिनेश रजक, बुंदेली कवि नवल किशोर सोनी मायूस तथा राघवेन्द्र उदैनिया उपस्थित रहे। समापन पर विजेताओं को सुरेन्द्र शर्मा शिरीष ने पुरस्कार वितरित किए। इस मौके पर धमना निवासी मिट्टी से मूर्तियां गढ़ने वाले कलाकार बालचंद्र कुम्हार को डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान २०११ से सम्मानित किया गया। उन्हें सम्मान स्वरूप २१०० रुपये नकद, शॉल, श्रीफल तथा सम्मान पत्र प्रदत्त किया गया। कार्यक्रमों का संचालन डॉ. बहादुर सिंह परमार, डॉ. विष्णु अरजरिया, शिवेन्द्र शुक्ला और नीरज खरे ने किया।

बुंदेली उत्सव के छठे दिन २२ फरवरी को बधाई, ढिमरयाई, दलदल घोड़ी, कदुआ आदिवासी नृत्यों की प्रस्तुति के साथ कहरवा, बनरें, आल्हा, सोहर, गोटें, कछियाई तथा अहिरवारी गायन की प्रस्तुतियाँ हुई। शुभारंभ दीवान त्रिलोक सिंह, वरिष्ठ साहित्यकार रतिभानु तिवारी कंज पृथ्वीपुर, उमाशंकर खरे ने किया। इस अवसर पर बुंदेली लोक संस्कृति के क्षेत्र में बांदा के राधाकृष्ण बुन्देली को राव बहादुर सिंह बुंदेला बसारी स्मृति सम्मान २०११ प्रदान किया गया। सम्मान पत्र का वाचन डॉ. के.एल. पटेल ने किया। रात्रिकालीन कार्यक्रम में आल्हा गायन प्रतियोगिता हुई। इसमें मवई खुर्द महोबा के राम अवतार सिंह प्रथम स्थान पर रहे। बधाई में आनंद रंग मंडल खजुराहो, अहिरवारी गम्मत में बूदौर के गनपत अहिरवार, दलदल घोड़ी में बजरंग मंडल बसारी, नौरता में नटराज लोक कला मंडल खजुराहो प्रथम स्थान पर रहा। कदुआ नृत्य में शिवशंकर आदिवासी की पार्टी ने प्रस्तुति दी। कछियाई में लखचंद नायक महोबा, कहरवा में घनश्याम दाऊ हटा, गोटों में मूलचंद पाल छतरपुर, सोहरे में मझौटा के कमलेश यादव, बनरा में पार्वती आदिवासी बसारी, ढिमरयाई में बजरंग मंडल बसारी ने और ढिमरयाई में चुन्नीलाल रैकवार कर्रापुर अव्वल रहे। बैलगाड़ी दौड़ में रम्मू यादव लुगासी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। दूसरे स्थान पर हंसादीन यादव और तीसरे स्थान पर राजेश यादव रहे। बैल सज्जा का पुरस्कार इमलिया के करे लाल पटेल को और गाड़ी सज्जा का भगवान दास बंसल को प्रदान किया गया।

पंद्रहवें बुन्देली उत्सव की आखिरी शाम राई, बिलवारी तथा फाग के नाम रही। प्रतियोगिता रात्रि तीन बजे तक चली तथा इसके बाद राई की विशेष प्रस्तुति से लोगों का मनोरंजन सूरज की पहली किरणों तक जारी रहा। आखिरी शाम के कार्यक्रमों का आगाज श्री पुष्पेन्द्र हजारी, संयोजक बुंदेली मेला हटा, ने महाराज छत्रसाल के चित्र के समक्ष दीप प्रज्जवलित करके किया। अतिथियों का माल्यार्पण से स्वागत के बाद स्वागत भाषण देते हुए जनपद पंचायत राजनगर के अध्यक्ष सिद्धार्थ शंकर बुंदेला (शानू भैया) ने कहा कि इस उत्सव के माध्यम से हम गांव में छिपे टैलेन्ट को मौका देते हैं। यह सभी के लिए खुला मंच है। इसके माध्यम से युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं से परिचित होती है, इस आयोजन ने कई विपरीत परिस्थितियों के दौर देखे हैं किन्तु बंद नहीं हुआ है, मेरा प्रयास है कि इसे नये उत्साह से चालू रखा जाए।

इसके बाद बुन्देली के वरिष्ठ कवि नवल किशोर सोनी (मायूस) को राव बहादुर सिंह बुंदेला स्मृति सम्मान-२०११ साहित्य रचना के क्षेत्र में प्रदत्त किया गया। सम्मान पत्र का वाचन संतोष ताम्रकार द्वारा किया गया। सम्मान में २१०० रुपये की राशि, सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल प्रदत्त किया गया। इस सम्मान का कृतज्ञता करते हुए श्री मायूस ने कहा कि मेरे ऊपर दायित्व आ गया है कि और बेहतर कुछ रचूँ। जनता की फरमाइश पर कुछ कविताएं आपके द्वारा सुनाई गयी।

मुख्य अतिथि पुष्पेन्द्र सिंह हजारी हटा ने कहा कि इस आयोजन से प्रेरणा लेकर ही पांच साल से हमने हटा में बुंदेली मेला प्रारंभ किया है जो २६ फरवरी २०११ से है जिसमें सभी लोग आमंत्रित हैं। इस तरह के आयोजन हमारी लोक संस्कृति को पहचान दिलाते हैं। मैं सभी से अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य से प्रेम करने तथा नई पीढ़ी को हस्तांतरित करने का आह्वान करता हूँ।

इसके बाद लगातार एक से बढ़कर एक प्रस्तुतियाँ दी गई। प्रारंभ चुन्नीलाल रैकवार, कर्रापुर, सागर की ढिमरयाई की विशेष प्रस्तुति से हुआ। दमोह से पधारी एकता सोनी तथा उनके साथियों ने नन्हें कलाकारों के साथ राई की विशेष प्रस्तुति दी। इसके अतिरिक्त बिलवारी तथा फाग की प्रस्तुतियाँ दी गयी। प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल में वरिष्ठ कवि सुरेन्द्र शर्मा शिरीष, आकाशवाणी के कार्यक्रम प्रमुख सुरेन्द्र तिवारी तथा दूरदर्शन आकाशवाणी के कलाकार बद्री प्रसाद खरे निरंकार रहे। निर्णायकों के निर्णय के अनुसार बिलवारी में छत्रसाल चौराहा बजरंग मंडल प्रथम तथा लखचन्द्र नायक फाग पार्टी, आरी, जिला महोबा दूसरे स्थान पर रही। राई में एकादश पार्टियों ने प्रतियोगिता में हिस्सा लिया जिसमें पहला स्थान शिवशंकर आदिवासी राई पार्टी, बसारी ने तथा दूसरा स्थान छत्रसाल राई पार्टी, पारवा ने प्राप्त किया। प्रतियोगिता के समापन पर संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्ना राजा ने सभी विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये। इसके बाद विशेष सहयोगियों को भी पुरस्कृत किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष शोभालाल गुप्ता ने सभी के लिए आभार ज्ञापित किया। इसके बाद राई की विशेष प्रस्तुतियां भोर तक जारी रही।

- रेडियो कॉलोनी के सामने, छतरपुर (म.प्र.)

नई-नई पोथी अपुन के लानें

- **योगांजलि** - योगाचार्य डॉ. फूलचंद्र जैन
  प्रकाशक - श्री स्याद्वाद योग संस्थान छतरपुर, रु. १००/-
- **राम-रंग-रस भींजीं चुनरिया** - डॉ. श्याम सुन्दर दुबे
  प्रकाशक - ग्रंथकेतन, शाहदरा, दिल्ली, रु. २००/-
- **अमृतांजलि** - सं. चिन्तामणि वर्मा
  प्रकाशक - चिन्तामणि वर्मा, छतरपुर
- **महामती प्राणनाथ और महात्मा गाँधी (अंग्रेजी)**
  लेखक - पारसमणि शास्त्री,
  अनुवादक - डॉ. बी.पी.एस. गौर, छतरपुर
  प्रकाशक - श्री प्राणनाथ अकादमी, धाम पन्ना, रु. १२०/-
- **बाल हाईकू सतसई** - डॉ. राज गोस्वामी, दतिया
  प्रकाशक - म.प्र. लेखक संघ इकाई दतिया, रु. १००/-
- **माँ मंगलमयी (काव्य)** - विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास
  प्रकाशक - सरस्वती सदन पुस्तकालय पब्लिक ट्रस्ट छतरपुर, रु. १०/-
- **बुन्देली पानी (काव्य)** - स्व. श्री बाबूलाल गुप्त 'गुप्तेश'
  प्रकाशक - गुप्तेश प्रकाशन बड़ामलहरा, रु. ५१/-
- **क्रांति-शांति समन्वय पं. श्रीयुत रामसहाय तिवारी जी** स्मृति ग्रंथ - सं. दशरथ जैन व अन्य, रु. २५१/-
- **मन्थन (काव्य संग्रह)** - किशोरी लाल नेमा, करेली
  प्रकाशक - पुस्तक बैंक, ३६५, सेक्टर फरीदाबाद, रु. १५०/-
- **बाल शिक्षक और शिक्षक** - चिन्तामणि वर्मा
- **सीताकिशोर स्मृति कलश** - सं. डॉ. कामिनी
  प्रकाशक - बुन्देला शोध संस्थान, सेंवढ़ा (दतिया) म.प्र.
- **जनकवि ईसुरी** - डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी
  प्रकाशक - बुन्देली पीठ, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. सागर, रु. २५०/-
- **रामशरण में आइए (जनक छंद संकलन)** - कुँ. शिवभूषण सिंह गौतम, रु. ३०/-
- **जमुना मैया - सवैया छंद छटा** - कालिका प्रसाद शुक्ल 'विजयी'
  प्र० - श्रीमती कस्तूरीदेवी शुक्ल, साहित्यपीठ पृथ्वीपुर, रु. २०/-
- **श्रीमद्भागवत गीता दोहावली** (गीता के श्लोकों का दोहानुवाद)
  रचयिता - इं. डॉ. प्रेमनारायण खरे
  प्रकाशक - कृष्णा शांति प्रकाशन, छतरपुर
- **आर्यदेव कुल का इतिहास** - दीवान प्रतिपाल सिंह
  प्रकाशक - पृथ्वीसिंह बुन्देला छतरपुर, रु. २००/-
- **सती के आँसू और हरदौल (ऐतिहासिक नाटक)** - सुरेन्द्र सिंह कुशवाहा, प्रकाशक - ४०५, तुलसी नगर उरई, रु. १००/-
- **चौंसठ योगिनी (कहानी संग्रह)** - डॉ. रजनी सक्सेना
  प्रकाशक - सत् प्रकाशन, भोपाल, रु. १००/-
- **चक्रव्यूह (खण्ड काव्य)** - श्रीप्रकाश पटैरिया 'हृदयेश'
  प्रकाशक - सरस्वती सदन प्रकाशन छतरपुर, रु. ५०/-
- **ओरछा धाम महिमा** - जगदीश्वर
  प्रकाशक - प्रान्तीय कलाकार संघ, जिला इकाई टीकमगढ़, रु. २५/-
- **स्थान नाम : समय के साक्षी** (ललितपुर जनपद के संदर्भ में)
  लेखक - डॉ. राकेश नारायण द्विवेदी
  प्रकाशक - जानकी प्रकाशन छिल्ला (ललितपुर) रु. ४०/-
- **भइया अपने गाँव में** (बुन्देली काव्य) - पं. बाबूलाल द्विवेदी
  प्रकाशक - जानकी प्रकाशन, छिल्ला (ललितपुर) रु. १५०/-
- **व्यथा कथा एक नायिका की** (खण्ड काव्य)
  रचयिता - राधा जनार्दन
  प्रकाशक - प्राणनाथ अकादमी पन्ना, रु. १२०/-
- **पुनर्मिलन (उपन्यास)** - सुरेश पराग
  पुस्तक प्रकाशन दिल्ली, रु. २७५/-
- **भारत दर्शन** - रामस्वरूप शर्मा
  प्रकाशक - म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, टीकमगढ़, रु. १२५/-
- **भक्तांबर स्रोत** (बुन्देली पद्यानुवाद) - डॉ. दुर्गेश दीक्षित
  प्रकाशक - राजेन्द्र कुमार जैन, बुड़ेरा (टीकमगढ़), निःशुल्क
- **सूत्रधारिणी** - रमेश बहादुर खरे
  प्रकाशक - पाठक मंच, जिला इकाई पन्ना, रु. ४०/-
- **दोहा-मुक्तक-माल** - डॉ. ब्रह्मजीत गौतम
  प्रकाशक - स्वयं रचनाकार, रु. निःशुल्क
- **जनक छन्द की साधना** - डॉ. ब्रह्मजीत गौतम
  प्रकाशक - स्वयं रचनाकार, रु. निःशुल्क
- **नीम का पेड़** - चन्द्रकान्त दीक्षित
  प्रकाशक : स्वयं लेखक, रु. २५/-
- **गीत गुँजन** - काशी प्रसाद महतों
  प्रकाशक : लेखक स्वयं, रु. २०/-
- **लोकसाहित्य में मानव मूल्य** - डॉ. बहादुर सिंह परमार
  प्रकाशक - हिन्दी विभाग महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

बुन्देली गजलें

- डॉ. राघवेन्द्र उदैनियाँ 'सनेही'

(१)

न ऊसी गम्म रै गइ अब, न ऊसी बा सरम है जू।
जमानौ कैसो आओ कै, सरम लौ बेसरम है जू।।

जबै लौ जीसें सटपट रइ, तबइँ लौ बोल मिसरी हैं,
बिलोरा भओ सो तुम तुम हो, औ हेरौ हम तो हम हैं जू।

जितै देखौ उतइँ स्वारथ, मुहब्बत तौ बिला सी गई,
जो स्वारथ ना सटो कउँ सो, ओइ चाहत तौ बम है जू।

उबाँड़े सूदें निग लेवें, बड़ी कर्रो है दुनियाँ में,
खुदँइ टेड़े न हैरें जे, तो ऐईं कौन कम है जू।

ठिकानौ नइयाँ काऊ कौ, कबै को काँ से काँ पोंचै,
'सनेही' काल तो ठर्रा, तकौ तौ आज रम है जू।।

(२)

बड़े है ठाट जिन जिन के, अरे अब उनकी का कानें।
हमें साँसी जो कै देनै, सो उनखाँ ताव आ जानें।।

कुचरकें खात रए मउआ, अबै लौ रोज ब्यारी में।
लगी का सट्ट सूरे की, कै मुर्गा रात-दिन छानें।।

अंगूँठा छाप पबरत हैं, ओ घूमें लाल बत्ती में,
का हुइये देस कौ भइया! जौ तौ परमात्मा जानें।

न जीनें खेत देखे हों, करी हो और न खेती,
बताओ यार अदरक कौ ऊ बँदरा स्वाद का जानें।

जिनें कोऊ न पूँछत तो सनेही गुर लगायें लौ,
बेई दुनियाँ के ठेकेदार बन बैठे लगा टानें।।

- सरानी दरबाजा बाहर, छतरपुर

दो बुन्देली कविताएँ

- डॉ. हरिसिंह घोष

(१)

ढारन गई ती आज रोजईं जस जात ती।
देखन न पाई लला लुको कितै खोरी में
लौटी तो पाछें सें डाल लई गलबहियाँ
बरती कोताई न करतन बरजोरी में
भली मन भाई भई कातन में लगै लाज
श्याम रंग रँग दवो बाँध प्रेम डोरी में
मोरी न सुनी कछू 'होरी है' - कात रवो
बोर दई लाज आज छलिया ने होरी में।।

(२)

कवो जू वे दिन कैसे आहें,
मैं माँ की गोदी में खेलों प्रभु श्रीराम खिलाहैं
बरज कुसंग कुचाल हटक कें, उरझत से बरकाहैं
हटकी पै हट करों, हिये हँस, प्रकट मोय खिसियाहैं
लख आनंद मोद में मोखाँ मंद मंद मुसकाहैं
जाने कौन नाव लै लै कें हँस-हँस कबहुँ बुलाहैं।

- घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर





सोलहवें "बुन्देली उत्सव-2012"

में पर्यटक ग्राम बसारी (बुंदेलखंड) में पधारे अतिथियों एवं कलाकारों का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं

योजनाएं :

1. पात्र हितग्राहियों को वृद्धावस्था पेंशन का लाभ दिलाना।
2. रोजगार गारंटी योजना के तहत हर हाथ को 100 दिन के काम की गारंटी।
3. समग्र स्वच्छता अभियान के तहत शौचालयों का निर्माण करवाना ।
4. भू-जल संवर्धन के लिए वृक्षारोपण करवाना।
5. कपिल धारा योजना के तहत कूपों का निर्माण करवाना।
6. शासन की मंशानुरूप गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को योजनाओं का लाभ दिलाना।

अपील -

1. जन्म-मृत्यु का पंजीयन अवश्य कराएं।
2. नगर को साफ स्वच्छ और हरा भरा बनाएं रखने में मदद करें.
3. पानी अमूल्य है कृपया इसे बर्वाद न करें।
4. बच्चों को नियमित स्कूल भेजें ।





ओमशरण पटेल (हल्के भैया)
उपाध्यक्ष

बी.के. सिंह
सीईओ

सिद्धार्थ शंकर बुन्देला
अध्यक्ष

सौजन्य से - जनपद पंचायत राजनगर

जिला - छतरपुर (म.प्र.)